नित्याषोडशिकार्णवः

शिवानन्दकृतऋजुविमर्शिनी-
विद्यानन्दकृतार्थरत्नावली-
भास्कररायकृतसेतुबन्धाख्यटीकात्रयसहित-
भाषाभाष्यविभूषितः

भाषाभाष्यकारः
श्री एस. एन. खण्डेलवाल

नित्याषोडशिकार्णवः

शिवानन्दकृत**ऋजुविमर्शिनी**-विद्यानन्दकृता**र्थरत्नावली**-
भास्कररायकृत**सेतुबन्धा**ख्यटीकात्रयसहित-
भाषाभाष्यविभूषितः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

509

नित्याषोडशिकार्णवः

शिवानन्दकृत**ऋजुविमर्शिनी**-विद्यानन्दकृत**ार्थरत्नावली**-
भास्कररायकृत**सेतुबन्धा**ख्यटीकात्रयसहित-
भाषाभाष्यविभूषितः

भाषाभाष्यकारः

श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण, या किसी भी विधि (जैसे - इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉडिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के विना नही किया जा सकता है।

ISBN : 978-93-80326-69-9

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 2011
मूल्य : 500.00

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
दूरभाषः (011) 32996391, टेलीफैक्सः (011) 23286537

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

किञ्चिन्निवेदनम्

नित्याषोडशिकार्णव के सम्बन्ध में कुछ लिखने के पूर्व इसके विभिन्न विश्रामों में वर्णित विषयवस्तु का संक्षिप्त विवरण देना समीचीन प्रतीत होता है। नित्याषोडशिकार्णव पञ्चविश्रामात्मक है। यथाक्रम से इनमें वर्णित विषयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम विश्राम में पूजातत्त्व वर्णित है। यह महात्रिपुरसुन्दरी की बाह्य पूजा है। वास्तव में जो आन्तर पूजा करने में समर्थ हैं, उन्हें ही बाह्य पूजा का अधिकार है। महान् विद्वान् शिवचन्द्र विद्यार्णव ने अपने ग्रन्थ 'तन्त्रतत्त्व' में तथा उनके अनुगामी सर जान उडरफ (आर्थर एवलान) ने अपने ग्रन्थ 'प्रिंसपल ऑफ तन्त्राज' में इस तथ्य को सप्रमाण उद्धृत किया है। अत: यह सर्ववादि-सिद्ध सिद्धान्त है कि आन्तर पूजा में निष्णात हुये विना बाह्य पूजा सर्वथा फलवती नहीं होती। आन्तर पूजा से जाग्रत आत्मतेज को जब तक बाह्य प्रतिमा अथवा यन्त्रादि में संस्थापित नहीं किया जाता, तब तक वह प्रतिमा अथवा यन्त्र आदि निर्जीव ही रहते हैं। अत: नित्याषोडशिकार्णव में वर्णित यह पूजाधिकार उनको ही है, जिन्होंने अन्तर्यागरूपी अन्त:पूजन को गुरुकृपा से सम्पन्न कर लिया है।

प्रथम विश्राम के प्रारम्भ में १२ श्लोकों द्वारा देवी का स्तवन किया गया है। तत्पश्चात् ६४ तन्त्रों के नामों का अंकन है। तदनन्तर श्रीचक्र की रचना एवं महिमा वर्णित है। मातृका के अष्टवर्गानुक्रम से वशिनी आदि अष्ट वाग्देवता के साथ महात्रिपुरसुन्दरी की पूजा का वर्णन है। वशिनी आदि आठों महाविद्या के मन्त्र भी अंकित किये गये हैं। तत्पश्चात् देव की अंगविद्या, मूल बालविद्या, महात्रिपुरसुन्दरी की मूल विद्या वर्णित है। चक्रराजचक्र-पूजन का विषय, विन्यास-स्थान, विन्यास-प्रकार, चक्रराज का ध्यान एवं न्यास एवं महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान भी यथाविधि वर्णित है। इसी विश्राम में तदनन्तर चक्रराजचक्र के अन्तर्भुक्त त्रैलोक्यमोहनादि चक्र में पूज्या शक्तियों का, चक्रराज-पूजान्तर्गत नव मुद्रा का, कामकला-ध्यान का वर्णन है। तत्पश्चात् साधक द्वारा अपनी देह में ३६ तत्त्वों की कारणस्वरूपा कामकलारूप शक्ति की अक्षररूप में भावना का वर्णन किया गया है। चक्र के साथ महात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान, स्तुति, नमस्कारादि के अनन्तर खेचरी मुद्रा-प्रदर्शन द्वारा विसर्जन का विधान किया गया है।

द्वितीय विश्राम में प्रयोग अर्थात् मन्त्रप्रयोग वर्णित है। पहले मन्त्रजप का फल बतलाया गया है, तदनन्तर भिन्न-भिन्न प्रक्रिया द्वारा किये गये जप के भिन्न-भिन्न फल वर्णित हैं। विभिन्न द्रव्यों द्वारा चक्रराजचक्र लिखकर धारण करने के विभिन्न फल भी अंकित हैं। स्थानविशेष में विशेष प्रकार से लिखित चक्र का पूजाफल भी विवृत है।

वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषणादि भी इसी फल के अन्तर्गत हैं। सर्वान्त में समस्त सिद्धि के साधक के लिये एक प्रयोग उपदिष्ट है।

तृतीय विश्राम में मुद्रा वर्णित है। पहले त्रिखण्डा मुद्रा का वर्णन करके सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वावेशकरी, सर्वोन्मादिनी, महाङ्कुशा, खेचरी तथा वीरमुद्रा वर्णित है। यहाँ योनिमुद्रा की विशेष महिमा मानी गयी है। त्रिपुरा-पूजनकाल में इन सबका प्रयोग विहित है।

चतुर्थ विश्राम में विद्याव्याप्ति उपदिष्ट है। विद्या का तात्पर्यार्थ है—मूल विद्यारूप त्रिपुरा का मूल मन्त्र। यह त्रिबीजात्मक विद्या है। विद्या की व्याप्ति अर्थात् त्रिबीज की व्याप्ति। व्यापक तथा व्याप्य का जो सम्बन्ध है, वही है व्याप्ति। इस विश्राम का मूल विषय है—श्रीविद्या के व्यापक एवं व्याप्य का नित्य सम्बन्ध-वर्णन।

इस विश्राम के प्रारम्भ में श्रीविद्या के बीजों के सम्बन्ध में देवी की शंका के उत्तर में भैरव ने त्रिपुरा को परमा आद्या शक्ति बतलाते हुये त्रिपुरारहस्य कहना प्रारम्भ किया है। तदनन्तर शक्तियुक्त शिव एवं शक्तिरहित शिव के स्वरूप का वर्णन किया है। तदनन्तर त्रिपुरा के परमार्गान्त-प्रवेश, वामा-ज्येष्ठा-रौद्रीरूप में त्रिपुरा की शृङ्गाटकाकारता-प्राप्ति का विवेचन किया गया है। इसके पश्चात् त्रिपुरा नाम की व्याख्या के अनन्तर कुलकुण्डलिनी त्रिपुरा के परमशिव के साथ के मिलन-रहस्य की व्याख्या की गयी है। इसके अनन्तर वाग्भव, कामराज तथा शक्तिबीज में त्रिपुरा का स्वरूपनिरूपण विवेचित है। स्मरण, जप, पूजा, होम तथा ध्यान का फल, बीजत्रयसाधना, वाग्भव बीजरूपा वागीश्वरी की आराधना एवं उसके फल का विवरण भी दिया गया है। तत्पश्चात् कामबीजरूपा कामकला की आराधना-विधि तथा उसके फल का वर्णन है। कामराज यन्त्र तथा शक्तिबीजरूपिणी की आराधना भी वर्णित है; लेकिन इस विश्राम में मोक्षफल का कहीं भी वर्णन नहीं है। केवल एक श्लोकार्ध में उसका वर्णन किञ्चित् रूपेण प्राप्त है—

वाग्भवबीजस्थिता ज्ञानशक्ति वागीश्वरी मोक्षरूपिणी।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि मोक्ष के सम्बन्ध में तान्त्रिकों का दृष्टिकोण कुछ अलग ही है—

मोक्षस्य नैव किञ्चिद्धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः।। (परमार्थसार)

मोक्ष का कोई धाम—लोक नहीं है। कहीं जाना भी नहीं है। अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करने वाली स्वशक्ति की अभिव्यक्ति ही मोक्ष है।

पञ्चम विश्राम का विषय है—जप की प्रशंसा। जप में जप का अंग होम भी माना गया है। पहले है चक्र तथा चक्रावयव-पूजनकाल में जप। तदनन्तर सहस्रजप का फल विवृत है, हृदयकमल में चक्रभावना के साथ जप। निगद एवं उपांशु जप, जपमाला-

प्रकार, विभिन्न संख्यक जप का फल भी वर्णित है। स्वयम्भू लिङ्ग, बाणलिंग अथवा अन्य लिंग के सान्निध्य में जप का फल भी कहा गया है। जप का दशांश होम करने का फल, आठ प्रकार के होम, कुण्ड और उनमें होम का फल वर्णित है।

भास्करराय के मत से नित्याषोडशिकार्णव युगलात्मक है अर्थात् पूर्व चतु:शती एवं उत्तर चतु:शती। उन्होंने वामकेश्वर तन्त्रस्थ युगलात्मक नित्याषोडशिकार्णव की व्याख्या की है। उनके अनुसार इसके (वामकेश्वर तन्त्र के) उपक्रम एवं उपसंहार में तन्त्र के आरम्भ एवं समाप्ति का चिह्न मिलता है। अपने इस मत के समर्थन में उन्होंने नित्याषोडशिकार्णव की शिवानन्दकृत ऋजुविमर्शिनी टीका से प्रमाण भी दिया है—

श्रीवामकेश्वरं नाम शास्त्रं तन्त्रं प्रकाशते।
मध्ये शास्त्रस्य तस्यास्ति नित्याषोडशिकार्णव:।।
तत्र च द्वे चतु:शत्याविति।

अर्थात् वामकेश्वर नामक तन्त्रशास्त्र प्रकाशित हुआ। उसमें नित्याषोडशिकार्णव है। उसमें दो चतु:शती है। लेकिन ऋजुविमर्शिनी की जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें यह श्लोक अन्य प्रकार का है—

श्रीवामकेश्वरं नाम शास्त्रं तत्र प्रकाशितम्।
शिवेन संविदं देवीं लक्ष्यीकृत्य निजात्मिकाम्।।
मध्ये शास्त्रस्य तस्यास्ति नित्याषोडशिकार्णव:।
सूत्रैश्चतुश्शतैर्युक्त: कश्चिद् भागो रसावह:।।

अर्थात् तन्त्र के क्षेत्र में वामकेश्वर नामक तन्त्र प्रकाशित हुआ। शिव ने निजात्मिका संविद्रूपा देवी को लक्ष्य करके इसे प्रकाशित किया। इसमें नित्याषोडशिकार्णव नामक चतु:शत सूत्रयुक्त एक रसावह भाग है।

कोई विद्वान् कहते हैं कि भास्करराय द्वारा उद्धृत श्लोक उनकी स्मृति का फल है। सम्भवत: उन्होंने मूल ग्रन्थ से मिलान करके इसे नहीं लिखा। इसीलिये दोनों स्थान के श्लोक आपस में नहीं मिल रहे हैं। यहाँ पर आज कल के अन्वेषक भास्करराय द्वारा उद्धृत श्लोक के अंश 'तत्र च द्वे चतु:शत्याविति' को उनकी कल्पना मानते हैं। इस विवाद में न पड़कर यह कहना है कि भास्करराय के मत से वामकेश्वर तन्त्र तथा नित्याषोडशिकार्णव एक ही है। उनके अनुसार पूर्व चतु:शती है—नित्याषोडशिकार्णव तथा उत्तर चतु:शती है—योगिनीहृदय।

'नित्याहृदयमित्येतत्तन्त्रोत्तरार्धस्य योगिनीहृदयस्य संज्ञा'।
(वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णव)

कतिपय विद्वानों का यह भी अभिमत है कि वामकेश्वर तन्त्र नामक एक पृथक् तन्त्र था। वह अन्तर्याग-प्रधान था। भास्करराय के मत से कुलार्णव, ज्ञानार्णव, स्वच्छन्द,

परानन्द, भैरवी, दक्षिणामूर्त्तिसंहिता-प्रभृति त्रिपुरा-सम्बन्धित तन्त्रों में अधिकत: बहिर्याग ही लक्षित होता है। अन्तर्याग सामान्य रूप से कहीं-कहीं स्फुटरूपेण वर्णित है; किन्तु वामकेश्वर तन्त्र में अन्तर्याग प्रमुख है और इसीलिये आन्तर उपासना वालों के लिये वह वरणीय है।

भास्करराय ने अपनी सेतुबन्ध टीका में लिखा है कि नित्याषोडशिकार्णव नामक तन्त्र अत्यन्त गहन है। इसमें अर्णव शब्द से इसका अपार स्वरूप व्यक्त होता है। इस अपार अर्णव (सागर) को पार करने के लिये पूर्वाचार्यों द्वारा प्रदर्शित सेतु को आधार बनाकर उन्होंने 'सेतुबन्ध' नामक टीका का प्रणयन किया। नित्याषोडशिकार्णव का तात्पर्य है—षोडश नित्या। उनका मत है कि परमशिव से अभिन्न शक्ति ही नित्या है। इनके तत्त्व हैं अर्णव के समान। इस तन्त्र में उसे व्यक्त किया गया है, इसीलिये इसका नाम है—नित्याषोडशिकार्णव।

इसकी कई टीकायें उपलब्ध होती हैं, जिनमें अर्थरत्नावली, ऋजुविमर्शिनी तथा सेतुबन्ध प्रमुख हैं। अर्थरत्नावली के रचयिता हैं—विद्यानन्द, जिन्होंने प्रधानत: कौलिक दृष्टिकोण से व्याख्या किया है। इस टीका में यद्यपि हादि विद्या का प्रमुख स्थान दिया गया है, तथापि कहीं-कहीं पहले कादि विद्या के अनुरूप व्याख्या, तदनन्तर हादि विद्यानुरूप व्याख्या की गयी है। अत: इस टीका को कुलानुगत एवं क्रमदर्शनानुगत व्याख्या कहते हैं।

ऋजुविमर्शिनी टीका के रचयिता हैं—शिवानन्द। इन्होंने आचार्य क्षेमराजकृत शिवसूत्रविमर्शिनी के आधार पर व्याख्या की है। इन्होंने मूल विद्या-समुद्धार प्रकरण में हादि विद्या को प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार दिव्य-सिद्ध-मानवौघ गुरुक्रम में भी हादि विद्या की परम्परा को माना है। इस प्रकार इस टीका में कौलिक प्रक्रिया सूचित है। शिवानन्द ने सभी मूल पदों की व्याख्या में प्रत्याभिज्ञादर्शन का तथा अन्तर्यागपद्धति का और अध्यात्म तत्त्व का वरण किया है। ऋजुविमर्शिनी तथा अर्थरत्नावली का रचनाकाल सेतुबन्ध से पूर्व का है। दोनों टीकाओं में प्रपञ्चसार, सङ्केतपद्धति आदि प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं।

सेतुबन्ध कादि विद्या पर आधारित है। भास्करराय ने अनेक क्षेत्र में युक्ति का सहारा लेकर नूतन अर्थ व्यक्त किया है। उनकी व्याख्या में तो त्रिक दर्शन अन्य दर्शनों द्वारा प्रभावित प्रतीत होता है। उन्होंने सुन्दरीतापिनी आदि उपनिषद्, परमानन्द तन्त्र, दक्षिणामूर्त्ति संहिता, क्रमसंहिता तथा पुराणादि से प्रमाण प्रस्तुत किया है। कई स्थानों पर ऋजुविमर्शिनी एवं अर्थरत्नावली की व्याख्या की आलोचना भी की है। शिवानन्द-प्रभृति टीकाकारों के मत से यह ग्रन्थ (नित्याषोडशिकार्णव) पाँच विश्रामों वाला है। ऋजुविमर्शिनी में शिवानन्द कहते भी हैं—

स च पञ्चपटल्यात्मा कर्मपञ्चकभासकः।
पूजा प्रयोगो मुद्रा च विद्याव्याप्तिर्जपस्तुतिः।।

अर्थात् यह ग्रन्थ पञ्चपटलात्मक है। पञ्चकर्मों का प्रकाश करने वाला है। पञ्चकर्म हैं—पूजा, प्रयोग, मुद्रा, विद्याव्याप्ति तथा जपस्तुति। इन्हीं से यथाक्रमेण पाँच पटल (विश्राम) क्रमशः ग्रथित हैं। इसमें ४०० श्लोक कहे गये हैं। सेतुबन्ध टीका के अनुसार इसकी श्लोकसंख्या ४३० है। इस सम्बन्ध में भी मत-विभिन्नता है। यह निर्णय अन्वेषकों पर छोड़ता हूँ। यहाँ इस विवाद में पड़ना निष्प्रयोजनीय लगता है।

शैव तथा शाक्त आगम अद्वैत दर्शन हैं। उसमें 'प्रकाश' शब्द शिववाचक है तथा 'विमर्श' शब्द शक्ति का स्वरूप द्योतित करता है। दोनों दर्शन में कोई भेद नहीं है। बाह्यतः यही भेद है कि शैवगण शिव को परम मानते हैं; जबकि शाक्तगण शक्ति को परम मानते हैं। त्रैपुर दर्शन के अन्तर्गत नित्याषोड़शिकार्णव भी शाक्त दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार संवित् ३६ तत्त्वों से परे है। शिवतत्त्व तथा शक्तितत्त्व—ये दोनों ही संवित् से ही प्रसवित हैं। यह संवित् ही अन्तःस्थित जगत् को बाहर प्रकाशित करता है। कहा गया है कि जब संवित् विश्वसृष्टिरूप स्वयं को अभिव्यक्त करने की इच्छा करती है तब ३६ तत्त्वात्मक विश्व की सृष्टि के सर्वाग्र में श्रीचक्र का उद्भव होता है।

यह भी कहा गया है कि जब जगत् का उद्गमन-ग्रसनकारिणी महाशक्ति परासंवित् विश्ववैचित्र्य-अवभासनार्थ उद्यत होती हैं तब वे वामा-ज्येष्ठा-रौद्रीरूप से सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी शृङ्गाटक आकार धारण करती हैं। ये ही हैं—इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपा अथवा ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपा। ये त्रैलोक्य-सृजनकर्त्री हैं। ये ही त्रिपुरा हैं। विश्वोत्तीर्णा त्रिपुरा विश्वात्मकरूप से प्रकाशित होकर आत्मतत्त्व-विद्यातत्त्व-शिवतत्त्वरूप से व्यक्त होकर वर्णत्रयात्मक तथा शक्तित्रयात्मक रूप धारण करती हैं। इन्हीं का अन्यतम नाम है—श्रीविद्या। इसमें तीन कूट (बीज) हैं—वाग्भव, कामराज तथा शक्तिकूट। आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्वरूपेण अभिव्यक्त त्रिपुरादेवी वाग्भव, कामराज तथा शक्तिरूपी त्रिबीजरूपा हो जाती हैं। ये वाग्भव बीज में अमृत तत्त्वप्रकाशिका ज्ञानशक्ति हैं। कामबीज में ये हैं—कामकलात्मिका महाचमत्कार करने वाली क्रियाशक्ति। शक्तिबीज में ये हैं—परमशिव सामरस्यमयी इच्छाशक्ति।

इस सम्बन्ध में यह भी कहना है कि शब्दजाल से यह तत्त्व सहस्रों वर्ष लिखकर भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह साधना तथा अनुभूतिपरक वस्तु है। यथार्थ सिद्ध गुरु की कृपा विना इस तत्त्व में प्रवेश कर सकना अत्यन्त दुष्कर तथा असम्भव है। गुरुकृपा का लेश प्राप्त होते ही क्षणमात्र में इस पथ का प्रवेशद्वार उन्मुक्त हो जाता है। केवल ग्रन्थ पढ़कर मन में अनेक तर्क-वितर्क तथा विकल्पोदय होना अवश्यम्भावी है, क्योंकि यह भाषा का विषय है ही नहीं। ग्रन्थ केवल दिशासंकेत ही दे सकता है। गुरुकृपा प्राप्त होने के अनन्तर ही ग्रन्थकृपा मिल सकती है। तभी 'सूझहिं रामचरित

मणि-माणिक, गुपुत प्रकट किये जिमि खानिक'। अन्यथा ग्रन्थ लेकर तोतारटन्त करते रहिये, कुछ हासिल नहीं होना है। यही है—सारतत्त्व।

कौल-साधना का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वप्रथम साधन है—योग। योगान्तर्गत कुण्डलिनी सर्वप्रधाना है। श्रीचक्र के साथ योगोक्त षट्चक्र का भी साम्य परिलक्षित होता है। यथा—त्रिकोण ही मूलाधार चक्र है, स्वाधिष्ठान श्रीचक्रान्तर्गत अष्टकोण है, अन्तर्दशार है—मणिपूर चक्र, बहिर्दशार अनाहत चक्र को कहते हैं, चतुर्दशार है—विशुद्धिचक्र, शिवचक्रचतुष्टय है—आज्ञाचक्र। सहस्रार है—बिन्दुस्थानीय (यह सौन्दर्यलहरी के ३२वें श्लोक की लक्ष्मीधरकृत टीका में कहा गया है)। षट्चक्रभेद से ही रुद्रादि ग्रन्थियों का भेदन होता है। श्रीचक्र को षट्चक्रात्मक तथा त्रिखण्डात्मक कहते हैं। षट्चक्रात्मिकता की विवेचना तो ऊपर अंकित है। त्रिखण्डात्मक का तात्पर्य है कि मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान ही अनलात्मक प्रथम खण्ड है। मणिपूर तथा अनाहत सूर्यात्मक द्वितीय खण्ड है। प्रथमखण्ड है—रुद्रग्रन्थि एवं द्वितीय खण्ड है—विष्णुग्रन्थि। तृतीय खण्ड है—विशुद्ध एवं आज्ञाचक्रात्मक, जो ब्रह्मग्रन्थि है। इन सबको लेकर श्रीचक्र सर्वात्मक होता है।

योगसाधनेच्छु तान्त्रिक कौल साधक को सर्वव्याधिरहित दिव्य देहलाभ करना चाहिये, जो केवल षट्चक्र-ज्ञान तथा ग्रन्थियों के ज्ञानमात्र से सम्भव नहीं है। उसे षोडशाधार, त्रिलक्ष्य, व्योमपञ्चक, द्वादशग्रन्थि, शक्तित्रय, धामत्रय एवं नाड़ीत्रय के तत्त्व को भी गुरुकृपा से प्रत्यक्ष करना होगा। उसे देह को दश नाड़ीरूप पथयुक्त, मध्य व्याप्त ७२००० नाड़ियों तथा महाव्यक्त साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों द्वारा आवृत मलिन देह को स्वच्छ तथा व्याधिरहित बनाना होगा। यह गुरुप्रदत्त पथ पर चलकर ही सम्भव है। तभी ग्रन्थ का यथार्थ स्वरूप उसके समक्ष उद्भासित हो सकेगा।

हर्ष का विषय है कि चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन की ओर से इस ग्रन्थ को इसकी तीनों प्रसिद्ध टीकाओं के साथ प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे पाठकों को समस्त सम्बन्धित व्याख्या एक ही स्थान पर मिल सकेगी। यह भी भगवती त्रिपुरसुन्दरी की असीम अनुकम्पा ही है।

स्वतन्त्रता दिवस, सन् २०१० ई०

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणी

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

प्रथमो विश्रामः

मङ्गलाचरणम् १
त्रिपुरसुन्दर्या द्वादशश्लोकीस्तुतिः १६
चतुष्षष्टितन्त्रोद्देशः ४६
श्रीचक्रस्य लेखनप्रकारः ५५
चक्रस्यावान्तरभेदेन नवचक्रात्मकत्वम् ७५
श्रीचक्रस्य त्र्यात्मकत्वम् ७६
श्रीचक्रस्य महिमा ७९
श्रीचक्रसाधनम् ९५
वशिन्यादिवाग्देवतामन्त्राः १०७
त्रैलोक्यमोहनादिचक्रेश्वरीमन्त्राः ११९
मूलविद्योद्धारः १३२
चक्रपूजोपदेशः १४१
पूजारम्भे आवश्यकाः सम्भाराः १४३
सामान्यार्घ्यविधिः १४६
त्रिपुरसुन्दर्याः सगुणध्यानम् १५४
पूजनीयाया देवताया मन्त्रशेषः १६३
चतुरश्रप्रथमरेखायां पूज्याः शक्तयः १६४
चतुरश्रद्वितीयरेखायां पूज्या मातृकाः १६७
षोडशदले पूज्या देवताः १७०
अष्टदले पूज्या देवताः १७२
चतुर्दशारचक्रे पूज्या देवताः १७३
बहिर्दशारचक्रे पूज्या देवताः १७४
अन्तर्दशारचक्रे पूज्या देवताः १७६
अष्टाश्रे पूज्या देवताः १७७
अष्टकोण-त्रिकोणमध्ये आयुधपूजा १७८
त्रिकोणे पूज्याः शक्तयः १८१
मुद्राविरचनम् १८४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

कामकलाध्यानम् १८५
विसर्जनम् १८९

द्वितीयो विश्रामः

चक्र(मन्त्र)साधनम् १९४
वश्यप्रयोगाः २०४
मन्त्राणां विविधप्रयोगाः २०७
विदर्भविधिः २१३
आकर्षणप्रयोगाः २१५
रक्षाकरप्रयोगौ २१८
अन्यवश्यप्रयोगाः २२०
मारणादिप्रयोगाः २३०
समस्तसिद्धीनामेक एव प्रयोगः २४०

तृतीयो विश्रामः

मुद्रापदनिर्वचनम् २४३
त्रिखण्डा मुद्रा २४४
सर्वसंक्षोभकारिणी मुद्रा २४६
सर्वविद्राविणी मुद्रा २४७
आकर्षिणी मुद्रा २४८
सर्वावेशकरी मुद्रा २४९
उन्मादिनी मुद्रा २५०
महाङ्कुशा मुद्रा २५१
खेचरी मुद्रा २५२
खेचरी-महिमा २५४
बीजमुद्रा २५७
योनिमुद्रा २५९

चतुर्थो विश्रामः

महाज्ञानप्रभाव-व्याप्त्यादि
विषयकाःप्रश्नाः २६३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
महाज्ञाननिरूपणम्	२६५
त्रिपुराभिव्यक्तिप्रकाराः	२६६
पराशक्तिमन्तरा शिवस्य शवप्रायत्वम्	२७२
त्रिपुराशक्तेरन्तःसौषुम्नपरमार्गानुप्रवेशः	२७८
त्रिपुरैव ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी ज्ञानक्रियेच्छाशक्त्यात्मिका च	२८३
रमते एकाकिनी त्रिपुरैव	२८८
त्रिपुराबीजत्रितयसाधनं तत्प्रयोगाश्च	३०२
कामकलाचक्रस्योपदेशः	३२२
आयुध-मुद्राबीजानि तत्प्रभावाश्च	३४०
त्रिपुराविद्यामाहात्म्यम्	३४७
फलसहितचक्रराजस्यार्चनभेदाः	३४९

पञ्चमो विश्रामः

जपहोमविषयकं विधानम्	३५२
जपोपयोगिनी माला	३५८
नवलक्षजपात्मकं पुरश्चरणम्	३५९
होमविधानम्	३६४

●

॥ श्रीः ॥

नित्याषोडशिकार्णवः

ऋजुविमर्शिनी-अर्थरत्नावली-सेतुबन्ध-भाषाभाष्यसमन्वितः

अथ प्रथमो विश्रामः

मङ्गलाचरणम्

गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् ।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम् ॥१॥

* भाषाभाष्य *

गणेशरूपिणी, ग्रहरूपिणी, नक्षत्ररूपिणी, योगिनीरूपिणी, राशिरूपिणी, पीठरूपिणी मन्त्रमयी देवी मातृका की स्तुति करता हूँ।।१।।

गणेशरूपिणी का अर्थ भास्करराय के मत से विघ्नेश्वर से प्रारम्भ करके गणेश्वर पर्यन्त ५१ विनायक मूर्त्ति; लेकिन भास्कर राय ने अपनी उक्ति के समर्थनार्थ कोई प्रमाण नहीं दिया है। तन्त्र में ५१ गणेशों का उल्लेख है। शारदातिलक के श्लोकसंख्या १.१११ की टीका में राघव भट्ट ५० गणेश का उल्लेख करते हैं। शिवानन्द के अनुसार गणेश शब्द का अर्थ है—श्रीकण्ठादि ५० रुद्र अथवा इन्द्रादि ५० मरुत् गण। विद्यानन्द भी यही अर्थ करते हैं। अर्थात् अ से क्ष पर्यन्त ५० वर्ण से ये उद्भूत हैं। **ग्रहरूपिणी**—नवग्रह। स्वरवर्ण से उद्भूत सूर्य, कवर्ग से उद्भूत मंगल। इसी प्रकार चवर्ग से शुक्र, टवर्ग से बुध, तवर्ग से बृहस्पति, पवर्ग से शनि, यवर्ग से चन्द्र, शवर्ग से राहु तथा ळ-क्ष से उद्भूत केतु। यह विद्यानन्द का मत है; परन्तु भास्कर राय के मतानुसार ग्रहों का क्रम विद्यापति के अनुसार (सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि, चन्द्र, राहु, केतु) न होकर इस प्रकार है—सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, चन्द्र, राहु तथा केतु। सूर्य षोडश स्वरस्वरूप है। मंगल कवर्ग, बुध चवर्ग, बृहस्पति टवर्ग, शुक्र तवर्ग एवं शनि पवर्गस्वरूप हैं। चन्द्र यवर्ग-स्वरूप कहे गये हैं। राहु है शवर्गस्वरूप तथा केतु हैं क्षकाररूप। ळ को लकार के ही साथ माना गया है। **नक्षत्ररूपिणी**—अ से क्ष पर्यन्त ५० मातृका वर्ण अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त साक्षात् नक्षत्ररूप हैं। जैसे अ-आ = अश्विनी। इ = भरणी। ई उ ऊ = कृत्तिका। ऋ ॠ ऌ ॡ = रोहिणी। ए = मृगशिरा। ऐ = आर्द्रा। उ ऊ = पुनर्वसु। क = पुष्य। ख ग = आश्लेषा। घ ङ = मघा। च =

पूर्वफाल्गुनी। छ ज = उत्तरफाल्गुनी। झ ञ = हस्त। ट ठ = चित्रा। ड = स्वाती। ढ़ ण = विशाखा। त थ द = अनुराधा। ध = ज्येष्ठा। न प फ = मूल। ब = पूर्वाषाढ़ा। भ = उत्तराषाढ़ा। म = श्रवण। य र = धनिष्ठा। ल = शतभिषा। व श = पूर्वभाद्रपदा। ष स ह = उत्तरभाद्रपद। ळ क्ष अं अः = रेवती। **योगिनीरूपिणी**—शिवानन्द तथा विद्यानन्द के मत से यह है ब्राह्मी आदि मातृकारूपिणी। अ से अः पर्यन्त = ब्राह्मी। कवर्ग = माहेश्वरी। चवर्ग = कौमारी। टवर्ग = वैष्णवी। तवर्ग = वाराही। पवर्ग = इन्द्राणी। यवर्ग = चामुण्डा। शवर्ग = महालक्ष्मी। भास्कर राय का अन्य मत है। ये कहते हैं कि डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनी तथा याकिनी ही सात योगिनी हैं। इनके अनुसार अ से अः पर्यन्त डाकिनी। क से ठ तक राकिनी। ड से फ पर्यन्त लाकिनी। व से स तक साकिनी। ह = हाकिनी, क्ष = याकिनी। ळ को लकार के साथ माना गया है। **राशिरूपिणी**—मेषादि राशिरूपिणी। अ आ इ ई से उद्भूत मेष राशि। उ ऊ ऋ से वृष। ॠ ऌ ॡ से मिथुन। ए ऐ से कर्क। उ औ से सिंह। अं अः तथा शवर्ग एवं ळ से कन्या। कवर्ग से तुला। चवर्ग से वृश्चिक। टवर्ग से धनु। तवर्ग से मकर। पवर्ग से कुम्भ। यवर्ग से मीन। **देवी**—दीप्यमाना प्रकाश शक्ति। **मन्त्रमयी**—परासंवित् अकारादि क्षकारान्त मातृकावर्णमयी। समस्त मन्त्र इनसे ही निकले हैं। ये ही हैं—परासंवित् तथा मन्त्ररूपा। **मातृका**—विद्यानन्द ने मातृका शब्द की व्याख्या करते हुये कहा है—'धाति' अर्थात् त्राण करने के कारण मातृका। अनुग्रह से जीवशक्ति का त्राण करने के कारण मातृका। अन्य मत से मातृका = मूलकारण परासंवित्। शिवानन्द के अनुसार परावाक् रूपिणी पराभट्टारिकात्मक परशिवरूपिणी ३६ तत्त्वों का प्रसव करने वाली परासंवित् मातृका। **नौमि**—शिवानन्द के मत से नौमि अर्थात् विश्वोत्कृष्ट रूप से अनुभव। विमर्श द्वारा कल्पित प्रमातृ पद-निमज्जन द्वारा विमर्शशक्तिमय होना। **पीठरूपिणी**—विद्यानन्द के अनुसार कामरूपादि अष्ट पीठों वाली। कामरूप, कोल्लगिरि, सोपाय, उड्डीयान, मलयगिरि, कुलान्तक, जालन्धर तथा देवी कोट्ट। परन्तु भास्करराय का अन्य मत है। उनके अनुसार पीठरूपिणी अर्थात् ५१ पीठरूपिणी। उन्होंने अन्य अर्थ भी किया है—उड्डीयान, जलन्धर, पूर्णगिरि तथा कामरूप नामक पीठ है देवीपक्ष में। मन्त्रपक्ष में लक्षणा द्वारा अर्थ है—कूटरूपिणी। पीठ अर्थात् श्रीचक्र में इनका रूप। ये तीनों अर्थ प्रामाणिक हैं। (पीठ आन्तर तथा बाह्य द्विविध हैं। बाह्य पीठ = भौगोलिक पीठ। आन्तर पीठ = साधकदेह में अवस्थित)। शिवानन्द का अन्य मत है। पीठरूपिणी अर्थात् विश्वचित्रभित्ति रूप। इन्होंने प्रत्यभिज्ञाहृदयम् का प्रमाण दिया है—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।' स्वेच्छा से परासंवित् अभिलाषित विश्व को प्रकटित करती है। भास्करराय के मतानुसार 'गणेशादि' इस श्लोक का तात्पर्य है—देवी की आराधना के

श्लोकों में अविघ्नता लाना। गणेश विघ्नविनाशक हैं। श्रीविद्योपासना का प्रथम अंग है—गणेशोपासना (परशुरामकल्पसूत्र)। तभी गणेशरूपिणी देवी की स्तुति प्रथम श्लोक में है।।१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

स्थितं यत्रेदमखिलं यन्मयं चास्य भासनम्।
यतः समुदयश्चास्य तत्संवित्तिपदं नुमः।।
शिवादिक्षितिपर्यन्तः षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयः।
यस्योर्मिबुद्बुदाभासस्तं सेवे चिन्महोदधिम्।।
स्वात्मानन्दमहेशानचरणान्तेनिवासिना ।
शिवानन्देन मुनिना रस्यते त्रैपुरो रसः।।
असमञ्जसतां दृष्ट्वा वृत्तीनामिह तत्त्वतः।
व्याकरोमि मनाक् श्रीमन्नित्याषोडशिकार्णवम्।।
सर्वानुग्राहकं तन्त्रं सर्वोपायावभासकम्।
सर्वाधिकारसंसिद्ध्यै बह्ववातारयच्छिवः।।
श्रीवामकेश्वरं नाम शास्त्रं तत्र प्रकाशितम्।
शिवेन संविदं देवीं लक्ष्मीकृत्य निजात्मिकाम्।।
मध्ये शास्त्रस्य तस्यास्ति नित्याषोडशिकार्णवः।
सूत्रैश्चतुश्शतैर्युक्तः कश्चिद् भागो रसावहः।।
स च पञ्चपटल्यात्मा कर्मपञ्चकभासकः।
पूजा प्रयोगो मुद्रा च विद्याव्याप्तिर्जपस्तुतिः।।
अवान्तरभिदः सन्ति कतिचित्तत्र तत्र च।
प्रधानकर्मशेषत्वान्न ता गण्याः पृथक्तया।।
अधीत्य चाचार्यमुखाच्छास्त्रं विद्यापुरस्सरम्।
गुरूणां न्यवसत् पार्श्वे शिवानन्दमहामुनिः।।
कालेन महता सोऽयं गुरुभिः करुणोत्कटैः।
स्थापितोऽनुग्रहविधौ साभिषेकं सहाभिधम्।।
ततः सम्पादयामास शिष्यानाचारभूषितान्।
देशकालविशेषज्ञान् भक्तिरत्नमहोदधीन्।।
ततः शिवानन्दमुनिः शिष्यैरभ्यर्थितो भृशम्।
सम्यग् वृत्तिविधानाय गम्भीरागमभाषया।।
लोपामुद्राक्रमायातसम्प्रदायादयं पुनः।
अकरोदागमस्यास्य व्याख्यामृजुविमर्शिनीम्।।

ग्रन्थाः सहस्रं त्रिशतं पञ्चाशच्चैव पञ्च च ।
मधुरोदारसन्दर्भा सेयमृजुविमर्शिनी।।
सौभाग्यविषया वाणी सौमत्योदयदायिनी।
सौगत्याप्तिमहापद्या सौस्थित्यं लभतामसौ।।

तत्र पञ्चदशतिथ्यात्मकनित्याकलानामधेयोपन्यासमुखेन परां व्यापिकां सर्वतिथिमयीमक्षयां षोडशीं नित्याकलां परमामृतस्यन्दिनीं महात्रिपुरसुन्दरीसंज्ञां व्याचष्टे परमदेशिको महादेवः। यच्छ्रुतिः—'ईशानः सर्वविद्यानाम्' (तै० आ० १०.४७.१) इति। आदितो द्वादशभिः श्लोकैः समस्तवाच्याभेदमयसमस्तवाचकपदाक्षराभिन्नपरशक्तिरूपपरशिवात्मकमातृकामयीं स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्नलोकवेदाश्रयैव वाक्' इति स्थित्या लौकिकवैदिकतान्त्रिकेतिहासपुराणदर्शनसारभूताम् आणवशाक्तशाम्भवात्मकमन्त्रकोटिजननीमकृत्रिमाहंपरामर्शमयीममृतां भगवतीं वाचं व्याचष्टे।

अथ ग्रन्थो व्याख्यायते—**गणेशेत्यादि**। रूपिणीमिति पदं गणेशादिभिः पञ्चभिः पदैः सम्बद्ध्यते, तत्तद्रूपिणीमिति। पूर्वार्धेन मातृकायाः प्रपञ्चात्मकता कथ्यते, उत्तरार्धेन निजमस्याः स्वरूपम्। गणेशाः श्रीकण्ठादयो रुद्राः, ते विश्वानुजिघृक्षापरा गणेशाः स्थिताः केचन रुद्रावतारा मरुद्गणा इव, 'श्रीकण्ठोऽनन्त' (प्र० सा० ३.३९) इत्यादि। यच्छ्रुतिः—'सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (तै० सं० ४.५.११.१) इत्यादि। ग्रहाः सूर्यादयः, 'स्वरेशः सूर्योऽयम्' (प्र० सा० ४.२५) इत्यादि। नक्षत्राणि अश्विन्यादीनि 'आभ्यामश्वयुग्' (प्र० सा० ४.५९) इत्यादि। योगिन्यो ब्राह्म्याद्याः। वक्ष्यति च 'वर्गानुक्रमयोगेन' (१.११) इति। राशयो मेषादयः, 'आद्यैर्मेषाह्वयो राशिः' (प्र० सा० ४.३४) इत्यादि। देवीं सर्गादिक्रीडापरां सर्वोत्कृष्टत्वाद् विजिगीषुमखिलव्यवहारप्रवर्तिकां द्योतमानां स्तोतव्यां गन्तव्यां च, दीव्यतेः क्रीडाद्यर्थत्वात्। मन्त्रमयीम् अकृत्रिमाहंपरामर्शमयीम्। मातृकां परावागात्मना अनाहतभट्टारकपरमशिवस्वरूपां षट्त्रिंशत्तत्त्वप्रसरणहेतुभूतां परां संविदमित्यर्थः। तदुक्तमीश्वरप्रत्यभिज्ञायाम्—

सर्वथा त्वन्तरालीनानन्ततत्त्वौघनिर्भरः।
शिवश्चिदानन्दघनः परमाक्षरविग्रहः।। इति। (४.१.१४)

पीठरूपिणीं विश्वचित्रभित्तिभूमिम्। उक्तं च—'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (प्र० हृ० ४) इति। अभियुक्तवचोऽपि—

स्वेच्छाविभावितानन्तजगद्रश्मिवितानवत् ।
नौमि संविन्महापीठं शिवशक्तिपदाश्रयम्।। इति।

'वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता' (तै० ब्रा० २.८.८.४) इति रहस्यमपि। नौमि विश्वोत्कृष्टत्वेन परामृशामि, नुत्या विमर्शमय्या तत्कल्पितप्रमातृपदनिमज्जनेन तत्समावेशमयो भवामीति यावत्। अत्र मातृकास्तुतिः समावेशात्मा प्राप्यत्वेनाभिधेया। मन्त्रमयीमिति चिद्विकासामर्शात्मकं मन्त्रवीर्यं तत्प्राप्तावुपाय उक्तः। देवीमिति द्योतनादिसतत्त्वं विश्वाभेदसारं षडध्वस्फारमयाऽकृत्रिमपूर्णाहन्ताप्रकाशघनसंवित्तिरूपं फलमुक्तम्। अभिधेयोपाययोरुपायोपेयभावः सम्बन्ध इत्यभिधेयो-

पायसम्बन्धप्रयोजनानि चानेन सूत्रेण सूचितानि। किञ्च, देवीमिति दिव्यभावदायिका दीक्षा सूचिता। मन्त्रमयीमिति चानुष्ठानक्रमः। नौमीति समावेशात्मा विद्यासिद्धिः। मातृकामिति च सर्वाधिकारिता। पीठरूपिणीमिति च पारम्पर्यक्रमः। महाविभूतिसमुदयस्थाने नित्याषोडशिकार्णवे यत्पूर्वैर्व्याकर्तृभिर्व्याकारि, यच्चास्माभिः किञ्चिद् व्याक्रियते, तत्रान्तरं त्यक्तावलेपमात्सर्याः स्वयमेव विपश्चितो विचिन्वन्तु।।१।।

※ अर्थरत्नावली ※

श्रीमन्महावनेशानपादपङ्केरुहद्वयम्।
योगीन्द्रमधुपव्रातसेवितं सर्वदा भजे।।
प्रियानन्दमहं वन्दे सदानन्दप्रकाशितम्।
प्रपन्नजनतादुःखध्वान्तविच्छेदभास्करम्।।
आद्यं मिथुनमारभ्य स्वगुर्वन्तं क्रमेण तु।
वन्दे गुर्वौघमीशान्याः करुणातरुणीप्रियम्।।
यत्पादाम्बुजसम्भूतं रजो विमलयन्मनः।
प्रसादं तनुते मह्यं तं रत्नेशं गुरुं भजे।।
यन्मुखाम्नायमासाद्य विद्यासिद्धिरभून्मम।
महात्रिपुरसुन्दर्यास्तं रत्नेशं गुरुं भजे।।
शिवं कामेश्वरीं सिद्धान् त्रिविधानपि दम्पतीन्।
कङ्कालप्रभृतीन् वन्दे गुरून् कल्याणरोचिषः।।
गणनाथमहं वन्दे विश्ववन्द्यैः प्रपूजितम्।
सर्वविघ्नौघनाशार्थं सर्वाभीष्टफलाप्तये।।
वटुकं योगिनीवृन्दं भैरवानमितौजसः।
प्रणमामीष्टसम्पत्तिसम्पादनसमुत्सुकान्।।
मन्त्रमण्डलवर्णात्मरूपिणीं करुणापराम्।
धामसंवित्स्वरूपां तां वन्दे त्रिपुरसुन्दरीम्।।
सम्प्रदायद्वयज्ञेन विमलस्वात्मशम्भुना।
क्रियते टिप्पणं सम्यग् वामकेश्वरशास्त्रगम्।।
अर्थरत्नावलीत्येषा ख्याताऽस्तु भुवनत्रये।
भुवनेश्वरि ते भक्त्या क्रियते टिप्पणं यतः।।

प्रारीप्सितस्यास्य शास्त्रस्याविघ्नेन परिसमाप्त्यर्थं विशिष्टेष्टलाभाय च परमकारुणिको भगवान् लोकानुग्रहं चिकीर्षुर्बहुरूपाष्टकं शास्त्रं संक्षिप्य चतुश्शतसंख्यापरिमितैर्ग्रन्थैस्तत्सारमुद्धर्तुकामस्तच्छास्त्रप्रतिपाद्यां वर्णावयवां महात्रिपुरसुन्दरीं महत्या भक्त्या महादेवः प्रणमति—**गणेशग्रहनक्षत्रेत्यादिना।** गणेशाश्च ग्रहाश्च नक्षत्राणि च योगिन्यश्च राशयश्च गणेशग्रहनक्षत्र-

योगिनीराशयः (ता?ते) एव रूपं यस्याः सा तथाभूता। गणेशाः श्रीकण्ठादयो रुद्राः पञ्चाशत्संख्याकाः। गणा आदिक्षान्ता वर्णाः, ते पञ्चाशद्वर्णात्मका इति यावत्। अथवा गणा इन्द्रप्रमुखाः 'इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणाः' (ऋ० १.२३.८) इति श्रुत्युक्ता मरुद्गणाः पञ्चाशत्। तेऽपि वर्णात्मका इत्यर्थः। ग्रहाः सूर्यादयः। तेऽपि वर्णसम्भूताः। तत्र स्वरेभ्यः सूर्यः। कवर्गाल्लोहितः। चवर्गात् काव्यः। टवर्गाद् बुधः। तवर्गात् सुरगुरुः। पवर्गात् शनैश्चरः। यवर्गात् शीतांशुरिति सप्तग्रहात्मिका मातृका। अथवा नवग्रहात्मिका मातृका। तत्र शवर्गळक्षप्रभवौ राहुकेतू। नक्षत्ररूपिणीत्यत्रायमाशयः—अआभ्याम् अश्विनी। इकाराद् भरणी। परतो लिपित्रयात् कृत्तिका। पुनस्तत्पराच्चतुष्टयाद् रोहिणी। एदैतोर्मृगशीर्षार्द्रे। ओऔभ्यां पुनर्वसू। अमसोः रेवती। कतस्तिष्यः। खगयोरश्लेषा। घङयोर्मघा। चार्णात् पूर्वा। छजयोरुत्तरा। झञयोर्हस्तः। टठयोश्चित्रा। डार्णात् स्वाती। ढणयोर्विशाखा। तथदैरनुराधा। धार्णाद् ज्येष्ठा। नपफैर्मूलम्। बार्णात् पूर्वाषाढा। भार्णादुत्तराषाढा। मार्णात् श्रवणः। यरयोर्धनिष्ठा। लार्णात् शतभिषक्। वशयोः (पूर्वा) प्रौष्ठपदा। षसहेभ्यः परा स्मृता। अंअःळक्षेभ्यो रेवती। एवं नक्षत्ररूपिणी मातृका। योगिनीरूपेत्यत्रायं भावः—अवर्गप्रभवा ब्राह्मी। कवर्गाद् माहेश्वरी। चवर्गात् कौमारी। टवर्गाद् वैष्णवी। तवर्गाद् वाराही। पवर्गाद् ऐन्द्राणी। यवर्गात् चामुण्डा। शवर्गाद् महालक्ष्मीः। एवं योगिनीमयी मातृका। राशिरूपिणी यथा—आद्यैरीकारान्तैर्मेषः। उकाराद्यैॠकारान्तैर्वृषः। ततस्त्रिभिर्युग्मम्। एऐभ्यां कर्कटः। ओऔभ्यां सिंहः। अमः शवर्गळेभ्यश्च कन्या सञ्जाता। वणिगाद्या मीनान्ता राशयः कचटतपयेभ्यो यथाक्रमेण सञ्जाताः। एवं राशिस्वरूपिणी मातृका। **देवीं मन्त्रमयीमित्यादि।** यत एवमुक्तप्रकारेण मातृकामयी, तत एव तत्प्रसूतसकलमन्त्रमयीत्यर्थः। देवी द्योतनात्मिका, प्रकाशशक्तिरिति यावत्। माति त्रातीति मातृका। स्वतेजोविजृम्भितानुग्राह्यजीवराशिं माति त्रातीति मातृकेत्यर्थः। **पीठरूपिणीमिति।** अष्टपीठान्यपि कामरूपादिदेवीकोट्टान्तान्यष्टौ अष्टवर्गप्रभवाणि। तन्मयी मातृकेत्यर्थः। तानि चोक्तान्युत्तरषट्के—

कामरूपं भवेत् पूर्वे कोल्लगिर्यं तु दक्षिणे।
चोम्भारं पश्चिमे भागे उत्तरे चोणकं भवेत्।।
मलयं चाग्निदिग्भागे नैर्ऋत्यां तु कुलान्तकम्।
जालन्धरं तु वायव्ये ऐशान्ये देविकोट्टकम्।। इति।

अथवा ओजापूकास्पर्शाख्यपीठपञ्चकात्मिका शरीरान्तःसमुल्लसन्ती मातृकेति पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवानां निवृत्त्यादिशान्त्यतीतकलानाम् ईशानादिसद्योजातान्तपञ्चब्रह्मणां प्राणादिसमानान्तप्राणानाम् आत्ममनोमन्त्रशिवशक्तीनां स्वरूपेत्यर्थः। एवं समस्तविश्वजननहेतुमातृकापरिकल्पितदिव्यावयवां महात्रिपुरसुन्दरीं नमामीति यावत्।।१।।

* सेतुबन्धः *

(श्रीगुरुपादुकाभ्यां नमः)

श्रीगम्भीरविपश्चितः पितुरभूद्यः कोनमाम्बोदरे

विद्याष्टादशकस्य मर्मभि(वि)दभूद्य: श्रीनृसिंहाद्गुरो: ।
यश्च श्रीशिवदत्तशुक्लचरणै: पूर्णाभिषिक्तोऽभवत्
स त्रेता त्रिपुरा त्रयीति मनुते तामेव नाथत्रयीम् ।।१।।
वामकेश्वरतन्त्रस्थे नित्याषोडशिकार्णवे ।
पूर्वोत्तरचतु:शत्यौ व्याचष्टे भास्कर: सुधी: ।।२।।
नित्याषोडशिकार्णवनाम्नि तन्त्रे शिवैकपरतन्त्रे ।
अतिगहने फणिपटले स्पन्दितुमपि क: क्षमो मनुज: ।।३।।
यद्यप्येवमथापि तु पूर्वाचार्यै: प्रदर्शितं सेतुम् ।
दृढबन्धैरुद्धर्तुं गुरुभक्त्यैव प्रवर्तितोऽस्मि बलात् ।।४।।
नित्याषोडशिकाम्भोधे: परं पारं यियासव: ।
विश्रामैरष्टभिर्युक्तं सेतुबन्धं भजन्त्विमम् ।।५।।
आ प्राच: कामरूपाद्द्रुहिणसुतनदप्लाविताद‍ा प्रतीचो
गान्धारात्सिन्धुसार्द्राद्रघुवरचरि(रचि)तादा च सेतोरवाच: ।
आ केदारादुदीचस्तुहिनगहनत: सन्ति विद्वत्समाजा
ये ये तानेष यत्न: सुखयतु समजान्कश्चमत्कर्तुमीष्टे ।।६।।

अनुबन्धचतुष्टयम्

इह खलु निखिलजनाभिलषणीयं सुखमेव पुरुषार्थ:। तच्च कृत्रिममकृत्रिमं चेति द्विविधं क्रमेण काममोक्षपदाभ्यामभिलप्यते। तदुभयसाधनत्वाद्धर्मो धर्मसाधनत्वादर्थोऽपि सर्वाभिलषित एवेति परस्परं तरतमभावापन्ना अपि पुरुषैरर्थ्यमानत्वाविशेषाच्चत्वारोऽपि पुरुषार्था एव। यत्तु 'स्वविमर्श: पुरुषार्थ:' इति कल्पसूत्रं तन्मोक्षस्यैवाकृत्रिमसुखत्वान्मुख्यत्वाभिप्रायेणेत्यविरुद्धम्। ते च तादृशज्ञानविज्ञानसाध्या: तानि च तादृशतादृशचित्तैकसाध्यानि। चित्तेषु तादृशत्वं तु शुद्धितारतम्यात्। ततश्च विविधकर्मपरिपाकायत्तविविधचित्तशालिनो जनाननुजिघृक्षु: परमकारुणिको भगवान्परमेश्वर: परस्परविलक्षणा अपि साक्षात्परम्परया वा परमपुरुषार्थैकप्रयोजनिका विद्या: प्रवर्तयामास। तथा च श्रुति:—'ईशान: सर्वविद्यानाम्। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।' अत्र चकारादितरविद्यासमुच्चय:। 'तस्मै वेदान्पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने' इत्युपबृंहणदर्शनात्। स्मृतिरपि—

अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता कवि: साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुति:।।

ततश्च जगदाप्तपरमशिवप्रणीतत्वाविशेषेण सर्वासां विद्यानामधिकारिभेदेन प्रामाण्यमेवेति स्पष्टं सूतसंहितादौ। अधिकारश्च यथा नास्तिकानामेवाऽऽर्हतादिदर्शनेषु त्रैवर्णिकादेरेव वैदिकमार्गेष्विति पुरुषभेदेनैव व्यवस्थितस्तथैकस्यापि पुरुषस्य चित्तशुद्धितारतम्यादपि कश्चिद्व्यवस्थित:। वर्णभेदेनेवाऽऽश्रमभेदेनापि धर्मव्यवस्थादर्शनात्। एवं च यानि तत्तद्विद्याप्रशंसकानि वचनानि

तानि तत्तदधिकारिणं प्रत्येव प्रवर्तकानि। यानि च तन्निन्दकानि तानि तत्तदनधिकारिणं प्रति निवर्तकानि। न पुनर्न हि निन्दान्यायेन विधेयस्तावकानि। अतिबाल्यदशायां बालक्रीडनके प्रवर्तयतामेव पित्रादीनां तस्यैवाध्ययनाधिकारे तादृशक्रीडायां ताडनकर्तृत्वदर्शनात्। तदयं मथितोऽर्थः—जातमात्रस्य त्रैवर्णिकस्य पुरुषस्य क्रीडाधिकारे निवृत्तेऽक्षराभ्यासः। ततश्छन्दोभाषाज्ञानार्थं काव्याध्ययने प्रवर्तकान्यदोषं गुणवत्काव्यमित्यादीन्यग्निपुराणवचनानि। व्युत्पन्नस्य तु काव्यालापांश्च वर्जयेदिति निषेधः। काव्याध्ययनजन्यप्रयोजनस्य जातत्वेनोत्तरभूमिकायामेवाधिकारात्तां विहाय पूर्वभूमिकायामेवाऽऽयुः क्षपयतोऽनिष्टं भवतीति तदर्थः। ततो देहाद्यतिरिक्तत्वेनाऽऽत्मनोज्ञानार्थं न्यायशास्त्राध्ययने विधिः शुङ्गेनाऽऽत्मानमन्विच्छेत्यादिः। शुङ्गं हेतुरवयवसमुदायात्मकन्याय इति यावत्। देहादिभिन्नत्वेनाऽऽमुष्मिकयातायातक्षमतयाऽऽत्मनि ज्ञाते तु तादृशफलककर्मस्वधिकारादान्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकामित्यादयो निषेधाः पूर्वभूमिकां निषेधन्ति। 'धर्ममेवाऽऽचरेत्प्राज्ञः' इत्यादिविधय उत्तरभूमिकायां प्रवर्तयन्ति। तदुपयोगित्वेन पूर्वमीमांसाया वेदे कर्मकाण्डस्य चाध्ययनं तेन धर्मार्थकामेषु साधितेषु चतुर्थपुरुषार्थलिप्सया पूर्वभूमिकात्यागाय नास्त्यकृतः कृतेनेति कर्मनिन्दा। एताश्च सर्वा अज्ञानभूमिका इत्युच्यन्ते। एताः परस्परान्तर्भावेन सप्तैवेति वसिष्ठः। एतदुत्तरास्तु ज्ञानभूमिकाः। अथ 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्', 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादयो ब्रह्मज्ञानविधय उत्तरभूमिकाप्रवर्तकाः। उत्तरभूमिकास्तु बह्व्य इति केचित्—'वदन्ति बहुभेदेन ज्ञानिनो योगभूमिकाः' इति वचनात्। सप्तैवेति तु भगवान् वसिष्ठः—'अवबोधं विदुर्ज्ञानं तदिदं साप्तभूमिकम्' इत्युक्तेः। तन्नामानि—विविदिषा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्तिरसंसक्तिः, पदार्थाभाविनी, तुर्यगेति। तल्लक्षणानि तु वासिष्ठे ज्ञानशास्त्रे द्रष्टव्यानि। तदुपयोगितया च वेद उपनिषत्काण्डस्योत्तरमीमांसायाश्चाध्ययनम्। ब्रह्मज्ञानं च द्विविधम्—शाब्दमपरोक्षानुभवरूपं च।

शास्त्रदृष्टिर्गुरोर्वाक्यं तृतीयः स्वात्मनिश्चयः।
अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शाव्दो बोधो न हि क्षमः।।

इत्यादिज्ञापकात्। तेन शाब्दभूमिकालाभोत्तरं तत्राऽऽयुष्क्षपणनिषेधार्थाः 'पाण्डित्यान्निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्' इत्यादयः। सप्तभूमिकान्तर्गतद्वितीयतृतीययोश्च मध्ये भक्तिरूपैका महती भूमिका तदुपयोगित्वेन भक्तिमीमांसाध्ययनम्। भक्तिश्च पञ्चमभूमिकान्तमनुवर्तते। तल्लाभोत्तरमपरोक्षानुभवरूपषष्ठभूमिकालाभः। सैव च जीवन्मुक्तिः। तदव्यवहितोत्तरमेव च विदेहकैवल्यं ज्ञानादेव तु कैवल्यमित्यत्र ज्ञानपदस्यानुभवपरत्वात्। न्यायादिशास्त्रेषु स्वस्वभूमिकालाभमात्रेण मोक्षप्राप्तिवर्णनं तूत्तरोत्तरभूमिकानामपह्नवेनैव। पुरुषार्थप्राप्तौ विलम्बशङ्कया प्रवृत्त्यभावनिरासेन तस्यादोषत्वात्। 'यानि च कर्मणैव हि संसिद्धिः, यमेवैष वृणुते तेन लभ्य' इत्यादीनि वचनानि तेष्वेवकारः स्वस्वभूमिकासाध्य उत्तरभूमिकाधिकाररूपफले साधनान्तरनिरासार्थो न पुनरुत्तरभूमिकाभावबोधकः। ज्ञानादेव त्वित्यत्र त्वनुभवात्परतः साधनान्तररूपाया भूमिकाया अभावात्तदभावबोधक एवेति सर्वेषां तत्तद्विद्याप्रवर्तकानामृषीणां न मिथो विरोधः। एतासां च भूमिकानामेकैकस्या अवान्तर-

भूमिका अपि भूयस्य एवेयत्तयाऽपरिच्छेद्या बुद्धिमद्भिरनुभवैकवेद्याः सन्त्येव। तदुक्तम्—

इत्यवस्था मया प्रोक्ताः सप्ताज्ञानस्य राघव।
एकैका शतसंख्याऽत्र नानाविभवरूपिणी।। इति।

एवमनेकासु भूमिकास्वेकैकाऽपि बहुभिर्जन्मभिरेव साध्यते। तदेवमपरिमितैर्जन्मभिर्महता प्रयत्नेन परब्रह्मणः शाब्दतत्त्वनिश्चयभूमिकापर्यन्तं क्रमेण सम्यगारूढस्य संसारे नात्यन्तमासक्तिर्नापि दृढो निर्वेद इत्याकारिका विलक्षणा चित्तशुद्धिः सम्पद्यते। सोऽयं भक्तिमार्गेऽधिकारी। 'न निर्विण्णो न चाऽऽसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः' इति वचनात्।

सा च भक्तिर्द्विविधा—गौणी परा चेति। तत्राऽऽद्या सगुणस्य ब्रह्मणो ध्यानार्चनजपनामकीर्तनादिरूपा सम्भवत्समुच्चयिका। परभक्तिस्त्वेतज्जन्यानुरागविशेषरूपा। आद्याया अपि बहवोऽवान्तरभूमिकाः। तासु प्रथमा 'योषामग्नि ध्यायीत' इत्यादिभावनासिद्धिः। द्वितीया 'मनो ब्रह्मेत्युपासीत' इत्यादि विहितोपास्तिः। तृतीया त्वीश्वरोपास्तिः। ईश्वरस्यापि सूर्य-गणेश-विष्णु-रुद्र-परशिवशक्तिभेदेन बहुविधत्वात्तत्तदुपास्तयोऽपि भिन्ना एव भूमिकाः। शक्तिरपि छायावल्लभालक्ष्म्यादिभेदेनानन्तविधैव। अनेन क्रमेणैता भूमिका अनन्तैर्जन्मभिरारूढस्य पश्चात्त्रिपुरसुन्दर्यां गौणभक्त्युदयस्तत्र सम्यङ्निरूढस्य तस्यां परभक्त्युदया इति स्थितिः।

शैववैष्णवदौर्गार्कगाणपत्यादिकैः क्रमात्।
मन्त्रैर्विशुद्धचित्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते।।
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम्।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम्।।
दक्षिणादुत्तमं वामं वामात्सिद्धान्तमुत्तमम्।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं न हि।।

इति वचनात्। अन्यान्यपीदृशे भूमिकाक्रमे मूलभूतानि वचनानि बहूनि लेख्यान्यपि विस्तरभयान्न लिखितानि। कतिचित्तु सौभाग्यभास्करे प्रदर्शितानि अस्माभिः। श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याश्च गौणीं भक्तिं सेतिकर्तव्यताकां निरूपयितुमैदम्पर्येण सुन्दरीतापनीपञ्चकं भावनोपनिषत्कौलोपनिषद्गुह्योपनिषन्महोपनिषत् चेत्यादयो वेदशिरोभागाः प्रवृत्ताः। वेदे च पूर्वकाण्डस्य शेषभूततया आश्वलायनादिकल्पसूत्राणां मन्वादिस्मृतीनां च प्रवृत्तिवदुपनिषत्काण्डशेषत्वेन परशुरामादिकल्पसूत्राणां यामलादितन्त्राणां च प्रवृत्तिः। पुराणानां तु काण्डद्वयं प्रत्यपि शेषत्वेन प्रवृत्तिः। ततश्च स्मृतितन्त्रपुराणानां वेदमूलकत्वेनैव प्रामाण्यम्। ये च प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धास्तत्तदेकदेशास्तेषां विरोधाधिकरणन्यायेन यावन्मूलश्रुतिदर्शनमननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्। यानि तु सर्वांशेनापि वेदाविरुद्धान्येव कानिचित्तन्त्राणि पाशुपतविशेषपाञ्चरात्रविशेषादीनि तानि नेदृशीं भूमिकामारूढस्य। अपि तु श्रौतस्मार्तकर्मभूमिकाधिकारिणी एव केनचित्पापेन ततश्च्युतौ तेष्वधिकारः। अत एव—

पाञ्चरात्रं भागवतं तथा वैखानसाभिधम्।
वेदभ्रष्टान्समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान्।।

इत्यादिना कतिपयानामेव परिगणनमुपपद्यते। तेन—

श्रुतिभ्रष्टः श्रुतिप्रोक्तप्रायश्चित्ते भयं गतः।
क्रमेण श्रुतिसिद्ध्यर्थं मनुष्यस्तन्त्रमाश्रयेत्।।

इत्यत्र तन्त्रसामान्यपदं तादृशविशेषपरम्। 'पत्युरसामञ्जस्यात्' इत्यधिकरणमपि तादृशतन्त्रपरमेव। यानि तु राम-कृष्ण-नृसिंह-रुद्र-परशिव-सुन्दर्याद्युपासना बोधकानि अगस्त्यादितन्त्राणि तन्मूलभूतानां रामतापन्याद्युपनिषदां प्रत्यक्षत्वादेव तेषां नाप्रामाण्यशङ्काकलङ्कावकाशः। तत्र सुन्दर्युपास्तिस्तावद् द्विविधा बहिर्यागान्तर्यागभेदात्। अन्तर्यागोऽपि त्रिविधः—सकलः सकलनिष्कलो निष्कलश्चेति। तेनैताश्चतस्रो भूमिकाः। पूर्वपूर्वभूमिकारूढस्यैवोत्तरोत्तरभूमिका-यामधिकारः पूर्ववत्। ये तु बहिर्यागस्य भेदाः 'केवलो यामलो मिश्रश्चक्रयुग्वीरसंकर' इति पञ्चोक्ता अभिगमनादयो दौर्बोध्यादयश्च पञ्च पञ्च तन्त्रभेदेनोक्तास्तैर्भेदैर्विशिष्टो बहिर्यागः सर्वोऽप्येकैव भूमिका देशकालशक्त्यादिभेदमात्रेणैव तेषां व्यवस्था न पुनश्चित्तशुद्धिभेदेन। भूमिकाभेदे चित्तशुद्धितारतम्यस्यैव नियामकत्वात्। एवञ्च सुन्दरीतन्त्रेष्वपि यानि कुलार्णव-ज्ञानार्णव-स्वच्छन्द-परानन्द-भैरवी-दक्षिणामूर्तिप्रभृतीनि तेषु प्रायेण बहिर्यागस्यैव प्रपञ्चो भूयान्। आन्तरस्य त्वल्पः। वामकेश्वरतन्त्रे तु तद्वैपरीत्यमेवेति सर्वतन्त्रोत्तमत्वादान्तरोपास्तिशीलस्यैवोपासकमूर्धन्यस्यात्राधिकारः। तदेतदुक्तं श्रीमदाचार्यभगवत्पादैः—

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमभिसन्धाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटनात्
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्।। इति।

चतुःषष्टितन्त्राणि नामानिर्देशेनानूद्य पुनर्देवीकृतप्रश्नस्यास्मिन्नेव तन्त्रे दर्शनाल्लिङ्गादिदमेव तन्त्रमस्मिन् श्लोके पञ्चषष्टितमत्वेनाभिप्रेतमित्युन्नीयते। ज्ञानार्णवपरं स्वतन्त्रपदमिति तु गौरीकान्तः। अन्ये तु—तन्त्रराजतन्त्रमेव पञ्चषष्टितमम्। स्वतन्त्रविशेषणस्येहोक्तस्य तत्रैव दर्शनाल्लिङ्गात्। तथा च स्मर्यते—

तेषामन्योन्यसापेक्ष्याज्जायते मतिविभ्रमः।
तस्मात्तु निरपेक्षं मे तन्त्रं तासां वद प्रभो।।

इतीत्याहुः। वस्तुतस्तु मोक्षस्य बहिरङ्गसाधने बहिर्यागे तस्य तन्त्रान्तरोक्तकर्मानपेक्षत्वेऽप्यन्तरङ्गसाधनेऽन्तर्यागेऽस्यैव नैरपेक्ष्यम्। तन्त्रान्तरेष्वेतावतोऽन्तर्यागप्रपञ्चस्याभावादेव। प्रत्युत तन्त्रराजस्याप्येतत्सापेक्षतैव दृश्यते। यदुक्तं तत्रैव—'नित्याहृदयसम्प्रोक्तस्फुटोपायेन भावयेत्' इति। नित्याहृदयमित्येतत्तन्त्रोत्तरार्धस्य योगिनीहृदयस्य संज्ञा। अत्र बहिर्यागाङ्गानामल्पानां कथनेऽप्यन्तरङ्गोपास्तिदार्ढ्यशीलानां तावतैव परिपूर्तिः कल्पयितुं शक्यते। न च तन्त्रराजेऽन्येषां सापेक्षतायाः कथनात्सर्ववेदान्तप्रत्ययन्यायेन गुणोपसंहारस्याऽऽवश्यकत्वाच्च कथं तावतैव पूर्तिरिति

वाच्यम्। सर्वतन्त्रोपसंहारस्याशक्यत्वादेव तथा कल्पनात्। अत एव सर्वतन्त्रोपसंहारस्यासम्भवादेव—

बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यावत्प्रकीर्तितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्।।

इति न्यायसिद्धं वचनमुपपद्यते। सापेक्षत्ववचनं तु तन्त्रान्तरेण दीक्षितानां यावच्छक्यतन्त्रान्तरोक्ताङ्गोपसंहारे फलभूमाऽस्ति, तन्त्रराजोक्तदीक्षावतां तु तावन्मात्रेण फलभूमेत्यन्योपसंहारोऽनर्थक इत्येतत्परम्। यान्यवश्यापेक्ष्याण्यङ्गानि तानि कल्पसूत्रादेव ग्राह्याणि। कल्पसूत्राणां तत्तच्छाखापेक्षितार्थ समर्पणार्थत्वेनैव प्रणयनसिद्धान्तात्। अत एव मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादीनामनयोश्चतुःशत्योरकथनात्तदर्थमन्यसापेक्षत्वे स्वातन्त्र्यभङ्ग इति निरस्तम्। वस्तुतस्तु दीक्षादयोऽप्यत्रैव तन्त्रे ध्वनिता इति तत्र तत्र वक्ष्यामः। न हि नित्याहृदयोक्तपदार्थस्वीकारस्य ध्वननमात्रेण तन्त्रराजस्वातन्त्र्यवादिनां तद्भङ्गः। गुणोपसंहारन्यायेनान्यदीयग्रहणस्यैव सापेक्ष्यतारूपत्वात्। कण्ठरवेण ध्वनितोऽर्थस्तु कथितप्राय एवेति तस्यान्यतो ग्रहणं न स्वातन्त्र्यविघातकम्। कल्पसूत्रस्य तु कण्वादिपञ्चदशशाखास्वेकस्य कात्यायनीयस्येव परशुरामीयस्य निखिलसुन्दरीतन्त्रेष्वङ्गत्वात् तन्त्रराजादिष्वपि तदुक्तार्थग्रहणस्य निष्प्रत्यूहतया समप्रधानभूततन्त्रान्तरसापेक्षत्वाभावमात्रेणानपेक्षत्वस्याप्युपपत्तेरेतत् तन्त्रेऽपि तदुक्तार्थस्य यावदपेक्षमविरुद्धं ग्रहणमनपोद्यम्। अन्यथा पदार्थव्युत्पत्तिसापेक्षत्वेनापि नैरपेक्ष्यभङ्गापत्तेः। तेन सन्ध्यास्नानादिकं कल्पसूत्रादग्राह्यमेवेति दिक्। तदिदं वामकेश्वरतन्त्रं पूर्वोत्तरचतुःशतीयुगलात्मकमेव मन्यन्ते। उपक्रमोपसंहारयोस्तन्त्रारम्भसमाप्तिचिह्नदर्शनात्। परं तु तन्त्रसारे चक्रसंस्कारविधिर्वामकेश्वरतन्त्रोक्त इत्युक्तम्। स्तोत्राणि च कानिचिदेतत्तन्त्रनाम्नैवोपलभ्यन्ते। सौभाग्यरत्नाकरे लिखिता षट्शती ललितार्चनचन्द्रिकादौ लिखितवचनान्यप्येतत्तन्त्रनाम्नैव सन्ति। तेषामष्टशत्यामदर्शनात् क्व निवेश इति चिन्त्यम्। अत एवास्वरसाद् ऋजुविमर्शिन्यामुक्तम्—

श्रीवामकेश्वरं नाम शास्त्रं तन्त्रं प्रकाशते।
मध्ये शास्त्रस्य तस्यास्ति नित्याषोडशिकार्णवः।।
तत्र च द्वे चतुःशत्यौ……………………। इति।

मनोरमायां तु 'नित्यानां षोडशानां च नव तन्त्राणि कृत्स्नशः' इति श्लोकव्याख्यावसरे नित्याषोडशिकार्णव-सुन्दरीहृदय-वामकेश्वरतन्त्राणि पृथग्गणितानि। परं तु तद् योगिनीहृदय एव 'वामकेश्वरतन्त्रेऽस्मिन्नज्ञातार्थास्त्वनेकशः' (६/१) इति निर्देशस्वरसविरुद्धम्। पूर्वोत्तरचतुःशत्योरेकवाक्यता त्वविवादा। पूर्वोत्तरसमाख्याबलात्। पूर्वतन्त्रे कथितानां करशुद्ध्यादिन्यासानामुत्तरतन्त्रेऽकथनेन तत्रोद्धृताया मूर्तिविद्यायाः पूर्वतन्त्रेऽनुद्धारादिना च ज्ञापकेन परस्परसाकाङ्क्षत्वाच्च। उभे च चतुःशत्यौ यद्यपि प्राचीनैर्बहुभिर्व्याख्याते एव परं तु ताष्टीका अस्थाने विस्तृताः स्थाने सङ्कुचिताः, क्वचिन्न्यायविरुद्धाः, क्वचित्सम्प्रदायविरुद्धाः, क्वचिन्मूलस्वरसविरुद्धाः, क्वचित्त्यक्तमूलश्लोकाः, क्वचित्तन्त्रान्तरविरुद्धाः, क्वचित्पक्षपातकलुषिता इति तत्त-

दंशान्परिहृत्यातीव निष्कृष्येतरांशेषु तत्प्रदर्शितदिशैव संक्षिप्य व्याख्यातुमयमुद्योगः सफल इति सहृदया विदांकुर्वन्तु।

इत्युबन्धचतुष्टयनिरूपणम्

◆

अथात्रोपास्यायाः परमेश्वर्यास्त्रीणि रूपाण्युपास्तियोग्यानि—स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति। तत्राऽऽद्यं करचरणाद्यवयवशीलं मन्त्रसिद्धिमतां चक्षुरिन्द्रियपाणीन्द्रिययोर्योग्यम्, 'ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम्' (१/१३८) इत्यादिना वक्ष्यमाणम्। द्वितीयं मन्त्रात्मकं पुण्यवतां श्रवणेन्द्रियवागिन्द्रिययोर्योग्यं 'श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा' इत्यादिना रहस्यनामसूक्तम्, सर्वमन्त्रमूलभूतमातृकासरस्वत्याद्यात्मकं च। अत एव—'एतस्यां साधितायां तु सिद्धा स्यान्मातृका यतः' (५/३६) इति पञ्चमपटलान्ते वक्ष्यति। तृतीयं वासनात्मकं पुण्यवतां मनसो योग्यं 'चैतन्यमात्मनो रूपम्' इत्यादिना षष्ठे पटले (श्लो ५०) वक्ष्यमाणम्। एतत्त्रियातीतं तु वाङ्मनसातीतं मुक्तैरहन्तयाऽनुभूयमानमखण्डं रूपम्। तत्र नित्याषोडशिकार्णवं प्रारिप्समानः परमशिवस्तस्य निर्विघ्नं परिसमाप्त्यर्थं मुख्यस्याप्यखण्डरूपस्य वागतीतत्वेन साक्षात्स्तोतुमशक्यत्वात्स्थूलारुन्धतीन्यायेन सूक्ष्मरूपद्वारा तदाराधनरूपं मङ्गलमाचरति—'गणेशग्रहनक्षत्र' (१/१) इत्यारभ्य 'नौमि श्रीत्रिपुरामहम्' (१/१२) इत्यन्तैर्द्वादशभिः श्लोकैः। अस्य देव्याराधनरूपस्य स्तवस्याप्यनेकश्लोकसमुदायरूपत्वेन तदविघ्नतायै मङ्गलान्तरमावश्यकमित्याशयेन प्रथमतो गणेशस्मरणमाचरितम्। न चैवमनवस्थापत्तिः। गणेशपदस्य द्वादशश्लोकीबहिर्भावाभावेन तदनवतारात्। नित्याषोडशिकार्णवाद् द्वादशश्लोक्या बहिर्भावस्त्विष्ट एव। 'देव्युवाच' इत्यादिनैव तदारम्भ इत्यस्य सुवचत्वात्। न ह्येवं ग्रहनक्षत्रेत्यादिनैव श्लोकारम्भ इति वक्तुं शक्यम्। एतेन महागणपत्युपास्तेर्विघ्ननिरासद्वारा विद्योपास्त्यङ्गत्वं कल्पसूत्रोक्तं ध्वनितम्।

गणेशा विघ्नेश्वरादिगणेश्वरान्ता एकपञ्चाशद्विनायकमूर्तयः। ग्रहनक्षत्रराशयः प्रसिद्धाः। योगिन्यो डाकिन्याद्याः सप्त देवताः। पीठानि कामरूपादिछायाछत्रान्तान्येकपञ्चाशत्। एवं सप्ताधिकं सार्धशतं देवताः। एतासामेव लघुषोढान्यासाख्यः स्वदेहे प्रक्षेपः परमेश्वरभावापादकोऽष्टमे पटले (श्लो० ९-१२) वक्ष्यते 'गणेशैः प्रथमो न्यासः' इत्यादिना 'स एव (स्वयं) परमेश्वरः' इत्यन्तेन। ईदृशदेवतासमूहरूपिणीम्। देवीं व्यवहाररूपाम्। मन्त्रमयीं मन्त्रप्रचुरामीति मातृकाविशेषणानि। अकारादिक्षकारान्तवैखरीरूपाया मातृकासरस्वत्या एव सप्तकोटिमहामन्त्रघटकत्वात्। लौकिकवैदिकव्यवहारघटकत्वाच्च। एवं गणेशाद्याः पीठाद्याश्च प्रत्येकमेकैकाक्षररूपाः। ग्रहेषु तु सूर्यः षोडशस्वररूपः। मङ्गलबुधगुरुशुक्रशनैश्चराः कादिवर्गपञ्चकरूपाः, चन्द्रराहू अन्तस्थोष्मरूपौ। क्षकार एकः केतुरूपः। ळकारस्तु लकारेणैव गतार्थ इति सम्प्रदायः। नक्षत्रेषु यथा—

युग्ममेकं त्रयं वेदा एकमेकं द्वयं ततः।
एकं युग्मं युग्ममेकं युग्मं युग्मं युगं क्रमात्।।

एकं युग्मं त्रयं चैकं त्रयमेकैकमेककम्।
युग्ममेकं युगं त्रीणि युग्मं बिन्दुविसर्गयुक् ।। इति।
(८/३०-३२)

अश्विन्यादिक्रमेणाकारादिवर्णेषु क्रमाद्युग्ममेकमित्यादि योज्यम्। अं आं इत्यक्षरद्वयात्मिकाऽश्विनी। इंकाररूपा भरणी। ईं उं ऊं इत्यक्षरत्रयरूपा कृत्तिकेत्यादिरर्थः। परं तु बिन्दुविसर्गस्वरौ क्षकारान्ते योजनीयौ। तेन ळं क्षं अं अः इत्यक्षरचतुष्करूपा रेवती सिध्यति। योगिन्यस्तु डरलकसहयाद्याख्याः सप्तः। तासां स्वरूपं तु स्वराः षोडश, ककाराद्या द्वादश, डकाराद्या दश, बकाराद्याः षट्, वकाराद्याश्चत्वारो हकारक्षकारौ, समष्टिश्चेत्येवंरूपं क्रमाद्भवति। ळकारः पूर्ववत्। राशिषु यथा—

चतुष्कं त्रितयं त्रीणि द्वितयं द्वितयं द्वयम्।
पञ्चकं पञ्चकं पञ्च पञ्चकं पञ्चकं ततः।।
चत्वारि मेरुर्मीने स्युः कन्यायां पञ्च शादयः। इति।
(८/३७-३८)

मेरुः क्षकारो यकारादिचतुष्कं चेति मीनराशिः। शकारादिपञ्चकं बिन्दुविसर्गौ च कन्याराशिरित्यर्थः। स्पष्टमन्यत्। अत्रैकैकस्यानेकरूपात्मकत्वे परस्परविरुद्धानामपि रूपाणामभेदे च न विप्रतिपत्तव्यम्। देवतामहिम्नोऽप्रतर्क्यत्वात्। 'मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता' इति कल्पसूत्रात्। उक्तं च भारतेऽपि 'अचिन्त्याः खलु ये भाया न तांस्तर्केण योजयेत्' इति। श्रुतिरपि—'नैषा तर्केण मतिरापनेये'ति। तस्मादीदृशनिखिलप्रपञ्चात्मकदेवतासमूहाभिन्नां मातृकासरस्वतीं स्तौमीति श्लोकार्थः। अत्र मातृकाया एव विशेष्यत्वे गणेशादिदेवतासमूहषट्करूपत्वविशेषणमपि लिङ्गं तस्यामेवोक्तरीत्या तत्सम्भवात्। उत्तरश्लोके मातृकायाः परमेश्वरत्वविशेषणत्वमपि लिङ्गं लघुषोढान्यासस्य परमेश्वरभावापादकत्वात्। यास्तु देवताः 'प्रपञ्चो भुवनं मूर्तिमन्त्रदैवतमातृकाः' इत्युक्ते महाषोढान्यासे कीर्त्यमानास्तासामपि सर्वासां मातृकावर्णरूपत्वात्प्रकृतश्लोके देवीमन्त्रमातृकापदैस्तदेकदेशपरामर्शाल्लिङ्गादुपलक्षणविधया 'महाषोढोदिताशेषदेवतागणसेवितम्' इति वचनान्तरोक्ततदभेदोऽप्यत्रानुसन्धेयः।

यत्तु प्राञ्चः—'सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा' इति श्रुत्योक्ताः श्रीकण्ठादयो रुद्रगणाः पञ्चाशदिह गणेशपदेनाभिधीयन्त इति व्याचख्युः। परे तु 'इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणाः' इति श्रुत्युक्ता एकोनपञ्चाशन्मरुद्गणा गणेशपदेन गृह्यन्त इति व्याचक्षते। तदुभयमपि चिन्त्यम्, तयोः श्रुत्यो रुद्रगणमरुद्गणसद्भावे प्रामाण्येऽपि प्रकृतगणेशपदेन तेषामेवेह ग्रहणे मानाभावात्। न चाकारादिमातृकास्वरूपत्वात्तेषामिह ग्रहणम्। मातृकास्वरूपतायाः केशवादिगणेषु कामिन्यादित्रिपुरागणादिष्वप्यविशिष्टत्वेन तेषामपि गणेशपदेन परामर्शापत्तेः। न च रुद्रवाचकेशपदेन गणपदस्य कर्मधारये श्रीकण्ठादिगणपरत्वमेवास्य सिध्यति। विघ्नेश्वरादिपरत्वे तु षष्ठीतत्पुरुषापत्त्या निषादस्थपत्यधिकरणविरोध इति वाच्यम्। विघ्नेश्वरादिषु गणेशपदस्य रूढत्वेन रथकाराधिकरणन्यायेन

तेषामेव परामर्शस्योचितत्वात्। निषादस्थपतिपदस्य पक्षद्वयेऽपि यौगिकत्वेन वैषम्यात्। किं च ग्रहादिपदानामपि गृह्णन्ति गृह्यन्त इत्यादिव्युत्पत्त्या विषयेन्द्रियादिपरत्वमेवाऽऽपद्येत न पुनः सूर्यादिपरत्वं तेषु सूर्यादिपरत्वमेवाङ्गीकुर्वद्भिरपि भवद्भिराकस्मिकतया तत्प्रायपाठं लघुषोढादेवताप्रत्यभिज्ञां चानादृत्य कथमर्थान्तरं वर्ण्यत इत्याश्चर्यम्। अपि च देव्याराधनप्रत्यूहनिरासकत्वद्योतनस्वारस्यभङ्गः। विघ्ननिरासकानां बहूनां सत्त्वेऽपि गणेशाराधनेनैव श्रीविद्याराधनप्रत्यूहं निरस्येदिति नियमस्य क्रत्वर्थत्वेन द्योतनस्याऽऽवश्यकत्वात्। अत एव कल्पसूत्रे वचनम्—'इत्थं सद्गुरोराहितदीक्षो महाविद्याऽऽराधनप्रत्यूहापोहाय गाणनायकीं पद्धतिमामृशेत्' इति। 'एवं गणपतिमिष्ट्वा विधूतसमस्तविघ्नव्यतिकरः शक्तिचक्रैकनायिकायाः श्रीललितायाः क्रममारभेत' इति कल्पसूत्रवचने त्वाप्रत्ययेन 'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत' इत्यादाविवाङ्गाङ्गिभावस्य स्पष्टं बोधनात्। गणेशक्रमस्य ललिताक्रमोपकारकत्वकथनेन ललिताक्रमस्यैव फलवत्त्वोक्त्या च विपरीताङ्गाङ्गिभावशङ्कायाः फलवदफलन्यायेन निरासात्। 'एतस्यैव रेवतीषु वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कृत्वा पशुकामो ह्येतेन यजेत' इतिवत्।

इयांस्त्वितो विशेषः—ललितोपास्तेर्यावज्जीवकर्तव्यत्वेन ब्राह्ममुहूर्तोत्थानादिकर्मसु परस्परविरोधेनोपास्त्यन्तरस्यासम्भवाल्ललिताक्रमारम्भात्पूर्वमेव कतिपयदिवसैर्यथाशक्तिसंख्याकजपरूपा महागणपतेरुपास्तिरन्वारम्भणीयावत्सकृदेव कार्या। अत एवोक्तवचने क्रममारभेतेत्यारम्भस्यैव परतः कीर्तनमुपपद्यते। न चैवं सति 'श्यामा तत्क्रमविमृष्टिः सदा कार्या' इति वचनान्तरेण राजश्यामलोपास्तेरपि ललिताक्रमप्रकरणे विधानेन तदङ्गत्वादुक्तरीत्या विरोधात्समुच्चयस्य कथमुपपत्तिरिति वाच्यम्। श्यामलायान्तरप्रकरणान्त 'एवं नित्यसपर्यां कुर्वन् लंक्षं (लक्ष) (जपं) जप्त्वा' इत्यादिना लक्षजपस्यैव विधानेनोपक्रमस्थस्य सदेतिपदस्य तत्परिमितकालमात्रपरत्वावश्यंभावे पाठक्रमबाधेन ललितोपास्तेः पूर्वमेव श्यामलोपास्तेः कर्तुमुचितत्वात्। अत एव 'प्रधानद्वारा राजप्रसादनं हि न्याय्यम्' इति वचने राजोपास्तेः पूर्वं प्रधानोपास्तिप्रदर्शनमुपपद्यते। अत्र हि शब्देन लोकप्रसिद्धिमनुसरता भगवता परशुरामेण प्रधानोपसर्पणमन्तेरेणैव राजानुसरणस्यापि लोके बहुलं दर्शनात्तदुपास्तेः कृताकृतताऽपि सूचिता। परं तु तदुपास्तिपूर्वकराजोपास्तौ फलभूमा लौकिकन्यायेन षोडशिग्रहणपक्ष इव वैदिकन्यायेनापि सिध्यति। एवमेव 'सङ्गीतमातृकामिष्ट्वा कोलमुखीं विधिवद्वरिवस्येत्' इति विहिता, दण्डनाथोपास्तिरपि लक्षजपपरिमिता श्यामलोपास्त्या बद्धक्रमत्वात्तद्वदेव विकल्पितेति ज्ञेयम्। न ह्येवं गणेशोपास्तेर्विकल्पः। तस्याः प्रधानारम्भं प्रति नित्याङ्गत्वात्। तस्मादीदृशावश्यकाङ्क्ष्वननविरोधादपि न गणेशपदस्य श्रीकण्ठादिपरत्ववर्णनं युक्तिमिति दिक्। यद्वा, उत्तरतन्त्रे प्रधानदेवताया मूलविद्यायाश्च प्रत्येकं गणेशादिपञ्चात्मकत्वं मूल एव वक्ष्यते। प्रकृतश्लोके च लघुषोढोक्तदेवतासमूहषट्के प्राथमिकानां पञ्चानामेव पीठदेवताभ्यो विभज्य कीर्तनाल्लिङ्गाद्देवीमित्यस्य मन्त्रमयीमित्यस्य वा विशेष्यत्वं सुवचम्। तत्र देवताविशेषकस्तवनपक्षे मन्त्रमयीं मन्त्रप्रधानां मातृकां जगन्मातरमिति व्याख्येयम्।

एकादशाधिकशतदेवतात्मतया पुनः।
गणेशत्वं महादेव्याः.................।। (७/५७)

इत्यादिभिः 'एतै राशिस्वरूपिणीम्' (७/६३) इत्यन्तैः सार्धैः षड्भिः श्लोकैर्वक्ष्यमाणया दिशा गणेशादिपञ्चात्मिकाम्। मन्त्रस्य विशेष्यतापक्षे देवीं द्योतमानाम्।

अकथादित्रिपङ्क्त्यात्मा तार्तीयादिक्रमेण च ।
सा गणेशो महाविद्या........................।। (७/६३-६४)

इत्यादिभिः 'राशित्वं चान्त्यवर्जितैः' (७/६६) इत्यन्तैः सार्धैस्त्रिभिः श्लोकैर्वक्ष्यमाणया दिशा गणेशादिपञ्चात्मिकामित्यर्थः। न चानयोः पक्षयोर्गणेशादिपदानां रूढ्यर्थपरित्यागस्याऽऽवश्यकत्वे श्रीकण्ठादिपरत्वव्याख्यया किमपराद्धमिति वाच्यम्। उक्तोपबृंहणानुरोधेन रूढित्यागस्यादोषत्वात्। श्रीकण्ठादिपरत्वेनोपबृंहणस्य तैरप्यलेखनात्। पीठरूपिणीमित्यस्य ओजापूकाख्यपीठेषु स्वरूपमस्या इति देवीपक्षे, मन्त्रपक्षे तु लक्षणया कूटरूपिणीमित्यर्थो वर्णनीयः। पीठे श्रीचक्रे रूपमस्या इति वाऽर्थः। एवं त्रय एवार्थाः प्रामाणिकाः।

यत्तु प्राञ्चः—पीठशब्दं जगदाधारपरत्वेन, योगिनीशब्दं ब्राह्म्यादिपरत्वेन, गणेशशब्दं श्रीकण्ठादिपरत्वेनेतरद्यथाप्रसिद्धमेव व्याख्यायैषा सकीलकसम्प्रदायरीत्यैका व्याख्येत्युक्त्वा निष्कीलकसम्प्रदायरीत्या त्वन्या अपि पञ्चविधा व्याख्या उच्यन्त इति प्रतिज्ञाय वर्णमन्त्रसंविच्चक्रधामपरत्वेनेमं श्लोकं पञ्चधा व्याचक्षते, तत्सर्वं मूर्खप्रतारणमात्रम्। तथाहि इच्छाज्ञानाक्रियाशान्ताश्चतस्रो वामाज्येष्ठारौद्र्यम्बिकाश्चतस्रस्तत्समष्टी द्वे एवं द्वे पञ्चके क्रमादकारहकाराभ्यां जाते इत्यकारहकारयोः सामरस्यमेकमित्येकादशसंख्या गणेशपदेनोच्यते। तदुक्तम्—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।।

इत्यादिरीत्या वर्णसंख्यामात्रं श्लोकारूढं कृत्वा वर्णोद्धारः—गणेशो हकारो ग्रहः सकारः। नक्षत्रपदे ककार एको विवक्षितोऽन्यदुच्चारणार्थम्। योगिनी लकारः। राशिर्हकारः। रूपिणीमित्यत्र रेफेंकारावेव विवक्षितावित्यादिरीत्या हादिविद्योद्धारः। देवीमित्येकमेव विवक्षितम्। इतरत्सर्वमुच्चारणार्थम्। द्योतमानामित्यर्थः। तेन सुषुम्णान्तर्वर्तितेजोदण्डरूपायाः संविद उद्धारः। देवीपदेनैव तेजस्त्रितयमुपलक्षितमिति धामत्रयोद्धारः। पीठपदेनैव चक्रोद्धार इत्यादिप्रकाराणां भवदुक्तानां सर्वत्र प्रदर्शयितुं शक्यत्वात्। गणेशादिपदानां हकारादिपरत्वे कोशाभावेन यस्य कस्यापि पदस्य यः कश्चिदेव स्वाभिलषितोऽर्थः स्वानुपयुक्तः सर्वोऽप्युच्चारणमात्रार्थत्वादविवक्षित इति कल्पनाया अत्यन्तमप्रामाणिकत्वात्। तत्र सम्मतत्वेन यस्य कस्यचिदेव वचनस्यानन्वितस्य लेखोऽपि बालसम्मोहनमात्रम्। अत एव तद्दूषणाभिनिवेशोऽपि ग्रन्थविस्तरमात्रफलकत्वादनुचित एवेत्युत्तरत्र सर्वत्रापि बहुशो दृश्यमाना अपि तादृशो व्याख्यानो दृश्यन्तेऽस्माभिः। लोकवेदाधिकरणन्यायेन पदपदार्थव्युत्पत्त्यनुरोधेनाऽऽपतत एवार्थज्ञानस्याभ्युदयकारित्वात्। वैदुष्यबलादुन्नीतस्य सकलविद्वच्चमत्कारकस्याप्यर्थस्यातथात्वात्। उपदर्शितस्योपहसनीयस्यार्थस्य तु कैमुति-

कन्यायेनोपेक्ष्यत्वादीति द्रष्टव्यम्। काश्मीरास्तु—गणेशः कालरूपी विनायको योगिन्यो वशिन्याद्या इत्याहुरिति विशेषः। अत्र श्लोके देवीस्तुतिः प्रतिज्ञाता। सा च गुणिनिष्ठगुणाभिधानम्। तन्त्रस्य सर्वस्यापि गुणाभिधानरूपत्वात्तन्त्रं प्रस्तौमीत्यप्यर्थः। तत्र च विपयो 'देवीं मन्त्रमयीम्' इति पदाभ्यां दर्शितः। देवतानिष्कर्षो मन्त्रनिष्कर्षश्चेह विषय इति यावत्। उत्तरश्लोकैस्तु प्रयोजनानि प्रपञ्चयिष्यन्ते।।१।।

त्रिपुरसुन्दर्या द्वादशश्लोकीस्तुतिः

प्रणमामि महादेवीं मातृकां परमेश्वरीम्।
कालहल्लोहलोल्लोलकलनाशमकारिणीम् ।।२।।

कालवेग के आवर्त्तन-विवर्त्तन से कृत जो बन्धन हैं, उनका नाश करने वाली परमेश्वरी मातृका को प्रणाम करता हूँ। **प्रणमामि**—शिवानन्द के अनुसार देहादि प्रमाता से विरति द्वारा व्युत्थानरहित भाव से महादेवी में समाविष्ट होना। यह कैवल्यसिद्धि का रूप है। **महादेवीं**—ये ब्रह्मादि सृष्टि की हेतुभूता होने के कारण देवीमहादेवी महाप्रकाशविमर्शरूपिणी पराशक्ति हैं। भास्करराय के अनुसार महादेवी शब्द का अर्थ है—महाविद्या। **मातृकां**—शिवानन्द ने इसके अर्थ में परात्रिंशिका का वचन उद्धृत किया है (परात्रिंशिका ८-९)। सभी तन्त्रों में ये सर्वदा सर्वमन्त्र तथा सर्वविद्या की यशस्विनी योनिरूप से (उत्पत्ति स्थानरूपेण) समाख्याता हैं। यह सर्वोपरि विद्या है। स्त्री देवता के मन्त्र को विद्या तथा पुरुष देवता के मन्त्रों को मन्त्र कहते हैं! **काल**—काल शब्द के नाना अर्थ हैं। यह अवच्छेदक है अर्थात् इसके द्वारा क्षणदण्डादि विभाग होता है। काल भूतजगत् को संकलित मान में प्रेरित करता है। बन्धनरूप जन्म मरणादि-रूप बन्धन। शिवानन्द ने काल शब्द का अर्थ करते समय तन्त्रालोक के इस वचन को उद्धृत किया है—

एष कालो हि देवस्य विद्याभासनकारिणी।
क्रियाशक्तिः समन्तानां तत्त्वानां च परं वपुः।। (६.३८)

यह काल देव की अर्थात् पराशिव की विश्व आभासन क्रियाशक्ति है। समस्त तत्त्वों की पर वपु है। **हल्लोहल**—लयादि प्रलयान्त गति या वेग। **उल्लोल**—आवर्त्तनविवर्त्तन, चञ्चलीभाव। शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—महोन्मेष। **कलना**—बन्धन, ग्राह्य-ग्राहक-ग्रहण-संक्षोभात्मक संसार। **शमकारिणीम्**—शमकारिणी शब्द का अर्थ है—पूर्वोक्त बन्धन का नाश करने वाली। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है कि देवी अपने भक्तों का मृत्युमुख से त्राण करती है। शिवानन्द के अनुसार 'शमकारिणी' का तात्पर्य है—ग्राह्य-ग्राहक-ग्रहणरूप जो संक्षोभ है, उसकी शान्ति करने वाला। यह क्षोभशान्ति ही परम पद है। स्पन्दकारिका में कहा गया है कि क्षोभ = लय प्राप्त होने से परमपद प्राप्त होता है। इसका फल है—मृत्यु से पार होना। कैवल्यसिद्धिप्राप्ति तथा परमपद-प्राप्ति से होता है यह मृत्यु से पार होना।।२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

प्रणमामीति। महादेवीम्। देवीमिति प्राग्वत्। सा च महीयसी, विरिञ्च्यादिसर्गादेरपि हेतुभूतत्वात्। मातृकाम्—

सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनी।
इयं योनिः समाख्याता सर्त्रतन्त्रेषु सर्वदा।।
न विद्या मातृकातुल्या.........................। (प० त्रिं० ८-९)

इत्याद्याम्नायसूचितप्रभावाम्। **परमेश्वरीम्।** परमा प्रकृष्टा परमशिवस्वरूपा ईश्वरी महाविभूतिमयी या ताम्। **कालेत्यादि।** कालोऽवच्छेदकः सङ्कलनात्मा परामर्शो वन्धनरूपः। तदुक्तं प्रत्यभिज्ञायाम्—

कालः सूर्यादिसञ्चारस्तत्तत्पुष्पादिजन्म वा।
शीतोष्णे वाथ तल्लक्ष्यः क्रम एव स तत्त्वतः।। इति। (२.१.३)

तन्त्रालोकेऽपि—

एष कालो हि देवस्य विश्वाभासनकारिणी।
क्रियाशक्तिः समस्तानां तत्त्वानां च परं वपुः।। इति। (६.३८)

तस्य हल्लोहलो लवादिप्रलयान्तो वेग इति सम्प्रदायः, तस्योल्लोलो महोन्मेषः, तेन कलना बन्धनम्, ग्राह्यग्राहकग्रहणसंक्षोभात्मा संसृतिरित्यभिप्रायः। तस्याः शमकारिणीम्, क्षोभशान्तिकरीमित्यर्थः। क्षोभोपशान्तिः परमं पदम्। तदुक्तं रहस्यगुरुप्रवरेण—

'यदा क्षोभः प्रलीयेत तदा स्यात् परमं पदम्'। इति। (स्व० का० ९)

प्रणमामीति देहादिप्रमातृतोपशान्त्या प्रकर्षेण निर्व्युत्थानं समाविशामीति यावत्। परावाग्विलासपरामर्शेन कैवल्यसिद्धिरिति द्योतितमनेन पद्येन।।२।।

* अर्थरत्नावली *

प्रणमामि महादेवीमित्यस्य व्याख्या—प्रणमामि महादेवीं महाप्रकाशविमर्शरूपां परां शक्तिं कदाचिदप्यप्रच्युतशिवस्वभावां समाविशामीति यावत्। मातृकापदं व्याख्यातम्। परमेश्वरीं सकलजगन्नियमनहेतुशक्तिमित्यर्थः। **कालहल्लोहलेत्योदि।** कालस्य हल्लोहलः कालहल्लोहलः, तस्य उल्लोलः कालहल्लोहलोल्लोलः, उल्लोलो यथाभूतस्तेन कलना बन्धः, तस्याः शमं करोतीति। प्रकारान्तरेण—कालस्य हल्लोहलो वेगः, तस्य उल्लोल आवर्तविवर्तनम्, चञ्चलीभाव इति (यावत्), तेन कलना बन्धनम्, तस्याः शमो नाश इत्यर्थः। **शमकारिणीमिति।** तस्य शान्तिसम्पादनस्वभावाम्। अयमर्थः—मृत्युवक्त्रात् स्वभक्तमुत्तारयतीति।।२।।

प्रणमामीत्यादि शमकारिणीमित्यन्तम्। (अत्र) द्वितीय(सूत्र)पूर्वार्धेन प्रथमसूत्रप्रतिपादितं वर्णक्रममनूद्योत्तरार्धेन तदुपासकस्य मृत्यूत्तारणाख्यं फलं दर्शयति। पूर्वभागः स्पष्टार्थः। कालहल्लोहलः। कालस्य हल्लोहलः कालहल्लोहलः। हल्लोहलो वेगः। उल्लोलः तस्य कालस्यातिरेकः। कलना तेन बन्धनम्।

तस्य शमकारिणीमिति तस्य शान्तिसम्पादनस्वभावामित्यर्थः। नाशयतीत्यार्थिकोऽर्थः। मृत्युवक्त्रात् स्वभक्तं तारयतीति तात्पर्यम्।।२।।

*** सेतुबन्धम् ***

कालस्य हल्लोहलो वेगस्तस्योल्लोलो लोलत्वमधरोत्तरकरणं तस्य कलना तत्कर्तृको बन्धः। यद्वा—उल्लोलकलना पदपूर्वोत्तरसम्बन्धस्तस्य शमं नाशं करोतीति तथेति साम्प्रदायिकाः। वस्तुतस्तु हतं करोतीति हत्। तत्करोति तदाचष्ट इति ण्यन्ताद्धतशब्दात्क्विप्। स चासौ लोहलश्च, 'लोहलः स्यादस्फुटवाग्' इति अमरः। हल्लोहलश्चासावुल्लोलश्च। अथोर्मिषु। 'महत्सूल्लोलकल्लोलौ' इति अमरः। तेन कलनाऽऽक्रमणमित्यपि सुव्याख्यम्। सर्वस्यैव जगतः कालेन कवलीकारात्तदविषयत्वप्रदानं कालातीतशिवभावे पर्यवस्यति। अत एव (शिव)कर्तृककालकर्मककलनाऽपि देवीप्रभावादेवेत्युक्तम् आचार्यैः—

करालं यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना।
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा।। इति।

समुद्रे स्थूलतरङ्गस्य वेगेनाऽऽपततः परावर्तनस्यासाध्यत्वात्कालचपेटाया अपि तादृशत्वद्योतनायोल्लोलपदेन तदुक्तिः। तरङ्गाक्रमणमात्रेण तरणनिपुणस्यानिष्टादर्शनाद्धतं करोतीति विशेषणम्। हन्तुरपि स्फुटवक्तृत्वे पूर्वसूचनया तन्निरासोपायः सम्भाव्येतेति तद्व्युदासाय लोहलेति। अत्रापि पूर्वश्लोकवद्विशेष्यत्रैविध्यम्। तेन महादेवीशब्दो महाविद्यापरः। 'वदेदानीं महादेव्या एकैकाक्षरसाधनम्' इति चतुर्थपटले (श्लोक १) प्रयोगात्। महादेव्यादिपदत्रय एकस्य विशेष्यत्वे, इतरद्द्वयं विशेषणत्वेन योज्यम्।।२।।

यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्धते नरः।
रवितार्क्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ।।३।।

जिस मातृका की एक भी अक्षरसिद्धि होने पर अक्षरसिद्ध साधक सूर्य, गरुड़, चन्द्र, कामदेव, शंकर, अग्नि तथा विष्णु का प्रतिद्वन्द्वी हो जाता है।।३।।

यह है—मातृकासिद्धि का फल। विद्यानन्द कहते हैं कि एक ही अक्षर की सिद्धि होने पर साधक सूर्य के समान तेजस्वी, यशस्वी, प्रभावशाली हो जाता है। गरुड़ के समान दृष्टिपात-मात्र से विषनाश करने में समर्थ हो जाता है। चन्द्रमा के समान सब प्राणीवर्ग को प्रसन्नता देने वाला, कामदेव के समान सुन्दरियों में विक्षोभ उत्पन्न करने वाला, शंकर के समान श्रेयस्कर तथा अजेय, अग्नि के समान उज्ज्वल तथा विष्णु के समान सर्वप्राणीगण का पालक हो जाता है। अर्थात् मात्र एक मातृकाक्षर की सिद्धि से इससे भी बड़ा फल होना सूचित हो रहा है। 'मात्र' शब्द से तात्पर्य है कि यदि अक्षर बिन्दुयुक्त अर्थात् बीज न भी हो, तब भी पूर्वोक्त फल मिलेगा। भास्करराय के मत से इसके अतिरिक्त देवी पक्ष की व्याख्या यह होगी कि (श्रीविद्यात्मक व्याख्या) यदि किसी साधक को वाग्नवादि एक भी कूटसिद्धि हो, तब उसे ऊपर कहे गये फल प्राप्त होंगे।।३।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

यदक्षरेति। यदक्षरैकमात्रे यस्याः पूर्णाहन्ताया मातृकाया एकस्मिन्नप्यक्षरे न क्षरत्यश्नुते वेति निष्पन्ने सम्यगभेदेनाहंपरामर्शमयेन सिद्धे आत्मसात्कृते। नरः असौ साधको मनुष्यतयाऽवभासमानः समुत्तेजितसहजौजःप्रकर्षादिना गुणेन रविणा सह स्पर्धते, विषमोचनवेगादिना तार्क्ष्येण, अमृतीकरणादिन्दुना, सौभाग्यादिना कन्दर्पेण, श्रेयस्करत्वादिना शङ्करेण, औज्ज्वल्यादिनाऽनलेन, महाविभूतिरूपयोगैश्वर्यादिना विष्णुना। एवमेकाक्षरसिद्धौ तत्तद्वैभवेन सर्वदेवताविभूत्युत्कर्षो भवति। मातृकासिद्धौ पुनः सर्वदेवतानां स्वयमुदयस्थानं भवतीति तात्पर्यम्।।३।।

※ अर्थरत्नावली ※

यदक्षरेत्यादि विष्णुभिरित्यन्तेन तृतीयसूत्रेण व्यतिरेकमुखेन वर्णक्रमोपासकस्या(वा)न्तरफलं दर्शयति। अत्रेयमक्षरयोजना—**यदक्षरैकमात्रेऽपीति।** यस्या मातृकाया अक्षराणां मध्य एकाक्षरमात्रेऽपि संसिद्धे सम्यक् सिद्धिं प्राप्ते सति नरः स्पर्धां करोति। रविश्च तार्क्ष्यश्च इन्दुश्च कन्दर्पश्च शङ्करश्च अनलश्च विष्णुश्चेति रवितार्क्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णवः। तैः सह स्पर्धते। तेषां तां तां श्रियं युगपदेवापहरतीत्यर्थः। कोऽभिप्रायः? सूर्यस्य प्रभाववत् प्रथितयशःप्रभावो भवति। तार्क्ष्यवद् दृष्टिपातमात्रेण स्थिरकृत्रिमशङ्काख्यविषोपविषनाशको भवति। इन्दुवत् सर्वेषां प्राणिनामाह्लादजनको भवति। कन्दर्पवत् सर्वासां सुन्दरीणां विक्षोभको भवति। भूतप्रेतपिशाचानां दुष्टचेतसां शङ्करवदप्रधृष्यो भवति। अनलवदत्युज्ज्वलो भवति। विष्णुवत् सर्वेषां प्राणिनां पालको भवति। एवं तत्तद्गुणग्राहित्वात्तैः सूर्यादिभिः सह स्पर्धां करोति नरोऽपीत्युक्तं भवति। यदा अक्षरैकमात्रस्याप्येवं माहात्म्यं प्रसिद्धम्, तदा मातृकायां संसिद्धायां किं वक्तव्यमिति मात्रशब्दार्थः।।३।।

कोऽभिप्राय? सूर्यवत्तेजस्वी भवति। तार्क्ष्यवन्निर्विषीकुरुते। इन्दुवदाह्लादको भवति। कन्दर्पवत् सुभगो भवति। शङ्करवदप्रधृष्यो भवति। अनलवदुज्ज्वलो भवति। विष्णुवत् पालको भवति। एवं तत्तद्गुणाकर्ष(क)त्वात्……।

एवं तेजस्वितानिर्विषीकरणाह्लादसौभाग्याप्रधृष्यत्वौज्ज्वल्यपालकत्वाख्यावान्तरफलं वर्णक्रमोपासकस्य सम्भवतीति तात्पर्यम्।।३।।

※ सेतुबन्धम् ※

यस्या मातृकाया विद्याया वैकमात्रस्याक्षरस्यापि सम्यक्सिद्धौ रव्यादिभिः सप्तभिर्नरः स्पर्धते तन्निष्ठासाधारणगुणलाभात्। मातृकाविवेकादावेकैकाक्षरस्यापि पार्थक्येन साधनप्रकाराणामुक्तेः। विद्यायामप्येकैकाक्षरसाधनस्य चतुर्थे (पटले) वक्ष्यमाणत्वात्। रवेस्तेजः प्रकर्षध्येयाधिष्ठानत्वकर्मप्रवर्तकत्वादयो गुणाः। तार्क्ष्यस्य विष्णुभारवोदृत्वविषहरत्ववेगातिशयादयः। इन्दोर्देवतातृप्तिकारित्वनिखिलौषधिजीवकत्वाह्लादकत्वादयः। कन्दर्पस्य मनःक्षोभकत्वान्तर्हितत्वसौन्दर्यादयः। शङ्करस्याखिलाविद्याधिपत्वविश्वाधिपत्वविश्वसेव्यत्वादयः। अनलस्य प्राणिजठरान्तस्थिततत्वहविर्वोदृत्वसर्वसंहारकत्वादयः। विष्णुर्विश्वपालकत्वलक्ष्मीपतित्वमायित्वादयः। एवमवयवफलैः कैमुतिकन्यायेनावयविनः स्तुतिः। नन्वेवं सति शिवविष्ण्वोर्जगद्व्यापारे नियुक्तयोर्धर्मस्य जगद्-

व्यापारस्य लाभ उपासकानामयुक्तः। 'जगद्व्यापारवर्जम्' इति वैयासिकसूत्रविरोधादिति चेत्। न। दहरादिविद्योपासकानां जगद्व्यापारालाभेऽपि त्रिपुरसुन्दर्युपासकानां तस्यापि सुलभत्वात्। इदं च 'तस्मै श्रीललितादेवी स्वसाम्राज्यं प्रयच्छति' इत्येतच्छ्लोकव्याख्यावसरे सौभाग्य-भास्करे सोपपत्तिकमुपपादितमस्माभिः। मनोरमायां त्वेकाक्षरमात्र इत्यस्यार्थो गुरुमुखादवगन्तव्य इत्युक्तम्। नाथचरणास्तु त्रिमूर्तीशाक्षरं तथात्वेनोपदिशन्ति। तस्यैव देवीरूपतया परिणामस्य तत्रैतल्लयस्य व वक्ष्यमाणत्वात्। देवीपक्षे यस्या देव्या एकाक्षरमात्रस्य वाग्भवादेः सिद्धावित्यादिरर्थः। मात्रपदेन बिन्द्वादिराहित्येन बीजत्वाभावेऽपीति ध्वन्यम्। अत एव भयादैकारमात्रमुच्चरितवतः सत्यवचसो वाक्सिद्धिः। क्लीबपदश्रवणेन विस्मयादाद्याक्षरमात्रमुच्चरितवतः सुदर्शनाख्यस्य देवीप्रसाद इति कथयोर्देवीभागवते तृतीयस्कन्धे प्रसिद्धेः।।३।।

यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्।
वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम्।।४।।

जिस मातृका के आह्लादकारी संसारतापहरणकारी अक्षरसमूह द्वारा भुवनत्रय अलंकृत है, उन सर्वेश्वरी देवी महाश्री सिद्धमातृका की वन्दना करता हूँ।।४।।

यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितम् का तात्पर्य है कि मातृका का अक्षर ही शशि है। जैसे शशि (चन्द्रमा) तापहारी, आह्लादकारी है, वैसे ही मातृकारूपी चन्द्रमा संसार के ताप का नाश करके आह्लाद प्रदान करता है। इनकी ज्योत्स्ना अर्थात् अक्षरपक्ष से ज्योत्स्ना का अर्थ है—स्फुरत्ता, दीप्ति। इसके द्वारा अलंकृत, मण्डित। शिवानन्द के अनुसार मण्डित का अर्थ है—तन्मय हो जाना। मातृकारूपी चन्द्रमा के जप-ध्यान में तन्मय होना। भास्करराय ने 'यदक्षरशशि' की व्याख्या किया है कि जो मातृका के अक्षरसमूह का चन्द्रमा है अर्थात् अनुस्वार। यहाँ पर अनुस्वार का अर्थ है—बिन्दु। बिन्दु से मण्डित। ज्योत्स्ना अर्थात् विस्तार। विस्तार से जो मण्डित है अर्थात् त्रैलोक्य। बिन्दु से ही त्रैलोक्य की उत्पत्ति है। **भुवनत्रयम्**—ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयरूप अथवा ग्राहक-ग्राह्य-ग्रहणरूप तीनों भुवन। **सर्वेश्वरी**—शिवानन्द के अनुसार विश्व का पोषण करने के कारण सर्वेश्वरी। **महाश्रीसिद्धिमातृका**—शिवानन्द के मतानुसार देश-काल द्वारा अनियंत्रित स्वभाव से उत्पन्न महत्तत्त्व। महा शब्द का यह अर्थ है। श्री अर्थात् विश्व के साथ अभेदमयत्व हेतु जो श्रीत्व है। सिद्धत्व का तात्पर्य है—शिवादि कीटपर्यन्त अहंरूपत्व हेतु, जो सिद्धि है। **मातृकाम्**—३६ तत्त्वरूपेण अवभासित होने के कारण जो मातृकात्व है। विद्यानन्द के अनुसार सिद्धमातृका पद का अर्थ है—श्रीकण्ठादि रुद्रों की जननी। सिद्ध शब्द का प्रकृत तात्पर्य है—श्रीकण्ठादि ५० रुद्र। **वन्दे**—शिवानन्द के अनुसार कृत्रिम देहादि में अहन्ता की अवज्ञा करके अकृत्रिम पूर्णाहन्ता रूप में स्थित होना।।४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

यदक्षरशशीति। यस्याः संविन्मय्याः पराहन्ताया मध्यस्थितान्यक्षराण्येव विमर्शदशायां संसारतापहरत्वात् शशिरूपाणि, तेषां ज्योत्स्ना स्फुरत्ता, तया मण्डितं तन्मयीभूतम्। ग्राहकादित्रिकं भुवनत्रयम्। **सर्वेश्वरीम्**। विश्वपोषकरत्वात्। **महाश्रीसिद्धमातृकाम्**। देशकालाकारैरनियन्त्रितस्वभावत्वाद् महत्त्वम्, विश्वाभेदमयत्वात् श्रीत्वम्, शिवादिकीटान्तस्याहंरूपत्वात् सिद्धत्वम्, षट्त्रिंशत्तत्त्वोल्लासहेतुत्वाद् मातृकात्वम्। वन्दे कृत्रिमदेहाद्यहन्ताभूमिन्यक्कारेणाकृत्रिमपूर्णाहं(ता)परामर्शात्मना समाविशामीति यावत्।।४।।

* अर्थरत्नावली *

यदक्षरेत्यादि मातृकामित्यन्तेन चतुर्थसूत्रेण फलोपफलप्रतिपादकस्य वर्णक्रमस्य शब्दात्मकतया प्रमाणभूतस्य पदमन्त्रात्मकस्य स्वविकारमात्मन्यन्तर्भाव्य त्रिधा व्यवस्थितस्य कलातत्त्वभुवनात्मकस्या(द्य?ध्व)त्रयस्य प्रमेयभूतस्य प्रकाशकत्वेन वाच्याभेदं दर्शयति। अत्रैषाक्षरयोजना—**यदक्षरशशिज्योत्स्नेत्यादि**। यस्या मातृकायाः, अक्षराण्येव शशिरूपाणि, आह्लादहेतुततया। अतोऽक्षरशशिज्योत्स्नया दीप्त्या मण्डितम् अलङ्कृतं भुवनत्रयं ययेति। तां सिद्धमातृकां श्रीकण्ठादिरुद्रजननीम्। नमस्करोमीत्यर्थः। अन्यच्च मूलविद्यायां यानि यानि शश्यक्षराणि सम्भवन्ति, तानि तानि प्राधान्येनोद्धृत्य स्तौमीत्यर्थः। अत्र च शश्यक्षरं सकारः, स तु द्वितीयतृतीयबीजयोरनुगतः, तस्य महिमानं मातृकाक्षरस्तुतिव्याजेन दर्शितवानित्यर्थः। यद्वा अक्षरशशीति शश्यक्षरं चन्द्राक्षरम्, तस्य ज्योत्स्नेत्यादि पूर्ववद्योजना।।४।।

* सेतुबन्धम् *

यस्या मातृकाया अक्षरेषु यः शशी, अनुस्वारः। चन्द्रपर्यायाणां सर्वेषामनुस्वारे सङ्केतात्। बिन्दुरिति यावत्। तस्य ज्योत्स्नेव ज्योत्स्ना विस्तारस्तेन त्रैलोक्यं मण्डितम्। बिन्दोः सकाशादेव सकलजगदुत्पत्तेः कामकलाविलासादौ कथनात्। भुवनत्रयं ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपम्। 'तन्नाना(अनु)रूपं(प)ग्राह्यग्राहकभेदात्' इति शक्तिसूत्रे तथैव विभागदर्शनात्। यद्वा यस्या विद्याया अक्षरेषु ये शशिनो बिन्दुत्रयं तस्य ज्योत्स्नया शक्त्या भुवनत्रयं मण्डितं व्यक्तवाच्यतामापन्नं रुद्रेश्वरसदेशाख्या इत्यादिना उत्तरतन्त्रे बिन्दुत्रयस्य कतिपयत्वबोधकत्वकथनात्। यद्वा यस्या देव्या अक्षरस्य नित्यस्य शशिनो भालस्थस्य ज्योत्स्नया सर्वोर्ध्वस्थत्वात्सकलभुवनत्रयप्रकाश इति। अक्षराण्येव शशिन इति तु प्राञ्चः। विद्यान्तर्गतसकारस्य चन्द्रबीजत्वात्तस्यैषा स्तुतिरित्यप्यन्ये। तां महाश्रीसिद्धमातृकां श्रीकण्ठादिजननीं वा वन्दे।।४।।

यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम् ।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम् ।।५।।

जिस मातृका के अक्षररूप महासूत्र द्वारा ब्रह्माण्ड से लेकर कटाहपर्यन्त यह जगत्त्रय ग्रथित है, उस सिद्धमातृका की वन्दना करता हूँ।।५।।

यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्रयम्—भास्कराचार्य के मतानुसार इसका अर्थ है कि सर्व जगत् वाचक शब्दसमूह मातृकाक्षर से ही संघटित है। **जगत्त्रयम्**—कला-तत्त्व-भुवनरूपी अध्वत्रय। इसमें मन्तान्तर है कि ग्राहक-ग्रहण-ग्राह्यरूप जगत्त्रय। **ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं**—शिवानन्द के मत से अनाश्रित से लेकर कालाग्नि रुद्र पर्यन्त। शिवानन्द ने अनाश्रितकालाग्निरुद्रान्त का अर्थ किया है—३६ तत्त्वमय जगत्। विद्यानन्द के मत से ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं का अर्थ है—मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त। **सिद्धमातृकां**—श्रीकण्ठादि ५० रुद्र हैं सिद्ध, उनकी माता को। भास्करराय ने इसकी व्याख्या अन्य रूप से किया है। सिद्ध जिससे हो सके हैं, वह मातृका सिद्धमातृका है।।५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

यदक्षरमहासूत्रेति। यस्याः पूर्णाहन्तायाः पराशक्तेः कलाभूतानि यान्यक्षराणि तान्येव विश्वसूचकतया महासूत्राणि, तेषु प्रकर्षेण तादात्म्येन ओतं समुल्लसितम्, (एतत्) प्राग् व्याख्यातं जगत्रयम्। किंविशिष्टं जगत्रयमिति? तदाह—**ब्रह्माण्डादिकटाहान्तमिति।** अनाश्रितादि-कालाग्निरुद्रान्तम्। तां निस्सामान्यप्रसिद्धवैभवाम्। शिष्टं प्राग्वत्।।५।।

* अर्थरत्नावली *

यदक्षरेत्यादि। सिद्धमातृकामित्यन्तेन पञ्चमसूत्रेण वाच्यस्य कलाद्यध्वत्रयस्य वाचकेन वर्णाद्यध्वत्रयेणाभेदं दर्शयति—**यदक्षरेत्यादि।** यस्या मातृकाया अक्षरात्मकमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्रयं भाति, तां सिद्धमातृकां वन्दे। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगत्रयम्। मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तमित्यर्थः। इदमपि सूत्रं मातृकाक्षरमहिमानं सूचयति। **सिद्धमातृकामिति।** सिद्धाः पञ्चाशद् रुद्राः श्रीकण्ठादयः। तेषां जननीमित्यर्थः।।५।।

ब्रह्माण्डादिकटाहान्तमिति कालाग्न्यादिशिवान्तं महासूत्रप्रोतमेतज्जगत्रयं कलाद्यध्वत्रयं भातीत्यर्थः। तां सिद्धमातृकां वन्दे नमस्करोमीति। सिद्धिमातृकां सिद्धिप्राप्तौ मातृकां जननीमिति यावत्। तदध्वत्रय-विशेषणम्। अस्मिन्नपि सूत्रे मूलविद्याया हकारस्य महिमाऽपि सूचितो द्रष्टव्यः। अत्राक्षरमहासूत्रपदेन विश्वसूचको हकारोऽभिप्रेतः। त(दा?था) च नामसर्गे—'लकुली सर्वसूः' इति हकारस्य विश्वसूचनहेतुतया सूत्रत्वमुक्तम्। स च हकारो बीजत्रयेऽप्यनुगत एवेति सर्वं समञ्जसम्।।५।।

* सेतुबन्धम् *

यस्या मातृकाया अक्षरैरेकपञ्चाशत्संख्यैर्महासूत्रैर्ब्रह्माण्डादिकटाहपर्यन्तं स्थूलतमादिसूक्ष्मतमान्तं प्रोतं स्यूतम्। सर्वस्यापि जगतो वाचकाः शब्दा मातृकासंघटिता एवेति भावः। विद्यापक्षे तदन्तर्गतावकारहकारौ ग्राह्यौ। तयोर्मध्ये सर्वस्य जगतो निरूढताया वक्ष्यमाणत्वात्। 'एतद्वै तदक्षरं गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत' इति श्रुतौ तथा निर्णयादित्युक्तमक्षरमम्बरान्तधृतेरित्यधिकरणे। सिद्धमातृकामिति सिद्धा च सा मातृका च सिद्धा मातृका ययेति वा। सिद्धानां मातरमिति वाऽर्थः।।५।।

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते।।६।।

इस मातृका का एकादश अक्षर 'ए' त्रिकोण से उद्भूत है। यही है— ब्रह्माण्डादि कटाहान्त जगत्त्रय का आधार या बीज। यही जगत् में आज भी लक्षित होता है।।६।।

आधारं—भास्करराय के अनुसार यहाँ क्लीबलिङ्ग का आर्षप्रयोग है। क्षिति से लेकर शिवान्त-पर्यन्त इसका आधार है। **बीज**—शिवानन्द के मतानुसार बीज का अर्थ है— विश्वकारण, स्फुरत्तात्मा पराशक्ति। भास्कराय के मत से 'अ' परमशिव है। 'ई'कार उनकी स्त्री है। दोनों के संयोग (अ+ई) से 'ए' होता है। इसलिये भास्करराय शिव शक्तिसमायोग से अभिन्न 'ए'कार को जगत् का बीज बताते हैं। **कोणत्रयात्मकम्**—त्रिकोण से उद्भूत होने वाला। भास्करराय कहते हैं कि सम्प्रदाय वाले नागरी लिपि में 'ए' को त्रिकोण लिखते हैं। इसलिये भी इसे त्रिकोणोद्भव कहा गया। भास्करराय को यह स्मरण नहीं आया कि ब्राह्मी लिपि में भी इसे त्रिकोणाकृति ही लिखा जाता था, शारदा लिपि में भी यह त्रिकोणाकृति ही प्रयोग होता था। त्रिकोण को शक्तित्रयात्मक (इच्छा-ज्ञान-क्रिया) कहा गया है। पक्षान्तरेण वामा-ज्येष्ठा-रौद्री भी कह सकते हैं। तन्त्रलोक में कहा गया है कि अनुत्तर (अ), तथा आनन्दचिति अथवा आनन्दशक्ति (आ) का इच्छाशक्ति (इ) से युक्त होने पर 'ए'कार उद्भूत हो जाता है। इसे विसर्गामोदसुन्दर भी कहते हैं। विसर्ग = पराशक्ति। उसका आमोद = इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तिरूप उल्लास। इससे युक्त होकर जो सुन्दर है, वह विसर्गामोदसुन्दर। (तन्त्रालोक, तृतीय आह्निक। **जगदद्यापि दृश्यते**— शिवानन्द के मत से अनाश्रित से लेकर कालाग्नि रुद्र पर्यन्त ३६ तत्त्वात्मक जगद् रूप कार्यरूपेण प्रसृता महाशक्ति रूप से तथा कारण रूप से बीजाकार में अनुभवाभिमुख, इसका योगीगण सदैव दर्शन करते हैं। अपनी व्याख्या में वे 'सर्वदा' शब्द का अर्थ करते हैं कि ऐसा दर्शन अभी भी योगीगण करते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने परात्रिंशिका का प्रमाण दिया है—

यथा न्यगोधबीजस्थ: शक्तिरूपो महाद्रुम:।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।

जैसे शक्तिरूप महावृक्ष वटबीज में अवस्थित रहता है, वैसे ही यह चराचर जगत् हृदयबीज में अवस्थित है।।६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

यदेकेति। यदेकादशं यस्या: पूर्णाहन्ताया अनुत्तरादिप्रसरेषु (येषां संसरो नामेति?) यदेकादशं तदित्यर्थ:। आधारम् अधिकरणम्। विश्वस्य क्षित्यादे: शिवावसानस्य। बीजं विश्वकारणम्, स्फुरत्तात्मा पराशक्ति:। यदुक्तं मृत्युजिद्भट्टारकेण—

सा योनिः सर्वदेवानां शक्तीनां चाप्यनेकधा।
अग्नीषोमात्मिका योनिस्तस्याः सर्वं प्रवर्तते।। इति।
(ने० त० ७.४०)

कोणत्रयोद्भवं शक्तित्रयात्मना वा, वामाज्येष्ठारौद्र्यात्मना वा, अनुत्तरानन्देच्छासंघट्टनेन वा त्रिकोणान्तर्विभक्तम्। तदुक्तं श्रीत्रिकशास्त्रे—

अनुत्तरानन्दचिती इच्छाशक्तौ नियोजिते।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गामोदसुन्दरम्।। इति।
(तन्त्रा० ३.९४-९५)

एतदुक्तं भवति—अनाश्रितादिकालाग्निरुद्रान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वात्मना कार्यप्रसरेण महाशक्तिरूपेण बीजात्मना चेत्थमुभयात्मना महायोगिभिरनुभवापराङ्मुखैः सर्वदा दृश्यत इति। सर्वदेत्युक्तेरद्याप्यर्थश्च कथितः। उक्तं च श्रीपरात्रिंशिकायाम्—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।६।। इति। (२४)

* अर्थरत्नावली *

यदेकादशमित्यादि दृश्यत इत्यन्तेन षष्ठेन सूत्रेण मातृकास्तुतिमभिवाञ्छता परमेश्वरेण मातृकासंख्याने एकादशस्थानगतमेकाराक्षरं त्रिकोणात्मकमस्याः परदेवताया बाह्याभ्यन्तरभेदद्वयेऽप्याधारबीजमासनमिति प्रतिपादयति—**यदेकादशमित्यादि**। यस्या मातृकाया एकादशमक्षरम् आधारबीजम्। मूलाधारबीजमित्यर्थः। कोणत्रयोद्भवम्। त्रिकोणविन्यासे कृते पूर्वोक्तैकादशमेकारमाधारबीजं भवतीत्यर्थः। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं कालाग्न्यादिशिवान्तं जगदद्यापि दृश्यते। ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं कालाग्न्यादिशिवान्तं जगद् अद्यापि इदानीन्तनस्थितिकालेऽपि तस्मिन्नेव परायोनिमण्डले परिदृश्यत इत्यर्थः। उक्तं च श्रीमतोत्तरे—

एतत्तन्मण्डलं दिव्यं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम्। इति।

अपिशब्देन सृष्टिसंहारयोरुपलक्षणम्। कोऽभिप्रायः? अपरपरापरपरभावेन स्थितत्रिकोणोपलक्षितपरायोनिमण्डले ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगद् उत्पत्तिस्थितिनाशान् प्रतिपद्यत इत्यर्थः। अनेनापि सूत्रेण मूलविद्याद्यबीजान्तर्गतस्य एकाराक्षरस्य महिमानं विशेषतो वर्णितवानित्यर्थः।।६।।

* सेतुबन्धम् *

यस्या मातृकाया एकादशमेकाराक्षरं कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य तत्। नागरलिप्यां साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्। तद् ब्रह्माण्डादिजगत्प्रति आधारो बीजं च सदद्यापि सन्धिशास्त्रज्ञैर्दृश्यते। अकारः परमः शिवः, तस्य स्त्री ई। पुंयोगलक्षणो ङीष्। तयोः संयोगेनैकारनिष्पत्तिः। शिवशक्तिसमायोगस्यैव जगद्बीजत्वात्तदभेदेन तादृशाक्षरस्यापि तद्बीजत्वम्।

सुन्दरीतापिन्यां प्रथमोपनिषदि गायत्र्यन्तर्गतस्य सवितुर्वरेण्यमिति पदद्वयस्य जगदुत्पादकोत्तमार्थकस्य पर्याय एवैकार इति श्रवणात्। आधारमिति नपुंसकमार्षम्। आधारबीजमित्येकपदत्वेन केषाञ्चित् पाठस्तु टीकान्तरासम्मतत्वात् तन्त्रराजविसंवादाच्च नाऽऽदेयः। यत्तु त्रिंशिकाशास्त्रे वचनम्—

अनुत्तरानन्दचितिरिच्छाशक्तौ नियोजिता।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गामोदसुन्दरम्।। इति।

तत्राप्यनुत्तरेच्छापदयोरकारेकारावेवार्थौ साम्प्रदायिकौ। एवं कादिविद्यायामपि द्वितीयाक्षरस्यैषा स्तुतिः। एतद्वै तदक्षरमित्युक्तश्रुतावप्येकारस्तदिति च भिन्ने पदे। तेन तत्राप्येकारस्यैव सर्वजगदाधारत्वेन स्तुतिः। केचित् तु यदेकादशमक्षरं योन्याकारं तस्मिन्सर्वं जगदद्यापि सिद्धैर्दृश्यत इति योजयन्ति। योनिजन्यत्वांशे प्रत्यक्षसिद्धत्वोक्तिरिति तु काश्मीराः। अत्र मातृकाविद्यादेवीनां मध्ये यस्या विशिष्य यस्मिन् श्लोके कथनं न दृश्यते तस्यास्तदितराभ्यां सह भेदाभिप्रायेण तस्या अपि स्तवनमुपक्रमाविरोधाय द्रष्टव्यम् ।।६।।

अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम् ।
ज्येष्ठाङ्गबाहुपादाग्रमध्यस्वान्तनिवासिनीम् ।।७।।

अ क च ट त प य श—यह अष्टवर्गवती शिव के बाहुद्वय, पादद्वय, आगे, मध्य में तथा स्वान्त रूपी अष्ट अवयवों में निवास करने वाली को मैं प्रमाण करता हूँ।।७।।

अकारादि क्षकारान्त मातृका वर्ण को आठ वर्ग में देखा जाता है—'अ' से 'अः' पर्यन्त स्वरवर्ण। 'क' से 'ङ' पर्यन्त कवर्ग। 'च' से 'ञ' पर्यन्त चवर्ग। 'ट' से 'ण' पर्यन्त टवर्ग। 'त' से 'न' पर्यन्त तवर्ग। 'य' से 'व' पर्यन्त यवर्ग। 'श' से 'क्ष' पर्यन्त शवर्ग।

ज्येष्ठाङ्ग—उत्तमांग (शिवानन्द के अनुसार)। भास्करराय ने इसे देह का तीन भाग माना है। शीर्ष से घण्टिका तक का तीन भाग। **बाहुद्वय**—दाहिनी तथा वाम बाहु। **पाद**—दाहिना तथा बाँयाँ पैर। **अग्र**—भास्करराय ने अनुसार चरम अंग। पूर्वोक्त तीनों भाग का चरम भाग। यह है—हृदय से सीवनी-पर्यन्त। लिंगाग्र से गुह्यपर्यन्त का स्थान है—सीवनी; लेकिन शिवानन्द बाहु तथा पाद के अग्र को 'अग्र' मानते हैं—'बाह्वग्रं पादाग्रं' किन्तु अष्टवर्ग के न्यास के समय यह अर्थ सही नहीं लगता। इस प्रकार के अर्थ को स्वीकार करने पर अंग केवल सात रह जाता है। **मध्य**—भास्करराय ने कण्ठ से स्तन-पर्यन्त को मध्य माना है। शिवानन्द के मत से पार्श्वद्वय, पृष्ठ, नाभि तथा जठर मध्य है। **स्वान्त**—हृदय। भास्करराय के मत से शिर में अवर्ग का, दक्षिण बाहु में कवर्ग का, वाम बाहु में चवर्ग का, दक्षिण पाद में टवर्ग का, वाम पाद में तवर्ग का, अग्र में पवर्ग का, मध्य स्थान में यवर्ग का तथा हृदय (स्वान्त) में शवर्ग का न्यास करे।।७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अकचेति। प्रणमामीत्युत्तरत्र सम्बन्धः। ज्येष्ठाङ्गम् उत्तमाङ्गम्। अग्रशब्दो बाहुपादयोः सम्बद्ध्यते, बाह्वग्रं पादाग्रं चेति। मध्यशब्देन पार्श्वद्वयपृष्ठनाभिजठराणि लक्ष्यन्ते। स्वान्तं हृदयम्। अयमर्थः—अहंविमर्शप्रथमकलानुत्तरप्रसराष्टवर्गसामान्याष्टावयवतत्तद्वर्गाक्षररूपपरामृष्टतत्तद्विशेषावयवामित्थमक्षरात्मिकां देवीं मातृकां प्रणमामीति। सम्प्रदायक्रमेण तत्तद्वर्गस्य परामर्शक्रमः। तदुक्तमभियुक्तैः—'अकच' (प्र० सा० १.१) इति, 'कानन' (प्र० सा० ७.४) इति च।।७।।

* अर्थरत्नावली *

अकचादीत्यादि। अकचटतपयशाद्यैरक्षरैर्भेदितमातृकाष्टवर्गैर्विरचितमुखबाहुपादमध्यहृदयपृष्ठकटिसर्वाङ्गसुन्दरीं महात्रिपुरसुन्दरीं प्रणमामीत्यर्थः। अनेनाक्षराणां न्यासस्थानं सूचितमिति तात्पर्यार्थः।।७।।

अकचादिटतोन्नद्धेत्यादि केशपादादिवासिनीमित्यन्तेन सप्तमसूत्रेण वर्णक्रमस्य अकचटतपयशाक्षरभेदिताष्टवर्गात्मकवशिन्याद्यष्टशक्त्यधिष्ठानभूतेन शिरोबाहुहृदयपृष्ठयोनिपादद्वयाख्येन पुर्यष्टकात्मना देव्याः स्वशरीरेऽवस्थानमिति सूचयति। अथवाऽक्षराणां न्यासस्थानं सूचयतीति तात्पर्यम्। अक्षरार्थः स्पष्टः।।७।।

* सेतुबन्धम् *

आदिशब्दोऽकारादित्रयेऽन्वेति तेनाकारादयः षोडश, ककारादयश्चकारादयश्च पञ्च पञ्च। एवमुन्नद्धशब्दः सन्नद्धवाचक आरम्भपरष्टकारतकारयोरन्वेतीति तेऽपि पञ्च पञ्च। पयशाक्षरात्मकाश्च ते वर्गाश्च।

फलशब्दस्य यश्चाऽऽदिर्वर्गशब्दादिरेव च।
भकारो मनुशब्दादिः पवर्ग इति कथ्यते।।

इत्यादि कालिकापुराणवचनात् पवर्गः पादयः पञ्च। यवर्गो यादयश्चत्वारः। शवर्गः शादयः षडित्यर्थः। ईदृशवर्गाष्टकवती वक्ष्यमाणथनाष्टकवासिनीत्युक्त्या यथासंख्यन्यायेन ज्येष्ठाङ्गे शिरसि स्वरा दक्षिणबाहौ कवर्ग इत्यादि सिध्यति। ज्येष्ठाङ्गं च बाहु च पादौ चाग्रं चेत्यादिर्विग्रहः। ज्येष्ठं प्रथममङ्गं शीर्षादिघण्टिकान्तभागः। अग्रं चरममङ्गं हृदयादिसीवन्यन्तभागः। मध्यं कण्ठादिस्तनान्तभागः। शरीरपदवाच्यं ह्येतद्भागत्रयात्मकं प्रकाण्डमेव मुख्यम्। केशा हस्तौ पादौ चेति क्रमेण भागत्रयस्य शाखाः। अत एव कामकलान्यासे कूटत्रयस्य तत्तच्छाखाविशिष्टतत्तद्भागेषु त्रिष्वेव क्रमेण न्यासः संगच्छते। तेनाग्रपदस्य पार्श्वद्वयपृष्ठभाजि(नाभि)जठरात्मकस्तृतीयो भाग एवार्थो युज्यते। एतद्द्योतनायैव शीर्षस्य प्रथमाङ्गत्वेन निर्देशः। तेन बाह्वग्रे पादाग्रे चेत्यग्रपदस्य प्रत्येकमन्वयेन प्राचां व्याख्यानमपव्याख्यानम्। प्रत्युत बाह्वोः पादयोश्च मूलाद्यग्रान्तं कवर्गादेर्न्यसनीयत्वात् तद्विरुद्धं च। स्वान्तं हृदयम्। तन्त्रराजे हि—'ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्पृष्ठकटिपादनिवासिनीम्' इति पाठः। तत्र हि शीर्षादिपादान्तोऽवयवक्रम आश्रित इह तन्त्रे तु न्यासानुरोधेन मातृकाक्रम आदृतः। तेन मातृकान्यासानुष्ठानान्तमावश्यकत्वेन सूचितम्। भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठयोस्तेन बद्धक्रमत्वात्। मनोरमायां त्वेतत्स्तोत्रव्याख्यारम्भे 'नित्याषोडशिकार्णवे

महात्मभि: काश्मीरादिभिर्व्याख्यातत्वात् सैव व्याख्या स्वेन लिख्यत' इति वदता सुभगानन्दनाथेन पाठभेदो नास्तीति ध्वनितम्। अत्र श्लोके मातृकादेवतयोरन्योन्यमभेदो वर्णित:।।७।।

तामीकाराक्षरोद्धारां सारात्सारां परात्पराम्।
प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीम्।।८।।

ईकाराक्षरोद्धारा सारात्सारा परापरा परमानन्दरूपिणी उन महादेवी को प्रणाम करता हूँ।।८।।

ईकाराक्षरोद्धारां—भास्करराय के अनुसार ईकाररूप अक्षर द्वारा प्रधानत: जिनका उद्धार (संग्रह) हो। ये कादिविद्यारूपा महाविद्या हैं। विद्यानन्द के अनुसार ईकाराक्षरा से जिनका उद्धार हो, यह अर्थ है। **सारोत्सारां**—भास्करराय के मत से मथित करके गुणों के सार का प्राप्त करना इसका अर्थ है। सारयुक्त मन्त्र से भी अधिक सारयुक्त। इनकी इस श्लोक की व्याख्या कादिविद्या-दृष्टिकोण से है। इसीलिये कहते हैं कि सार माने उत्कृष्ट। अर्थात् सार = हादिविद्या। उस सार से भी उत्कृष्ट कादिविद्या। शिवानन्द इसके अर्थ को बतलाते हुये कहते हैं कि महाफल की प्रसवभूमि। मन्त्र-विद्या-अक्षर-वेद-शैव-वाम-कौल-त्रिक इत्यादि की साक्षात् कारणभूता होने के कारण सार का भी सार। **परापराम्**—परा तथा अपरा दोनों। शिवानन्द के अनुसार कारणत्मक हेतु परा और कार्यात्मक हेतु अपरा। अर्थात् परा शक्तिरूपा शिवात्मिका परा वाक्। विद्यानन्द के अनुसार इसका तात्पर्य है स्थितिरूपा। अथवा परा = कुल, अपरा = अकुल; इनकी विश्राम भूमि। संक्षेप में परमानन्दलक्षण शिवस्वभावा। **परमानन्दरूपिणीम्**—भास्करराय अर्थ करते हैं कि परम आनन्द है—मोक्ष। श्रुति भी कहती है कि अन्यान्य प्राणीगण इस आनन्द के अंशमात्र को धारण करके जीवन धारण करते हैं। इस आनन्द को देने वाली जो है, वे हैं—परमानन्दरूपिणी। भास्करराय इस सम्बन्ध में पुन: कहते हैं कि 'ई'कार बिन्दु विसर्गात्मक शिव-शक्ति का सामरस्यरूप है। इसकी आत्मरूपेण भावना करने से परमानन्द अनुभूत होगा। शिवानन्द कहते हैं कि इसका अर्थ है—इन्द्रियजनित व्यष्टिभूत आनन्द बिन्दुरूप। भास्करराय की व्याख्या से प्रकट होता है कि यह श्लोक कादिविद्या-विषयक है; किन्तु इस मत को निर्विवाद नहीं माना जाता। विद्वानों का कथन है कि इसकी व्याख्या कादि तथा हादि दोनों ही सम्प्रदायानुरूप की जा सकती है।।८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तामिति। ईकाराक्षरोद्धाराम् इच्छाशक्तिक्षुभितरूपाया: स्फुटवेद्योल्लासेनेशनादिभूमिकाया: प्रकटीभावो यत्र ताम्। **सारात्साराम्।** महाफलप्रसरभूमिं मन्त्रविद्याक्षरवेदशैववामकौलत्रिकादे: साक्षात् कारणतया साररूपाम्। **पराऽपराम्।** कारणात्मना पराम्, कार्यात्मना अपराम्। तादृशीं स्वरसोदितपराशक्तिरूपां शिवात्मिकां परां वाचमित्यर्थ:। तदुक्तं श्रीप्रत्यभिज्ञायाम्—

अत्रापरत्वं भावानामनात्मत्वेन भासनात्।
परताहन्तयाच्छादात् परापरदशा हि सा।। इति। (३.१.५)

परमानन्दरूपिणीम्। इन्द्रियजन्यव्यष्टिभूतानन्दविप्रुषां महासमुद्रस्थानीयत्वात्। यच्छ्रुतिः—'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० उ० ४.३.३२) इति।।८।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

तामित्यादि परमानन्दरूपिणीमित्यन्तेनाष्टमसूत्रेण दर्शनसर्वस्वभूतकामकलां दर्शयति—**तामीकारेत्यादि।** तां देवीं प्रणमामीत्यन्वयः। कथम्भूतामित्यपेक्षायां तद्गुणान् विशिनष्टि—**ईकाराक्षरोद्धाराम् इति।** ईकाराक्षरे उद्धारो यस्याः सा ईकाराक्षरोद्धारा। व्यधिकरणे बहुव्रीहिः। तेन ईकार उक्तः। तेन हि किमुक्तं भवति? ईकाराक्षरविन्यासे कृते तदुपरि मायायां रचितायां स एव ईकाराक्षर ईंकारो भवतीत्यसावीकाराक्षरोद्धारा। **सारात्सारतरामिति।** योऽयमुद्धृतो महाकामकलाख्यो बीजानामपि बीजात्मक ईकारः, स साराणां सारभूतः सकलपुरुषार्थसाधकमन्त्रमहसां जन्मभूमिः। **परापरामिति।** स्थितिरूपामित्यर्थः। अथवा पराणामपराणां कुलानामकुलानां विश्रामभूमिः। परमानन्दलक्षणशिवस्वभावामित्यर्थः। अन्यच्च, अनेन मूलविद्याबीजत्रयशिरोगतस्य मायाक्षरस्य महिमानमुपवर्णितवानित्यर्थः।।८।।

❋ सेतुबन्धम् ❋

ईकाररूपैरक्षरैः प्राधान्येनोद्धारो यस्यास्तां कादिविद्यारूपां महादेवीं महाविद्यां प्रणमामि। तथा च बह्वृचैराम्नायते—

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दशगर्भ चरसे धापयन्ते।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान्।। इति।

अत्र हि कादिविद्याया ईकारचतुष्टयवत्त्वविशेषणद्वारोद्धारः कृतः। अथवा, ईकाराक्षरमुत्कर्षेण धरतीत्यर्थे कर्मण्यण्। उदुपसृष्टाद्धारयतेः पचाद्यच्युद्धारा, ईकाराक्षरस्योद्धरेति वा। अत्रेकारवत्त्वस्य स्तुतिप्रयोजकगुणत्वेन कीर्तनात् तृतीयश्लोकोक्तो महिमा स्मारितः। वेदेऽपि तत्प्राधान्येनोद्धारस्तादृशमहिमातिशयद्योतनाभिप्रायगर्भ इति ध्वनितम्। अबिन्दुकस्य तस्य कीर्तनात्तु कादिविद्यैवात्र तन्त्रे विषय इत्यपि सूचितम्। तस्या एव त्रिशतीघटकत्वेनात्युत्तमत्वात्। सुन्दरीतापिन्यां प्रथमोपनिषदि कादिविद्याकूटानामेव प्रत्येकं गायत्रीसमानार्थकत्वं प्रतिपाद्य तत्प्रकृतितयैवेतरासां विद्यानामुद्धाराच्च। तथा च ब्रह्माण्डपुराणे—'श्रीविद्येव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा' इति। तदेतदाह—**सारात्सारां परात्परामिति।** मथितो गुणपुञ्जः सारस्तद्वानपि सारः। अर्शआदित्वादच्। सारवन्मन्त्रानपेक्षाधिकसारवतीम्। उत्कृष्टाद्धादिविद्यामन्त्रादप्युत्कृष्टां चेत्यर्थः। पूर्वोक्तभूमिकाभेदाः पूर्वेऽपि सारा उत्कृष्टाश्च तेभ्योऽप्याधिक्योक्त्या तादृश एवाधिकारीत्यपि ध्वनितम्। एवं प्रथमश्लोके सूचितं विषयसामान्यमिह विशेषपरत्वेनोपसंहृतम्। एतेन हादिविद्यायामेवास्मिंस्तन्त्रे विषयतां वर्णयन्तो निरस्ताः। वक्ष्यमाणमन्त्रोद्धारतदर्थवर्णनपराणां श्लोकानां कादिविद्यानुगुण्य एव स्वारस्याच्च। षष्ठश्लोके तैरेव विद्यान्तर्गतवर्णस्यैषा स्तुतिरित्युक्तेश्च। त्रिकोणा-

क्षरस्य हादिविद्यायामभावेनैतदविषयीभूतविद्यान्तर्गतवर्णस्तुतेरनुपयोगात्। ईकाराक्षर उद्धारो यस्या हृल्लेखायास्तामिति भुवनेश्वरीपरत्वेन व्याख्यानमपि नातीव स्वरसम्। एतत्तन्त्रप्रयोजनमाह—**परमेति।** परम आनन्दो मोक्ष:। 'एतस्यैवाऽऽनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुते:। तं रूपयति प्रयच्छतीत्यर्थ:। अत एवाऽऽहु: काश्मीरा:—ईकारस्य बिन्दुविसर्गात्मन: शिवशक्त्यो: सामरस्यरूपस्य स्वात्मत्वेन भावनायां परमानन्दानुभव इति।।८।।

अद्यापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवता:।
केयं कस्मात् क्व केनेति सरूपारूपभावनाम्।।९।।

आज तक जिनकी स्वरूपभावना तथा अरूपभावना देवतागण भी स्वल्पमात्र नहीं जान पाये कि ये कौन हैं, कहाँ से उत्पन्न हैं, कहाँ रहती हैं, किसके साथ रहती हैं?।।९।।

अद्यापि—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—अनादि काल से लेकर आज तक। **अस्या**—विद्यानन्द के मत से इसका तात्पर्य है—स्थितिकाल तथा दर्शनयोग्य दशा। वे व्याख्या करते हुये कहते हैं कि जब नामरूपात्मक प्रपंच के संकोच के कारण मनवाणी से अतीत—तुर्यातीत शम्भु समरसावस्था में प्रवेश करते हैं, तब भी वे इनको नहीं जानते। तब अन्य की तो बात ही क्या है? **देवता**—शिवानन्द इन्द्रियसमूह को 'देवता' कहते हैं। इनको द्योतनात्मकता के कारण देवता कहा जाता है। भास्करराय भी इन्द्रियों को देवता मानते हैं। विद्यानन्द के मत से ब्रह्मा उपेन्द्र आदि देवता हैं। **केयं**—शिवानन्द का अर्थ है—इनकी सत्ता किस प्रकार की है। विद्यानन्द के अनुसार 'इनका नाम क्या है?' भास्करराय के अनुसार इनका क्या स्वरूप है?' **कस्मात्**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि 'इनका उपादान क्या है?' विद्यानन्द के अनुसार 'किस कारण से?, भास्करराय के मत से इसका तात्पर्य है—किससे उत्पन्न हैं?' **क्व**—शिवानन्द के अनुसार 'इसका अधिकरण क्या?' विद्यानन्द के मत से इनका देश कहाँ है?' भास्करराय के अनुसार 'ये कहाँ अवस्थान करती हैं? **केन**—शिवानन्द ने इसका अर्थ बताया है—'इसका सहकारण क्या है?' विद्यानन्द का मत है 'हेतु क्या है?'। भास्करराय ने इस पद का अर्थ किया है—किसके साथ। विद्यानन्द ने इस केन-कस्मात्-क्व-केन प्रश्न में उत्तर में कहा है कि जब ये प्रकृष्ट ज्ञान वाले देवगण के समक्ष भी दुर्ज्ञेया हैं, तब औरों की तो बात ही क्या है? **सरूपारूपभावनम्**—भास्करराय कहते हैं कि देवी की भावना दो प्रकार की है—सरूप, अरूप। सरूपभावना है—स्थूलरूपानुसन्धात्मिका एवं अरूप भावना है—पररूपानुसन्धानात्मिका। व्याख्याकार शिवानन्द इसका तात्पर्य बतलाते हुये कहते हैं कि सरूपभावना है—इन्द्रियों से गोचर होने वाली स्थिति एवं अरूप भावना वह है, जिसे इन्द्रियों के माध्यम से नहीं किया जा सकता।।९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अद्यापीति। यस्या: पूर्णाहन्ताया: संविदात्मन: सम्बन्धि सत्तोपादानाधिकरणसहकार्यादि, मनाग् ईषत्, द्योतनात्मकत्वाद् देवता: करणान्युच्यन्ते। अनादौ संसारे चित्प्रकाशात्मनो महास्वामिन: सर्वदा परिकरतया वर्तमाना अपीत्यद्यापीत्यर्थ:। यच्छ्रुति:—'सहैव सन्तं न विजानन्ति देवा:' (तै० आ० ३.११.५) इति। कथं न विजानन्तीत्यमुमर्थं प्रकाशयति—**केयम्।** अस्या: का सत्ता। कस्मात् किमुपादाना। क्व किमधिकरणा। केन सहकारिकारणेन उदेतीयम्। **सरूपारूपभावनाम्।** सरूपभावनामरूपभावनां च इन्द्रियगोचरामनिन्द्रियगोचरामुभयीमपि स्थितिं न जानन्तीत्यर्थ:, यादृक् 'उत त्व: पश्यन्' (ऋ० १०.७१.४) इत्यादि।

अत्र श्लोकेऽस्या भूयसी व्याख्या समुचिता। ग्रन्थविस्तरभीत्या प्रस्तुतपदार्थव्युत्पत्त्यनुपयोगान्महारहस्यप्रकटनभीत्या चोपरम्यते। महामाहेश्वराणामन्तर्मुखानां महायोगिनामियं द्वादशश्लोकी महानिधानमित्यवबोद्धव्यम्। अत्र व्याख्याने बहुश्रुतिसंवाद: प्रदर्श्यते कर्तु: सम्मतम् (त:)। तद्वक्ष्यति च 'सर्ववेदमयम्' (१.४९) इति। आगमश्च द्विविध:—त्रैवर्णिकविषय:, सर्ववर्णविषयश्चेति। अत्र कर्त्रैक्ये श्रुतिसंवाद:। वेदागमरहस्यागमयो: कर्त्रैक्यं श्रीरहस्यगुरुभि: प्रकाशितम्—

> वेदागमविरुद्धाय वेदागमविधायिने।
> वेदागमसतत्त्वाय गुह्याय स्वामिने नम:।। (शि० स्तो० २.७) इति,
> श्रीमद्वाजसनीये श्रीवीरे श्रीब्रह्मयामले। (तन्त्रा० ४.५४) इति,
> ऐतरेयाख्यवेदान्ते परमेशेन विस्तरात्।।९।। (तन्त्रा० ३.२२६) इति च।

* अर्थरत्नावली *

अद्यापीत्यादि भावनामित्यन्तेन नवमसूत्रेण कामकलाविनियोगं दर्शयति—**अद्यापीत्यादि।** देवता यस्या: स्वरूपारूपभावनां न जानन्तीत्यर्थ:। अद्यापि स्थितिकालेऽपि दर्शनयोग्यदशायामपि न जानन्ति। यदा तु नामरूपात्मकप्रपञ्चसङ्कोचवशान्मनोवागतीततुर्यातीतशम्भुना समरसदशामाढौकते, तदैनां न जानन्तीति किमु वक्तव्यमित्यर्थ:। मनागपि स्वल्पमपि। नामापीति मथितार्थ:। देवता ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतय:। केयमिति नाम, कस्मादिति कारणात्, क्व इति देशे, केन हेतुना इत्युक्तप्रकारचतुष्टयेऽप्यनभिज्ञा देवा इत्यर्थ:। प्रकृष्टज्ञानसम्पन्नैर्देवैरपि यदेयं दुर्विज्ञेया, तत्किमुताल्पज्ञैर्नरै:। **स्वरूपारूपभावनामिति।** स्वरूपभावना सकलोपास्ति:, अरूपभावना शक्तिविशेषानुसन्धानम्। उक्तं च श्रीमतोत्तरे—

> पिण्डं कुण्डलिनी शक्ति: पदं हंस: प्रकीर्तित:।
> रूपं बिन्दु: समाख्यातो रूपातीतं तु निष्कलम्।।

अन्यच्च, समनन्तरसूत्रोदितचतुर्थस्वरेण कामकलाख्येन परिकल्पितसकलनिष्कलशरीरामेनां न जानन्ति देवा इत्यर्थ:।।९।।

* सेतुबन्धः *

एवं मन्त्ररूपं निष्कृष्य देवतारूपं विषयं निष्कृष्याऽऽह—**आद्यापीति।** देवता अपि यस्यास्त्रिपुरसुन्दर्याः सरूपारूपभावनां मनागीषदपि अद्यापि अनादिकालमारभ्याद्यावध्यपि न जानन्ति। मनुष्याः सामस्त्येनाल्पकालेन न जानन्तीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः। देवतापदमिन्द्रियपरमिति तु प्राञ्चः। देव्या भावना द्विविधा—सरूपाऽरूपा चेति। स्थूलरूपानुसन्धानात्मिका प्रथमा। पररूपानुसन्धानात्मिका चरमा। या तु सूक्ष्मरूपानुसन्धानात्मिका मध्यमा विधा सा पार्थक्येन पूर्वश्लोक एवोक्तेति नेहोट्टङ्किता। ततश्च चतुःशतीद्वये भावनाद्वयं क्रमेण विषय इति ध्वनितम्। तादृशं भावनाद्वयं प्रत्येकं चतुर्विधमित्याह—**केयमित्यादिना।** इयं स्थूला देवी का किं स्वरूपा? इयं कस्मादुत्पन्ना? इयं क्व तिष्ठति? इयं केन सह तिष्ठति? एवं परायामपि चत्वारः प्रकारा योज्याः। केयमिति नाम, कस्मात्कारणात्, (क्व देशे), केन हेतुनेति चत्वार एव प्रकारा इति केचित्। तत्र हेतुकारणयोर्भेदश्चिन्त्यः। अन्ये तु अद्यापि दर्शनयोग्यकालेऽपि न जानन्ति। परशिवसामरस्यकाले तु कथं तां जानीयुरित्यर्थं वर्णयन्ति तदरूपभावनया पुनरुक्तम्। परशिवसमरसताया रूपान्तरेण सार्वकालिकत्वादयुक्तं च॥९॥

वन्दे तामहमक्षय्यामकाराक्षररूपिणीम्।
देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं परां शिवाम्॥१०॥

क्षयरहिता, अकार अक्षररूपिणी, कुलाकला के उल्लोल से प्रोल्लसिता देवी परा शिवा की वन्दना करता हूँ॥१०॥

अक्षय्याम्—क्षयरहिता को। विद्यानन्द का अर्थ है—क्षयरहिता 'क्ष'कार रूपा। भास्कर राय का अर्थ है—क्षय से अशक्ता (जहाँ क्षय नहीं है)। **अकाराक्षररूपिणीम्**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि श्रुति (ऐतरेय, आरण्यक, २.३.६) में है कि अकार ही सर्व वाक् है। भगवद्गीता में श्रीभगवान् की वाणी है— अक्षरसमूह में मैं 'अ'कार हूँ (श्रीमद्भगवद्गीता १०.३३)। इस सम्बन्ध में विद्वानों का कथन है कि 'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः'। अतः 'इन अकाररूपिणी' को। भास्करराय कहते हैं—सर्ववर्ण में अकाररूप अर्थात् अविनाशीस्वरूप। **कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं**—शिवानन्द इस पद का अर्थ करते हैं—कुल अर्थात् ३६ तत्त्वात्मक जगत्। इसका कलन जो करे अर्थात् जो उसका बहिःक्षेपण करे। परिणाम द्वारा अवधारित करे। वही है कला अर्थात् मायाशक्ति। कुल तथा कला का उल्लोल अर्थात् महोन्मेष। उस प्रकार महाशक्ति पुञ्जात्मक जगत् शरीर-प्रोल्लसिता को। इसका दार्शनिक अर्थ है कि संवित् ही भगवती हैं। वे स्वान्तस्थित जगत् का बहिः प्रकाशन करते हैं। विद्यानन्द उक्त पद की व्याख्या में कहते हैं कि कुल का अर्थ है—ब्रह्माणी से महालक्ष्मी-पर्यन्त मातृकाष्टवर्ग क्रम अथवा अष्टधा व्यवस्थित। उनकी कला है कुलकला, अष्टकला। प्रत्येक कला की अष्टव्याप्ति

होने के कारण कलायें हैं—८×८ = ६४। ये सभी मूल मन्त्रवाच्य हैं। मूल देवता की स्वरूपभूता हैं। इन कलाओं के उल्लोल से तात्पर्य है—इनका तरंगातिरेक। (शक्तितरंगें)। इससे 'प्रोल्लसन्ती' अर्थात् आनन्दिता। भास्करराय इस पद के अर्थ में कहते हैं कि कुल = सुषुम्नामार्ग। कल = नादार्णव। उसका उल्लोल अर्थात् महातरंगसमूह। दोनों में ही उल्लसन्तीं अर्थात् उल्लासिनी। इसी का अन्य अर्थ करते हुये भास्करराय कहते हैं कि काश्मीरीय त्रिक् सम्प्रदायानुसार कुल = शरीर। कला = देहांश। उल्लोल = ऊर्ध्व-अध:। उल्लसन्तीं = वैखरीरूपेण उल्लासिनी। **परां**—शिवानन्द के मतानुसार पूर्णा। विद्यानन्द इसका अर्थ बतलाते हैं—सर्वोत्कृष्टा। **शिवाम्**—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—चिद्भैरवरूपिणीम्। विद्यानन्द कहते हैं—आनन्दलक्षणत्व हेतु शिवा। 'परां शिवाम्' की व्याख्या में विद्यानन्द कहते हैं कि जो सांसारिक समस्त भावों का उपसंहार करके सच्चिदानन्दलक्षण स्वमहिमा में आनन्दिता हैं। विद्यानन्द की व्याख्यानुसार इस श्लोक के प्रथमार्ध द्वारा दीक्षाक्रम सूचित है। 'अक्षय्या' पद द्वारा अकारादि-क्षकारान्त वर्ण सूचित होता है। यदि कल्याणगुरु इन अक्षरों को व्यष्टिरूपेण तथा समष्टिरूपेण शिष्यों के साथ ध्यान करें, तब यह पाशमोचक हो जाता है।।१०।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

वन्दे तामिति। अहं 'न्यक्कृतदेहाहन्तारूप: सर्वप्राणिस्वसंवेदनस्वभाव: पूर्णाहंपरामर्शविच्छेदशून्योऽन्तरभ्युपगमकल्पोऽनन्यमुखप्रेक्षितत्वलक्षणस्वातन्त्र्यविश्रान्तिरूप: प्रत्यवमर्शोऽहम्' इत्याचार्याभिनवगुप्तपादा:। **अक्षय्याम्।** प्रतिप्राणि प्रत्युच्चारणं वर्षेषूत्पन्नध्वंसिषु समस्तवाचकाभेदमयस्वरसोदितपरनादात्मना सदा भासमानाम्। तदुक्तं तन्त्रालोके—

योऽसौ नादात्मक: शब्द: सर्वप्राणिष्ववस्थित:।
अधऊर्ध्वविभागेन निष्क्रियेणावतिष्ठते।। (३.११३-११४)
एको नादात्मको वर्ण: सर्ववर्णाविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इहोदित:।। इति। (६.२१७)

अकाराक्षररूपिणीम्। क्रोडीकृतानन्दाद्यकृत्रिमाहंपरामर्शप्रथमकलानुत्तराकुलाक्षररूपिणीम्। श्रुतिश्च—'अकारो वै सर्वा वाक्' (ऐ० आ० २.३.६) इति। गीता च—'अक्षराणामकारोऽस्मि' (भ० गी० १०.३३) इति। 'अकार: सर्ववर्णाग्र्य: प्रकाश: परम: शिव:' (सं० प०) इत्यभियुक्तवचश्च। **कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीम्।** कुलं षट्त्रिंशत्तत्त्वमयं जगत्, कलयति बहि: क्षिपति पारमित्येन परिच्छिनत्तीति कला मायाशक्ति:, तयोरुल्लोल: प्राग्वत्, तद्रूपेण महाशक्तिपुञ्जात्मना जगद्वपुषा प्रोल्लसन्तीमित्यर्थ:। संविदेव भगवती स्वान्त:स्थितं जगद् बहि: प्रकाशयतीति दर्शनरहस्यम्। यथाहू रहस्यगुरव:—

चिदात्मैव हि देवोऽन्त:स्थितमिच्छावशाद्बहि:।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।। इति। (ई० प्र० १.५.७)

परां पूर्णाम्। शिवां चिद्भैरवरूपिणीं ताम्।।१०।।

* अर्थरत्नावली *

वन्दे तामित्यादि परां शिवामित्यन्तदशमसूत्रेण प्रथमार्धेन दीक्षाक्रमं दर्शयति। अक्षय्येत्यत्र अकारादिक्षकारान्ता वर्णाः संगृह्यन्ते। ते च समष्टिव्यष्टिरूपेण कल्याणगुरुणा शिष्यदेहाभिध्याता पाशमोचका भवन्तीत्यतः क्षकारीभूताः। क्षकारोऽपि संवर्तरूपत्वात् पाशच्छेदकतुरीयरूपत्वाद्दीक्षाङ्गरूपत्वादेकः परिगृहीत इति विलोमात्मना मूलाद्याद्द्वादशान्तमभिधाय (ताः ?ते) सर्वे वर्णाः संहारात्मकतया क्षकारात्मतामुपगच्छन्तीति सर्ववर्णानां क्षकारात्मता दर्शिता। अत्रैषाक्षरयोजना—आदिक्षान्तात्मना गणेशग्रहनक्षत्रेत्यादिसूत्रसूचिता या मातृका तां व्यष्टिसमष्ट्यात्मना स्थितां क्षकाराक्षररूपिणीं वन्दे नमस्करोमीत्यर्थः। देवीमित्युत्तरार्धेन कुलचक्ररूपत्वं मूलदेव्याः प्रतिपादयति। **वन्दे तामित्यादि।** वन्दे प्रह्वीभावं करोमि। तां प्रकृताम्। **अक्षय्येति।** क्षयरहितक्षकाराक्षररूपिणीमित्यर्थः। अन्यच्च, मूलविद्याद्यबीजगर्भाक्षरस्य महिमानं वर्णयति—**देवीमित्यादि।** कुलं ब्रह्माण्यादिमहालक्ष्म्यन्तं मातृकाष्टवर्गक्रमेणाष्टधा व्यवस्थितम्, तस्य कलाः कुलकलाः, ताश्च प्रत्येकमष्टकव्याप्त्या चतुष्षष्टिसंख्याकाः, ताश्च मूलमन्त्रवाच्यमूलदेवतायाः स्वरूपरूपाः। तासां कलानामुल्लोलस्तरङ्गातिरेकः। स च मेढ्राद्याद्द्वादशान्तनवाधारनवलक्ष्येषु समष्टिव्यष्ट्यात्मकेषु सुनिपुणमतिभिश्चिरं लक्ष्यते। तत्र प्रोल्लसन्ती सा भगवती स्वविमर्शमयीभिः कलाभिः सहजानन्दशम्भुना समरसीभूता सती तत्संयोगजानन्दपानक्षीबा। ताभिः साकमानन्दितेत्यर्थः। **परां शिवामिति।** सांसारिकान् सर्वान् भावानुपसंहृत्य सच्चिदानन्दलक्षणे स्वेमहिम्नि महीयते। अतः परा शिवेत्युच्यते। परा सर्वोत्कृष्टत्वात्। शिवा आनन्दलक्षणत्वात्।।१०।।

* सेतुबन्धः *

'अकारो वै सर्वा वाग्' इति श्रुत्या, 'अक्षराणामकारोऽस्मि' इत्यादि स्मृत्या च सर्ववर्णानामकार एवाक्षरमविनाशिस्वरूपम्। तदस्या एवं रूपम्। विमर्शस्य प्रकाशाभेदात्। अत एवाक्षय्यां क्षेतुमशक्याम्। कुलं सुषुम्णामार्गः। कलस्य नादार्णवस्योल्लोला महातरङ्गाः। तत्र तेषु चोल्लसन्ती। कुलानि षट्त्रिंशत्तत्त्वानि। कलाश्चतुःषष्टिरिति वा। कुलं शरीरं पृथिव्यां लीयमानत्वात्। कलैकदेशः। उल्लोलमूर्ध्वोर्ध्वम्। प्रोल्लसन्ती वैखर्यात्मनेत्यर्थ इति तु काश्मीराः। ईदृशीं तामहं वन्दे इत्यर्थः। अक्षय्यक्षकाराक्षररूपिणीमिति क्वचित्पाठः। तत्पक्षेऽक्षय्यशब्दोऽखण्डपरः क्षकारविशेषणं तस्य ककारषकारयोगात्मकत्वस्य तन्त्रान्तरसिद्धस्या(स्य) निरासायेति व्याख्येयम्।।१०।।

वर्गानुक्रमयोगेण यस्यां मात्रष्टकं स्थितम्।
वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम्।।११।।

मातृका के अष्टवर्ग में यथाक्रमेण मातृका अवस्थिता है। उक्त अष्टवर्गोत्थिता अणिमादि अष्टसिद्धि की अधीश्वरी देवी की वन्दना करता हूँ।।११।।

वर्ग—अ क च ट त प य श रूप अष्टवर्ग। **अनुक्रमयोगेन**—यथाक्रम से। **यस्यां**—शिवानन्द का अर्थ है—पूर्णाहन्ता में, विद्यानन्द का अर्थ है—मातृका में। **मात्रष्टक**—अष्टमातृकागण। ब्राह्मी-माहेश्वरी-कौमारी-वैष्णवी-वाराही-ऐन्द्री, चामुण्डा-महालक्ष्मी। विद्यानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि अष्टमातृका अर्थात् वशिनी-कामेशी-मोदिनी (मोहिनी)विमला-अरुणा-जयिनी-सर्वेश्वरी (सर्वेशी)कौलिनी। **अष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यष्टकेश्वरीम्**—विद्यानन्द की व्याख्या है कि अष्टवर्ग से उत्थिता जो मातृका है, उससे उत्थिता अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति तथा इच्छा (यह वामकेश्वर तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णव की तालिका है)—इन आठ सिद्धियों की जो ईश्वरी (स्वामिनी) हैं। भास्करराय का कथन है कि किसी के मत से सिद्धाष्टक शब्द द्वारा वाग्देवताष्टक का तात्पर्य है। इस सम्बन्ध में इन्होंने त्रिक सम्प्रदाय के मत का उल्लेख किया है; जैसे—मातृकावर्ण के अष्टवर्ग की अधिष्ठिता अष्टमातृका। इनमें प्रत्येक से अष्टसिद्धि उद्भूत होती है। इस प्रकार से ६४ सिद्धियाँ हो जाती हैं। विद्यानन्द इस श्लोक की व्याख्या में कहते हैं कि जो वर्गाष्टक की अधिदेवता वशिन्यादि के साथ परमेश्वरी की आराधना करते हैं, वे अणिमादि सिद्धि के अधीश्वर हो जाते हैं।।११।।

* ऋजुविमर्शिनी *

वर्गेति। यस्यां पूर्णाहन्तायाम्। अनुत्तराद्यष्टवर्गानुक्रमयोगेन। स च वर्गक्रमः अ क च ट त प य शात्मकः। मात्रष्टकं सर्वमन्त्रसारभूतसामान्योक्तं ब्राह्म्याद्यष्टकं स्थितम्। अधिष्ठातृतया वर्गाधिष्ठात्र्यो ब्राह्म्याद्याः प्राणिनः संसारयन्ति। तदुक्तं श्रीतिमिरोद्घाटे—

करन्ध्रचितिमध्यस्था ब्रह्मपाशावलम्बिकाः।
पीठेश्वर्यो महाघोरा मोहयन्ति मुहुर्मुहुः।। इति।

अष्टवर्गेति। अष्टवर्गमहाधिष्ठातृत्वेन स्थितां महाविभूत्यणिमादिसिद्ध्यष्टकस्वामिनीमित्यर्थः। अत्र—'विद्याशरीरसत्ता मन्त्ररहस्यम्' (२.३) इति श्रीशिवसूत्रोक्तदृशा सर्वमन्त्रहृदयभूतं महारहस्यात्म विश्वाभेदमयाहंविमर्शरूपं वीर्यं सूचितम्। तदत्र स्पष्टं न भवतीति सूत्रार्थस्तदुक्तवृत्त्यलिख्यते—'विद्या पराद्वयप्रथा शरीरं स्वरूपं यस्य स विद्याशरीरो भगवान् शब्दराशिस्तस्य या सत्ता अशेषविश्वाभेदमयपूर्णाहंविमर्शात्मा स्फुरत्ता, सा मन्त्राणां रहस्यम् उपनिषत्। तदुक्तं श्रीतन्त्रसद्भावे—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।। इति।

तत्रैव चायमर्थोऽतिरहस्योऽपि वितत्य स्फुटीकृतः। तथा च—

न जानन्ति गुरुं देवं शास्त्रोक्तान् समयांस्तथा।
दम्भकौटिल्यनिरता लौल्यान्धाः क्रिययोज्झिताः।।

अस्मात्तु कारणाद् देवि मया वीर्यं प्रगोपितम्।
तेन गुप्तेन ते गुप्ताः शेषा वर्णास्तु केवलाः।।

इति पीठिकाबन्धं कृत्वा,

या सा तु मातृका देवी परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं विश्वं सब्रह्मभुवनान्तकम्।।
तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापृतश्च सुरार्चिते।
अवर्णस्थो यथा वर्णः स्थितः सर्वगतः प्रिये।।
तथाऽहं कथयिष्यामि निर्णयार्थं स्फुटं तव।

इत्युपक्रम्य,

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराचारेति कीर्तिता।
हृद्विन्दुं वेष्टयित्वाऽन्तः सुषुप्तभुजगाकृतिः।।
तत्र सुप्ता महाभागे न किञ्चिन्मन्यते उमे।
चन्द्रार्कानलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।।
क्षिप्त्वोदरे तु सा देवी विषमूढेव सङ्गता।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणा।।
मथिता चोदरस्थेन बिन्दुना वरवर्णिनि।
तावद्वै भ्रमवेगेन मथनं शक्तिविग्रहे।।
भेदात्तु प्रथमोत्पन्ना बिन्दवस्तेऽतिवर्चसः।
समुत्थिता यदा तेन कला सूक्ष्मा तु कुण्डली।।
चतुष्कलात्मको बिन्दुः शक्तेरुदरगः प्रभुः।
मथ्यमन्थनयोगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये।।
ज्येष्ठाशक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यगा।
बिन्दुना क्षोभमायाता रेखैवामृतकुण्डली।।
रेखिणी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दू यदन्तगौ।
त्रिपथा सा समाख्याता रौद्रीनाम्ना तु गीयते।।
रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात्।
शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्धचन्द्रिका।।
एकैवेत्थं परा शक्तिस्त्रिधा सा तु प्रजायते।
आभ्यो युक्तवियुक्ताभ्यः सन्तानो नववर्गकः।।
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता।
पञ्चमन्त्रगता देवि सद्यआदिरनुक्रमात्।।
तेन पञ्चविधा प्रोक्ता ज्ञातव्या सुरनायिके।

स्वरद्वादशगा देवि द्वादशस्था उदाहृता।।
अकारादिक्षकारान्ता स्थिता पञ्चाशता भिदा।
हृत्स्थैककोणता प्रोक्ता कण्ठे प्रोक्ता द्विकोणता।
त्रिकोणता तु ज्ञातव्या जिह्वामूले समाश्रिता।
जिह्वाग्रे वर्णनिष्पत्तिर्भवतीति न संशयः।।
एवं शब्दस्य निष्पत्तिः शब्दव्याप्तं चराचरम्।

इत्यादिना ग्रन्थेन परभैरवीयपरावागात्मिका मातृका, अत एव ज्येष्ठारौद्रयम्बिकाख्यशक्तिप्रसरसम्भेदवैचित्र्येण सर्ववर्णोदयस्योक्तत्वात् वर्णसंघट्टशरीराणां मन्त्राणां सैव भगवती व्याख्यातरूपा विद्याशरीरसत्ता मन्त्ररहस्यम्' (शि० वि०) इति।।११।।

*** अर्थरत्नावली ***

वर्गानुक्रमयोगेनेत्यादि ईश्वरीमित्यन्तेन एकादशसूत्रेण मूलदेवीक्रमरूपे नवचक्रमध्येऽन्तश्चक्रस्यैव प्राधान्यं दर्शयति। यथा—वर्गानुक्रमयोगेनेत्यादि। वर्गा आदिशान्ता अष्टौ। अनुक्रमयोगेन यथाक्रमेण। यस्यां मातृकायां मात्रष्टकं स्थितम्, तद्वशिन्याद्यष्टकमित्यर्थः। तां मातृकाविग्रहां महात्रिपुरसुन्दरीं नमामीत्यर्थः। अष्टवर्गोत्था या मातृकाः, तदुत्था अणिमाद्या अष्टौ सिद्धयः। तासां सिद्धीनामीश्वरीं स्वामिनीमित्यर्थः। यो वर्गाष्टकाधिदेवतावशिन्यादिसमेतां परमेश्वरीमाराधयति, सोऽणिमादिसिद्धीनामीशो भवतीति यावत्। अन्यच्च, नवयोनिचक्रपरिवारमध्ये वशिन्याद्यष्टकमेव देवीपुर्यष्टकरूपत्वात् प्रधानमिति सूचयत्येतत्सूत्रम्। कोऽभिप्रायः? वशिन्यादिसहितमन्तश्चक्रमेवात्र प्रधानत्वेन विवक्षितमिति यावत्।।११।।

*** सेतुबन्धः ***

वर्गाणां पूर्वोक्तानामनुक्रमयोगेण क्रमानुसारिसम्बन्धेन यस्यामेकवचनादेकस्यामपि मातृकायामष्टौ मातरो ब्राह्म्यादयः स्थितास्तादृशाष्टवर्गजन्याणिमादिमहासिद्ध्यष्टकस्वामिनीं तां देवीं वन्दे। महासिद्ध्यष्टकशब्देन वाग्देवताष्टकं केचिद् आहुः—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका।।

इति वचनाद्वर्णाभेदः। काश्मीरास्तु मातृकाया अष्टौ वर्गास्तदधिष्ठा(त्र्यो)ऽष्टमातरस्तासां प्रत्येकोत्थाणिमाद्यष्टसिद्धयश्च सम्भूय चतुःषष्टिस्तासां व्यष्टिशक्तीनां कारणभूता समष्टिशक्तिः स्वात्मत्वेन सिद्धेति व्याचक्षते। अन्योऽप्यस्य प्रपञ्चः प्राचां टीकासु द्रष्टव्यः।।११।।

कामपूर्णजकाराढ्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम् ।
चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम्।।१२।।

कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर तथा उड्डियानरूपी चतुःपीठनिवासिनी चतुराज्ञा कोशभूता श्रीत्रिपुरा को मैं प्रणाम करता हूँ।।१२।।

शिवानन्द के मत से मरुत्, तेज, जल, पृथ्वीमय ये चतुष्पीठ समस्त जगत् के आधारभूत हैं। वियत् (व्योम) सर्वव्यापी है, इसलिये उसका अलग से पीठ नहीं है। ये पीठ महासंवित् देव की उपलब्धि के स्थान हैं। भास्करराय उक्त चतुष्पीठों की व्याख्या में कहते हैं कि सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाली हैं—वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री। इनकी समष्टिरूपिणी शक्ति है—अम्बिका। **अन्तर्निवासिनीम्**—उक्त पीठचतुष्ठय के अन्तः निवास करने वाली अर्थात् उन-उन पीठों की अधीश्वरी। **चतुराज्ञाकोषभूताम्**—शिवानन्द के अनुसार चतुष्पीठाधिष्ठातृ महासंवित् का अवलम्बन में प्रवृत्त जो चतुःस्रोत है, उसकी भूता अर्थात् महाधिष्ठातृ निधि को। विद्यानन्द इस पद का अर्थ करते हैं कि यहाँ आज्ञा शब्द से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर—यह चार आम्नाय सूचित होता है। उसकी जो सारभूता है, उनसे तात्पर्य है। भास्करराय के मतानुसार 'चतुराज्ञा' अर्थात् चारो वेद। उनकी जो आधारभूता हैं, वे। इसके द्वारा चारो वेद के सारभूत अखण्ड ब्रह्म को समझाया गया है। अर्थात् देवी हैं अखण्ड-ब्रह्मरूपिणी, अथवा चारो आम्नाय की सारभूता। यहाँ चतुराम्नाय उपलक्षण से ऊर्ध्वाम्नाय का भी अर्थ ध्वनित होता है। जैसे सब वेदों का सार है—अद्वैत ब्रह्म, तदनुसार तदनुयायी चारो आम्नाय का प्रधान विषय है—अखण्डानन्द ब्रह्म। यदि पञ्चकोष की दृष्टि से देखें तब यहाँ अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोष के भी अतीत ब्रह्म का निर्देश किया गया है। **श्रीत्रिपुराम्**—शिवानन्द के मत से श्री का अर्थ है—मोक्षलक्ष्मी। इसके द्वारा त्रिपुरा हो जाती हैं—श्रीत्रिपुरा। त्रिपुरा की निरुक्ति करते हुये भास्करराय ने प्रपंचसार तन्त्र का यह श्लोक उद्धृत् किया है—

त्रिमूर्त्तिसर्गाच्च पुरा भवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायस्त्रिपुरेति नाम।। (९.२)

त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) की सृष्टि के पूर्व भी यह थीं, पुरा थीं, त्रयीमयत्व हेतु (सत्-चित्-आनन्दमयत्व) (सत्त्व-रजः-तमोमयत्व) होने से, त्रिलोक के लय तथा पूरकत्व की हेतु होने से इनको साधारणतः (देवी अम्बिका नाम के साथ) त्रिपुरा कहते हैं। शिवानन्द इस सम्बन्ध में (प्रपंचसार विवरणटीका, प्रयोगक्रमदीपिका के ५७१ पृष्ठ से उद्धृत) एक अन्य निरुक्ति बतलाते हैं कि शिवतत्त्व, शक्तितत्त्व तथा आत्मतत्त्व नामक तत्त्वत्रय का उत्पादन करने से इनको त्रिपुरा कहते हैं। **अहम्**—भास्करराय के मत से यहाँ अहम् शब्द अहंकार का वाचक है। अहं त्रिविध है—वैकारिक (सात्त्विक), तैसज (राजसिक) तथा तामस। अहंकार को द्विविध भी कहते हैं—अपर अहंकार तथा पर अहंकार। जीवदेहादि वाले अहं को अपर कहा गया है। जो परब्रह्म में षट्त्रिंश (३६) तत्त्वात्मक जगत् की सृष्टि के अनुकूल ज्ञान-इच्छा-क्रियारूप सर्वविश्वविषयक अभिमान है, वह है पर अहंकार। भास्करराय और भी कहते हैं कि ज्ञानरूप ब्रह्म के इस प्रकार के

पराहन्ताविषयकत्व मात्र द्वारा धर्माधर्मिभाव निर्दिष्ट होता है। यहाँ तादृश धर्म के लिये त्रिपुरसुन्दरी पद सूचित होता है और धर्म से अभिन्न धर्मी के लिये कामेश्वर पद सूचित होता है। त्रिपुरा पद के साथ-साथ अहं पद के निर्देशार्थ यह व्यञ्जना है। अहम् पद की व्याख्या में शिवानन्द का कथन है कि अहं पद द्वारा आलोच्य इस श्लोक में विचार-प्रवृत्ति निष्पादित अकृत्रिम अहंतारूप की द्योतना हो रही है। यह अहंतारूपत्व परमेश्वर का स्वरूप है। इसे ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ग्रन्थ (१.५.१३-१४) में प्रतिपन्न किया गया है। अकृत्रिम अहम् अर्थात् पर अहं अथवा पूर्णाऽहं। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में (Kashmir Series of Text & Studies, प्रथम भाग, पृष्ठ २३२-३३) कहा गया है कि शिव का स्वरूप है उनकी विमर्श शक्ति और यह अहं ही उनकी विमर्श शक्ति है। वह आत्मवत् अहंरूपेण अखण्डभावेन प्रकाशित होती रहती है। तन्त्रालोक में (Kashmir Series of Text & Studies No XXIII, 1918, पृष्ठ १६५) कहते हैं कि स्वप्रकाशात्मिका नित्या संवित् अहंरूपा है।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में प्रकाशक (शिव) को अहं कहा गया है (Kashmir Series of Text & Studies No XXXIII, 1922, द्वितीय भाग, पृष्ठ १९८)। यह अहं ही पर अहं है। शिव तथा शक्ति अभिन्न हैं; अतएव पर-अहं को शिव-शक्ति भी कह सकते हैं (तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, १९६३ई. पृ. ७७, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज)। यहाँ पर ज्ञातव्य है कि विद्यानन्द ने प्रथमतः उक्त १२ श्लोकों की सकील सम्प्रदायानुसार (कादि विद्या सम्प्रदायानुसार) व्याख्या करके तदनन्तर निष्कील सम्प्रदाय के अनुसार (हादि विद्या सम्प्रदायानुसार) व्याख्या किया। भास्करराय कहते हैं कि इन १२ श्लोकों में मंगलाचरण किया गया है। साथ ही प्रसंग क्रमानुसार आलोच्य तन्त्र के विषय तथा प्रयोजन का भी वर्णन है। इसे जानने के लिये गुरुसान्निध्य चाहिये। यही दिखलाने के लिये परमशिव स्वयं अद्वय होकर भी प्रकाश तथा विमर्शरूप से अपनी दो मूर्त्तियों की रचना करके विमर्शरूपेण (देवी) प्रश्न करते हैं और प्रकाशरूप से (ईश्वररूप से) उसका उत्तर देते हुये तन्त्रों की अवतारणा करते हैं। स्वच्छन्दतन्त्र में कहा भी है—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।।

* ऋजुविमर्शिनी *

इत्थम्—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलमिदं सर्वमन्यथा न प्रसिद्ध्यति।

आदिमान्तिमहीनास्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत्।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं च वेदयेत्।

इति श्रीकण्ठसंहितोक्तस्थित्या महाहन्तां परामृश्य तत्कार्यभूतां महाविभूतिमयीं सर्वविद्याकन्दभूमिं महायोगिहृदयेषु सर्वदा स्फुरन्तीं सदानन्दचिद्रूपिणीं वाक्कामशक्तिबीजत्रयभेदिनीं श्रवणमात्रेण समस्तमङ्गलप्रदां सर्वप्राणिसम्मतां वक्ष्यमाणनित्याषोडशकप्राणभूतां त्रिपुरेतिनामधेयां विशेषविद्यां प्रस्तोतुमारभते—**कामेति**। कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठशब्देन कामरूपपीठं पूर्णगिरिपीठं जालन्धरपीठमोड्याणपीठं चेति महासमयमहारहस्यभूतं गुरुवक्त्रैक्यगम्यं पीठचतुष्टयं लक्ष्यते। तच्च पीठचतुष्टयमनिलानलसलिलपृथ्वीमयं समस्तजगदाधारभूतम्। तत्र वियद् विश्वव्याप्तम्, अत एव न पृथक् पीठसंज्ञितम्। पीठानि महासंविदुपलब्धिस्थानानि। तेषामन्तर्निवासिनीं तत्तत्पीठनायिकां महासंविदं त्रिपुरानामधेयां ताम्। चतुराज्ञाकोशभूताम्। चतुष्पीठाधिष्ठातृमहासंविदवलम्बनेन प्रवृत्तचतुस्स्रोतोरूपा महापदवी चतुराज्ञा, तस्याः कोशभूता महाधिष्ठात्री शेवधिस्ताम्। श्रिया मोक्षलक्ष्म्या युतां त्रिपुराम्। त्रिपुरानिर्वचनेऽभियुक्तोक्तिः—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।। इति
(प्र० सा० ९.२)

शिवशक्त्यात्मसंज्ञेयं तत्त्वत्रितयपूरणात्।
त्रिलोकजननी वाथ तेन सा त्रिपुरा स्मृता।। इति च।

अहमिति द्वादशश्लोकीविमर्शनप्रयोजनमकृत्रिमाहन्तारूपत्वं द्योतयति। इदमेव पारमेश्वरं स्वरूपमितीश्वरप्रत्यभिज्ञायामुपपादितम्—

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता।
स्वातन्त्र्यमेतदौन्मुख्यं तदैश्वर्यं परात्मनः।।
सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया चोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।। इति।
(ई० प्र० १.५.१३-१४)

श्रीषडध्वसारशास्त्रेऽपि—

अनुत्तरविमर्शात्मशिवशक्त्यद्वयात्मनि ।
परामर्शो निर्भरत्वादहमित्युच्यते सदा।।
(तन्त्रा० ३.२०३-२०४)

हृद्यकारो द्वादशान्ते हकारस्तदिदं विदुः।
अहमात्मकमद्वैतं यत्प्रकाशात्मविश्रमम्।। इति।

*** अर्थरत्नावली ***

कामपूर्णेत्यादिना केवलं समस्तविश्वात्मकवर्णविग्रहेत्येतावन्न, किन्तु चतुस्समय-

निधानभूतचतुष्पीठान्तरवासिनीमिति यावत्। चतुराज्ञाकोशभूतामित्यस्यायमभिप्राय:—पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तराख्याश्चतुराज्ञाशब्दसूचिताश्चत्वार: समया:, तेषां कोशभूतां सारभूताम्। चतुस्समयोपलक्षितषडन्वयमहार्णवनिर्मथनवेलायां सकलसारतया दृ(ष्टे?ष्टामि)त्यर्थ:।।१२।।

एवं सकीलसम्प्रदायानुसारेण व्याख्यातानि सूत्राणि। निष्कीलसम्प्रदायानुसारेणान्यथा तानीदानीं व्याख्यायन्ते। प्रारीप्सितस्यास्य शास्त्रस्याविघ्नेन परिसमाप्त्यर्थं विशिष्टेष्टलाभाय च परमकारुणिको भगवान् लोकानुग्रहं चिकीर्षुर्बहुरूपाष्टकं शास्त्रं संक्षिप्य चतुश्शतसंख्यापरिमितैर्ग्रन्थैस्तत्सारमुद्धर्तुकामस्तच्छास्त्रप्रतिपाद्यप्रमेयप्रयोजनसर्वस्वं शास्त्रादौ श्रोतृप्रवृत्त्यर्थतया कतिपयै: सूत्रै: संक्षिप्य दर्शयति। तत्राद्यसूत्रेण वर्णचक्रमन्त्रधामसंवित्स्वरूपं प्रमेयपञ्चकं दर्शयति। तद्यथा—**गणेशग्रहनक्षत्रेत्यादि**। समास: पूर्ववत्। वर्णक्रमदर्शनपक्षे गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीं मातृकां देवीं नौमीति सम्बन्ध:। गणेशशब्देन अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराण्युच्यन्ते। तेषामक्षराणामीशवर्णौ शिवशक्तिस्वरूपावकारहकारावीशशब्देनोच्येते। तावपि रुद्रसंख्यां द्वादशसंख्यां वा नातिवर्तेते। रुद्रसंख्यापक्षे अकारस्य शिवरूपस्य वामाज्येष्ठारौद्र्यम्बिकाख्यकलाचतुष्टयं तत्समष्टिरूपमकार इति पञ्चकम्, शक्तिरूपस्यान्तस्य हकारस्य इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताख्यकलाचतुष्टयं तत्समष्टिरूपेण हकारेण सह पञ्चकमभिमतम्। एवं द्वाभ्यां शिवशक्तिवर्णाभ्यामाद्यन्ताभ्यां दशकं जातम्। तयो: परस्परं बीजाङ्कुरन्यायेन समरसभावादेकमित्येकादशात्मा गणेश:। अथवा आद्यन्तवर्णौ प्रत्येकं व्यष्ट्यात्मना च भूतरूपौ, प्रत्येकं (च) शिवशक्तिरूपाविति द्वादशात्मा गणेश:। तदुक्तं संकेतपद्धत्याम्—

अकार: सर्ववर्णाग्र्य: प्रकाश: परम: शिव:। हकारोऽन्त्य: कलारूपो विमर्शाख्य: प्रकीर्तित:।।

तयोराद्यन्तवर्णयोरकारहकारयो: शिवशक्तिरूपयो: कलावयवित्वं च तत्रैवोक्तम्—

आदावस्य शिरो रौद्री वक्त्रं वामा प्रकीर्तिता। अम्बिका बाहुरित्युक्ता ज्येष्ठा चैव नखाग्रगा।।
इच्छा शिर:प्रदेशस्था क्रिया च तदधोगता। ज्ञाना पादगता ह्यस्य शान्ता हृन्मध्यगा भवेत्।। इति।

एवं गणेशशब्देन चतुष्पदात्मिकाया वर्णाम्बिकाया: पश्यन्तीरूपमव्यक्तध्वनिरूपं परामृतमयमेकादशात्मकमभिधीयते। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

पश्यन्त्यादिक्रमो योऽसौ सूचित: श्रीशिवेन तु। सोऽन्तर्ध्वनिमहानाद: सङ्केतैराद्यसूत्रके।। इति।

ग्रह इति नवसंख्या गृह्यते। तद्यथा—शून्यस्पर्शनादध्वनिबिन्दुशक्तिबीजाक्षरक्रमात्मना विकृतनादाष्टकं तत्समष्टिरूपं नवममित्येवं ग्रहसंख्यारूपं मध्यमावाग्रूपं परामृतमयं व्यक्ताव्यक्तरूपमभिप्रेतम्। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

शून्य: स्पर्शस्तथा नादो ध्वनिर्बिन्दुस्तथैव च। शक्तिबीजाक्षरं चैवेत्यष्टधाऽनाहत: स्मृत:।। इति।

तथा हंसनिर्णयेऽपि—

घोष: कांस्यं तथा घण्टा वीणा वेणुश्च वांशकम्। दुन्दुभि: शङ्खघोषश्च नवमं निर्विशेषकम्।। इति।

एवं गणेशग्रहसंख्यया विंशत्यक्षरं लब्धम्। नक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीमिति नक्षत्रपदेन सप्तविंशतिसंख्या गृह्यते, योगिनीपदेनाष्टसंख्या, राशिपदेन द्वादशसंख्या। एवं क्रमेण सप्तचत्वारिंशत्संख्याकान्यकारादिसकारान्तान्यक्षराणि वैखरीवाग्रूपाणि कण्ठादिस्थानाहतिव्यक्तानि। अत्र क्षकार: ककारषकारसंयोगजत्वान्न पृथग् गण्यते। ळकारस्यापि लकारान्त:पातित्वान्न पृथग् गणनम्। अत एवमुक्तप्रकारेण व्यवस्थितानामक्षराणां सप्तषष्ट्यात्मकत्वं गण्यते। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

चत्वारिंशत्सप्तसंख्यासहित: परिकीर्तित:।
क्षकार: कथितो योऽसौ संयोगो द्विविध: स्मृत:।।
सप्तषष्ट्याख्यमेवं हि मातृकापीठमुत्तमम्।
अनाहतहतोत्तीर्णैस्त्रिभिर्भेदै: समन्तत:।। इति।

एवं परिकल्पितवर्णक्रममयीं मूलदेवीं नमामीति यावत्। अत्र पश्यन्तीमध्यमावैखरीस्वरूपनिरूपणमपि तत्रैव कृतम्। यथा—

शिखण्डचण्डरसन्याय: शिबिकाख्यो द्वितीयक:।
अय:शलाकासंज्ञोऽन्यस्त्रिविधो न्यायवैभव:।।
त्रिविधं न्यायमुत्सृज्य वर्णानामुदयक्रमम्।
ये वदन्ति न ते योग्या वामकेश्वरदर्शने।। इति।

चक्रदर्शनपक्षे गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीं पीठरूपिणीं देवीं नौमीति सम्बन्ध:। पीठरूपिणीमिति पूजाचक्ररूपिणीमित्यर्थ:। अत्रापि गणेशादिपदेन केवलं संख्यैव गृह्यते। गणेशा रुद्रा एकादशसंख्योपात्ता:। ग्रहपदेन नवसंख्या, नक्षत्रपदेन सप्तविंशतिसंख्या, योगिनीपदेनाष्टौ, राशिपदेन द्वादश। एतत्सर्वं समुच्चित्य सप्तषष्ट्यात्मकानि पदानि देव्याश्चक्रे पूजाचक्रे निवसन्ति। न न्यूनानि नाधिकानि कार्याणीति बोधयितुम्। एवंविधपूजाचक्रमयीं नमामीति तात्पर्यार्थ:।

मन्त्रप्रदर्शनपक्षेऽपि गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीं मन्त्रमयीं देवीं नौमीति सम्बन्ध:। गणेशेति हंसाक्षरम्। गृह्णातीति ग्रह:। ग्रहो मनसोऽक्षरम्। नक्षत्रेत्यत्र नकारषकारत्रकारा उच्चारणार्था:। अत एव केवलं तुण्डाक्षरं गृह्यते। योगिनीति पिण्ड:। राशिरिति हकार:। रूपीत्यत्र ऊकार उच्चारणार्थ:। केवलं रेफो गृह्यते। णीमित्यत्र णकार उच्चारणार्थ:। केवल ईकारो गृह्यते। एतत्सर्वमेकीकृत्य आद्यं बीजं भवति मूलमन्त्रस्य। गणेशग्रहौ पूर्ववत्। अत्र नक्षत्रेति नकारषकारावुच्चारणार्थौ ककार: परं गृह्यते। त्रेत्यत्र लोपन्यायेन त्राता परमेश्वरो हकार:। योगिनीराशिरूपिणीमिति पूर्ववत्। इति मध्यमबीजोद्धारक्रम:। गणेशग्रहो मनसोऽक्षरम्। अन्यत्सर्वमाद्यबीजवद् द्रष्टव्यम्। इति तृतीयबीजोद्धारप्रकार:। अत्र श्लोके ईकारचतुष्टयमस्ति। तत्राद्यत्रितयं गणेशादिपदेनैव त्रिरावृत्त्या मन्त्रपरिपूर्तिर्भवतीति द्योतयितुम्। चतुर्थोऽपीकारस्तुरीयबीजोद्धारं दर्शयितुम्। तदुद्धारोऽपि गणेशादिपदेनैव गुरुमुखाज्ज्ञातव्य:। एवमुद्धृतमन्त्राक्षरमयी मूलदेवतेत्यर्थ:।

धामसंवित्क्रमावप्यनेन सूत्रेण सूचितौ द्रष्टव्यौ। तत्र धामक्रमपक्षे गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीं देवीं नौमीति सम्बन्ध:। देवीतिपदेन द्योतनात्मकत्वात्तेजस्त्रितयमुपलक्षितम्। तत्किंरूपमिति विवक्षायां गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशीनां गणानां राशिरूपं समुदायरूपं ज्योतिस्त्रितयमिति सोमसूर्याग्निरूपाणि शिवशक्तिसामरस्यात्मकानि द्राव्यद्रावकभेदेन कुलाकुलासनगतानि गुरुमुखाद् ज्ञात्वोपासनीयानीत्यभिप्राय:।

संवित्क्रमपक्षे देवीं नौमीत्येव सम्बन्ध:। सूत्रस्थमन्यत्पदकदम्बकमुच्चारणार्थम्। देवीति द्योतनात्मिका प्रकाशरूपिणीति यावत्। कोऽर्थ:? केवलसुषुम्नाकाशकुशेशये सर्वावरणविधुरे आदिमध्यान्तरहिता सकलकल्पनातीता चिद्दण्डरूपिणी ध्येयेति यावत्। वर्णा(त्म? म्बि)कायास्तुरीयं परावाग्रूपं धाम संवित्क्रमान्तर्गतं ज्ञेयमिति सर्वं समञ्जसम्।।१।।

वर्णक्रमदर्शनपक्षे त्वपरथापि योजनीयम्। यथा—स्वरा द्वाविंशति:, पञ्चविंशति: स्पर्शाख्या:, दशधा व्यापका:, यमाश्चत्वार:, जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ द्वौ, अनुस्वारविसर्गौ च। इत्थमेभि: कलानादाभ्यां च सप्तषष्टिर्वर्णा: प्रोक्ता:। अनेनापि नयेन सप्तषष्टिवर्णरूपा मातृका।

प्रणमामीति द्वितीयसूत्रमारभ्य महासिद्ध्यष्टकेश्वरीमित्यन्तं सूत्रकदम्बकं यथापूर्वमेव व्याख्यातं द्रष्टव्यम्। सकलनिष्कलसम्प्रदाययोरेकरूपतया व्याख्येयम्, नार्थान्तरपरता सूत्राणामिति। पुनरपि सिंहावलोकनन्यायेन केषुचित् पदविशेषेषु विवक्षितार्थद्योतकत्वं दर्शयति—

प्रणमामि महादेवीमित्येतेन सिद्धं वर्णक्रममनूद्य तदुपासकस्य मृत्यूत्तरणाख्यं फलं दर्शयति। अक्षरयोजना पूर्ववत्।।२।।

यदक्षरैकमात्रेऽपीत्यनेन वर्णक्रममाहात्म्यं सूचयति।।३।।

यदक्षरशशिज्योत्स्नेत्येतेन तदभिप्रेतं रसाधारत्रिबीजसम्बन्धवशाद् गुणात्मकं भुवनत्रयं तदक्षरशशिभिर्गुरुमुखाज्ज्ञात्वा मण्डितमलङ्कृतं यथा भवति, तथा कुर्यादित्यर्थः।।४।।

यदक्षरमहासूत्रेत्यत्राप्येतत् सूचितम्। त्रिबीजकुण्डलिनीसूत्रे सगुणवर्णकदम्बकं भातीत्येतत्प्रदर्शितमनेनेत्यभिप्रायः।।५।।

यदेकादशमाधारमित्यत्र वर्णक्रमस्य एकादशमक्षरं त्रिकोणात्मकं मूलदेव्या आधारबीजम् आसनबीजम्। कोऽर्थः? सेयं देवता बाह्याभ्यन्तरप्रकारेऽपि त्रिकोणपीठोपविष्टेत्येतत्। अथवा वर्णमण्डलमन्त्रधामसंवित्क्रमाणामाधारं त्रिकोणमित्यनेन दर्शितमित्यभिप्रायः।।६।।

अकचादीत्यनेन वर्णक्रमस्य साधकाङ्गन्यासस्थानं सूचितमित्यभिप्रायः।।७।।

ताम् अद्यापीति द्वाभ्यां सूत्राभ्यां दर्शनसर्वस्वरहस्यभूतकामकलोद्धारस्तन्महिमा तद्विनियोगश्च सूचितः।।८-९।।

वन्दे तामित्यनेन शिष्यदीक्षायां पाशच्छेदाय शिष्यशरीरे वर्णक्रममेव विलोमेनानुसन्दध्याद् यदा तदा पाशमोचकस्य क्षकारस्य यादृशो महिमा तादृशो विमर्शरूपत्वादक्षराणां सर्वेषां वर्णानामस्तीति प्रत्येकमक्षराणां क्षकाररूपत्वं सूचितम्। समष्टिरूपेण व्यष्टिरूपेण वा कल्याणगुरुणा शिष्यदेहेऽभिध्यातो वर्णक्रम एव पाशमोचको भवतीत्यभिप्रायः। देवीं कुलकलोल्लोलेत्यादिनैतदभिप्रेतम्—मूलादिषट्चक्रलम्बिकाललाटब्रह्मरन्ध्राख्यनवाधारेषु कुलस्वामिनीचक्रनवकं सृष्टिसंहारयोगेन गमागमक्रमेणाभ्यसनीयमिति सूचयति। परौलिजामिति ज्येष्ठमध्यमबालाख्यमोषमित्रत्रयं ज्ञानयोगक्रियाज्ञापकमस्ति। तत्रेयं विद्या ज्येष्ठौलिजा निखिलज्ञानाधिकारसम्पन्नपरमगुरुणा श्रीक्रोधमुनिभट्टारकेणावतारितेत्यर्थः। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

कामेशीं सर्वगां नित्यां गुरुरूपां नमामि ताम्।
ज्येष्ठमध्यमबालाख्यान् चित्प्राणविषयात्मिकाम्(?त्मकान्)।।
ओषमित्रीशसंज्ञेयान् नौम्यहं सिद्धपुङ्गवान्। इति।

परां शिवामिति पाठान्तरम्। तदन्यसम्प्रदायेन लोपामुद्रासम्प्रदायेन।।१०।।

वर्गानुक्रमयोगेनेत्यादिना देवीपुर्यष्टकरूपस्य वशिन्याद्यष्टकस्य नवचक्रस्थदेवीषु प्राधान्यमस्तीति सूचयति।।११।।

कामपूर्णेत्यादि। कामः कामरूपम्। पूर्णेति पूर्णगिरिः। जकाराख्यं जालन्धरम्। श्रीपीठम् ओड्याणपीठम्। अत्र पूर्वाम्नायाभिप्रायेण कापूजोङ्काराख्यानि पीठान्यवतारितानि। पीठावतारनिरूपणेनैव खत्ममेत्याख्याः कृतादिकल्यन्ता युगानुसारेण मङ्गलादिशक्तिभिः सहावतारिता द्रष्टव्याः। यद्यपि पीठावतारक्रमेण पूर्वाम्नाये कनिष्ठताऽवसीयते, तथापि चतुराज्ञाकोशभूतेत्युक्त्याऽपराद्यन्वयनिष्ठता च निश्चितैव।

अतस्तदनुसारेण पीठानि नाथाश्च निरूपणीयाः। तत्र ओजापूकेषु प्रातिलोम्येन स्थितेषु तेष्वेव पीठेषु पश्चिमे मिवषचाख्यया रक्ताम्बादिभिः सह कृतादिक्रमेणावतारो द्रष्टव्यः। तथा जाओकापूक्रमेण स्थितेषु तेष्वेव मिषजपाख्यया दक्षिणे ताभिरेव शक्तिभिः सह युगानुसारेणावतारो द्रष्टव्यः। काजापूओ इत्याख्येषु तेष्वेवोत्तरे कुमिमेषसंज्ञया ताभिरेव शक्तिभिः सह युगानुसारेणावतारो द्रष्टव्यः। इयं च विद्या चतुराम्नायसाधारण्यपि दक्षिणपक्षपातिनीति तदनुसारेण पीठनाथभेदो द्रष्टव्य इति भावः। पीठानुलोम्ये पूर्वे नाथप्रातिलोम्यम्। पीठप्रातिलोम्ये पश्चिमे नाथानुलोम्यमिति परमरहस्यम्। एवं च चतुर्ष्वप्यन्वयेषु प्रत्येकं चतुष्पीठनिवासिनीत्वमस्त्येवेत्यतश्चतुराज्ञाकोशभूतत्वमवगम्यते। चतुराज्ञेति पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराख्यानि चतुःसिंहासनदर्शनानि लक्षितानि। तत्र तत्र तत्तन्नामरूपान्वितेयमेवाधिवसति महात्रिपुरसुन्दरीत्यर्थः। कोशभूतेति यथा राजभिरुत्त-मवस्तुवाहनरत्नादिकमनर्घ्यं बहुप्रयत्नेन गुप्तं कृत्वा रक्ष्यते, तथा चतुरन्वयनिष्ठैरियमपि विद्या रत्नभूता सुगोप्या कार्येति तात्पर्यम्। तदेतत्पीठनाथनिरूपणं श्रीसिद्धनाथपादैरुक्तम्—

कापूजोङ्कारपीठेषु खकुमेषाख्यया शिवः।
तेष्वेव प्रातिलोम्येन स एव म्योषचाख्यया॥
स्वशक्तिसहितो देवश्चतुर्युगविभागशः।
पूर्वपश्चिमभेदेन युगपत् स्वाधिकारकृत्॥ इति।

अस्याश्चतुराम्नायस्वरूपविवरणं चक्रोद्धारे तद्विभागप्रकरणे प्रपञ्चयिष्यामः॥१२॥

※ सेतुबन्धः ※

सृष्टिस्थितिलयकारिण्यो ब्रह्मादिरूपास्तिस्रः तत्समष्टिरेकेत्येवं चतस्रः शक्तयो वामाज्येष्ठारौद्र्यम्बिकेति नामिकाः सन्ति। तासामेवाधिष्ठानभूताश्चत्वारः पीठाः कामरूपं पूर्णगिरिजालन्धरमुड्डीयानं चेति। तत्राऽऽद्ययोर्नामैकदेशन्यायेन निर्देशः। जकारेणाऽऽढ्यो युक्तः स्वघटितपदवाच्यत्वसम्बन्धेनेति तृतीयः। जकाराख्येति पाठ आख्याशब्दो नामधेयप्रथमाक्षरपरः। जकार आख्या यस्येति समानाधिकरण एव बहुव्रीहिः। जकार आख्यायां यस्येति व्यधिकरणस्तु नाऽऽदर्तव्यः। आख्यापदस्य पूर्वनिपातापत्तेः। जकाराद्येति तु तन्त्रराजे पाठः। श्रीपीठपदेनोड्यानं गृह्यते। पीठानामनेकत्वेऽपि चतुर्णामेव प्राधान्यात् पार्थक्येन निर्देशः। तेष्वप्यम्बिकाधिष्ठानत्वेन प्रधानतमत्वान्निरुपपदेनैव पीठपदेन चतुर्थस्य निर्देशः। अभियुक्तानां नाम श्रीपदपूर्वं प्रयुञ्जीत। श्रीशैल-श्रीचक्र-श्रीविद्या-श्रीपुरादिकवदिति श्लोकोक्तमर्यादानुरोधाय श्रीकारः। चतस्र आज्ञाश्चत्वारो वेदाः। तथा च कौर्मे हिमवन्तं प्रति देवीवाक्यम्—

ममैवाऽऽज्ञा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजुः सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते।। इत्यादि।

ताः कोशभूताः खड्गधनादेरिवाऽऽधारभूताः प्रतिपादिका इति यावत्। यस्याः सेति बहुव्रीहिः। तेन तत्सारभूतमखण्डं ब्रह्मेत्यर्थः। चतुराज्ञानां कोशभूतेति वा। वेदजनिकेत्यर्थः। एत-दुभयमपि परब्रह्मणोऽसाधारणं लिङ्गमिति हि शास्त्रयोनित्वादधिकरणे वर्णकद्वये प्रतिपादितम्। अथवा चतुराज्ञाश्चत्वार आम्नायाः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराख्यास्तेषामेवोत्तमत्वात् प्राधान्येनेह निर्देशः। तेन चास्य तन्त्रस्याऽम्नायसारप्रतिपादकत्वोक्त्या तत्सिद्धान्तानुसारिकल्पसूत्रस्यैतदविरोधित्वेनापेक्षितांशे तस्यैव ग्रहणं नान्यस्य तन्त्रस्येति ध्वनितम्। तथा च कल्पसूत्रारम्भे

स्मर्यते—'पञ्चभिर्मुखैः पञ्चाऽऽम्नायान् परमार्थसारभूतान् प्रणिनाय। तत्रायं सिद्धान्तः' इत्यादि। ऊर्ध्वाम्नायस्यापि चतुःपदमुपलक्षणम्। तादृशीं त्रिपुरामहं नौमीत्यर्थः। अत्र सर्वेषां वेदान्तानामद्वैते ब्रह्मणि तात्पर्यात्तदनुयायिनामाम्नायानामप्यखण्डानन्दं ब्रह्मैव प्राधान्येन विषयः। तदिदमाम्नायसारत्वोक्त्या सूचितम्। कोशपदेनापि श्लेषेण पञ्चकोशान्तरत्वेनाऽऽनन्दमयकोशातीतत्वेन तदेवोक्तम्। त्रिपुरेतिपदस्यापि स एवार्थः। तदुक्तमभियुक्तैः—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम।। इति।

तेनास्मिन् स्तोत्रे सगुणद्वारा निर्गुणं ब्रह्मैव स्तुतमिति ध्वनितम्। अत एव तन्त्रराजे द्वादशश्लोक्युत्तरं पठ्यते—

इति द्वादशभिः श्लोकैः स्तवनं सर्वसिद्धिकृत्।
देव्यास्त्वखण्डरूपायाः स्तवनं तव तद्यतः।। इति।

किं बहुना सर्वस्मिन्नस्मिंस्तन्त्रे सगुणाद्युपास्तिद्वारा मुक्तोपसृप्यं ब्रह्मैवोपास्यत्वेन प्रस्तूयत इत्यपि ध्वनितम्। तदिदं प्रथमश्लोके सूचितमिहोपसंहर्तुं नमामि त्रिपुरामित्यनुक्त्वा नौमि श्रीत्रिपुरामित्युक्तम्। अहंशब्दश्चाहङ्कारवाचकः। 'वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा' इति प्रयोगात्।

स चाहङ्कारो द्विविधः—परोऽपरश्चेति। जीवैर्देहादावभिलप्यमानोऽपरः। परस्मिंश्च ब्रह्मणि षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकस्य जगतः सृष्ट्यनुकूलेषु ज्ञानेच्छायत्नेषु प्राथमिकसर्वविश्वविषयक उदितोऽहमित्यभिमानः परः। ज्ञानरूपस्य ब्रह्मण ईदृशपराहन्ताविषयकत्वमात्रेण धर्मधर्मिभावं प्रकल्प्य तादृशो धर्मस्त्रिपुरसुन्दरीपदेन तदभिन्नो धर्मी कामेश्वरपदेनेह व्यवह्रियत इत्येतदपि त्रिपुरापदसामानाधिकरण्येनाहंपदनिर्देशाद् ध्वनितम्। अन्यथा प्रथमश्लोक इव नौमीत्येतावतैव कर्तुर्लाभादिह तदर्थकत्वेऽहंपदे वैयर्थ्यापत्तेः। न चैवमहंपदाद् द्वितीयापत्तिः। स्वरादेराकृतिगणत्वेनाव्ययत्वस्वीकारेण तल्लोपात्। 'अहमिप्रलयं कुर्वन्' इत्यादयः प्रयोगास्तु शब्दार्थयोरभेदमभिप्रेत्य 'नमांसि कुर्मः' इत्यादिवच्छब्दपरा इत्यवधेयम्।।१२।।

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वमन्त्राश्च भवता मे प्रकाशिताः।
चतुःषष्टिश्च तन्त्राणि मातृणामुत्तमानि च ।।१३।।

देवी कहती हैं—हे भगवन्! सर्व मन्त्र तथा मातृकाओं की उत्तम स्तुतियों के साथ ६४ तन्त्रों को आपने मेरे समक्ष प्रकाशित किया है।।१३।।

सर्वमन्त्राः—भास्करराय के अनुसार सात करोड़ मन्त्र। शिवानन्द ने मन्त्र शब्द का अर्थ किया है कि जिसके मनन से त्राण मिलता है और जिससे परा संवित् के माहात्म्य का चिन्तन हो। इन्होंने इसके अतिरिक्त भी अर्थ किया है। गूढ़ार्थ पिण्डबीजात्मक पुं रूप से वाच्य तथा अधीष्ठित जो है, वह मन्त्र है। जो स्त्रीरूप से वाच्य तथा अधीष्ठित है,

वह है विद्या। मूल श्लोक में चकार द्वारा विद्या सूचित है। विद्यानन्द ने 'सर्वमन्त्राः' का अर्थ किया है—आणवोपाय, शाक्तोपाय तथा शाम्भवोपाय-सम्बन्धित मन्त्र। **मातृणां**—ब्रह्माणी अथवा ब्राह्मी इत्यादि मातृकागण। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—विद्याधिष्ठातृ संवित्। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—शक्तियाँ। **उत्तमानि**—शिवानन्द कहते हैं कि अशेष परमार्थ जिसके द्वारा क्रोड़ीकृत होता है कि वह है—उत्तम। भास्करराय कहते हैं कि शिथिल पुरुषार्थप्रद होने के कारण तन्त्रों को 'उत्तमानि' कहते हैं। **चतुःषष्टि**—विद्यानन्द 'चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणि' इत्यादि की व्याख्या में कहते हैं कि ब्रह्माणी आदि अंशभूत चतुःषष्टि पूजामण्डल आपने दिखलाया है।।१३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

इत्थं महानन्दसारां पूर्णाहन्तामयीं वाचं विमृश्यानन्दोदधिनिमग्नं विमर्शैकसारं प्रकाशैकमयं महादेवं स्वाभिन्ना भगवती संविदाख्या विमर्शशक्तिर्मोक्षलक्ष्म्युपश्लिष्टा द्योतनादिसतत्त्वा **श्रीदेव्युवाच** आममर्श। भगवन्नित्यादिसार्धैकादशश्लोकेन पूर्वोपदिष्टमन्त्रसामान्यमुपदिष्टचतुष्षष्टितन्त्रानुवादश्च क्रियते। हे भगवन्! चिन्मयस्वात्मन्। सर्वमन्त्राः सर्वे मन्त्रा मननत्राणधर्माणश्चिन्माहात्म्यावमर्शकाः, अथवा गुप्तार्थभाजः पिण्डबीजात्मानः पुंरूपवाच्याध्यासिताश्च मन्त्राः, चकारेण विद्याः समुच्चीयन्ते। संवेद्यमानस्फुटार्थरूपा मालामन्त्राः स्त्रीरूपवाच्याध्यासिताश्च विद्याः। भवता प्रकाशवपुषा। मे संविदो विमर्शमय्याः। प्रकाशिता उल्लासिताः। मातृणां विश्वाधिष्ठातृणां ब्राह्म्यादिसंविदाम्। उत्तमानि क्रोडीकृताशेषपरमार्थानि।।१३।।

* अर्थरत्नावली *

श्रीदेव्युवाचेत्यारभ्य जगत्क्षोभः प्रजायत इत्यन्ताः श्लोकाः स्पष्टार्थाः। पुनरपि सिंहावलोकनन्यायेन विषमपदव्याख्या लिख्यते। सर्वे मन्त्रा आणवशाक्तशाम्भवोपायसम्बन्धिनः। **चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणीति**। ब्रह्माण्याद्यंशभूतानां मातृणां चतुष्षष्टिपूजामण्डलानि त्वया प्रदर्शितानीत्यर्थः।।१३।।

* सेतुबन्धः *

एवं मङ्गलाचरणमुखेनैव शास्त्रस्य विषयप्रयोजनादिकं निर्वर्ण्य 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' इत्यादि श्रुतिष्वेवकारेण ध्वनितस्य पुस्तकाद्युपायान्तरपरिसंख्यापूर्वकं गुर्वावश्यकत्वस्य द्योतनाय स्वयमद्वितीयोऽपि परमशिवो द्विविधं विग्रहं प्रकाशविमर्शभेदेन विरच्य विमर्शांशेन प्रष्टृत्वं प्रकाशांशेन वक्तृत्वं च स्वीकृत्य तन्त्रमवतारयितुमारभते—**श्रीदेव्युवाचेति**। तदुक्तं स्वच्छन्दतन्त्रे—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रनोत्तरपरैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयत्।। इति।

अत्राडागमस्तु आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न कृतः। कल्पसूत्रेऽपि—'भगवान् परमशिवभट्टारकः श्रुत्याद्यष्टादशविद्याः सर्वाणि दर्शनानि लीलया तत्तदवस्थापन्नः प्रणीय, संविन्मय्या भगवत्या

भैरव्या स्वात्माभिन्नया पृष्टः पञ्चभिर्मुखैः पञ्चाऽऽम्नायान् प्रणिनाय' इति। तेन परमशिवः स्वयमेव विमर्शांशेन स्वात्मानं पृच्छतीत्यर्थः। 'श्रीभैरव उवाच' इत्यस्यापि स्वयमेव प्रकाशांशेन स्वात्मानमुत्तरयतीत्यर्थः। प्रकृते लिटा कथितं भूतत्वं तु वक्तव्यस्य सदातनत्वात्। अत एव तन्त्रराज उत्तरपटलेषु वक्ष्यमाणोऽप्यर्थः पूर्वपटलेषु प्रोक्त इति भूतार्थकपदेनैव तत्र तत्र निर्दिश्यते। अनद्यतनत्वं त्वकालकलितत्वात्। परोक्षत्वं त्वगिन्द्रियगोचरत्वादुपपद्यत इति साम्प्रदायिकाः। एवं सर्वत्रापि योज्यम्।

अथ त्रयोदशभिः श्लोकैर्देवीप्रश्नः—सर्वमन्त्राः सप्तकोटिसंख्याः मातृणां शक्तीनाम्। उत्तमानि निखिलपुरुषार्थप्रदत्वात्।।१३।।

चतुष्षष्टितन्त्रोद्देशः

महामाया शम्बरं च योगिनी जालशम्बरम्।
तत्त्वशम्बरकं चैव भैरवाष्टकमेव च ।।१४।।
बहुरूपाष्टकं चैव यामलाष्टकमेव च।
चन्द्रज्ञानं वासुकिं च महासम्मोहनं तथा ।।१५।।
महोच्छुष्मं महादेव वातुलं वातुलोत्तरम्।
हृद्भेदं तन्त्रभेदं च गुह्यतन्त्रं च कामिकम् ।।१६।।
कलावादं कलासारं तथाऽन्यत्कुब्जिकामतम्।
तन्त्रोत्तरं च वीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम् ।।१७।।
पञ्चामृतं रूपभेदं भूतोड्डामरमेव च।
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूडामणिं तथा ।।१८।।
सर्वज्ञानोत्तरं देव महाकालीमतं तथा।
महालक्ष्मीमतं चैव सिद्धयोगेश्वरीमतम् ।।१९।।
कुरूपिकामतं देवरूपिकामतमेव च।
सर्ववीरमतं चैव विमलामतमुत्तमम् ।।२०।।
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरं च निरुत्तरम्।
तन्त्रं वैशेषिकं ज्ञानं वीरावलि तथा परम् ।।२१।।
अरुणेशं मोहिनीशं विशुद्धेश्वरमेव च।
एवमेतानि शास्त्राणि तथाऽन्यान्यपि कोटिशः ।।२२।।
भवतोक्तानि मे देव सर्वज्ञानमयानि च।
नित्याः षोडश देवेश सूचिता न प्रकाशिताः ।।२३।।

महामाया, शम्बर, योगिनी, जालन्धर, तत्त्वशम्बर, भैरवाष्टक, बहुरूपाष्टक, ज्ञान, यमलाष्टक, चन्द्रज्ञान, वासुकि, महासम्मोहन, महोच्छूष्म, वातुल, वातुलोत्तर, हृद्भेद,

मातृभेद, गुह्यतन्त्र, कामिक, कलावाद, कलासार, कुब्जिकामत, कुब्जिकामतोत्तर, वीणा, त्रोटल, त्रोटलोत्तर, पञ्चामृत, रूपभेद, भूतोड्डामर, कुलसार, कुलोड्डीश, कुलचूड़ामणि, सर्वज्ञानोत्तर, महाकालीमत, महालक्ष्मीमत, सिद्धयोगेश्वरीमत, कुरूपिकामत, देव रूपिकामत, सर्ववीरमत, विमलामत, पूर्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, उत्तराम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय, वैशेषिक, ज्ञानार्णव, वीरावलि, अरुणेश, मोहिनीश तथा विशुद्धेश्वर—ये ६४ तन्त्र हैं। इन सर्वज्ञानमय तन्त्रशास्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य कोटि-कोटि शास्त्रों को आपने कहा है। हे देवेश! प्रसंग क्रम में आपने सोलह नित्याओं का वर्णन किया है, किन्तु प्रधानत: उनका प्रकाशन नहीं किया।।१४-२३।।

भैरवाष्टकं—असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार—ये अष्ट भैरव हैं। मतान्तर से सिद्धिभैरव, बटुकभैरव, कंकालभैरव, योगिनीभैरव, महाभैरव, शक्तिभैरव, मायिकभैरव तथा कपालभैरव—ये अष्ट भैरव हैं। **बहुरूपाष्टकं**—शिवानन्द के मत से तात्पर्यार्थ है—अष्ट शक्तितन्त्र। यहाँ अष्ट शक्ति से अष्ट मातृकाओं का भी द्योतन होता है। इनका प्रतिपादन करने वाले अष्ट तन्त्र। **यामलाष्टकं**—ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, लक्ष्मीयामल, उमायामल, स्कन्दयामल, गणेशयामल तथा जयद्रथयामल। **शास्त्राणि**—भास्करराय के मतानुसार शास्त्र का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है—जो शासन करे। शासन अर्थात् भगवती की आज्ञा। प्रवर्त्तन-निवर्त्तनरूप शब्दभावना। नित्य (वेद) एवं कृतक (पुरुषप्रणीत स्मृति-प्रभृति) अथवा लोक की प्रवृत्ति तथा निवृत्तिविषयक उपदेश देने वाला शास्त्र। भास्कराचार्य ६४ तन्त्रों को वेदरूप शास्त्र कहते हैं। उनका मत है कि तन्त्र वेद के शेषभूत हैं। इसके अतिरिक्त तन्त्र को भी वेद के समान साक्षात् भगवद् आज्ञा कहा गया है। अत: तन्त्र के शास्त्रत्व में कोई भी विवाद नहीं है। **नित्या**—भास्करराय कहते हैं कि परमशिव से अभिन्न शक्ति को ही नित्या कहते हैं। **सुचिता**—शिवानन्द के मतानुसार इसका अर्थ है कि इन शास्त्रों के उपदेशकाल में (नित्या-सम्बन्धित) प्रस्तुत विषय को गौणभावेन कहा गया। विद्यानन्द 'भगवन् सर्वमन्त्राश्च' (श्लोक-१३) से लेकर २३ वें श्लोक के पूर्वार्द्ध 'सर्वज्ञानमयानि च' पर्यन्त के श्लोकों में वर्णित देवी के वक्तव्य का यह तात्पर्य ग्रहण करते हैं कि सर्वज्ञानमय ये सब शास्त्र उन्हें ज्ञात हैं। (उन्हें = देवी को)। तथापि वह सब देवी को मन की प्रसन्नता-प्राप्ति के लिये यथेष्ट नहीं है। इसी प्रसन्नता की प्राप्ति के लिये सर्वकामप्रदा विद्या महात्रिपुरसुन्दरी को जानना चाहती है। इसी कारण देवी ने ६४ तन्त्रशास्त्रों का उल्लेख किया था।।१४-२३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अथ चतुष्षष्टितन्त्रोद्देश:—**महामायेति**। एवं चतुष्षष्टितन्त्राणीति। महामायाशम्बरं महामायातन्त्रं शम्बरतन्त्रम्। योगिनीजालशम्बरं योगिनीशम्बरतन्त्रं जालशम्बरतन्त्रम्। हे नाथ! नाथ्य-

मान! समभिलषणीय। भैरवाष्टकं बहुरूपाष्टकं यामलाष्टकमिति चतुर्विंशतितन्त्राणि। बहुरूपाष्टकं शक्तितन्त्राष्टकम्। भूतडामरमिति भूततन्त्रं डामरतन्त्रम्। प्रभो! सर्व (भू?भ)वनशील! आच्छादनस्वरूपस्य प्रकटने च प्रभवनशील। देव! अशेषप्रमात्रादिरूपेण क्रीडादिशील। विशुद्धेश्वरतन्त्रान्तश्च चतुष्षष्टितन्त्रोद्देशः। **एवमेतानीति।** चिन्मयेन भवता। प्राधान्येन ज्ञानयोगक्रियाचर्याप्रतिपादनपराणि चतुष्षष्टिशास्त्राण्युपदिष्टानि। **तथान्यान्यपीति।** एकस्मिन् शास्त्रे प्राधान्येनोपदिश्यमाने प्रसङ्गागतानि बहूनि शास्त्राण्यस्मदर्थे प्रकाशितानीत्यर्थः। **कोटिश इति।** अयमभिप्रायः—एकमपि ज्ञानं भवतानुग्राह्यविषये न गोपितमिति। सर्वज्ञानमयानि समस्तज्ञानभाजनानि। **नित्याः षोडशेति।** हे देवेश! चिन्मरीचिचक्रेश्वर। सूचिताः तत्तच्छास्त्रोपदेशसमये प्रसङ्गादनुग्रहैकपरतयाऽप्रकृतत्वादप्राधान्येन प्रकाशिताः।।१४-२३।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

भैरवाष्टकमिति। असिताङ्गाद्यष्टभैरवाणां पूजाशास्त्राणि। **यामलाष्टकमिति।** ब्रह्मयामल-विष्णुयामल-रुद्रयामल-जयद्रथयामल-स्कन्दयामल-उमायामल-लक्ष्मीयामल-गणेशयामलादीन्यष्टावुन्नेयानि। प्रश्नावसरे सूच्यमानस्य ग्रन्थस्यायं भावः—अस्मिन् श्रीवामकेश्वरे शास्त्रे श्रुतसकलशास्त्रार्थावधारणनिपुणतया स्वस्याधिकारसम्पत्तिं द्योतयितुं शास्त्रानुवादः कृतो देव्याः। अथवा सर्वज्ञानमयान्येतानि शास्त्राणि मयाधिकृतान्यपि तानि मे मनसि सौमनस्यापादनाय नालमित्यतस्तामेव विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीं सकलसौमनस्यसम्पादिनीं सर्वकामप्रदां संवेदितुमिच्छामि। अधिगतसकलविद्याकारणत्वादित्यर्थः। अथवा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमाहात्म्यप्रकटनायाधिगतशास्त्रानुवादः कृतः।।१४-२२।।

❊ सेतुबन्धः ❊

अथ सार्धैरष्टभिस्तन्त्रनामान्युद्दिशति—अत्र ऋजुविमर्शिन्यां महामायातन्त्रं शम्बरतन्त्रं चेति तन्त्रद्वयपरं व्याख्यातम्। लक्ष्मणेन तु महामायाशम्बराख्यमेकं तन्त्रमित्युक्तम्। अर्थरत्नावल्यां तु द्वयमपि नोक्तम्। 'महालक्ष्मीमतं देव' (१/१९-२०) इत्यादिवक्ष्यमाणं श्लोकद्वयं कैश्चित्परित्यक्तम्। अन्यैस्तु स्वीकृतं परं तु सर्वेषामेव मते चतुःषष्टिसंख्यासम्पत्तिर्दुरुपपादा। वस्तुतस्तु तत्सम्पत्त्यर्थमेवास्मिन् श्लोके पूर्वार्धे चत्वारि तन्त्राणि। तत्त्वशम्बरकमेकं भैरवाष्टकं चैकमिति षट् तन्त्राणि। केचित् तु—

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्त एव च।
कपाली भीषणश्चेति संहारश्चाष्टभैरवाः।।

इत्युक्तानामष्टानां भैरवाणामष्टौ तन्त्राणीत्याहुः। अन्ये तु—सिद्धिभैरव-बटुकभैरव-कङ्कालभैरव-योगिनीभैरव-महाभैरव-शक्तिभैरव-मायिकभैरव-कङ्कालाग्निभैरवाष्टकप्रतिपादकं तन्त्राष्टकमित्याहुः। तदुभयमपि संख्यासम्पत्तिविरोधाद्यामलादिशब्दवद्भैरवशब्दस्य तन्त्रेषु क्वापि प्रयोगादर्शनाच्च चिन्त्यम्। तस्मात् षोडशनित्यानामेकतन्त्रवदष्टभैरवाणामेकमेव तन्त्रमिति व्याख्येयम्। यदि भिन्नान्येव तन्त्राण्युपलभ्येरंस्तदा तथाऽन्यान्यपि कोटिश इति वक्ष्य-

माणेषु तेषामन्तर्भावः। यदि त्वष्टानां विभज्य तन्त्रान्तरेषु चतुःषष्टिमध्य एव परिगणनं दृश्येत तदाऽप्यविरोधः। आदित्य-नृसिंह-विष्णु-भागवतादिपुराणानां क्वचित् पुराणेष्वष्टादशमहापुराणमध्ये परिगणनस्य क्वचित् तदितरेषूपपुराणेषु परिगणनस्य च दर्शनेन तद्वदिहोपपत्तेः। न चैवं भैरवाष्टकप्राये पाठाद् बहुरूपाष्टकयामलाष्टकयोरेकैकतन्त्रात्मकतापत्तिः। बहुरूपयामलपदयोर्भैरवपदवद्देवताविशेषवाचकत्वाभावेन तन्त्रनामधेयतया वैषम्येण प्रायपाठमात्रस्याप्रयोजकत्वात्। भैरवतन्त्रमिति क्वचिद् दृश्यमानस्यापि व्यवहारस्य भैरवप्रतिपादकपरत्वेनोपपत्तेः। ब्रह्मयामलरुद्रयामलादीनां कतिपयानां भेदेनोपलम्भाच्च। यत्तु 'कपालं भैरवं चैव' इति कौर्मे गणितं तन्त्रं तद्देव्या विमुखजनव्यामोहायोक्तत्वादवैदिकाधिकारिकमिति तत्रैव प्रतिपादनान्नोत्तमतन्त्रेषु तस्यावसरः। तस्मादिह श्लोके षडेव तन्त्राण्युद्दिष्टानि। ब्राह्म्यादयः सप्त मातरः शिवदूत्येकेत्यष्टानां प्रतिपादकान्यष्टौ बहुरूपतन्त्राणीति व्याचक्षते। ब्रह्मयामलं विष्णुयामलं रुद्रयामलं लक्ष्मीयामलमुमायामलं स्कन्दयामलं गणेशयामलं जयद्रथयामलं चेत्यष्टौ अर्थरत्नावल्यामुक्तानि। वासुकिपदस्थाने मालिनीपदस्य क्वचित्पाठः। एवं पञ्चविंशतिः। महादेवेति संबुद्धिः। महोच्छुष्ममहादेवमिति पठन्तोऽष्टाक्षरमेकं नामेति तु केचित्। द्वयमपि भिन्नमेवेति गौरीकान्तः। वामजुष्टं महादेवमिति पठित्वा वामजुष्टं नाम वामकेश्वरचतुःशतीत्युच्यत इत्यपि व्याचख्यौ। तच्चिन्त्यम्। अत्र प्रथमं देवपदं सम्बुद्धिः। द्वितीयं तु तन्त्रसंज्ञान्तःप्रविष्टमिति सुवचम्। एवं पञ्चभिः श्लोकैरष्टाविंशतिस्तन्त्राणि गणितानि संहत्य त्रिपञ्चाशत्। अवशिष्टान्येकादशोद्दिशति सार्धेन—पूर्वादित्रयस्य समाहारद्वन्द्वः। पूर्वाम्नायादिसंज्ञाभिः प्रसिद्धाश्चत्वार आम्नायाः। निरुत्तरपदेनोर्ध्वाम्नायतन्त्रं तस्यानुत्तराम्नायपदेनापि व्यवहारः। तन्त्रं वैशेषिकमित्येकम्। ज्ञानमिति ज्ञानार्णवपदेन प्रसिद्धम्। वीरावलीत्येकम्। एवम्, अन्यूनानतिरिक्तानि। एतानि महामायादिविशुद्धेश्वरान्तानि चतुःषष्टिस्तन्त्राणि। शास्त्राणि वेदरूपाणि। तन्त्राणामुपनिषच्छेषत्वात्। शासनाच्छास्त्रमिति हि व्युत्पत्तिः। शासनं तु प्रवर्तनानिवर्तनान्यतररूपा शब्दभावनापरपर्याया भगवत्याज्ञैव। तदुक्तम्—

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते।। इति।

तेन वेद एव मुख्यतया शास्त्रपदवाच्यः। तथा च व्यासपादानां प्रयोगः—शास्त्रयोनित्वात्, शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववदित्यादिः। शब्दशास्त्रछन्दःशास्त्रादीनां तु तदङ्गत्वाद् मानवस्मृत्यादीनां तदर्थानुवादकत्वात् तद्व्याख्यानानामनार्षाणामपि तदुपयोगित्वाच्छास्त्रपदेन व्यवहार इति स्थितिः। तन्त्राणां तु साक्षादेव वेदवद्भगवदाज्ञारूपत्वाच्छास्त्रत्वे न कोऽपि विवादः। अत एव प्रामाण्येऽपि न विप्रतिपत्तिः। वैदिकत्वादेव। भगवान् परशुरामोऽप्याह—'पञ्चाऽऽम्नायान् परमार्थ-साररूपान् प्रणिनाय' इति। एवं स्थिते यत् सौन्दर्यलहरीव्याख्याने केनचित् प्रलपितमिमानि तन्त्राण्यवैदिकानीत्यादि तत्प्रतारकभ्रान्तान्यतरजल्पितत्वादुपेक्ष्यम्। यत्तु कौलधर्मनिन्दादिकं तन्त्रान्तरे स्मर्यते तन्नहि निन्दान्यायेन तत्तत्तन्त्रस्तुतिमात्रपरम्। कथमन्यथा—

पशुशास्त्राणि सर्वाणि मयैव कथितानि हि।
मूर्त्यन्तरं तु संप्राप्य मोहनाय दुरात्मनाम्।।
महापापवशान्नृणां तेषु वाञ्छाऽभिजायते।
तेषां हि सद्गतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि।।

इत्यादीनि कौलप्रकरणस्थानि परःशतं शिववचनानि संगच्छेरन्। वस्तुतस्तु कौलोपास्तेश्चरमभूमिकारूपतया तदधिकारिदौर्लभ्यादधिकारमज्ञात्वा तत्र प्रवर्तने च तद्विरुद्धाचारावश्यंभावात्तेषां निन्दा। अधिकारसद्भावेऽपि वाऽतिरहस्ये प्रवृत्तिर्मा भूदित्येतदर्थमपि निन्दावाक्यमित्युपपद्यते। तदप्युक्तं कुलार्णव एव—

कुलमार्गरतो देवि न मया निन्दितः क्वचित्।
आचाररहिताः येऽत्र निन्दितास्ते न चेतरे।।

अन्यत्रापि—

कुलधर्ममिमं ज्ञात्वा मुच्येयुः सर्वमानवाः।
इति मत्वा कुलेशानि मया लोके विगर्हितम्।। इति।

तस्मात्—

पुराकृततपोदानयज्ञतीर्थजपव्रतैः ।
शुद्धचित्तस्य शान्तस्य धर्मिणो गुरुसेविनः।।
अतिगुप्तस्य भक्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते।

इति वचनात् कुलतन्त्राप्रामाण्यवचनं गौरीकान्तलक्ष्मणादेरतादृशत्वं ध्वनयति। तथा च शिववचनम्—

कुलधर्मं हि मोहेन योऽन्यधर्मेण दुर्मतिः।
सकृत्साधारणं ब्रूयात्सोऽन्त्यजो नान्त्यजोऽन्त्यजः।।

इतीति दिक्। अन्यान्यपि कुलार्णव-दक्षिणामूर्तिसंहिता-सनत्कुमारसंहिता-परानन्दतन्त्रादीनि। सर्वज्ञानमयानि सर्वज्ञत्वदानैकप्रधानानि अधिकारिभेदेन चतुर्विधपुरुषार्थप्रदानीति यावत्। श्रीपरमशिवाभिन्ना शक्तिरेव तावन्नित्येत्युच्यते। तस्याश्च पञ्चदश किरणास्तदाकारा अपि तद्वत् कामेश्वराङ्कयन्त्रणमात्रविधुरा इतरधर्मैः सदृश्यः सन्ति। तेन कामेश्वराङ्कयन्त्रितैका त्रिपुरसुन्दरी महानित्येत्युच्यते। इतरास्तु नित्या एव। कामाङ्कयन्त्रादन्यत्र भूषावर्णायुधादिकमित्यादिना तन्त्रराजे अयमर्थो निर्णीतः। सङ्केतपद्धत्यामपि—

एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः।
तस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः।।
विमर्शाख्या तु नित्या सा पाञ्चविध्यं समागता।
आकाशानिलसप्तार्चिः सलिलावनिभेदतः।।
एकैकगुणवृद्ध्या तु तिथिसंख्यात्वमागता।। इत्यादि।

आकाश एक एव गुण:। वायौ द्वौ, तेजसि त्रय:, जले चत्वार:, पृथिव्यां पञ्चेति संहत्य पञ्चदश भेदा इत्यर्थ:। सुभगोदयेऽपि नित्या: प्रक्रम्य—

दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।। इति।

अत्र दर्शशब्द: शुक्लपक्षप्रतिपद्रात्रिपर इत्यादिकं सौभाग्यभास्करे 'विश्वरूपा' इतिनामनिर्वचनावसरे प्रतिपादितमस्माभि:। ईदृशस्वरूपनित्याख्या: षोडश शक्तयस्तन्त्रान्तरेषु त्वया सूचिता एव। शिष्याया विशेषजिज्ञासापरीक्षार्थं धर्मिज्ञानमात्रं कारितं न तु प्रकाशिता यावद्विशेषरूपेण नोक्ता:। 'नापृष्ट: कस्यचिद् ब्रूयात्' इति वेदानुशासनमिति निषेधादिति भाव:।।१४-२३।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि तासां नामानि शङ्कर।
एकैकं चक्रपूजां च परिपूर्णां समन्तत: ।।२४।।
अनेकदेवतानाममन्त्रमुद्रागणै: सह।
कथयस्व प्रसादेन यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।।२५।।

हे शंकर! मैं उनके नाम एक-एक करके सुनना चाहती हूँ। समन्तत: परिपूर्ण चक्रपूजा की कथा अनेक देवताओं का नाम मन्त्र तथा मुद्रा के साथ सुनना चाहती हूँ। प्रभो! यदि मेरे ऊपर आप प्रसन्न हैं, तब कृपा करके यह सब बतायें।।२४-२५।।

तासां—उनका, षोडश नित्या का। परमशिवभावापन्ना नित्या महात्रिपुरसुन्दरी। ये षोड़शी नित्या हैं—प्रधाना, परिपूर्णा। अन्य १५ नित्यायें इनकी कला हैं। प्रतिपदा से प्रारम्भ करके पञ्चदशी, पर्यन्त तिथिक्रम में ये सब अवस्थिता हैं। यह शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा है। पञ्चदशी है—पूर्णिमा; जैसा कि सुभगोदय शास्त्र का वचन है—
दर्शाद्या: पूर्णिमान्ताश्च कला: पञ्चदशैव तु षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।।

भास्करराय के मत से यहाँ 'दर्श' का तात्पर्य है—शुक्ला प्रतिपदा की रात्रि। 'दर्श' से लगाकर पूर्णिमा पर्यन्त १५ कला। षोडशी है—सच्चिदानन्दरूपिणी। विद्यानन्द के मतानुसार इसका तात्पर्य है कि पहले पन्द्रहों अंगनित्याओं की अर्चना करे। तदनन्तर परिपूर्ण महानित्या की अर्चना करनी चाहिये। **शङ्कर**—शिवानन्द शंकर शब्द की व्याख्या में कहते हैं कि जो अशेष, अशुभ की निवृत्ति करते हैं, जो परमानन्दस्वरूप हैं, जो अद्वय हैं, जो स्वचैतन्य-प्रसार के प्रत्यभिज्ञानरूप जीव पर अनुग्रह करते हैं, वे ही शंकर हैं। **नामानि**—आगे २६ से २९ वे श्लोकों में नित्याओं का नाम है। **चक्रपूजां**—भास्कर राय ने चक्रपूजा पद का अर्थ किया है—श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की चक्रराजपूजा, यही है—चक्रपूजा। यह ९ चक्रात्मक है। प्रत्येक चक्र की चक्रेश्वरी, आवरण देवता, मन्त्र, मुद्रा

पृथक्-पृथक् हैं। शिवानन्द के अनुसार 'चक्रपूजां' पद का तात्पर्य है—चक्रों की पूजा। इस प्रकार सभी चक्रों की पूजा पृथक्-पृथक् करनी होगी। तत्पश्चात् अंग देवता आवरण देवताओं के साथ परिपूर्ण श्रीचक्रपूजा। **परिपूर्णां**—विद्यानन्द के मत से परिपूर्णा अर्थात् परिपूर्णा षोडशी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी। इस प्रकार से 'परिपूर्णां समन्तत:' का अर्थ है—आवरण देवगण के साथ। भगवती षोडशी नित्या के विषय में सुनना चाहती हैं। पुन: 'परिपूर्णां' पद को 'चक्रपूजा' पद का विशेषण मानने से अर्थ हो जाता है—आवरण देवताओं की पूजा द्वारा पूर्णांग श्रीचक्र-पूजा। श्रीचक्र वास्तव में महात्रिपुरसुन्दरी, श्रीविद्या का ही रूप है।।२४-२५।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

इदानीमिति। तासां नित्यानाम्। हे शङ्कर! शम् उपशान्ताशेषोपतापपरमानन्दाद्वयस्वचैतन्यस्फारप्रत्यभिज्ञानस्वरूपमनुग्रहं करोति यस्तादृश:। **एकैकम्।** नामानीति सम्बन्ध:। **चक्रपूजां च परिपूर्णां समन्तत इति।** चक्रपूजा चक्राणां पूजा। समन्तत इत्यङ्गाद्यशेषावरणवाचक:। किमुक्तं भवति? अङ्गाद्यशेषावरणोपेतां परिपूर्णां चक्रपूजां चावधारयितुमिच्छामीति। **अनेकेति।** मन्त्रमुद्राशब्देन ज्ञानक्रिये लिलक्षयिषिते। गणशब्देन तद्गत: प्रसर:। अयमर्थ:—प्रतिनित्याकलां प्रतिचक्रपूजां मन्त्रगणैर्मुद्रागणैश्च सहानेकासां देवतानां नाम श्रोतुमिच्छामीति।।२४-२५।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

नित्या: षोडशेत्यारभ्य परिपूर्णां समन्तत इत्यन्तस्य लोपामुद्रामते त्वयं भाव:—तत्रैका नित्या प्रधाना षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी परिपूर्णा, अन्यास्तु कलारूपा: प्रतिरपदादिपञ्चदश्यन्तं तिथिक्रमेण स्थिता:। तत्र तत्तत्तिथिनायिकामङ्गनित्यामभ्यर्च्य तदनु महानित्या पूर्णाख्या समर्चनीयेत्यर्थ:। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनिभेदत: ।
एकैकगुणवृद्ध्या तु तिथिसंख्यात्वमागता।।
विमर्शरूपिणी नित्या षोडशी परिकीर्तिता।
गता सा षोडशैर्भेदैस्त्रिपुरा परमेश्वरी।।
सुन्दर्यादिमहापूर्व विचित्रान्तं समन्तत:।
प्रतिपत्प्रभृता देव्य: पौर्णमास्यन्तिका: क्रमात्।।
एकैकां पूजयेद्यो हि स सौभाग्यं परं लभेत्। इति।।

❊ सेतुबन्ध: ❊

एकैकमिति क्रियाविशेषणम्। नित्येतिसामान्यनाम्नो ज्ञातत्वादज्ञाततत्तद्व्यक्तिनामविषयकोऽयं प्रश्न:। चक्रस्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीचक्रराजस्य पूजां बाह्यान्तरभेदभिन्नाम्। समन्तत आवरण-

देवताभिः परिपूर्णाम्। अनेकासां वशिन्यादीनां देवतानां नामगणैर्मन्त्रगणैर्मुद्रागणैश्च सह कथयस्वेत्यर्थः।।२४-२५।।

श्रीश्वर उवाच

शृणु देवि महाज्ञानं नित्याषोडशिकार्णवम्।
न कस्यचिन्मयाऽऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥२६॥
तत्राऽऽदौ प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी॥२७॥
नित्यक्लिन्नाभिधा नित्या भेरुण्डा वह्निवासिनी।
महाविद्येश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी॥२८॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनिका चित्रेत्येवं नित्यास्तु षोडश॥२९॥

ईश्वर कहते हैं—देवि! नित्याषोडशिकार्णव को कहता हूँ। अवहित होकर श्रवण करो। यह सर्वतन्त्रों में गुप्तरूपेण सुरक्षित है। मैंने इसे किसी को नहीं बतलाया है।

नित्याओं में प्रथमा हैं—महात्रिपुरसुन्दरी। तदनन्तर कामेश्वरी नित्या, भगमालिनी नित्या, नित्यक्लिन्ना नित्या, भेरुण्डा नित्या, वासिनी नित्या, महाविद्येश्वरी नित्या, दूती नित्या, त्वरिता नित्या, वह्निकुलसुन्दरी नित्या, नित्यानित्या, नीलपताका नित्या, विजया नित्या, सर्वमङ्गला नित्या, ज्वालामालिनी नित्या तथा चित्रा नित्या—ये १६ नित्यायें हैं।

नित्याषोडशिकार्णवम्—अर्णव अर्थात् समुद्र। अर्णव के समान तन्त्र। इससे यह भी प्रकट होता है कि यह शास्त्र समुद्र के समान अगाध है। **महात्रिपुरसुन्दरी**—प्रथमा नित्या हैं—महात्रिपुरसुन्दरी। इसकी व्याख्या में शिवानन्द कहते हैं कि ये अमृतनिस्यन्दिनी महाकामकला सर्वपोषणकारिणी विश्वसुभगा अक्षया सर्वातिथिमयी नित्य कला हैं। वे 'महात्रिपुरसुन्दरी' शब्द का साम्प्रदायिक रहस्यार्थ कहते हैं कि देश-काल-आकार के द्वारा अनियन्त्रित स्वभाव (अर्थात् इन सबका नियन्त्रण उन पर नहीं है) होने से महत्त्वयुक्ता त्रित्वावस्थित समस्त धर्मपूरणी चिदानन्दघन स्वात्मपरमार्था स्पृहणीयत्व हेतु हृदयहरणकारिणी संवित्।।२६-२९।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

एवं विमर्शेनाविष्टः संविच्चक्रमहास्वामी **ईश्वर उवाच**। कालभेदकल्पनया भूतत्वेन व्यवहारः, वेद्यत्वेन च प्रत्यक्षत्वाभावात् पारोक्ष्येण। अशेषविभूत्याश्रयत्वादीश्वरः। पञ्चभिः श्लोकैर्नित्यानां नामधेयानि कथयति—**शृणु देवीत्यादि**। शृणु स्फुटमवधारय। प्रवक्ष्यामि प्रकर्षेण वाक्यप्रबन्धपर्यन्तां विमर्शपदवीं नेष्यामि। **नित्याषोडशिकार्णवमिति**। अर्णवशब्दो दुरवगाहमिदं शास्त्रमिति दर्शयति। **न कदाचिन्मयाख्यातमिति**। न प्रकृष्टविमर्शपदवीमानी-तमित्यर्थः।

सर्वतन्त्रेषु गोपितमिति। तत्र तत्र प्रसङ्गागतमपि प्रसक्तविमर्शैकपरतया गोपितं न प्रकटीकृतम्।

तत्रेत्यादि। महात्रिपुरसुन्दरी प्रथमा नित्या। इयं सर्वतिथिमयी नित्याऽमृतस्यन्दिनी महाकामकला सर्वपोषणकरी विश्वसुभगाऽक्षया नित्याकला, इतराः सर्वाः पञ्चदश नि(त्याः ?या)कलाः प्रतिपदादिकाः कालावच्छेदकयोंऽङ्गनित्याः। महात्रिपुरसुन्दरीत्यस्य शब्दस्यायं साम्प्रदायिको रहस्यार्थः—देशकालाकारैरनियन्त्रितस्वभावत्वान्महत्त्वोपेता त्रित्वावस्थितसमस्तधर्मपूरणी चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्था स्पृहणीयतया हृदयहारिणी संविदिति। कामेश्वरीनित्या द्वितीया। भगमालिनीनित्या तृतीया। नित्यक्लिन्नानित्या चतुर्थी। भेरुण्डानित्या पञ्चमी। वह्निवासिनीनित्या षष्ठी। महाविद्येश्वरीनित्या सप्तमी। दूतीनित्याऽष्टमी। त्वरितानित्या नवमी। कुलसुन्दरीनित्या दशमी। नित्यानित्या एकादशी। नीलपताकानित्या द्वादशी। विजयानित्या त्रयोदशी। सर्वमङ्गलानित्या चतुर्दशी। ज्वालामालिनीनित्या पञ्चदशी। चित्रानित्या षोडशी। एवं नित्यास्तु षोडशेत्यस्यायमर्थः—एवं नित्याषोडशकनामोपन्यासः कृतः। कामेश्वरीनित्याद्याः प्रतिपदादिकाः पञ्चदश तिथिनित्याः, महात्रिपुरसुन्दरीनित्या व्यापिका षोडशी पूर्णाऽङ्गी नित्येति। उक्ता नित्यास्तुतिरभियुक्तैः—

नित्याभिः सदृशतरा न सन्ति लोके लक्ष्मीदा जगदनुरञ्जनाश्च मन्त्राः।
तस्मात्ताः शुभमतयो भजन्तु नित्यं जापार्चाहुतिसमुपासनाविशेषैः।। इति।
(प्र० सा० १३.८५)

अन्यत्रापि—

एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः।
तस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः।।
विमर्शाख्या च सा नित्या पाञ्चविध्यं समागता।
आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनिभेदतः ।।
एकैकगुणवृद्ध्या तु तिथिसंख्यात्वमागता।
विमर्शरूपिणी नित्या षोडशी या प्रकीर्तिता।।
गता सा षोडशैर्भेदैस्त्रिपुरा परमेश्वरी।
सुन्दर्यादिमहापूर्वं चित्रान्तं च समन्ततः।।
आगमादवबोद्धव्यमिह सङ्केतमात्रतः।
प्रतिपत्प्रभृता देव्यः पौर्णमास्यन्तिकाः क्रमात्।।
एकैकां पूजयेद्यो हि स सौभाग्यमवाप्नुयात्। इति।

* सेतुबन्धः *

अथ परमशिववाक्यम्। तत्रैकेन तन्त्रश्रवणे सावधानीकरणं त्रिभिर्नित्यानाम्नामुपदेशः। पञ्चमेन महानित्यास्वरूपश्रवणाय सावधानीकरणमिति विवेकः। महाज्ञानमिति बहुव्रीहिः। अर्णवपदेन दुरवगाहत्वादतीवावहिता भवेति ध्वनितम्। महाविद्येश्वर्यास्तन्त्रान्तरे महावज्रेश्वरीत्यपि नाम।

दूती शिवदूतीनाम्न एकदेशः। कुलसुन्दर्युत्तरं नित्येतिपदं स्वतन्त्रं विशेष्यमेवान्यानि नित्यापदानि विशेषणानि।।२६-२९।।

शृणु देवि महानित्यामादौ त्रिपुरसुन्दरीम्।
यया विज्ञातया गौरि जगत्क्षोभः प्रजायते।।३०।।

देवि! प्रथमतः महानित्या त्रिपुरसुन्दरी का वर्णन सुनो। महानित्या के ज्ञानमात्र से जगत् का क्षोभ हो जाता है।।३०।।

महानित्यां—षोडशी नित्या। शिवानन्द कहते हैं कि षोडशी व्यापिका अङ्गिनित्या महात्रिपुरसुन्दरी हैं। **यया विज्ञातया**—भास्करराय के मत से ''महानित्याज्ञानमात्रेण' महानित्या के ज्ञानमात्र द्वारा। शिवानन्द अर्थ करते हैं कि 'चमत्कार पदवी-प्रापिता द्वारा। **जगत् क्षोभः**—भास्करराय कहते हैं—'जगतः क्षोभः स्वायत्तता' जगत् का क्षोभ अर्थात् स्वायत्तता। इस पद की व्याख्या में शिवानन्द का कथन है—३६ तत्त्वरूप जगत् का क्षोभ। इसका भाव है—अहंता-संरूढ़ा इन महादेवी के हृदय में अवस्थान के कारण साधक देवतात्मा हो जाते हैं। देवतादर्शन में जैसे द्रष्टा का अवस्थान्तर घटित होता है, वैसे ही साधक के दर्शन में जगत् का विकार घटित होता है।।३०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शृणु देवीति। महानित्यां षोडशीं व्यापिकामङ्गिनित्याम्। यया विज्ञातया चमत्कारपदवीं प्रापितया। जगत्क्षोभः जगतः षट्त्रिंशत्तत्त्वसमुदायरूपस्य क्षोभः। अयं भावः—महादेवतायामस्यां हृद्यवस्थितायामहन्तासंरूढायां देव्यात्मा साधको भवति। देवतादर्शने यथा द्रष्टुर्विकारो भवति, तद्वत् साधकदर्शनेन जगत इति। अथवा विज्ञातुः फलमाह—जगतः षट्त्रिंशत्तत्त्वमयस्य स्थूलसूक्ष्मादेर्देहस्य तद्द्वारेण विश्वस्य च क्षोभो विगलत्स्वरूपतया वैवश्यम्।।३०।।

* सेतुबन्धः *

आदौ चतुःशतीद्वयात्मके(क)ग्रन्थावयवे। यया विज्ञातया महानित्याज्ञानमात्रेण, जगतः क्षोभः स्वायत्तता।।३०।।

श्रीचक्रस्य लेखनप्रकारः

शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य भूयो वह्निपुरेण ते।
सम्पुटीकृत्य..................................।।

शक्ति के द्वारा शक्तिभेद और वह्निपुर द्वारा सम्पुटीकरण करना (भेद करना) होता है।

इस शक्त्या शक्तिं से प्रारम्भ करके 'भूपुरं च चतुर्द्वारोपशोभितम्' (अर्थात् श्लोक ४३ के पूर्वार्द्ध तक) के श्लोक में श्रीचक्रलेखन प्रकार का उपदेश किया गया है। श्रीचक्र नव संख्यक) चक्रात्मक है। नवचक्र अर्थात् बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार,

चतुर्दशार, अष्टदल पद्म, षोडश दलपद्म तथा भूपुर। इन ९ चक्रों के मध्य अन्तर्दशार, बहिर्दशार तथा चतुर्दशार को शक्तिचक्र कहा गया है। बिन्दु, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल तथा भूपुर को शिवचक्र कहते हैं। जो बिन्दु को छोड़कर नवचक्रों की गणना करते हैं, वे अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, वृत्तत्रय तथा भूपुर को शिवचक्र कहते हैं। शक्तिचक्र को शिवयुवती, पार्वती इत्यादि भी कहा जाता है। शिवचक्र को वह्नि, श्रीकण्ठ इत्यादि भी कहते हैं। श्रीयन्त्र के अंगीभूत हैं ९ त्रिकोण। समयाचारीगण कहते हैं कि इनमें से पाँच अधोमुख शक्तित्रिकोण हैं और चार ऊर्ध्वमुख शिवत्रिकोण हैं; किन्तु कौलमतानुसार चार अधोमुख शिवत्रिकोण हैं तथा पाँच ऊर्ध्वमुख शक्तित्रिकोण हैं।

शक्त्या शक्तिं—यहाँ 'शक्ति' शब्द पारिभाषिक है। शिवानन्द तथा विद्यानन्द के मत से स्वाभिमुखाग्र त्रिकोण-परम्परा को शक्ति कहा गया है। भास्करराय कहते हैं कि साधक जिस मुखी होकर श्रीयन्त्र लिखे, वह है—पूर्वा दिक्। उससे प्रदक्षिण क्रम से अन्य सात दिक् को जानना चाहिये। अब ईशान-अग्नि में एक तिर्यक् रेखा खींचे और उभय प्रान्त से दो रेखा खींचकर उसे पश्चिम दिक् में ले जाकर मिलाये। यह है—स्वाभिमुखाग्र त्रिकोण। यही है—शक्ति। **वह्निपुरेण**—अर्थात् वह्निसंज्ञक त्रिकोण। यहाँ पर 'वह्नि' पारिभाषिक शब्द है। शिवानन्द तथा विद्यानन्द 'वह्नि' शब्द का अर्थ करते हैं कि त्रिकोण का पूर्वोक्त शक्ति के विपरीत जो अग्रकोण है, वह है—वह्नि। **विनिर्भिद्य**—भेद करता है। भेद शब्द भी यहाँ पारिभाषिक है। भास्करराय कहते हैं कि एक रेखा के ऊपर अन्य रेखा के आरोहण को कहा जाता है—भेद अथवा भेदन। **सम्पुटीकृत्य**—शिवानन्द के मतानुसार इसका अर्थ है—नवयोनिचक्र जिससे सम्पादित हो, वह करना।

प्रथमतः शक्ति को अकित करे। उसे द्वितीय शक्ति द्वारा भेद करके इन दोनों शक्ति के सम्पुटीकरण के उद्देश्य से वह्नि द्वारा भेदन करने पर मध्यचक्र का विन्यास होता है।

* ऋजुविमर्शिनी *

शक्त्या शक्तिमित्याद्येकादशसूत्रैस्त्रैपुरस्य चक्रराजस्य कर्णिकाप्रस्तारक्रमो लिख्यते। **शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य।** स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणपरम्परायाः शक्तिसंज्ञात्वम्, विपरीताया वह्निसंज्ञात्वमिति समयः। शक्त्याऽन्यया शक्तिमन्यां विनिर्भिद्य भेदितां कृत्वा। अयमर्थः—प्रथममात्माभिमुखां समत्रिरेखां सृष्टिप्रधानामेकां शक्तिं विधाय पुनर्भूतभागीकृताया विमर्शाख्यायास्तस्याः शक्तेः पूर्वतः पाण्यंशं परित्यज्य समनन्तरप्राप्तवामांशपश्चिमदेशे दक्षिणोत्तररेखां विधाय तच्छक्तिस्वीकृतमानं द्विधा कृत्वा एकैकेन मानेन रेखाद्वयं बाह्यतो विकृष्य वह्न्यंशाग्रस्थितप्रथमशक्त्यग्रप्रदेशाद् बहिः पूर्वपरित्यक्तमानदेशेऽग्रं यथा भवति तथा द्वितीयया शक्त्या प्रथमप्रसृतां शक्तिं विनिर्भिद्येति। **भूयो वह्निपुरेण ते सम्पुटीकृत्य।** भूयः पुनः। वह्निपुरेण ऊर्ध्वमुखेन शिवपरमार्थेन संहतिप्रधानेन प्रकाशाख्येन त्रिकोणेन ते पूर्वप्रसृते शक्ती। सम्पुटीकृत्य नवयोनिचक्रं यथा सम्पद्यते

तथा कृत्वेत्यर्थः। अयमत्र क्रमः—प्रथमप्रसृतशक्त्यग्रसंश्लेषक्रमेण द्वितीयशक्त्युदरे दक्षिणोत्तरतो रेखां तच्छक्तिसव्यापसव्याश्रिद्वयाग्रावधि विकृष्य प्रसृतशक्तिद्वयसव्यापसव्यपार्श्वमर्मभेदनक्रमेण प्रथमशक्तिपाश्चात्त्यरेखापार्श्वदेशे पादोनद्वितीयशक्तिप्राग्योनिमाने कोणाग्रं यथा भवति तथा वह्निपुरेण शक्तिद्वयं सम्पुटीकृत्येति। एवं नवयोनिचक्रं सम्प्रदायविहीनानां सुदुर्लभं गुरुवक्त्रात् सम्पन्नम्। नवयोनिचक्रनिर्माणक्रमेऽभियुक्तोक्तिः—

वह्नेः पुरद्वितयवासवयोनिमध्यसम्बद्धवह्निवरुणेशसमाश्रिताश्रि।
देव्यर्चनाय मुनिभिर्विहितं पुरैव लोके सुदुर्लभमिदं नवयोनिचक्रम्।। इति।।
(प्र० सा० ९.१२)

❊ **अर्थरत्नावली** ❊

शक्त्या शक्तिमित्यादि। स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणपरम्परायाः शक्तय इति बहुरूपाष्टकप्रस्तारन्यायेन सङ्केतः कृतः। तद्विपरीताग्रत्रिकोणपरम्पराया वह्निरिति सङ्केतः कृतः। शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्येति प्रथमां शक्तिं द्वितीयया शक्त्या भेदयेदित्यर्थः। भूयः पुनरपि वह्निपुरेण त्रिकोणेन ते पूर्वप्रसृते शक्ती सम्पुटीकृत्य सम्पुटीकरणानुरोधेन भेदयेदित्यर्थः। एवं कृते सति मध्यचक्रविन्यासो भवति। मध्यमचक्रमिदं नवयोनिचक्रं नाम।

❊ **सेतुबन्धः** ❊

इदानीं सुन्दरीतापिन्यां द्वितीयोपनिषदि—'श्रीचक्रं व्याख्यास्यामः' इत्यादि 'चक्रं व्याख्यातम्' इत्यन्तया कण्डिकयोक्तरीतिमनुसृत्यैव सार्धद्वादशभिः श्लोकैः श्रीचक्रलेखनप्रकारमुपदिशति—'शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य' (१.३१) इत्यादिना 'चतुर्द्वारोपशोभितम्' (१.४३) इत्यन्तेन। तत्र श्रीचक्रस्वरूपमवान्तरनवचक्रात्मकमुक्तं यामले—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।। इति।

तन्निरूपणोपयोगिनी परिभाषा चेत्थम्—'यदाशाभिमुखो मन्त्री चक्रराजं समुद्धरेत्' सैव पूर्वा दिक्। तामारभ्य प्रादक्षिण्येनेतराः सप्त दिशः। ईशानाद्याग्नेयपर्यन्तामेकां तिर्यग्रेखां कृत्वा तदीशानाग्रात्तदाग्नेयाग्राच्चाऽऽरभ्य पश्चिमदिक्पर्यन्ते द्वे रेखे समाकृष्य पश्चिमस्यां दिशि ते मेलयेत्। तदिदं स्वाभिमुखाग्रत्रिकोणं भवति। अस्य शक्तिरिति संज्ञा। पार्वत्यादिशब्दा अपि शक्तिपर्यायाः। एवं वायव्यादिनैर्ऋत्यान्तामेकां तिर्यग्रेखां कृत्वा तद्वायव्याग्रात्तन्नैर्ऋत्याग्राच्चाऽऽभ्य पूर्वदिक्पर्यन्ते द्वे रेखे आकृष्य पूर्वस्यां दिशि ते मेलयेत्। तदिदं पराङ्मुखाग्रत्रिकोणं भवति। अस्य वह्निरिति संज्ञा। शिवादिशब्दाश्च वह्निपर्यायाः। शक्तिवह्निपुरयोश्च घटिके पार्श्वरेखे प्रत्येकं वामदक्षिणसंज्ञे। ऊर्ध्वाधोरेखे पूर्वपश्चिमसंज्ञे।

प्राञ्चस्तु—शक्तेरूर्ध्वरेखा पश्चिमरेखा, वह्नेरधोरेखा पूर्वरेखेति व्यवहरन्ति। तत्पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्राचीतिमानस्य श्रीचक्रेऽपवादस्य ज्ञानार्णवादावुक्तस्याज्ञानादित्युपेक्ष्यम्। अत एव शक्तेः कोणत्रयमीशाग्निपश्चिमकोणसंज्ञम्, वह्नेस्तु वायुराक्षसपूर्वकोणसंज्ञम्। एकस्या रेखाया उपरि

रेखान्तरस्याऽऽरोहणं भेदनसंज्ञम्। ईदृशभेदनात्मको रेखाद्वयसंयोगः सन्धिः। तादृश एव रेखात्रयसंयोगो मर्म। सन्धिमर्मणोर्द्वयोरपि ग्रन्थिरिति संज्ञा। शक्तिपश्चिमकोणवह्निपूर्वकोणयोः सम्पर्केण लेखो डमरुः। पूर्णचन्द्राकारा रेखा वृत्तम्। भौमः परिवेषश्च चतुरस्ररेखा भूपुरं यथाकथञ्चित्कोणत्रयं त्रिकोणम्। इति परिभाषा।

अथ बिन्दुत्रिकोणवसुकोणानि त्रीणि चक्राण्याह सार्धपादद्वयेन—आदावेकां शक्तिं विलिख्य तां मध्यभागे तिर्यग्रेखान्तरेण निर्भिद्य भेदकरेखाया ईशाग्निभागाग्रसंश्लिष्टे वामदक्षिणरेखे आकृष्य प्रथमशक्तिपश्चिमकोणात्पश्चिमस्यां दिशि पश्चिमकोणान्तरोत्पादनेन द्वितीयशक्तिं रचयेत्। ततः प्रथमशक्तेः पूर्वस्यां दिश्यारभ्य कोणरचनपूर्वकं तद्वायुराक्षसदिक्पर्यन्ते वामदक्षिणरेखे सन्धिमर्मानुगुणे आकृष्य पूर्वरेखां प्रथमशक्तिपश्चिमकोणसंश्लेषेण विरच्य वह्निपुरं रचयेत्। एवं सत्यष्टसु दिक्ष्वष्टौ त्रिकोणानि मध्यत एकमिति नव त्रिकोणानि षट्सन्धयो द्वे मर्मणी पार्श्वयोर्द्वौ डमरू चेत्याकारः सम्पद्यते। अत्र प्रथमशक्तिवामदक्षिणयो रेखयोर्वह्निवामदक्षिणरेखाभ्यां द्वितीयशक्तिपूर्वरेखया संयोगादुत्तरस्यां दक्षिणस्यां च दिशि विद्यमानौ मर्मणी अन्ये सन्धयः। अत्र मध्यमत्रिकोणस्य मध्यभागे बिन्दुरत्रानुक्तोऽपि चक्रन्यासपूजाप्रकरणादौ वक्ष्यमाणत्वाल्लेख्यः। तेनेदं चक्रत्रयं सम्पन्नम्। प्रथमां शक्तिं द्वितीयया शक्त्या विशेषेण निर्भिद्य भूयः पुनरपि भेदनक्रमेणैव वह्निपुरेण ते पूर्वलिखिते द्वे शक्ती उक्तरीत्या सम्पुटीकृत्येत्यर्थः। शक्तिवह्निशब्दौ च ज्ञानार्णवे सङ्केतितौ—

ईशानादग्निपर्यन्तामृजुरेखां समालिखेत्।
ईशादग्नेस्तदग्राभ्यां रेखे आकृष्य देशिकः।।
एकीकुर्याच्च वारुण्यां शक्तिरेखामतः प्रिये।
त्रिकोणाकाररेखेयं.................................।। इति।
रेखां कृत्वा महेशानि वायुराक्षसकोणगाम्।
रेखे आकृष्य कोणाभ्यां तदग्रात्पूर्वगे कुरु।।
वह्निमण्डलमेतत्तु पूर्वाग्रं वीरवन्दिते।। इति च।

..............सर्वोर्ध्वां शक्तिं विस्तारयेदधः ।।३१।।

अब सर्वोर्ध्व जो शक्ति है, उसका अधः विस्तार करना होगा।।३१।।

सर्वोर्ध्वां शक्तिं—भास्करराय कहते हैं कि उक्त नवयोनिचक्र के मध्य में प्रथम लिखित जो शक्ति है, वह है—सर्वोर्ध्वा शक्ति। **विस्तारयेदधः**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—भेद न करे। केवलमात्र सम्पुटीकरण द्वारा इसे करे। भास्करराय के मत से आलोच्य ढ़ाई चरण में बिन्दु-त्रिकोण तथा अष्टकोण विवृत्त हुआ है।।३१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वोर्ध्वां शक्तिं विस्तारयेदधः। अयमर्थः—नवयोनिचक्रक्रमेण शक्तिद्वयं वह्निपुरं त्रिको-

णत्रयं भवति। तत्र सर्वत्र मध्ये ऊर्ध्वशक्तेः 'शक्त्या शक्तिम्' (१.२९) इत्यत्र द्वितीयानिर्दिष्टशक्तेः पश्चिमरेखया तां दक्षिणोत्तरतो मनागवकृष्य द्वितीयशक्त्यग्रप्रदेशाद् बहिः सत्रिपादतन्मानदेशे तृतीयशक्त्यग्रं यथा भवति तथाऽधो विस्तारयेच्चक्रसम्पुटीकरणक्रमेणेति। अस्मिंश्चक्रराजक्रमे मत्प्रयुक्तानामीषन्मनाक्किञ्चिच्छब्दानां यथासम्प्रदायं मानमिति बोद्धव्यम्। न वयं सर्वत्र मानं विलिखामो ग्रन्थविस्तरभीत्या।।३१।।

※ अर्थरत्नावली ※

सर्वोर्ध्वामिति। उद्धृतनवयोनिचक्रविन्यासे ऊर्ध्वस्थिता या शक्तिस्तामधो विस्तारयेत्। चक्रसम्पुटीकरणेनैव भेदनं विनैवेत्यर्थः।।३१।।

※ सेतुबन्धः ※

अथान्तर्दशारलेखनोपायमुपदिशति सर्वोर्ध्वामित्यारभ्य शक्तिमाद्यां विभेदयेदित्यन्तेनावशिष्टसार्धश्लोकद्वयेन—अस्मिन्नवयोनिचक्रे या प्रथमलिखिता शक्तिः सैव सर्वोर्ध्वा। तस्या अधः पश्चिमभागे विस्तारणं नाम तदीयपूर्वरेखाग्रद्वयादारभ्य वामदक्षिणरेखयोरपकर्षपूर्वकं पश्चिमस्यां दिशि मेलनम्। तच्चेह सिद्धमेवेति पुनर्विधिवैयर्थ्यापत्त्याऽन्यत्किञ्चिदाक्षिप्यते। तदीयपूर्वरेखाग्रद्वयमीशानाग्निदिशोराकर्षणेनाभिवर्ध्य ततो जाताभ्यामभिनवाग्राभ्यां कोणनिर्माणपूर्वकं वामदक्षिणरेखान्तरे अधोऽपकृष्य द्वितीयशक्तिपश्चिमकोणात्पश्चिमस्यां दिशि मेलयेदिति। इदं चेदृशविस्तारणस्य शक्तिजनकत्वादध्वर्युं वृणीत इत्यादौ वरणेनाध्वर्युं कुर्यादित्यर्थवच्छक्तिं विस्तारयेदित्यस्य विस्तारेण शक्तिं कुर्यादित्यर्थमभिप्रेत्य सर्वोर्ध्वशक्तिविस्तारेण शक्त्यन्तरं कुर्यादित्यर्थमङ्गीकृत्य, शक्तिपदस्य वारद्वयमन्वयस्तु न दुष्यत्येव। सेयं शक्तिर्नवयोनिचक्रस्य पौरस्त्यत्रिकोणमात्रं परित्यज्येतरत्सर्वं गर्भीकरोतीति स्थितिः।।३१।।

तथैव वह्निचक्रेणतामेवोर्ध्वं विभेदयेत्।
तत ऊर्ध्वस्थितां शक्तिमूर्ध्वं विस्तारयेत्क्रमात्॥३२॥
पुनराद्यं वह्निचक्रमधो विस्तार्य सुन्दरि।
ग्रन्थिभेदक्रमेणैव शक्तिमाद्यां विभेदयेत्॥३३॥

इस प्रकार से वह्नि चक्र द्वारा उसे अर्थात् प्रथमलिखिता शक्ति को ऊपर की ओर भेद करे। तदनन्तर ऊर्ध्वस्थिता शक्ति का क्रम से ऊर्ध्व में विस्तार करे।

भास्करराय कहते हैं कि इससे ऊर्ध्व में डमरुविशिष्ट षट्कोण इष्ट होता है। यहाँ डमरु पारिभाषिक शब्द है। इनका कथन है कि शक्ति के पश्चिम कोण तथा वह्नि के पूर्व कोण के संयोग से डमरु का अंकन होता है।

हे सुन्दरि! पुनः आदि वह्निचक्र के अधः का विस्तार करे। ग्रन्थि-भेदन क्रम में आदि शक्ति का भेद करना होगा (इस प्रकार की भेदनात्मक रेखाद्वय के संयोग को कहते हैं—सन्धि तथा रेखात्रय के संयोग को कहते हैं—मर्म। सन्धि तथा मर्म—दोनों को ही ग्रन्थि कहा गया है)।

आद्यं वह्निचक्रम्—प्रथम-लिखित वह्निचक्र को। **शक्तिमाद्यां**—प्रथम-लिखित शक्ति को। भास्करराय के मत से श्लोक ३१ के उत्तरार्ध से लेकर श्लोक ३३ तक में अन्तर्दशार का लेखन क्रम कहा गया है।।३२-३३।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

तथैव वह्निचक्रेण तामेवोर्ध्वं विभेदयेत्। अस्यायमर्थः—नवयोनिचक्रविन्यासे स्थितं यद्वह्निचक्रं तद् दक्षिणोत्तरतः किञ्चिदवकृष्यानन्तरप्रसृतशक्तिसव्यापसव्याश्रिभेदनक्रमेण तत्पूर्वप्रसृतशक्तिद्वयसव्यापसव्याश्रिद्वयाग्रसंश्लेषक्रमेण पूर्वस्थितवह्न्यग्रकोणसम्पुटक्रमेण तद्वह्न्यग्रप्रदेशाद् बहिः पादोनगुणिततन्मानदेशे द्वितीयं वह्न्यग्रं यथा भवति तथा तां शक्तिं तेन वह्निचक्रेण भेदयेदिति। **तत ऊर्ध्वस्थितां शक्तिमूर्ध्वं विस्तारयेत् क्रमात्।** अयमर्थः—ऊर्ध्वशक्त्यपरभागाश्रयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं मनागूर्ध्वं प्रथमवह्न्यग्रभागावधि समाकृष्य द्वितीयवह्निं विस्तारयेद् विकासयेद् भेदयेदिति यावत्। क्रमादिति पदं रेखाद्वयोर्ध्वाकर्षणं तदेकीकरणं च सूचयति। विस्तारयेदित्याख्यातपदमपि तथा। **पुनराद्यं वह्निचक्रमधो विस्तार्य सुन्दरि। ग्रन्थिभेदक्रमेणैव शक्तिमाद्यां विभेदयेत्।** अस्यायमर्थः—आद्यवह्निचक्रपश्चिमरेखाद्वयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं ग्रन्थिभेदक्रमेण मध्यशक्त्यग्रप्रदेशावधि अधस्ताद्विकृष्य प्रसृतानां तिसृणां शक्तीनां मध्ये आद्यां शक्तिं बाह्यां शक्तिं भेदयेदिति। एवमन्तर्दशारनिष्पत्तिर्भवति। **तथा सर्वोर्ध्ववह्न्यन्तः शक्तिं विस्तारयेदधः।** अयमर्थः—प्रथमप्रसृतप्रथमदशारोर्ध्ववह्न्यन्तः स्थितशक्त्यपरभागरेखां दक्षिणोत्तरतो मनाग् विकृष्य सर्वचक्रसम्पुटक्रमेण पूर्वप्रसृतवह्निद्वयसव्यापसव्यपार्श्वद्वयाश्रिचतुष्टयाग्रसंश्लेषक्रमेण तृतीयशक्त्यग्रप्रदेशाद् बहिः सकलैकांशतन्मानदेशे चतुर्थशक्त्यग्रं यथा भवति तथाऽधस्ताद् विस्तारयेद् विकासयेदिति।।३२-३३।।

※ अर्थरत्नावली ※

तथैव वह्निचक्रेण तामेवोर्ध्वं विभेदयेदित्यस्यायमर्थः—नवयोनिचक्रविन्यासे स्थितो यो वह्निस्तं दक्षिणोत्तराशाक्रमेण मनाग् विस्तार्य पूर्वप्रसृतशक्तिभेदक्रमेण चक्रसम्पुटक्रमेण च ग्रन्थिसंस्पर्शानुरोधेन स्वाग्रवह्निसम्पुटन्यायेन विस्तारयेदित्यर्थः। तत इत्यारभ्य ऊर्ध्वं विस्तारयेदित्यन्तस्यायमर्थः—एवं विन्यासे कृते शक्तित्रयं वह्निद्वयं च सम्पद्यते। ततश्चाधःशक्तिमध्यशक्तिपरिहारेणोर्ध्वशक्त्यपरभागाश्रिस्थं तत्सव्यापसव्यरेखाद्वयं मनागूर्ध्वं सर्वोर्ध्ववह्निमध्यप्रदेशावधि विस्तारयेदित्यर्थः। क्रमादित्यनेन पदेनैतत्सिद्धम्। प्रथमशक्तिद्वयभेदकत्वेन विन्यस्तो यो वह्निरसौ प्रस्तारवशात् सर्वोर्ध्ववह्निरभवत्। तस्य मध्यप्रदेशावधि विस्तृते ये रेखे ताभ्यां तमूर्ध्ववह्निं भेदयेदित्यर्थः। पुनराद्यमित्यारभ्य शक्तिमाद्यां विभेदयेदित्यन्तस्यायं भावः—एवं विन्यासे कृते वह्निद्वयमस्तीत्युक्तम्। प्रागुद्धृतोर्ध्ववह्निपरिहारेणाधोवह्न्यपरभागाश्रिस्थसव्यापसव्यरेखाद्वयं मध्यशक्त्यग्रप्रदेशावधि बाह्याद्यशक्तिरेखाविदलनक्रमेण मनाग् विस्तार्याभ्यां शक्तिं भेदयेदित्यर्थः। एवं कृते सति नवयोनिचक्राद् बहिः परिवेषक्रमेण दशयोन्यात्मकं चक्रान्तरं भवतीत्यर्थः। तथेत्यारभ्य विस्तारयेदित्यन्तस्यायमर्थः—नवयोनिगर्भदशयोनिचक्रस्योर्ध्वे स्थितो

यो वह्निस्तस्याश्रिस्थितशक्त्यपरभागाश्रिस्थरेखां दक्षिणोत्तरतो मनाक् प्रस्तार्य सर्वचक्रसम्पुटन्यायेन ग्रन्थिसंश्लेषक्रमेण पूर्वप्रस्तारितायाः शक्तेरेव परभागाश्रिद्वयविदलनक्रमेण चाधो विस्तारयेदित्यर्थः।।३२-३३।।

* **सेतुबन्धः** *

ततो यथा तावदनया शक्त्या नवयोनिचक्रस्य गर्भीकारस्तिर्यग्रेखाविस्तारादिना कारितस्तथैव वह्न्यात्मकेन चक्रेण त्रिकोणेनापि तद्गर्भीकारः करणीयः। वह्नेः पश्चिमरेखाग्रद्वयं वायुराक्षसदिशोराकर्षणेनाभिवर्ध्य ततो जाताभ्यामग्रान्तराभ्यां कोणनिर्माणपूर्वकं वामदक्षिणरेखान्तरे ऊर्ध्वमाकृष्य वह्निपूर्वकोणात्पूर्वस्यां दिशि मेलयेत्। सोऽयं वह्निर्नवयोनिचक्रस्य पाश्चात्यमेकं त्रिकोणं परित्यज्येतरत्सर्वं गर्भीकरोतीति यावत्। अस्मिन् वह्नौ यः शक्तितो विशेषस्तमाह—**तामेवेति।** तां पूर्वलिखितां शक्तिं विशेषेण भेदयेत्। वह्निवामदक्षिणरेखाभ्यां शक्तिवामदक्षिणरेखाद्वयं शक्तिपूर्वरेखां च भेदयन् ऊर्ध्वं विस्तारयेदित्यर्थः। तेनेदमुभयपार्श्वयोर्डमरुविशिष्टं षट्कोणं भवति। नवयोनिचक्रान्तर्गततिर्यग्रेखात्रय आद्यन्तरेखे अभिवर्ध्य षट्कोणं कुर्यादिति तु फलितोऽर्थः। यद्यप्यादावेव वह्निमूर्ध्वं विस्तार्य शक्तेरधोविस्तारे क्रियमाणे शक्तिरेव वह्निं भिनत्तीति विपरीतो विशेषस्तथाऽपि चक्रपूजारम्भे वक्ष्यमाणं चक्रलेखनमनेनैव क्रमेणानुष्ठेयं नियमादृष्टानुगुण्यायेतिद्योतनार्थ एवकारः। तेन शक्त्या वह्निभेदनस्य नखविदलनादेरिवानुष्ठानं फलति। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्।

षट्कोणनिर्माणानन्तरं सर्वोर्ध्वपदेनोक्तां प्रथमशक्तिमूर्ध्वं विस्तारयेत्। यथा तावदधोविस्तारोऽस्याः पूर्वरेखाभिवर्धनेन कृतस्तथोर्ध्वविस्तारो वामदक्षिणरेखयोरीशाग्निदिगभिमुखमभिवर्धनेन पूर्वरेखान्तरस्य तत्र लेखनेन च कार्यः। रेखयोरभिवृद्धेरवधिस्तु प्रथमवह्नेः पूर्वकोण एव। तेन पूर्वरेखान्तरस्य प्रथमवह्निपूर्वकोणाग्रसंश्लेषो भवति। एवमन्यत्राप्यवधिरुन्नेयः। तेन शक्तिलेखने हि तन्त्रान्तरे क्रमो विहित ईशानमारभ्य प्रादक्षिण्येनेशानान्तमिति। वामदक्षिणभागयोर्न्यासादिप्रसक्तावादौ दक्षस्ततो वाम इत्यपि क्रमस्तत्र तत्र विहितः। तेनेहाऽऽदौ दक्षरेखामाग्नेयेऽभिवर्ध्य पश्चाद्वामरेखामीशानेऽभिवर्ध्येशानादाग्नेयान्तं पूर्वरेखां लिखेदितिद्योतनायोक्तं क्रमादिति। अर्थरत्नावलीकारस्तु—'प्रथमवह्नेः पूर्वदिशि स्थितस्य वह्न्यन्तरस्य भेदनं क्रमपदेनोच्यत' इति व्याचख्यौ, ऋजुविमर्शिनीकारस्तु—'रेखाद्वयाभिवृद्धेरुक्तरूपोऽवधिः क्रमपदेन कथ्यत' इत्याह। पुनः प्रथमशक्तेरूर्ध्वविस्तारवदेवाऽऽद्यं प्रथमलिखितं वह्निचक्रमधो विस्तार्य वह्नेर्दक्षरेखां राक्षसकोणे वामरेखां च वायुकोणे द्वितीयशक्तिपश्चिमकोणावध्यभिवर्ध्य राक्षसाद्वाय्वन्तं पश्चिमरेखां विलिख्य विरमेतेत्यर्थः। सुन्दरीति देव्याः संबुद्धिः। अत्र प्रथमशक्तेरूर्ध्वविस्तारवदेव प्रथमवह्नेरधोविस्तारस्य पुनरितिपदेन विस्तार्येतिपदेन च वर्णनेनैव सिद्धौ ग्रन्थिभेदक्रमेणेत्युत्तरार्धं व्यर्थमिवाऽऽभाति।

प्राञ्चस्तु—अस्मिन्नन्तर्दशारप्रस्तारे तिस्रः शक्तयो द्वौ वह्नी च सन्ति। तत्र सर्वाधःस्थिता शक्तिराद्यशक्तिरुच्यते। प्रथमवह्न्यधोविस्तारदशायां लिख्यमानेन पश्चिमरेखान्तरेण तस्या आद्य-

शक्तेर्भेदनमुत्तरार्धेनोच्यत इति तत्सार्थक्यमाहु:। तन्नातीव चमत्कृतम्। प्रथमशक्त्युर्ध्वविस्तारदशायां लिख्यमानपूर्वरेखान्तरेण सर्वोर्ध्ववह्निभेदनस्य कण्ठरवेण पृथक्कथनादर्शनात्। शक्तित्रये जातेऽप्यूर्ध्वशक्तेरेवाऽऽद्यपदेनोपस्थितेश्च। तस्मादन्तर्दशारारम्भे लिखिता या शक्ति: सैवेहाऽऽद्यपदेनोच्यत इति न सर्वोर्ध्वशक्तेराद्यपदेन परामर्श:। तस्या: प्रकृतदशाराद्यावयवत्वाभावात्। अस्यां चाऽऽद्यशक्तौ पूर्वरेखायां द्वे मर्मणी। वामदक्षिणरेखयोश्च द्वे मर्मणी। तेषु प्रथमे द्वे प्रथमशक्तिविस्तारेणोत्पन्ने। द्वितीये द्वे प्रथमवह्निविस्तारेणेत्येतदर्थं विस्तारविधिद्वयस्य विशेषत्वेन व्याख्येयम्। ग्रन्थय: सन्धयस्तेषां चतुर्णां भेदो मर्मतया परिणामस्तेन क्रमेण प्रकारेणाऽऽद्यानन्तर्दशाराद्यावयवभूतां शक्तिं भेदयेदित्यर्थ:। अथवा, आद्यं वह्निचक्रमित्यस्य द्विरन्वय:। तत्रैकं पूर्ववदेव व्याख्यायोर्ध्वाधोविस्ताराभ्यां क्रमादाद्यं सर्वोर्ध्वं वह्निचक्रमाद्यां सर्वाधस्तनीं शक्तिं च भेदयेदित्यर्थौ वर्णनीय:। अस्मिन् पक्षे ग्रन्थिभेदक्रम: सन्ध्युत्पत्तिक्रम एवेति। इत्यन्तर्दशारनिष्पत्ति:।।३२-३३।।

तथा सर्वोर्ध्ववह्न्यन्त:शक्तिं विस्तारयेदध: ।
तामादिचक्राध:शक्तिवह्निनोर्ध्वं विभेदयेत् ।।३४।।
तत: पूर्ववदेवाऽऽद्यां शक्तिं विस्तार्य भेदयेत् ।
ऊर्ध्ववह्निमधोवह्निमध्यवह्निविवर्जितम् ।।३५।।
विस्तार्य भेदयेच्छक्तिमधस्तादाद्यवह्निना ।

सर्वोर्ध्व वह्नि के अन्त:स्थित शक्ति को अध: प्रसारित करे। आदिचक्र के अध:स्थ इस शक्ति का वह्नि द्वारा ऊर्ध्व में भेदन करे। तदनन्तर पहले की तरह सर्वप्रथम शक्ति को प्रसारित करे। उसके द्वारा अधोवह्नि तथा मध्यवह्नि को छोड़कर चक्र के ऊर्ध्व भाग में स्थित वह्नि का भेदन करना चाहिये। अब आदि वह्नि को अध: में प्रसारित करके उसके द्वारा शक्ति का भेद करे।।३४-३५।।

सर्वोर्ध्ववह्न्यन्त: शक्तिं—विद्यानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं कि नवयोनिगर्भ जो दश योनिचक्र है अर्थात् अन्तर्दशार के ऊर्ध्व में स्थित जो वह्नि है, उसके अग्रभागस्थ शक्ति को। **आदिचक्राध: शक्ति**—शिवानन्द के मत से आदि चक्र है नवयोनिचक्र। उससे अध: स्थिता जो शक्ति है, उसे।।३४-३५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तामादिचक्राध:शक्तिं वह्निनोर्ध्वं विभेदयेदिति। ताम् अनन्तरप्रसृतां शक्तिम्। अयमर्थ:—आदिचक्रं नवयोनिचक्रम्। तस्माच्चक्रादध: स्थिता या शक्ति: प्रथमदशारचक्रगता, तत्र स्थितो यो वह्निस्तस्यापरभागरेखां दक्षिणोत्तराशाक्रमेणेषदवकृष्य तां सव्यापसव्याश्रिभेदनक्रमेण प्रथमदशारापरभागशक्तिद्वयसव्यापसव्यपार्श्वद्वयाश्रिचतुष्टयाग्रसंश्लेषक्रमेण द्वितीयवह्न्यग्रप्रदेशाद् बहि: सतृतीयांशतन्मानदेशे तृतीयवह्न्यग्रं यथा भवति तथोर्ध्वं विभेदयेदिति।

पुन: पूर्ववदेवाद्यां शक्तिं विस्तार्य भेदयेत्। **ऊर्ध्ववह्निमधोवह्निमध्यवह्निविवर्जितम्।** पूर्ववत् प्रथमदशारषडश्रनिष्पत्त्यनन्तरं यथैतत्सन्निवेशक्रमस्तद्वदित्यर्थ:। अधोवह्निमध्यवह्निविवर्जितं यथा भवति तथा कृत्वा ऊर्ध्ववह्निं भेदयेद् विदलयेदित्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—आद्यतया स्थितोर्ध्वशक्त्यपरभागाश्रयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं तन्मर्मद्वयभेदनक्रमेण मध्यवह्न्यग्रप्रदेशादूर्ध्वं विकृष्य पुनस्तिर्यक्तयोर्ध्ववह्निं भेदयेद् विदलयेदिति। अधोवह्निमध्यवह्निविवर्जितमित्युक्त्या वह्नित्रयास्तित्वकथनं कृतम्। न त्वधोवह्नि 'मध्यवह्निभेदप्रसङ्गो भवति। प्रसक्त्यभावे प्रतिषेधमात्रं कृतम् दिव्यग्निचयनादिवत्। **विस्तार्य भेदयेच्छक्तिमधस्तादाद्यवह्निना।** विस्तार्य विकास्य। आधवह्निना अधस्ताच्छक्तिं विभेदयेदित्यन्वय:। अयमर्थ:-—आघवह्न्यपरभागाश्रयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं मर्मद्वयभेदनक्रमेण तृतीयशक्त्यग्रप्रदेशावध्यधस्ताद्विकृष्य पुनस्तिर्यक्तयाऽधस्ताच्छक्तिं विभेदयेदिति। अधस्ताच्छब्दस्तन्त्रोच्चारित:। एवं द्वितीयदशारनिष्पत्तिर्भवति।।३२-३४।।

※ अर्थरत्नावली ※

तामित्यारभ्य विभेदयेदित्यन्तस्यायमर्थ:—आदिचक्रं नवयोनिचक्रम्। तस्य चक्रस्याध: स्थिता या शक्तिर्दशयोनिचक्रगता तस्या मध्यस्थितो यो वह्निस्तस्य पश्चिमरेखां दक्षिणोत्तराशानुक्रमेणेषद्विकृष्यतामिति। चक्रसम्पुटन्यायेन पूर्वप्रस्तारिताया: शक्तेरपरभागाश्रिद्वयविदलनक्रमेण ग्रन्थिसंश्लेषक्रमेण चोर्ध्वं विस्तारयेदित्यर्थ:। एवं कृते नवयोनिगर्भदशयोनिचक्राद् बहि: परिवेशक्रमेण षट्कोणं भवति। पुन: पूर्ववदित्यारभ्य ऊर्ध्ववह्निमित्यन्तस्यायमर्थ:—पूर्ववदिति प्रथमदशारप्रस्तारे षट्कोणविस्तारानन्तरमध:शक्तिमध्यशक्तिपरिहारेणाद्यतयावस्थितोर्ध्वशक्तिसव्यापसव्यरेखाद्वयोर्ध्वतिर्यक्प्रस्तारेणोर्ध्ववह्निर्भेदितो यथा तथा द्वितीयदशारप्रस्तारावसरेऽपि षट्कोणरचनानन्तरमध:शक्तिमध्यशक्तिद्वयपरिहारेणाद्यतया स्थितोर्ध्वशक्तिसव्यापसव्यरेखाद्वयमूर्ध्ववह्निपुरान्तरस्थवह्न्यग्रप्रदेशावधि ऊर्ध्वं विस्तार्य पुनस्तिर्यक्प्रस्तारक्रमेणोर्ध्वं वह्निं विभेदयेदित्यर्थ:। अधोवह्नीत्यारभ्य आद्यवह्निनेत्यन्तस्यायमर्थ:—एवं विन्यासे कृते वह्नित्रयं भवति। चक्रमध्यस्थाश्चतस्र: शक्तयो भवन्ति। तत्राद्यमध्यवह्निद्वयं वर्जयित्वाऽधोवह्निसव्यापसव्यरेखाद्वयमधस्ताद् बाह्यशक्त्यन्त:स्थितशक्त्यग्रप्रदेशावधि विस्तार्य बाह्यशक्तिं भेदयेदिति। एवं विन्यासे कृते द्वितीयदशारं भवति।।३२-३४।।

※ सेतुबन्ध: ※

अथ बहिर्दशारलेखनोपायमुपदिशति तथा सर्वोर्ध्वेत्यारभ्याऽऽद्यवह्निनेत्यन्तेन सार्धश्लोकद्वयेन। यथा तावदन्तर्दशारनिष्पत्त्यर्थं स्वस्मादादिचक्रे नवयोन्याख्ये विद्यमानानां तिसृणां तिर्यग्रेखाणां मध्ये प्रथमचरमतिर्यग्रेखयोस्तिर्यगेवाभिवर्धनादिना षट्कोणं निष्पाद्य तत्र तिर्यग्रेखासंसृष्टवामदक्षिणरेखाद्वये विदिक्ष्वभिवर्धनादिना कोणचतुष्कमधिकं कृत्वा दशारता सम्पादिता तथैव बहिर्दशारनिष्पत्त्यर्थमपि स्वादिचक्रेऽन्तर्दशारे विद्यमानानां पञ्चानां तिर्यग्रेखाणां मध्ये प्रथमचरमयो: सर्वोर्ध्वसर्वाध:स्थितयोस्तिर्यग्रेखयोरेव दक्षिणोत्तरदिगभिमुखमभिवर्धनादिना षट्कोणं विधाय तत्तत्तिर्यग्रेखासंसृष्टवामदक्षिणरेखाद्वितये विदिक्ष्वभिवर्ध्य कोणद्वितये सम्पादनीये

इत्याकारको दशारद्वयानुगमस्तथेतिपदेनोक्तः। एवं सामान्येनोक्त्वा विशिष्याऽऽह—**सर्वोर्ध्वेत्यादि।** सर्वं बिन्द्वाद्यन्तर्दशारान्तं चिकीर्षितप्रकृतचक्रादादिभूतं चक्रं तस्योर्ध्वो यो वह्निर्वह्निपुरस्थपूर्वकोणस्तस्यान्तर्मध्ये प्रथमवह्निद्वितीयवह्न्योर्मध्य इति यावत्। तत्र विद्यमाना या शक्तिः शक्तिपुरस्थपूर्वरेखा तामधः सर्वाधःस्थितशक्तिपश्चिमकोणाधोभागपर्यन्तं विस्तारयेत्। प्रथमशक्तेः पूर्वरेखान्तरं दक्षिणोत्तरदिशोराकृष्य तत्राऽऽग्नेयैशानकोणोत्पादनपूर्वकं वामदक्षिणरेखे निष्पाद्य सर्वाधोमेलनेन शक्त्यन्तरं निष्पादयेदित्यर्थः। **तामिति।** आदिचक्रस्यान्तर्दशारान्तस्याधो या शक्तिः शक्तिपुर-स्थपश्चिमकोणस्तस्यां यो वह्निस्तन्मध्यस्थितं यत्प्रथमवह्निपश्चिमरेखान्तरं तेन तामव्यवहितपूर्वलिखितां शक्तिमूर्ध्वं सर्वोर्ध्वस्थितवह्निपूर्वकोणोर्ध्वभागपर्यन्तं विभेदयेत्, विस्तार्य भेदयेत्। अन्तर्दशारस्य सर्वाधःस्थितशक्तिपश्चिमकोणाव्यवहितपूर्वां तिर्यग्रेखां दक्षिणोत्तरयोरभिवर्ध्य तदग्राभ्यां वामदक्षिणरेखे ऊर्ध्वमाकृष्य बहिर्दशाराद्यशक्तेर्वामदक्षिणरेखे ताभ्यां भेदयन् सर्वोर्ध्वं तयोर्मेलनेन वह्न्यन्तरं रचयेदित्यर्थः। तदिदं षट्कोणं भवति।।३४।।

ततः षट्कोणनिर्माणानन्तरं पूर्ववदेवान्तर्दशारस्थषट्कोणोत्तरमिवाऽऽद्यां सर्वप्रथमां शक्तिं विस्तार्य वामदक्षिणरेखयोरीशाग्निदिशमभिमुखमभिवृद्धिं प्रापय्योर्ध्ववह्निं चक्रोर्ध्वभागे स्थितं वह्निं भेदयेत्। पूर्वरेखान्तरनिर्माणेनेति यावत्। पुनः पूर्ववदेवेति केषाञ्चित्पाठः। तत आद्यवह्निना सर्वप्रथमवह्निना विस्तार्य तदीयवामदक्षिणरेखे वायुराक्षसदिशोरभिवर्ध्य स्थापितेनेति शेषः। अधस्ताच्छक्तिं सर्वाधःस्थितं शक्तिपश्चिमकोणभागं भेदयेत्। अभिवर्ध्य स्थापितस्य वह्नेः पश्चिमरेखान्तरनिष्पादनेनेति यावत्। अधोवह्निमध्यवह्निविवर्जितमिति पदं त्ववशिष्टम्। तदिदं वाक्यद्वयमध्यभागे पठितत्वात् केचित्पूर्ववाक्यशेषत्वेन, अन्ये उत्तरवाक्यशेषत्वेन व्याचक्षाणा विवदन्ते। तत्र शिवानन्दनाथादयस्तावदाहुः—पूर्ववाक्ये ऊर्ध्ववह्नेर्भेदनमुक्तम्। तद्दार्ढ्याय मध्यवह्न्यधोवह्न्योर्भेदनं निषिध्यते। प्रथमशक्तिवामदक्षिणरेखाभ्यां मध्यवह्निपूर्वकोणावधिविस्तारिताभ्यां तयोर्भेदनस्यासम्भवेऽपि 'नान्तरिक्षे न दिव्यग्निश्चेतव्यः' इतिवदप्रसक्तप्रतिषेध एवायं वह्नित्रयास्तित्वबोधनमात्रफलक इति। विद्यानन्दनाथादयस्तु—उत्तरवाक्ये विस्तार्येत्यस्य कर्मसापेक्षत्वादाद्यवह्निनेति तृतीयान्तस्य तदन्वयायोग्यत्वादव्यवहितपूर्वत्वेनोपस्थितमिदमेव पदं तत्रान्वेति। तत्राधोवह्निशब्दः सर्वोर्ध्ववह्निपरः, अस्यैव चक्रस्य विपर्यासेनावलोकने सर्वोर्ध्वतनस्यापि सर्वाधस्तनत्वसम्भवात्। तेनोर्ध्वमध्यवह्निभिन्न आद्यवह्निरेवेति प्रथमवह्निं विस्तार्येत्यर्थः सम्पद्यत इत्याहुः। तदुभयमपि चिन्त्यम्। क्रियान्वयिनो नञोऽभावेन प्रतिषेधायोगात्। अधःशब्दस्य शक्यार्थविपर्यये लक्षणाया अयुक्तत्वात्। तस्मादूर्ध्ववह्निपदस्याधोवह्नीत्यादि विशेषणम्। ऊर्ध्वपदं चक्रोर्ध्वपरम्। ततश्च त्रयाणामपि वह्नीनां नवयोनिचक्रान्तर्दशारचक्रबहिर्दशारचक्रोर्ध्वत्वादविशेषेण ग्रहणे प्राप्तेऽधोवह्निमध्यवह्निभिन्नत्वं विशेषणम्। तत्तत्प्रतियोगिकभेदवत्त्वं तदर्थः। न त्वधोवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वादिकम्। अत एव मध्यवह्निवारणाय तद्भेदोऽपि निवेशितः। न च मध्यवह्निपूर्वकोणावधिविस्तृतरेखाभ्यामन्ययोर्भेदनासम्भवादेव निरासे विशेषणवैयर्थ्यं शङ्क्यम्। आद्यशक्तिभेद्यत्वस्य त्रिष्वप्यविशेषेण सत्त्वात्। न चान्ययोराद्यशक्त्या

भेदनस्य पूर्वमेव वृत्तत्वान्नेदानीं तत्प्रसक्तिरिति वाच्यम्। भिन्नयोरपि पूर्वरेखानुयायिरेखान्तरेण द्विर्द्विर्भेदनसम्भवात्। प्रत्युत पुनः पूर्ववदेवेतिपदानां द्विर्भेदन एवानुगुणत्वात्। सति त्वधोमध्य-वह्निभिन्नत्वविशेषणे तद्बलादेव हि बहिश्चक्रस्य दशारत्वसिद्धिरिति समञ्जसम्। इति बहिर्दशार-निष्पत्तिः।।३५।।

ततो मध्यादिशक्त्यूर्ध्वं शक्तिं विस्तारयेदधः ।।३६।।
तथैव सम्पुटीकुर्यात् सर्वचक्रं सुरेश्वरि ।
तां च तेन महेशानि वह्निचक्रेण भेदयेत् ।।३७।।
ग्रन्थिभेदक्रमेणैव सर्वोर्ध्वं सर्वबाह्यतः ।
मध्योर्ध्वशक्तिपर्यन्तमादिशक्त्यवधि प्रिये ।।३८।।

तत्पश्चात् मध्यादि शक्ति के ऊर्ध्वस्थित शक्ति को अधः प्रसारित करे।।३४-३६।।

मध्यादिशक्त्युर्ध्वशक्तिं—विद्यानन्द के मत से प्रथमलिखिता आदिशक्ति श्रीचक्र-रचना के फल से वह समस्त चक्रों के मध्य में हो जाती है। अतः मध्यशक्ति है वह आदिशक्ति। भास्करराय के मतानुसार श्लोक ३४ से लेकर श्लोक ३६ के पूर्वार्द्धपर्यन्त २.५ श्लोक में बहिर्दशार लेखन उपाय उपदिष्ट है। हे सुरेश्वरि! पूर्वोक्त प्रसारित शक्ति द्वारा अधोभागस्थ चक्र को सम्पुटीकृत करना होगा। हे महेशानि! उस शक्ति का उस वह्निचक्र द्वारा भेदन करे। हे प्रिये! ग्रन्थिभेद-क्रम से इसे ऐसे करना होगा, जिससे वह्नि सर्वोर्ध्व तथा सर्वबाह्य हो जाय। इसे आदिशक्ति से लगाकर मध्योर्ध्व शक्ति-पर्यन्त रेखा खींचकर करना होगा। **तां**—विद्यानन्द के मत से 'तां' का तात्पर्य है—चक्रसम्पुट न्यास से अधः प्रसारिता जो शक्ति है। भास्करराय के मत से सम्प्रति अभिवर्द्धित बहिर्दशार—आरम्भक षट्कोण-घटक शक्ति। **तेन**—भास्करराय के अनुसार षट्कोणघटक द्वारा। **सर्वबाह्यतः**—शिवानन्द तथा विद्यानन्द के मत से सर्वचक्र कवलन क्रम से उक्त शक्ति सर्वबाह्य होगी।।३६-३८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

ततो मध्यादिशक्त्यूर्ध्वशक्तिं विस्तारयेदधः। तथैव सम्पुटीकुर्यात् सर्व चक्रं सुरेश्वरि। ततः पश्चात्। मध्यादिशक्त्यूर्ध्वशक्तिः मध्यशक्तिश्चासावादिशक्तिश्चेति मध्यादिशक्ति-स्तस्या ऊर्ध्वशक्तिर्मध्यादिशक्त्यूर्ध्वशक्तिस्तां विस्तारयेद् विकासयेत्। अधः अधस्तात्। अय-मर्थः—महामध्यशक्तेरूर्ध्वभागे स्थिता या शक्तिस्तस्याः पश्चिमरेखा आद्यवह्न्यग्रभागगा या तां दक्षिणोत्तरतो मनाग् विकृष्य चतुर्थशक्त्यग्रप्रदेशाद् बहिस्तन्मानदेशे पञ्चमशक्त्यग्रं यथा भवति तथाऽधस्ताच्चक्रं सम्पुटीकुर्यादिति। एवं मध्यात् प्रभृत्यधोऽधः क्रमेण पञ्च शक्तयः प्राप्ताः। तां च तेन महेशानि वह्निचक्रेण भेदयेत्। ग्रन्थिभेदक्रमेणैव सर्वोर्ध्व सर्वबाह्यतः। मध्योर्ध्व-शक्तिपर्यन्तमादिशक्त्यवधि प्रिये। तां शक्तिं भेदयेत् विदलयेत्। सर्वोर्ध्वं यथा भवति तथा

चतुर्थवह्न्यग्रं यथा भवति तथा कृत्वेत्यर्थः। पर्यन्तावधिशब्दौ मर्यादावचनौ। एतदुक्तं भवति— यद्वह्निचक्रं द्वितीयदशारं प्रस्तारक्रमेणैतामेव शक्तिमभिनत् तेन वह्निचक्रेणेदानीं भासमानवह्निपुरत्रयबाह्यवह्निपुरपश्चिमरेखां दक्षिणोत्तरतो विकृष्य भेद्यशक्त्यश्राग्रावधि तदश्रद्वयविदलनद्वारेण तत्तत्स्थानगताश्रचतुष्टयमर्यादाविन्यासक्रमेण सर्वचक्रकवलनक्रमेण च तृतीयवह्न्यग्रप्रदेशाद् बहिस्तन्मानदेशे तुरीयाग्निकोणं यथा भवति तथा तां शक्तिं तेन वह्निचक्रेण विदलयेदिति।।३६-३८।।

✻ अर्थरत्नावली ✻

तत इत्यारभ्य विस्तारयेदित्यन्तस्यायमर्थः—ततोऽनन्तरं मध्या चासावादिश्चेति मध्यादिशक्तिस्तस्या ऊर्ध्वशक्तिर्मध्यादिशक्त्यूर्ध्वशक्तिस्तां विस्तारयेत् प्रस्तारयेत्। **अधः अधोभागं प्रतीति।** कोऽर्थः? समस्तचक्रस्यादौ 'शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य' (१.२९) इत्यत्र द्वितीयशक्तिनिर्भेद्यत्वेनोक्ता या प्रथमा शक्तिः सा आद्या शक्तिः। सैव रचनावशात् समस्तचक्रमध्यशक्तिः संवृत्ता। तस्या अनन्तरोर्ध्वशक्तिपश्चिमरेखां दक्षिणोत्तराशानुबन्धतयेषद्विकृष्याधो विस्तारयेदित्यर्थः। तथैवेत्यारभ्य सुरेश्वरीत्यन्तस्यायमर्थः—तथेति पूर्वं प्रस्तारिता या शक्तिस्तया शक्त्याऽधोभागस्थं चक्रं सम्पुटीकुर्यादित्यर्थः। तां चेत्यारभ्य भेदयेदित्यन्तस्य व्याख्या लिख्यते। तामिति चक्रसम्पुटन्यायेनाधः प्रस्तारिता या शक्तिस्तां भेदयेदित्यर्थः। **तेनेति।** तेन 'भूयो वह्निपुरेण सम्पुटीकृत्य' (१.२९) इत्यत्र रचितो योऽयं प्रथमो वह्निस्तस्याधः समनन्तरस्थितवह्निपाश्चात्यरेखां दक्षिणोत्तराशानुक्रमेण पूर्वप्रसृतशक्त्यग्रावधि विकृष्य तदश्रविदलनद्वारेण ग्रन्थिसंश्लेषानुरोधेन वक्ष्यमानेन तेनोर्ध्वं प्रस्तारयेदित्यर्थः। ग्रन्थीत्यादि बाह्यत इत्यन्तस्यायमर्थः—ग्रन्थिभेदक्रमेणैवेत्यग्राणां संश्लेषयोगेनेत्यर्थः। **सर्वोर्ध्वमिति।** सर्वोर्ध्वं वह्निर्यथा भवति तथोर्ध्वं विस्तारयेत्। सर्वबाह्यत इति सर्वचक्रकवलनक्रमेणेत्यर्थः। केन प्रकारेण प्रस्तारयेदित्यपेक्षायां विशिनष्टि—**मध्योर्ध्वशक्तिपर्यन्तमिति।** समस्तचक्रमध्यस्थिता या प्रथमा शक्तिस्तस्याः समनन्तरोर्ध्वस्थिता या शक्तिस्तस्याः पर्यन्तं समीपं रेखाविन्यासः कर्तव्यः। **आद्यशक्त्यवधीति।** आद्यशक्तिर्मध्यशक्तिः सैव रचनावशात् सर्वबाह्योर्ध्ववह्न्यन्तःशक्तिरभवत्। तदवधि प्रस्तारयेत्। कोऽर्थः? यथा तस्या भेदो न भवति संश्लेषश्च सम्भवति तथा प्रस्तारयेदिति यावत्।।३६-३८।।

✻ सेतुबन्धः ✻

एवं दशारद्वयमुक्त्वा चतुर्दशारचक्रलेखनोपायमुपदिशति ततो मध्यादीत्यारभ्य सर्वाधस्ताद्विभेदयेदित्यन्तैः सार्धैः पञ्चभिः श्लोकैः—दशारद्वये हि तिर्यग्रेखासु प्रथमचरमयोरभिवर्धनेन षट्कोणं रचितम्। तद्वदिह न भवति। किन्तु बहिर्दशारचक्रे स्थितानां सप्तानां तिर्यग्रेखाणां मध्य आद्यन्तरेखे विहाय द्वितीयोपान्त्यरेखे एवाभिवर्ध्य षट्कोणं रचयेदिति विशेष इत्याह— **मध्येति।** मध्या च साऽऽदिशक्तिश्च मध्यादिशक्तिः। प्रथमशक्तिरेव हि सर्वमध्या शक्तिः। बहिर्दशारारम्भलिखितशक्तेरपि तदादित्वात्तदूर्ध्वशक्तिपदेन सर्वोपरितनतिर्यग्रेखा मा प्रसाङ्क्षीदितो मध्येति विशेषणम्। ततश्च मध्यस्थप्रथमशक्तेरूर्ध्वशक्तिः प्रथमवह्निपूर्वकोणस्पृष्टरेखाकैव।

बहिर्दशारारम्भकशक्तिरिति यावत्। तस्या ईशाग्निकोणभागेऽभिवर्धनेन कोणान्तरे द्वे निष्पाद्य ततो दक्षिणोत्तररेखे पश्चिमस्यां दिश्याकृष्य सर्वाध:स्थितशक्तिकोणात्पश्चिमभागे कोणान्तरं निष्पादयेत्। सेयं शक्ति: सर्व चक्रं कवलयतीत्याह—**तयैवेति**। तां साम्प्रतमभिवर्धितां बहिर्दशारारम्भकषट्कोणघटकशक्तिं तेन तत्षट्कोणघटकेनैव वह्निचक्रेण भेदयेत्। सर्वाध:स्थिततिर्यग्रेखाव्यवहितपूर्वदिग्वर्तितिर्यग्रेखां वायुरक्ष:कोणयोरभिवर्ध्य कोणद्वयान्तरं निष्पाद्य ततो दक्षिणोत्तररेखे पूर्वस्यां दिश्याकृष्य सर्वोर्ध्वस्थितवह्निकोणात्पूर्वभागे कोणान्तरं रचयेदिति यावत्।

अस्य वह्ने: पञ्च विशेषणानि। तत्र साम्प्रतं लिखितशक्तेर्भेदनेन ग्रन्थिर्यथा स्यात्तेन क्रमेण दक्षिणोत्तरयोर्डमरुद्वयकरणेनेत्येकम्। आदिशक्तिर्बहिर्दशारारम्भकशक्तिस्तदवधि तदीशाग्निकोणस्पृष्टं यथा भवति तथेति द्वितीयम्। मध्या च सोर्ध्वशक्तिश्च मध्योर्ध्वशक्ति: प्रथमशक्तिरेव सर्वमध्यस्था पर्यायेणाभिवर्धिता सती या सर्वोर्ध्वाऽभवत्तत्पर्यन्तं तदीशाग्निकोणस्पृष्टं यथा स्यात्तथेति तृतीयम्। सर्वस्य बहिर्दशारचक्रस्य बाह्यत: कवलनक्रमो यथा स्यात्तथेति चतुर्थम्। सर्वोर्ध्व बहिर्दशारोर्ध्ववह्नेरप्यूर्ध्वं यथा तथेति पञ्चमम्। इमानि पञ्च विशेषणानि चतुर्दशारचक्रप्रकरणे कथनात्स्वपूर्वेषु सर्वेषु चक्रेषु षट्कोणघटकशक्तिवह्निदक्षिणोत्तररेखामार्गप्रदर्शनोपलक्षकत्वेन सार्थकानि। तेन प्राचाम् एतच्छ्लोकोपेक्षाऽत्रत्यविशेषणानां यथाकथञ्चिदन्यथा नयनमपि न स्वरसमित्युपेक्ष्यम्।।३६-३८।।

ततो बाह्यस्थशक्त्यन्त:शक्तिमूर्ध्वं विकासयेत्।
तथा विस्तारयेच्छक्तिमाद्यामप्यूर्ध्वमीश्वरि ।।३९।।
सर्वोर्ध्ववह्न्यधोवह्निपर्यन्तं वीरवन्दिते।
तया विभेदयेद्वह्निचक्रं सर्वोर्ध्वसंस्थितम् ।।४०।।

हे ईश्वरि! तदनन्तर बाह्य शक्ति में अवस्थिता शक्ति को ऊपर की ओर प्रसृत करना होगा। तत्पश्चात् आद्या शक्ति को भी ऊपर की ओर प्रसृत करना चाहिये। हे वीरवन्दिते! सर्वोर्ध्व वह्नि को उसके अन्त:स्थित जो वह्नि है, वहाँ तक प्रसृत करे। अब उसके द्वारा अर्थात् सम्प्रति अभिवर्द्धित प्रथमा शक्ति द्वारा सर्वोर्ध्व वह्नि का भेदन करना होगा।।३९-४०।।

बाह्यस्थशक्त्यन्त:शक्तिम्—शिवानन्द के मतानुसार इसका अर्थ है कि अनन्तर प्रसृत पञ्च शक्तिरूपा बाह्यस्था जो शक्ति है, उसके अन्दर स्थित शक्ति अर्थात् उसके पश्चिम रेखाद्वय को। भास्करराय अर्थ करते हैं कि सम्प्रति लिखित षट्कोण-घटक वाह्यस्था शक्ति है। उसके अन्त: अर्थात् उसके अन्दर स्थित जो शक्ति है, उसे। यह शक्ति है—बहिर्दशारारम्भक षट्कोण-घटक शक्ति। **शक्तिम् आद्याम्**—प्रथमलिखिता शक्ति। विद्यानन्द कहते हैं कि अनादि शक्ति ही प्रस्तारवशात् ऊर्ध्व शक्तिरूपेण विस्तृता हो जाती है। **सर्वोर्ध्ववह्न्यधोवह्निपर्यन्तम्**—विद्यानन्द के मत से सर्वोर्ध्व वह्नि का अर्थ है—चित समन्त चक्र के ऊर्ध्वस्थ वह्नि। उसके अधोवह्नि अर्थात् अन्तर्वह्नि-पर्यन्त। **तया**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—सम्प्रति अभिवर्द्धित प्रथम शक्ति द्वारा।।३९-४०।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

ततो बाह्यस्थशक्त्यन्तः शक्तिमूर्ध्वं विकासयेत्। अस्यायमर्थः—अनन्तरप्रसृतपञ्चशक्तिरूपा बाह्यस्थिता या शक्तिस्तस्या अन्तः स्थिता या शक्तिस्तस्याः शक्तेः पश्चिमरेखाद्वयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं मनागूर्ध्वं विकास्य सर्वोर्ध्वशक्तिपाश्चात्त्यरेखादक्षिणोत्तराग्राभ्यां सह विकासयेद् बध्नीयादिति विकासयेदिति पदं तत्रोक्तम्।

तथा विस्तारयेच्छक्तिमाद्यामप्यूर्ध्वमीश्वरि। सर्वोर्ध्ववह्न्यधोवह्निपर्यन्तं वीरवन्दिते। तया विभेदयेद्वह्निचक्रं सर्वोर्ध्वसंस्थितम्। वीरवन्दिते! इदन्ताकवलनप्रगल्भा वीरास्तैर्वन्दिते आत्मत्वेन परामृष्टे। अयमर्थः—चक्रराजविन्यासक्रमे सर्वाद्या या शक्तिः प्रस्तारवशादूर्ध्वतया स्थिता तस्याः शक्तेः पश्चिमरेखाश्रयं सव्यापसव्यरेखाद्वयं तन्मर्मद्वयभेदनक्रमेण सर्वोर्ध्ववह्न्यन्तःस्थितवह्न्यग्रप्रदेशावध्यूर्ध्वं विकृष्य पुनस्तिर्यक्तया सर्वोर्ध्ववह्निं भेदयेदिति।।३९-४०।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

ततो बाह्यस्थेत्यादेः सर्वोर्ध्ववह्न्यधोवह्निपर्यन्तं वीरवन्दिते इत्यन्तस्यायमर्थः—ततः अनन्तरं सकलचक्रसम्पुटन्यायेन बहिः स्थिता या शक्तिस्तस्याः समनन्तरावस्थितशक्तिसव्यापसव्यरेखाद्वयमनागूर्ध्वं सवोर्ध्ववह्न्यन्तस्थवह्निगर्भस्थशक्तिपाश्चात्त्यरेखावधि ऊर्ध्वं प्रस्तारयेदित्यर्थः। अयमर्थः—सर्वोर्ध्वशक्तिपाश्चात्त्यरेखायाः पूर्वप्रस्तारितरेखाद्वयं पुनस्तिर्यगीषत् प्रस्तार्य निबध्नीयादिति यावत्। सर्वोर्ध्ववह्निरिति रचितसमस्तचक्रस्योर्ध्वस्थितो यो वह्निस्तस्यान्तर्वह्निसमीपं हे वीरवन्दिते इत्यर्थः। तथेत्यारभ्य सर्वोर्ध्वसंस्थितमित्यन्तस्यायमर्थः—तथा तेन प्रकारेण। यथा पूर्वं सर्वोर्ध्ववह्निपरिसर एव रेखाप्रस्तारोऽकारि तथेत्यर्थः। आद्यामिति प्रथमां शक्तिमिति यावत्। आदिशक्तिरेव प्रस्तारवशादूर्ध्वशक्तित्वेन विस्तृता। तस्याः सव्यापसव्यरेखाद्वयमूर्ध्ववह्न्यन्तःस्थवह्न्यग्रप्रदेशावधि विस्तार्य तथा स्थितया तया शक्त्या सर्वोर्ध्वस्थितं वह्निचक्रं भेदयेदिति यावत्। एवं विन्यासे कृते नवकोणदशकोणद्वयाद्बहिः परिवेषक्रमेण चतुर्दशकोणं भवति।।३९-४०।।

❋ सेतुबन्धः ❋

एवं षट्कोणनिर्माणमुपदिश्योर्ध्वभागे चतुरः कोणान् वर्धयेदित्याह द्वाभ्याम्—बाह्यस्था शक्तिः साम्प्रतं लिखितषट्कोणघटकशक्तिस्तदन्तस्तन्मध्ये स्थिता शक्तिर्द्वितीयदशारारम्भकषट्कोणघटकशक्तिरेव। तामूर्ध्वं विकासयेत्, तदीयदक्षिणोत्तररेखे अग्नीशकोणाभिमुख्येनाभिवर्धयेत्। ततो या प्रथमशक्तिः क्रमेणाभिवृद्धा सती द्वितीयतृतीयवह्न्योरन्तराले समाप्ता दृश्यते तामाद्यां शक्तिं तथा विस्तारयेत्। यथा साम्प्रतमभिवर्धितदक्षिणोत्तररेखासंस्पर्शः स्यात्तथा कुर्यात्। सप्ततिर्यग्रेखासु विद्यमानां सर्वोर्ध्वां प्राच्यां तिर्यग्रेखां भागद्वयेऽप्यभिवर्ध्यान्तःशक्तिदक्षिणोत्तररेखाभ्यां सह बद्ध्वा कोणद्वयं निष्पादयेदिति यावत्। विकासयेदिति पदस्यैवैतावानर्थ इति तु प्राञ्चः। तत आद्यां शक्तिमूर्ध्वमपि विस्तारयेत्, प्रथमशक्तेर्दक्षिणोत्तररेखे अग्नीशकोणयोर्वर्धयेत्। तदभिवृद्धेरवधिमाह—**सर्वोर्ध्वेति**। सर्वोर्ध्ववह्निः साम्प्रतं लिखितषट्कोणघटकः। तस्याधःस्थितो वह्निर्द्वितीयदशारारम्भकषट्कोणघटकः। तत्प्राच्यकोणावधि विस्तारयेदित्यर्थः। तया साम्प्रतमभिवर्धितया प्रथमशक्त्या सर्वोर्ध्ववह्निं विभेदयेत्। तिर्यग्रेखान्तरनिष्पादनेनेति यावत्।।३९-४०।।

सर्वोर्ध्ववह्न्यधोभागग्रन्थिपर्यन्तत: प्रिये ।
विस्तार्य बाह्यशक्तिं तु सर्वाधस्ताद्विभेदयेत् ।।४१।।

हे प्रिये! सर्वोर्ध्व वह्नि के अधोभाग की ग्रन्थिपर्यन्त विस्तृत करके सर्वाध:स्थित बाह्य शक्ति का भेद करना होगा।।४१।।

सर्वोर्ध्ववह्न्यधोभागग्रन्थिपर्यन्तत:—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—पूर्वोक्त षट्कोणघटक जो वह्नि है, वह सर्वोर्ध्व वह्नि। उसका अधोभाग अर्थात् पश्चिम रेखा। उसकी जो ग्रन्थि है अर्थात् रेखात्रय का संयोगस्थान। वह ग्रन्थि अर्थात् चार मर्म। उसके 'पर्यन्तत:' अर्थात् उसके प्रान्तभाग से आरम्भ करे।

भास्करराय पुन: कहते हैं कि 'ततो मध्यादिशक्त्यूर्ध्वं' से (श्लोक ३६ का उत्तरार्ध) प्रारम्भ करके श्लोक ४१ पर्यन्त में चतुर्दशार का लेखनोपाय वर्णित है।।४१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वोर्ध्ववह्न्यधोभागग्रन्थिपर्यन्तत: प्रिये। विस्तार्य बाह्यशक्तिं तु सर्वाधस्ताद्विभेदयेत्। अनेन सूत्रेण परिशिष्टचतुष्टयाश्रसमुल्लास: क्रियते। अयमर्थ:—सर्वचक्रस्योर्ध्वभागतया स्थितो यो वह्निस्तस्य वह्नेरधोभागप्रदेशे बाह्यशक्तिरेखाश्लिष्टाश्रिसव्यापसव्यरेखाद्वयं तन्मर्मद्वयभेदनक्रमेणाधो विस्तार्य पुनस्तिर्यक्तया सर्ववह्न्यूर्ध्वरेखाग्रयोर्विकासयेत् सर्वाधस्तात् स्थितां बाह्यां शक्तिं भेदयेदिति। अस्य सूत्रस्य पूर्वार्धेनाश्रिद्वयमुत्तरार्धेनाश्रिद्वयं च कथितम्। एवं चतुर्दशारं सम्पन्नम्।।४१।।

* सेतुबन्ध: *

इदानीमनेनैव क्रमेणाधोभागेऽपि कोणचतुष्टयमभिवर्धयेदित्याह—सर्वोर्ध्ववह्नि: प्रकृतषट्कोणघटको वह्निस्तस्याधोभाग: पश्चिमरेखा तस्या ये ग्रन्थयो रेखात्रयसंयोगस्थानानि चत्वारि तेषां पर्यन्ततस्तत्प्रान्तभागानारभ्य विस्तार्य रक्षोवायुदिगाभिमुख्येनेति शेष:। अयं भाव:—प्रथमतृतीयवह्न्योर्दक्षिणरेखाद्वयं रक्षस्यभिवर्धयेत्। उत्तररेखाद्वयं वायौ। प्रथमवह्निरेखयोरुक्तग्रन्थिस्थानादभिवृद्धत्वेऽपि ततोऽप्याधिक्येन चतुर्थशक्तिपश्चिमकोणाधिविस्तार:। तृतीयवह्निरेखयोस्तु सर्वाधस्तनतिर्यग्रेखावधिविस्तार: कार्य इति। एवं रेखाचतुष्टयं रक्षोवाय्वोरभिवर्ध्य बाह्यशक्तिं प्रकृतषट्कोणघटकशक्तिं सर्वाधस्तादधस्तन्या तिर्यग्रेखया क्लृप्तया ततोऽप्यधोऽन्यया तिर्यग्रेखया कल्प्यया च विभेदयेत्, विलक्षणतया भेदयेत्। वैलक्षण्यं चेत्थम्—सर्वाधस्तनीमष्टमीं प्रथमवह्निपाश्चात्यरेखां भागद्वयेऽभिवर्ध्य तृतीयवह्निदक्षिणोत्तररेखाग्रेण मेलयेत्। तदिदमर्धक्लृप्तरेखया बाह्यशक्तेर्भेदनं भवति। तथा चतुर्थशक्ते: पश्चिमकोणाग्रस्पर्शेन सर्वाधो नवमीं तिर्यग्रेखां निष्पाद्य तया प्रथमवह्निदक्षिणोत्तरे रेखाग्रे संस्पर्शयेत्। तदिदं कल्प्ययैव रेखया बाह्यशक्तेर्भेदनं भवतीति।

प्राञ्चस्तु—अस्मिन् श्लोके पूर्वार्धेनैव कोणद्वयमुत्तरार्धेनैवेतरत्कोणद्वयमुक्तमिति व्याचक्षते

तदिदं प्रतिज्ञामात्रमित्युपेक्ष्यम्। अर्थरत्नावल्यां त्वयं श्लोकस्ततः सृष्टिमहाचक्रमितिवक्ष्यमाणश्लोकोत्तरं व्याख्यात:। ततोऽपि प्राचीनटीकायां (ऋजुविमर्शिन्यां) त्विहैव व्याख्यात: संगतश्चेति स एव पक्ष: स्वीकृतोऽस्माभि:। इति चतुर्दशारनिष्पत्ति:।।४१।।

एतद्बाह्यगतं पद्ममष्टपत्रं समालिखेत्।
तद्बाह्यतोऽपि देवेशि षोडशारं तथैव च ।।४२।।
परिवेषं भूपुरं च चतुर्द्वारोपशोभितम् ।।

इसके बाहर अष्टदल कमल लिखना होगा। हे देवेशि! इसी प्रकार उसके बाहर षोडशदल पद्म लिखे। उसके बाहर वृत्तत्रय तथा उसके भी बाहर चार द्वारों से शोभित भूपुर लिखे।।४२।।

एतद्वाह्यगतं—एतद् का अर्थ है—यहाँ चतुर्दशार जो है, उसके बाहर। **षोडशारं**—भास्करराय के अनुसार षोडश अर (पत्र) द्वारा युक्त पद्म। **परिवेषं**—वृत्तत्रय। **भूपुरं**—भूगृह, महीपुर इत्यादि इसका पर्यायवाची है। भूपुर होता है—त्रिरेखात्मक, चतुर्द्वारयुक्त, चतुष्कोणयुक्त।।४२।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

सार्धेन सूत्रेण चक्रशेषमाह—एतद्बाह्यगतमित्यादिना चतुर्द्वारोपशोभितमित्यन्तेन। परिवेषशब्देन वृत्तत्रयं लक्ष्यते।।४२।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

अन्यच्च (च)क्रस्तुत्यां (महा?मोह)नादिपदेन मूलस्वामिन्या नवचक्रनामसङ्केतः कृत इति। तदुक्तं वामकोत्तरतन्त्रे—

त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्। सर्वसंक्षोभणं देवि सर्वसौभाग्यदायकम्।।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं तथा। सर्वरोगहरं चक्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं सुरसुन्दरि। इति।

एतद्बाह्यगतमिति। एतस्य चतुर्दशारचक्रस्य वहिरष्टदलं पद्मं समालिखेत्। तद्बाह्यतस्तस्याष्टारपद्मस्य बाह्यतोऽपि षोडशारं पद्मं रचयेत्। परिवेषो वृत्तत्रयम्। चतुरिति चतुरश्रम्। चतुर्द्वारोपशोभितमित्यर्थ:।।४०-४१।।

अस्ति चात्र प्रमेयान्तरविषयो ह्येष चक्रसम्बन्ध:। तदुक्तं श्रीमन्त्रराजे—

अष्टापदे चाष्टशूले गदा चाष्टसु सर्वदा। अष्टाष्टकपदव्या(पि?पी) स गुरुर्भैरवागमे।।
वृत्तद्वये चतुर्द्वारि चतुरश्रत्रये प्रिये। गणेशादिपदव्या(पि?पी) स गुरुर्भैरवागमे।।
षोडशाधारचक्रस्थ: षोडशस्वरवाचक:। षोडशान्तकलाधारी स गुरुर्भैरवागमे।।
अष्टानामष्टधारूप: पदव्यक्तिक्रमेण य:। इति मध्याष्टकं वेत्ति स गुरुर्भैरवागमे।
चतुर्दशपदान्तस्थश्चतुर्दशविराजित:। (नश्च?न च)तुर्दशभिर्न्यून: स गुरुर्भैरवागमे।।
दशधा दशगर्भान्तर्विचित्ररचनोज्ज्वल:। दशभूमिपदान्तस्थ: स गुरुर्भैरवागमे।।

दशकौलेश्वरो धीमान् दशदिग् दशभैरवः। दशाश्वमेधमध्यस्थः स गुरुर्भैरवागमे।
अष्टधा स्फुरते साधुर्वशिन्यादिभिरष्टधा। वेत्तित तां यन्त्रचक्रस्थां स गुरुर्भैरवागमे।।
चतुर्धा क्रमविज्ञाने चतुर्धा सन्ततो यथा। यः समाक्रोशचण्डेशः स गुरुर्भैरवागमे।। इति।

इदमेव चक्रमान्तरीकृत्य सूत्रपातदशायां श्रीवामकेश्वरतन्त्रे प्रतिपादितम्। तत्प्रकारं यथा तथा वक्ष्ये—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चक्रसङ्केतनिर्णयम्। तदर्थं देवि कुर्वीत त्रिहस्तं मण्डलोत्तमम्।।
अस्य कार्या तृतीयेन कर्णिका चक्रलाञ्छिता। पद्मद्वयं चतुर्द्वारं चतुरं चैकभागकम्।।
ब्रह्मस्थानं ततः कृत्वा कर्णिकाभूमिमध्यमे। चतुर्विंशत्यङ्गुलेन ब्रह्मस्थानं महेश्वरि ।।
भ्रामयेद् वृत्तरूपेण मण्डलं सम्यगालिखेत्। तस्मिन् वृत्ते महादेवि ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्।।
प्राक्प्रत्यगायतं देवि सम्यक् प्राचीविधानतः। तस्मिन् सूत्रे महादेवि नवधा लाञ्छनं पतेत्।
षट् षट् पञ्च त्रयस्त्रीणि चतुश्च त्रयमेव च। षट् षट् षडङ्गुलेनैव दशभागानलाञ्छितान्।।
याम्यसौम्यायतं दद्यात् सूत्राणां नव लाञ्छने। नवधा पातिते सूत्रे पार्श्वयोरुभयोरपि।।
अङ्गुलानि क्रमेणैव मार्जयेत् परमेश्वरि। भ्रमणं सप्तमं चैव तृतीयं चैव वन्दितम्।।
प्रथमे नवमे चैव पार्श्वयोरुभयोरपि। त्रीणि त्रीण्यङ्गुलान्यत्र मार्जयेदुभयोरपि।।
पञ्च पञ्चाङ्गुलं मार्ज्यं षष्ठे चैव चतुर्थयोः। उभयोः पार्श्वयोर्मार्ज्य षोडशाषोडशाङ्गुलम्।।
पञ्चमस्योभये पार्श्वे मार्जयेत् षोडशाङ्गुलम्। एवं सम्मार्जयेद् देवि समक्षेत्रं च कर्णिका(म्)।।
सर्वसूत्राणि पार्श्वौ द्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। योजयेत् क्रमशस्तस्मिन् सप्तमं च तृतीययोः।।
योजयेदुभयोः पार्श्वौ सृष्टिनिष्ठं महेश्वरि। पञ्चशक्तिचतुर्वह्नितद्विकारसमन्वितम्।।
द्वितीयस्य द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। नवमं योजयेद् देवि नवमं प्रथमे युतम्।।
नवमस्य द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। द्वितीयस्य द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
योजयेदष्टमे देवि अष्टमं च द्वितीयके। अष्टमस्य द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
चतुर्थस्य द्वयोः षष्ठे ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। पञ्चमस्य द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
षष्ठस्यैव द्वयोः पार्श्वौ ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। पञ्चशक्तिश्चतुर्वह्निरेवमेव तु योजयेत्।।
इति संसिद्ध्यते चक्रं कर्णिकान्तर्गतं समम्। पूर्वभागे पञ्चशक्तिः पश्चाद्वह्निश्चतुः प्रिये।।
विपरीतं तु वक्ष्यामि पश्चिमं पञ्चशक्तिकम्। चतुर्वह्निः पुरस्तात्तु तद्विशेषं शृणु प्रिये।।
सप्तमं भ्रमणे योगं ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। अष्टमं च द्वितीयेन ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
प्रथमं नवमं योगं नवमे प्रथमे युतम्। द्वितीयं चाष्टमे योगं ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
अष्टमं च द्वितीयेन ब्रह्मसूत्रेन संगतम्। षष्टं चैव चतुर्थेन ब्रह्मसूत्रेण संगतम्।।
चतुर्थं सप्तमे योगं ब्रह्मसूत्रेण संगतम्। विपरीतमेवमेवं तु यथोक्तं परमेश्वरि।।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः। तत्रैकमष्टमं मध्ये द्विदशारं चतुर्दश।।
चतुर्दश दशद्वन्द्वमष्टावेकं महेश्वरि। सृष्टिसंहारयोगेन शक्तिस्थानान्यनुक्रमात्।।
स्थितानि त्रिपुराचक्रे यद्बोधाद्भैरवो भवेत्। बहिः पद्मद्वयं कुर्यादष्टषोडशकच्छदम्।।
गुणवृत्तं ततः कुर्याच्चतुरश्रं च तद्बहिः। चतुरश्रं ततः कुर्यात्कुर्याद् द्वारचतुष्टयम्।।
चतुष्कोणसमायुक्तमेवं स्याच्चक्रमुत्तमम्। रक्तेन रजसापूर्य चक्रे शुक्लोच्चरेखिकम्।। इति।

अन्यच्चात्रैतज्ज्ञातव्यं चक्रम्—

चक्रं बैन्दवमम्बिकामयमियं वामा त्रयो ये भ्रमा ज्येष्ठेयं यदिदं पुरन्दरपुरे रेखाचतुष्कं बहिः।

योऽयं शक्त्यनलत्रिकोणनिवहो रौद्रीयमित्यामृशन् योऽर्चाधारमकृत्रिमं कलयते मातः स ते पूजकः।।

सृष्ट्यादिप्रविभागेन धामत्रयाख्यप्रमेयमपि निरूपितं द्रष्टव्यम्।

※ सेतुबन्धः ※

एवं षट्चक्राणि मन्वस्रान्तान्युपदिश्यावशिष्टं चक्रत्रयमुपदिशति सार्धश्लोकेन—अयं तु सार्धश्लोक एवमेतस्य चक्रस्येतिदूरस्थश्लोकोत्तरम् अर्थरत्नावल्यां व्याख्यातः। तदपि प्राचीनटीका(ऋजुविमर्शिनी)विरोधादसंगतत्वाच्चोपेक्ष्यम्। एतस्माच्चतुर्दशाराद्बाह्यभागस्थं यथा स्यात्तथाऽष्टपत्रपद्मं सम्यगालिखेत्। तस्यापि बाह्यतः षोडशभिररैः पत्रैर्युक्तं पद्मं तथैव लिखेत्। अष्टदलपद्मवदेवेत्यर्थः। अष्टदले हि पद्मपदेनैव कर्णिकावृत्तमाक्षिप्यते। कर्णिकामन्तरेण दललेखनायोगात्। केसराणि तु नाऽऽक्षिप्यन्ते। अन्यथानुपपत्तेरभावात्। तेन कर्णिकावृत्तसहितं केसररहितमष्टदलं यथा लेख्यं तथैव षोडशदलमपि कर्णिकावृत्तकेसरसाहित्यराहित्याभ्यां लेखनीयमिति भावः। तथा च दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

बहिरष्टदलं पद्मं सुवृत्तेन समालिखेत्।
तद्वत्षोडशपत्रं हि विलिखेत्पद्ममुत्तमम्।। इति।

भूतभैरवतन्त्रेऽपि—

योऽस्मिन् यन्त्रे महेशानि केसराणि प्रकल्पयेत्।
योगिनीसहितास्तस्य हिंसां कुर्वन्ति भैरवाः।। इति।

केसरशब्दो दलद्वयमध्यावकाशवाची। तन्निषेधे ज्ञापकमपि वक्ष्यते।।४२।।

ततः परिवेषं षोडशदलाद्बहिरेकं वृत्तं कुर्यात् तद्बहिश्चतुर्दिक्षु चतुर्भिर्द्वारैरुपशोभितं भूपुरं कुर्यात्। पार्थिवं चक्रं चतुर्द्वारं भवतीति श्रुतेः। उक्तं च संहितायाम्—

सुवृत्तं परमेशानि ततो भूबिम्बमालिखेत्।
चतुर्द्वारविशोभाढ्यं……………………।। इति।

ततश्च कर्णिकावृत्ते द्वे तद्बहिर्मर्यादावृत्तमेकमिति संहत्य त्रीणि वृत्तानि सम्पद्यन्ते। यत्तु 'वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च' इति यामलगं, यत्तु(च्च) 'ज्येष्ठारूपं चतुष्कोणं वामारूपभ्रमित्रयम्' इति षष्ठपटले (श्लो. १९) वक्ष्यमाणं तत्सर्वं कर्णिकावृत्तद्वयमेलनेनैव त्रित्वाभिप्रायकमिति बहवो व्याचक्षते। वस्तुतस्तु, वक्ष्यमाणे प्रकारान्तरेण श्रीचक्रलेखनावसरे—

बहिः पद्मद्वयं कुर्यादष्टषोडशकच्छदम्।
गुणवृत्तं ततः कुर्याच्चतुरस्रं च तद्बहिः।।

इति वचने ततःपदस्वारस्येन पद्मद्वयाद्बहिरेव त्रीणि वृत्तानीति प्रतीतेस्तदनुरोधेनात्रत्यस्य परिवेषमित्येकवचनान्तस्यापि पदस्य 'ग्रहं संमार्ष्टि' इत्यादाविवाविवक्षितार्थकतैव युक्ता। ततश्च वासनापटले भ्रमित्रयमित्यनेन पद्मद्वयोपलक्षणार्थं कर्णिकावृत्तमेलनेन यथोक्तावपि यामले पद्मद्वयस्य पृथग्गणनदर्शनाद् वृत्तत्रयपदेन कर्णिकातिरिक्तमेव तद्व्याख्यातुं युक्तमिति पञ्चैव वृत्तानि। अत एव ज्ञानार्णवे—

एतद्बाह्ये महेशानि वृत्तं पूर्णेन्दुसन्निभम्।
तद्युतं कुरु मीनाक्षि वसुपत्रं मनोहरम्।।
तथा षोडशपत्रं तु विलिखेत् सुरवन्दिते।
तद्बाह्यो देवदेवेशि त्रिवृत्तं मातृकान्वितम्।।

इत्यत्र तद्बाह्य इति पदेन स्पष्टं कर्णिकावृत्तयुगलमन्तरेणैव वृत्तत्रयमुक्तम्। तद्व्याख्यातारस्तु केचिदाहुः—तद्बाह्य इतिश्लोकार्धं स्वपुस्तक उपरिलिखितत्वादक्षरलेखनप्रकारस्य तन्त्रान्तरसिद्धस्यापि प्रकृततन्त्रे कस्मिंश्चिदपि चक्रेऽकथनादकस्मादिहैव मातृकान्वितत्वोक्तेरसांगत्याद्बहुषु पुस्तकेष्वनुपलब्धेश्च प्रक्षिप्तमेवेत्यध्यवसीयते। तेन ज्ञानार्णवमतेऽपि त्रीण्येव वृत्तानि न पञ्चेति। तदयुक्तम्। तस्य प्रक्षिप्तत्वे बहिर्वृत्तबोधकवचनान्तराभावेन वृत्तद्वयस्यैवाऽऽपत्तेः। न चाक्षरलेखनस्याकथनात् तत्प्रक्षिप्तत्वनिश्चयो युक्तः। 'चतुरस्रं मातृकार्णैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे' इत्युत्तरग्रन्थे तत्कथनदर्शनात्। न च तस्य—'चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां भवेत्प्रिये (महौजसाम्)' (४/५९;८/२०१) इत्याद्यर्थवादवाक्यप्राये पठितवाक्यत्वादौदुम्बराधिकरणन्यायेनार्थवादत्वमिति तत्समर्थनं युक्तमिति भ्रमितव्यम्। दीर्घसोमे संदृष्ट्वा धृत्या इतिविधिवाक्यान्तर्गतस्य प्रायपाठस्य विधुरस्य धृतिपदमात्रस्याप्यर्थवादत्वदर्शनात्। उत्तरत्र षडध्वात्मकत्वोक्त्यवसरे वर्णलेखनस्य कण्ठरवेणोक्तत्वाच्च। ननु मत्पुस्तक उपरिलिखितत्वात् कल्पितमिति चेत्। अस्मत्पुस्तके मध्य एव लिखितत्वादकल्पितमेवास्त्विति न किञ्चिदेतत्। संहितादितन्त्रान्तरे स्पष्टं वृत्तत्रितयमेवोपलभ्यते न तत्पञ्चकमिति चेदस्तु विकल्पेन सोऽप्येकः पक्षः। अत एव विशुद्धेश्वरतन्त्रे—

एतद्बाह्ये वृत्तमेकं लिखेदष्टदलान्वितम्।
तद्बाह्येऽप्येकवृत्तं स्याद्दलषोडशकान्वितम्।।
तद्बाह्ये वृत्तमेकं तु सीमार्थं साधकश्चरेत्।
पार्थिवं मण्डलं कुर्यात्त्रितयं द्वारसंयुतम्।।
द्वारद्वादशकं कुर्याच्चतुर्दिक्षु समाहितः।

इत्यादिकं वचनमुपपद्यते। कादिमते तु—

बहिरष्टदलाम्भोजं तद्बहिर्द्विगुणच्छदम्।
विधाय षड्भिर्वृत्तैश्च..................।।

इत्यादिना वृत्तषट्कमुक्तम्। परं तु तत्र भ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य 'सुसमे चतुरस्रके' इत्यादिना चतुर्दशारान्तचक्रलेखनार्थमेकं वृत्तं यदुक्तं तेन सह षड्वृत्तानीत्युक्तं मनोरमायाम्। तद्विभागश्चेत्थम्—चतुर्दशाराद्बहिरेकं मर्यादावृत्तम्, ततोऽष्टदलस्य कर्णिकावृत्तम्, अष्टदलाद्बहिः षोडशारकर्णिकावृत्तम्, तद्बहिस्त्रीणि वृत्तानीति। अन्ये तु—चतुर्दशाराद् बहिर्मर्यादावृत्तमेकम्, तत्संलग्नमष्टदलकर्णिकावृत्तम्, ततोऽष्टदलेषु केसरार्थं वृत्तम्, अष्टदलाद्बहिः षोडशदलकर्णिकार्थं वृत्तम्, षोडशदलोदरेषु केसरार्थं वृत्तम्, षोडशदलोपरि मर्यादावृत्तं चेति वर्णयन्ति। सौभाग्यरत्नाकरे तु चतुर्दशारमर्यादावृत्तातिरिक्तान्येव षड्वृत्तानीति तन्त्रराजार्थमभिप्रेत्य सप्त वृत्तान्युक्तानि।

चतुर्दशाराव्यवहितवृत्तेऽपि त्रयः पक्षाः—सर्वकोणस्पर्शः, सर्वेषां कोणानामस्पर्शः, षण्णामेव स्पर्श इतरेषामस्पर्शश्चेति। एवंरीत्या वृत्तलेखने पक्षभेदे सति यथासम्प्रदायं व्यवस्था 'तन्त्राणां बहुरूपत्वात्कर्तव्यं गुरुसम्मतम्' इति वचनात्।

अथ भूगृहलेखने पक्षभेदाः—भूगृहं नाम चतुरस्रम्। तच्चैकरेखात्मकमेकमेव। मूले भूपुरमित्येकवचनात्। 'चतुरस्रे चतुर्द्वारि योगिन्यः सिद्धिदायकाः' इति ज्ञानार्णवेन, 'पश्चिमादिक्रमेणैव प्रकटाश्चतुरस्रकः' इति संहितया च संवादाच्च। तेनैकरेखात्मकं प्रतिदिशमेकैकद्वारयुतं भूबिम्बमित्येकः पक्षः। कादिमते तु प्रतिदिशं द्विरेखं प्राक्प्रत्यक्चेति द्वारद्वययुतं दक्षिणोत्तरतः प्रत्येकं रेखात्रयेण स्थानद्वययुतं कोणेषु तिर्यक्सूत्रैश्चतुर्भिर्द्विधाकृतचतुष्पदयुक्तमुक्तम्। सोऽयं द्वितीयः पक्षः। प्रतिदिशं रेखात्रययुक्तं द्वारसामान्यभाववदिति तृतीयः। यामलं तन्त्रं कल्पसूत्रं शिङ्गभूपालीया पद्धतिः प्रपञ्चसारसंग्रहो विद्यारण्यपद्धतिः सौन्दर्यलहर्युक्तिश्चास्मिन्नेव पक्षेऽनुकूलाः। तेषु द्वारलेखनानुक्तेः। विशुद्धेश्वरतन्त्रे तु प्रत्येकं चतुर्भिर्द्वारैः सहितानि त्रीणि भूगृहाण्युक्तानीति, द्वादशद्वारं त्रिरेखं भूगृहमिति चतुर्थः पक्ष इत्याहुः। मूले तु सर्वेऽपि पक्षाः सूचिताः। चतुरस्रमित्येकवचनादेकरेखापक्षः, चक्रन्यासे रेखात्रयकीर्तनात् (त्रिरेखापक्ष इति) द्वौ पक्षौ सूचितौ। पूजाप्रकरणेऽणिमादिब्राह्म्याद्योरेव पूजनकथनादणिमां पश्चिमद्वार इत्यादिना ब्रह्माणी पश्चिमद्वार इत्यादिना च पश्चिमपूर्वयोरेव द्वारानुवादात् तृतीयरेखास्थमुद्रापूजनस्याकथनाद् द्विरेखापक्षोऽपि सूचितः। वस्तुतस्तु तन्त्रराजोक्तो द्विद्वारकपक्ष एकोऽतिरिक्तः। अन्येषां त्रयाणां परस्परोपसंहारादेक एव पक्ष इति द्विकोटिकविकल्प एव युक्तः। त्रिरेखात्मकेऽवयविनि चतुरश्रत्वभूबिम्बत्वादयो हि धर्मा व्यासज्य वृत्तयः। तिस्रो रेखास्त्ववयवा एव। अत एव 'चतुरश्राद्यरेखायै चतुरश्रमध्यरेखायै चतुरश्रान्त्यरेखायै नमः' इति चक्रन्यासस्थो व्यवहार उपपद्यते। चतुरश्राद्यरेखेत्यर्थस्य स्वरसतो भानात्। कर्मधारयाङ्गीकारे प्रथमचतुरश्रायेत्येव व्यवहारापत्तेः। 'पार्थिवं मण्डलं कुर्यात्त्रितयं द्वारसंयुतम्' इति विशुद्धेश्वरवचने मण्डलमित्येकवचनेन त्र्यवयवार्थत्रितयपदविशेषणेन चावयविन्येव भूगृहत्वसिद्धेश्च। ततश्च चतुरश्रे चतुर्द्वारीत्यादिवचनेषु द्वारे चतुष्ट्वविशेषणानि चतुरश्र इत्याद्येकवचनान्तानि पदान्यप्यवयव्यभिप्रायेणोपपद्यन्ते। बहुवचनान्तानि क्वचिद्दृश्यमानानि चेदवयवबहुत्वाभिप्रायेण पाशाधिकरणन्यायेनोपपादयितुं शक्यन्त एवेति क्वत्यो विरोधः। एतेन द्वारद्वादशकविधायकं विशुद्धेश्वरवचनं व्याख्यातम्। नहि तस्मिन्नेव तन्त्रे श्रुतस्य पार्थिवं मण्डलमित्येकवचनस्य द्वारद्वादशकत्वस्य च परस्परविरोधोऽवयवावयविभावाश्रयणमन्तरेण निर्वोढुं शक्यते। अन्यथैकस्यामेव रेखायां द्वादशद्वारापत्तेः। न च तत्केषामपीष्टम्। तस्माद्यत् सुन्दरीमहोदये शङ्करानन्दस्य विजृम्भणं संहिता-ज्ञानार्णव-वामकेश्वरादिवाक्यानामेकवचन-घटितानां बहुवचन-घटितेन विशुद्धेश्वरीयवाक्येन शाखान्तरोपसंहारन्यायेनाऽऽग्नेयं चतुर्धा करोतीतिवन्नोपसंहारः। तेषां वाक्यानामसंदिग्धत्वेन विशेषानपेक्षितत्वात्।

सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः।
स्पष्टस्य तु विधेर्नान्यैरुपसंहारसम्भवः।।

इति तन्त्रवार्तिकात्। 'मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः' इति बहुवचनघटितविधेः 'प्रयागे वपनं कुर्याद्' इत्येकवचनघटितवाक्येनोपसंहाराभावस्य धर्मशास्त्रविदामिष्टत्वाच्च। चतुर्द्वारद्वादशद्वारपदघटितवाक्ययोः परस्परविरुद्धयोरेकवाक्यताया ब्रह्मणोऽप्यशक्यत्वाच्चेति, तन्नाऽऽदर्तव्यम्। उक्तरीत्या विरोधाभावेनोपसंहारसम्भवेऽष्टदोषदुष्टविकल्पायोगात्। सर्वतीर्थेष्विति प्रयाग इति विध्योस्तु नैकवचनबहुवचनकृतो विरोधः, 'पुनः संस्कारमाचरेत्, संस्कारानाचरेत्पुनः' इति विध्योरेकवाक्यतःया इष्टत्वात्। तत्र स्थित्वा 'जपेल्लक्षम्' इत्यस्यैवं लक्षत्रयं जप्त्वेति वचनेनोपसंहारस्य सौभाग्यरत्नाकरेऽभिधानाच्च। 'लक्षमेकमिमं जप्त्वा' इति श्रीक्रमसंहितावचनस्याप्युक्तज्ञानार्णववचनेनोपसंहारोक्तेश्च। अपि तु सर्वपदप्रयोगपदोपात्तयावद्विशेषैकविशेषकृतः। अत एव 'न हिंस्यात्सर्वा भूतानि' इत्यस्य 'न ब्राह्मणं हन्याद्' इत्यनेन नोपसंहार इति प्रपञ्चितं मीमांसावादकौतूहलेऽस्माभिः। तस्मान्न चतुरश्रपदनिष्ठैकवचनबहुवचनयोश्चतुर्द्वारद्वादशद्वारकत्वविशेषणयोश्च विरोधलेशोऽपि। द्वारसामान्याभावपक्षस्तु द्वारप्रतिषेधपर्युदासान्यतरमन्तरेण यामलकल्पसूत्रादौ द्वारानुक्तिमात्रेण कल्प्यमानः साहसमात्रम्, चतुरश्रपदमात्रघटितयामलादिविधेः सद्वारचतुरश्रविधिना सोष्णीषविधेर्लोहितोष्णीषविधिनेवोपसंहारस्य निराबाधत्वादिति युक्तमुत्पश्यामः।।४२।।

चक्रस्यावान्तरभेदेन नवचक्रात्मकत्वम्

मध्यं त्र्यस्रं तथाऽष्टारं द्वे दशारे चतुर्दश ।।४३।।
तद्बाह्यतोऽष्टपत्रं च षोडशारं महीपुरम् ।
सर्वानन्दमयं चाऽऽदौ सर्वसिद्धिप्रदं परम् ।।४४।।
सर्वरोगहरं चान्यत्सर्वरक्षाकरं तथा ।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वसौभाग्यदायकम् ।।४५।।
सर्वसंक्षोभणं चान्यत्सर्वाशापरिपूरकम् ।
त्रैलोक्यमोहनं चेति नवधा नवभिर्भवेत् ।।४६।।

बिन्दु-त्रिकोण-अष्टकोण-दो दशार तथा चतुर्दशार को लिखना होगा। उसके बाहर अष्टदल कमल, षोडशदल पद्म तथा भूपुर। प्रथम है—सर्वानन्दमय चक्र, तदनन्तर सर्वसिद्धिप्रदचक्र। तदनन्तर क्रमशः सर्वरोगहर चक्र, सर्वरक्षाकारक चक्र, सर्वार्थसाधक चक्र, सर्वसौभाग्यदायक चक्र, सर्वसंक्षोभक चक्र, सर्वाशापरिपूरक चक्र तथा त्रैलोक्यमोहन चक्र। बिन्दुचक्रादि नवचक्रों का यही नाम है।।४३-४६।।

भास्करराय कहते हैं कि श्रीचक्र लेखन के सम्बन्ध में उपदेश देने के अनन्तर उसी के अवान्तर भेद के हिसाब से श्रीचक्र के नवचक्रात्मकत्व के सम्बन्ध में उपदेश दिया गया है श्लोक ४३ से ४६ तक में। सृष्टिक्रम में प्रथम है—बिन्दु चक्र, जिसका नाम है—सर्वानन्दमय चक्र। उसके बाहर है त्रिकोण चक्र अर्थात् सर्वसिद्धिप्रद चक्र। उसके बाहर है अष्टकोणचक्र अर्थात् सर्वरोगहर चक्र। उसके बाहर है अन्तर्दशारचक्र अर्थात्

सर्वरक्षाकर चक्र। उसके बाहर है बहिर्दशार चक्र अर्थात् सर्वार्थसाधक चक्र। उसके बाहर है चतुर्दशारचक्र अर्थात् सर्वसौभाग्यदायक चक्र। उसके बाहर है अष्टदल पद्म चक्र अर्थात् सर्वसंक्षोभण चक्र। उसके बाहर है षोडशदल पद्मचक्र अर्थात् सर्वाशापरिपूरक चक्र। उसके बाहर है भूपुर चक्र अर्थात् त्रैलोक्यमोहन चक्र।।४३-४६।।

※ सेतुबन्धः ※

एवं श्रीचक्रलेखनमुपदिश्य तस्यावान्तरभेदेन नवचक्रात्मकत्वमुपदिशति मध्यं त्र्यस्रमित्यध्युष्टश्लोकैः—मध्यं मध्यस्थानं बिन्दुः। चतुर्दश चतुर्दशारम्। त्रिवृत्तस्य प्रत्येकं चक्रत्वाभावादगणनम्। सर्वानन्दमयमित्यादीनि बिन्द्वादीनां नवानां चक्राणां क्रमेण नामानि। तन्निर्वचनानि तु वासनापटले व्यक्तीभविष्यन्ति। इत्येवंप्रकारेणैकं चक्रं नवभिरवान्तरचक्रैर्नवविधं भवेदित्यर्थः। एतेऽध्युष्टश्लोकाः क्वचिट्टीकायां न दृश्यन्ते पुस्तेषु तूपलभ्यन्ते।।४३-४६।।

श्रीचक्रस्य त्र्यात्मकत्वम्

ततः सृष्टिमहाचक्रं तृतीयं तु हुताशनः।
मध्ये स्थितं द्वितीयं तु संहारः प्रथमं च यत्।।४७।।

तदनन्तर तृतीय भाग में सृष्टिमहाचक्र है। इसे कहते हैं—हुताशन। द्वितीय भाग में स्थितिचक्र है। यह प्रथम तथा तृतीय के मध्य स्थित है और प्रथम भाग है—महाचक्र।।४७।।

पूर्वोक्त ९ चक्रों का तीन भाग किया गया है। प्रथम भाग है—बिन्दु, त्रिकोण तथा अष्टकोण। द्वितीय भाग है—अन्तर्दशार, बहिर्दशार तथा चतुर्दशार एवं तृतीय भाग है—अष्टदल पद्म, षोडश दल पद्म तथा भूपुर। प्रथम भाग है—संहार चक्र। द्वितीय को स्थितिचक्र तथा तृतीय को सृष्टिचक्र कहते हैं। तन्त्रान्तर में नवचक्र के प्रथम भाग को सोम, अन्य द्वितीय भाग को सूर्य तथा तृतीय भाग को अनल कहते हैं। अर्थात् संहार चक्र = सोम, स्थिति चक्र = सूर्य तथा सृष्टिचक्र को अनल कहा गया है। शिवानन्द कहते हैं कि सृष्टि चक्र को हुताशन (अनल) कहने का तात्पर्य यह है कि चक्र के अधिष्ठात्रा हैं—हुताशन। इसी प्रकार संहार चक्र के अधिष्ठाता को सोम तथा स्थितिचक्र के अधिष्ठाता को सूर्य कहा गया है। भास्कराचार्य का कथन है कि मूल श्लोक में 'हुताशन' शब्द के प्रयोग द्वारा यही विभाग स्वीकृत हैं। शिवानन्द कहते हैं कि यह त्रैपुर महाचक्र (श्रीचक्र) सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक, सोमसूर्यानलाधिष्ठातृक, शक्तिकामराजवाग्भट-कूटप्रधान, ब्रह्माविष्णुरुद्रमय, जाग्रदादि (जाग्रत् स्वप्न-सुषुप्ति) रूप, पृथ्वी-अन्तरिक्षादि-उपलक्षित, अ-ऊ-म विग्रह, ऋगादि त्रयीसमुज्ज्वल, क्रिया-ज्ञान-इच्छारूप, सत्य-रजःतमः-स्वभाव, सर्वदेवतासार तथा विश्वात्मक—ऐसे भागत्रय द्वारा सूचित किया गया है।।४७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवं प्रसृतस्य चक्रराजस्य त्र्यात्मकतामाह—ततः सृष्टिर्महाचक्रं तृतीयं तु हुताशनम्। मध्यं स्थितिर्द्वितीयं तु संहारः प्रथमं च यत्। ततो बहिश्चतुरश्रं पद्मद्वयं च। सृष्टिः सृष्टिरिति संज्ञा। महाचक्रं सम्पूर्णचक्रम्। तृतीयमष्टारं मध्यं त्र्यश्रं च। तुर्विशेषार्थे। तच्चक्रं हुताशनाधिष्ठातृकम्। हुताशनोऽधिष्ठाता तृतीयचक्रस्येत्यर्थः। मध्यं चतुर्दशारं दशारद्वयं च। स्थितिः स्थितिरिति संज्ञा। द्वितीयमान्तरापेक्षया बाह्यापेक्षया च। पूर्वत्र हुताशनशब्दप्रयोगादत्र सूर्यशब्दः प्रयुक्तो मन्तव्यः। सूर्याधिष्ठातृकं मध्यं द्वितीयं चक्रमित्यर्थः। बाह्यं चक्रं सोमाधिष्ठातृकमिति च बोद्धव्यम्। बाह्यमध्यमयोश्चक्रयोः सृष्टिरिति स्थितिरिति संज्ञेति। कथमिति चेत्तदाह—**संहारः प्रथमं च यदिति।** प्रथमं चक्रं संहारसंज्ञमिति यस्मात्। एतदुक्तं भवति—यथोक्तं त्रिभेदभिन्नं सृष्टिस्थितिसंहारात्मकं सोमसूर्यवह्न्यधिष्ठातृकं शक्तिकामवाग्भवबीजप्रधानं ब्रह्मविष्णुरुद्रमयं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपं पृथिव्यन्तरिक्षाद्युपलक्षितमकारोकारमकारविग्रहम् ऋग्गादिशब्दराश्युज्ज्वलं क्रियाज्ञानेच्छापरपर्यायं सत्त्वरजस्तमःस्वभावं सर्वदेवतासारं विश्वात्मकमिदं त्रैपुरं महाचक्रमिति। अस्य महाचक्रस्यैवं स्कन्धत्रित्वेऽभियुक्तोक्तिः—

> ब्राह्म्याद्यष्टौ च तद्युक्तमनङ्गकुसुमात्मकम्।
> सृष्टिचक्रं तथा प्रोक्तं स्थितिचक्रं ततः परम्।।
> चतुर्दशारं प्रथमं दशारं पुनरेव तत्।
> स्थितिचक्रं तथा प्रोक्तं संहारमपि संशृणु।।
> वशिन्यष्टौ तदादिस्थं त्र्यक्षं मध्यं क्रमात्पुनः।
> संहारस्त्रिविधः प्रोक्तस्त्वनाख्या सर्वचक्रगा।। इति।।

* अर्थरत्नावली *

ततः पुनरेवंविशिष्टं किञ्चिदवशिष्टमप्यभीष्टदमिष्टजनसेवितमष्टसिद्धिप्रदाष्टयोगिनीजुष्टं प्रकृष्टाष्टगुणसिद्धिदं भक्तदृष्टितुष्टिकरमनिष्टापहं चक्रमष्टमूर्तिभिर्विभज्य शिष्टजनानामतिरहस्यमपि विशिष्टचेतसा तत इत्यादिना संहारं प्रथमं च यदित्यन्तेन ग्रन्थेनाभिलषितसकलपुरुषार्थानां निजभक्तिक्षालितसकलमलानाममलाशयानामनुग्राह्याणां सर्वार्थसाधकं सुन्दरं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमन्दिरं सृष्टिस्थितिसंहारात्मना त्रिधा व्यवस्थितमिदं त्रिधामत्रिमूर्तित्रिशक्तित्रितत्त्वादिभिस्त्रिभेदेन व्यवस्थितं सर्वात्मकमिति परमकारुणिको भगवानुपदिशति। **तत्रैषाक्षरयोजनामहाचक्रमिति।** सनवयोनिदशकोणद्वयचतुर्दशकोणस्फुरत्कर्णिकाष्टदलनलिनवलयपरीतं परितः प्रस्फुरत्षोडशदलवृत्तचतुरश्रचतुर्द्वारशोभितं चतुर्द्वारतोरणपरिघटितं घण्टानिनादरमणीयं सुरवरसपर्यासमुल्लसितमन्दारसन्तानाद्यनेकसुरतरुकुसुमपरिमलमिलदलिकुलबहुझङ्कारमुखरपरिसरं सन्ततितिरस्कृतभास्करकरप्रभावत्प्रभामण्डलमण्डितसकलदिगन्तरालम् इतस्ततः प्रकीर्णतारकाविलसितनभस्तलमहावितानत्रैलोक्यमण्डपान्तः सर्वर्तुसन्निधानसम्पन्नसकलसुमनस्समन्वितवसन्तकन्दर्पपरिरक्षितनन्दनोद्यानमध्यस्थिताधारशक्तिहेत्वर्णवमहापङ्केरुहमहाप्रेतासनोपरि पर्यस्तपर्यङ्कस्फुरत्सहस्रदलकमलकर्णिकान्तरुल्लसितं पूजामण्डलं महाचक्रमुच्यते। **ततः**

सृष्ट्येति। सृष्ट्या स्थितमिदं चक्रं सृष्ट्यात्मकमित्यर्थः। चतुरश्रादारभ्याष्टदलान्तं महाचक्रं सृष्टिसंज्ञमिति यावत्। **तुरीयं तु हुताशनमिति।** अस्य चक्रस्य तुरीयं चक्रं चतुर्दशारदशारद्वयमतीत्यानन्तरं नवयोनिचक्रं यत्तत्संहारात्मकमिति यावत्। **मध्यस्थितं द्वितीयं त्विति।** सृष्टिसंहारयोरन्तरालं यत्तद्दशारद्वन्द्वचतुर्दशारं स्थितिचक्रमित्यर्थः। एवं कथमिति चेत्? संहारं प्रथमं च यत्। प्रथमं चक्रं संहारचक्रमित्युक्तमिति यतस्तृतीयं चक्रं सृष्टिरूपमित्युक्तमिति यतस्तस्माद् द्वितीयमन्तरालस्थं चक्रं स्थित्यात्मकमित्यर्थः।

अथ पुनरिह लोपामुद्रासम्प्रदाये विशेषोऽस्ति। पूर्वं 'चतुराज्ञाकोशभूताम्' (१.१२) इत्युक्तम्। अत्र सृष्ट्यादिपदेन चतुराम्नायरूपत्वं चक्रस्य लक्ष्यते। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

पूर्वाम्नायः सृष्टिरूपः स्थितिरूपस्तु दक्षिणः।
संहारः पश्चिमो ज्ञेयो ह्यनाख्यस्तूत्तरः स्मृतः।। इति।

तत्र चतुरश्राद्यष्टारान्तचक्रत्रितयं पूर्वाम्नायरूपं सृष्टिरूपत्वात्, तथा चतुर्दशारदशारद्वयमिति त्रितयं दक्षिणं स्थितिरूपत्वात्, तथाष्टारं त्र्यस्रं मध्यमिति त्रितयं पश्चिमरूपं संहाररूपत्वात्। सर्वसमष्टिचक्रमनाख्येयत्वादुत्तररूपमिति। अन्यच्च सृष्ट्यादित्रितयं प्रत्येकं त्रैविध्यात्मकं नवनित्यामयमवगन्तव्यम्। पुनरेकैकस्य समष्टिव्यष्ट्यात्मना पञ्चरूपत्वमवगन्तव्यम्। यथा समष्टिसृष्टिः, सृष्टिसृष्टिः, स्थितिसृष्टिः, संहारसृष्टिः, अनाख्येति सृष्टिपञ्चकं पूर्वे; एवं स्थितिपञ्चकं दक्षिणे; तथा संहारपञ्चकं पश्चिमे; अनाख्यारूपमुत्तरमेकरूपमेव। एवं चक्रस्य त्रिपञ्चीकरणसमष्टिव्यष्ट्यात्मना षोडशात्मकत्वात् षोडशनित्यारूपत्वमवगन्तव्यम्। एवं परगुरुणा परमशिवेनोपदिष्टं यो जानाति स योग्यो भवति गुरुप्रसादत इति। एतदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

तुर्यात्मकं पञ्चयुतं योगिनीचक्रमण्डलम्।
यो जानाति स मुक्तात्मा सोऽन्वयी देशिकाग्रणीः।। इति।

शिष्टमप्यभीष्टमित्यत्र शिष्टशब्देन ईषदसमाप्तिः सूचिता चक्रस्य। तदिदानीं दर्शयति। सर्वोर्ध्ववह्न्यधोभाग इत्यारभ्य भेदयेदित्यन्तस्यायमर्थः—सर्वोर्ध्ववह्न्यधोभाग इति सर्वचक्रस्योर्ध्वभागे स्थितो यो वह्निस्तस्य वह्नेरधोभाग इत्यधःप्रदेशे बाह्यशक्तिश्लिष्टाश्रितया सव्यापसव्यस्थितवह्निद्वयग्रन्थिपर्यन्तस्थितरेखाद्वयं वामतोऽधो विस्तार्य तथा सव्यभागस्थितरेखाद्वयमप्यधो विकृष्य एवं स्थिते सति रेखाचतुष्टयं भवति। तत्र बाह्यस्थिते रेखे बाह्यशक्त्यन्तर्गतरेखाश्लिष्टे यथा भवतस्तथा ताभ्यां बाह्यशक्तिं भेदयेत्। तुशब्दो विशेषाभिद्योतको भवति। पुनरपि तामेव शक्तिं प्रसृताश्रिस्थितश्लिष्टरेखाद्वयं तिर्यक्प्रस्तारेण प्रस्तार्य बाह्यशक्तिं भेदयेदिति। अत्रैषाक्षरयोजना—विस्तार्य बाह्यशक्तिं तु सर्वाधस्ताद्विभेदयेदित्येकमपि वाक्यं प्रयोजनद्वैविध्यवशाद् भेदं कृत्वा योजनीयम्। विस्तार्य बाह्यशक्तिं भेदयेदिति, चतुर्दशारचक्रस्य द्वादशारसम्पादनावसरे इति यावत्। तुशब्देन पुनरपि सर्वाधस्तादपि बाह्यशक्तिं भेदयेदिति योजनीयम्।।४२।।

* सेतुबन्धः *

अथास्यैव त्र्यात्मकत्वमुपदिशत्येकेन—अत्र बिन्द्वादिभूगृहान्तानां नवानां प्रथमद्वितीय-

तृतीयशब्दैस्त्रेधा विभज्य निर्देश: समं स्यादश्रुतत्वादिति न्यायेन त्रित्रिचक्राणामेकीकरणेनैवेति पर्यवस्यति। तथा तुल्यन्यायेनैवैकस्यां त्रिचक्र्यामपि त्रेधा विभागोऽवान्तर: सिध्यति। तेन बिन्दुत्रिकोणवसुकोणात्मकं चक्रत्रयं संहारचक्रमित्युच्यते। द्वे दशारे मन्वस्त्रं चेति स्थितिचक्रम्। द्वे पद्मे भूगृहं चेति सृष्टिचक्रम्। तथा भूगृहं सृष्टिसृष्टि:। षोडशारं सृष्टिस्थिति:। अष्टारं सृष्टिसंहार:। मन्वस्त्रं स्थितिसृष्टि:। बहिर्दशारं स्थितिस्थिति:। अन्तर्दशारं स्थितिसंहार:। वसुकोणं संहारसृष्टि:। त्र्यस्त्रं संहारस्थिति:। बिन्दु: संहारसंहार इति। तन्त्रान्तरे तु बिन्द्वादित्रयत्रयस्य सोमसूर्यानलात्मकत्वं क्रमेणोक्तम्। तदपि स्वसम्मतमिति हुताशनपदेन ध्वनितम्। एतासां संज्ञानां वासनावसरे सप्रयोजनकताऽवसेया।।४७।।

श्रीचक्रस्य महिमा

एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीत्रिपुरामयम्।
क्लेदनं द्रावणं चैव क्षोभणं मोहनं तथा।।४८।।
आकर्षणं महादेवि जृम्भणं स्तम्भनं तथा।
व्याधिदारिद्र्यशमनं सर्वदुर्नीतिनाशनम्।।४९।।

इस प्रकार से रचित यह महाचक्र महात्रिपुरामय है। महादेवि! यह चक्र क्लेदन, द्रावण, क्षोभण, मोहन, आकर्षण, जृम्भण, स्तम्भन, व्याधि एवं दरिद्रता, प्रशमनकारी तथा समस्त दुर्नीतिनाशकारी है।।४८-४९।।

श्लोकसंख्या ४८ से प्रारम्भ करके ६४ संख्यक श्लोकपर्यन्त १७ श्लोकों में श्रीचक्र का प्रभाव, श्रीचक्र पूजाफल विवृत है, यह भास्करराय का मत है।

महाचक्रं—भास्करराय के अनुसार अर्थ है—पूजाचक्र। इनके अनुसार महाचक्र का तात्पर्य है कि वह पूजित हो गया; साथ ही यहाँ क्लेदन इत्यादि द्वारा इस पूजा के फलों को कहा गया। **महाश्रीत्रिपुरामयं**—भास्करराय के मत से इसका तात्पर्यार्थ है—त्रिपुरा का अभिव्यक्ति स्थान। विद्यानन्द कहते हैं कि केवल अभिव्यक्ति स्थान ही नहीं, महत् शब्द से लक्षित महात्रिपुरा का विग्रहरूप यह चक्र। महात्रिसुरसुन्दरी ही चक्राकार में परिणत है। **क्लेदनं**—भास्करराय कहते हैं कि इसका अर्थ है—अनार्द्र स्वभाव में भी आर्द्रतासम्पादक। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं जगत् को प्रसन्नता देने वाला। **द्रावणं**—भास्करराय के अनुसार घन स्वभाव को—अद्रव स्वभाव को भी घृत के समान द्रवण बनाने वाला। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—निखिल पाशजाल को गला देने वाला। **क्षोभणं**—भास्करराय के अनुसार अर्थ है—उत्कट इच्छाजनक। विद्यानन्द के मत से अर्थ है—समस्त जगत् को अकुल करने वाला। **मोहनं**—भारस्कराय के अनुसार कृत्याकृत्य स्फूर्त्तिकारी। **जृम्भणं**—भास्करराय के मतानुसार अर्थ है—अणु को भी महत् बनाने वाला। **व्याधिदारिद्र्यशमनं**—शिवानन्द के मत से व्याधि अर्थात् अपूर्ण मन्यतात्मक

संकोच। दारिद्र्य अर्थात् अज्ञान। यह दोनों का नाशक है। विद्यानन्द व्याधि का अर्थ करते हैं—स्वरूप को न जानना अर्थात् स्वरूप का अपरिज्ञान। दारिद्र्य का अर्थ करते हैं—स्वस्वरूप की अप्राप्ति। यह श्रीचक्र दोनों का प्रणाशक है। अथवा कहते हैं कि व्याधि अर्थात् राजयक्ष्मादि रोग तथा दारिद्र्य अर्थात् रिक्तता। **सर्वदुर्तीतिनाशनम्**—समस्त दुर्नीति को नष्ट करने वाला। शिवानन्द के अनुसार इसका अन्तनिर्हित अर्थ है कि यह उपासक को सत्पथ पर ले जाता है।।४८-४९।।

❈ ऋजुविमर्शिनी ❈

एवमेतदित्यादिभिः पञ्चदशसूत्रैस्त्रैपुरं चक्रराजं स्तौति। एवं 'शक्त्या शक्तिम्' (१.२९) इत्यादिना रचितम्। एतत् पुरःप्रसृतम्। महाचक्रम् पश्चिमतनूनां सुदुर्लभमित्यर्थः। महाश्रीत्रिपुरामयम्। न केवलमिदं चक्रं मातुरभिव्यक्तिस्थानम्, किन्तु तन्मयम्। यथावत् पूजितं ध्यातं परिभावितं हृदि परिरूढमेतच्चक्रं साधकस्य तत्तत्फलाकाङ्क्षया तत्र तत्र तथा तथा भावितं तत्तत्कामं साधयतीत्याह—**क्लेदनमित्यादि।** क्लेदनं साध्यविषये तत्तत्प्रयोजनानुगुण्येन ध्यातं क्लेदयतीति। एवं द्रावणादयः। जम्भनम् आवर्जनम्। स्तम्भनं निश्चेष्टीकरणम्। **व्याधिदारिद्र्यशमनमिति।** व्याधिरपूर्णम्मन्यतात्मा संकोचः। दारिद्र्यम् अज्ञानम्। यदाह भट्टगङ्गाधरमिश्रः—

अपूर्णम्मन्यता व्याधिः कार्पण्यैकनिदानभूः।
क्लेशावहो जुगुप्सश्च सर्वधर्मबहिष्कृतः।।
आनन्दकणभिक्षार्थं शब्दस्पर्शादिपक्वणे।
अटत्यविरतं येन तद्दारिद्र्यं विदुर्बुधाः।।

सर्वदुर्नीतिनाशनम्। सर्वासां दुर्नीतीनां नाशनम्। उपासकान् सन्मार्गे स्थापयतीति भावः। यच्छ्रुतिः—'सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनम्' (ऋ० २.२३.४) इति।।४८-४९।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

एवं सर्वलक्षणसम्पूर्णं महाचक्रं सम्पाद्यास्य प्रभावं वक्ति परमशिव एवमेतदित्यारभ्य कल्पकोटिशतैरपीत्यन्तेन श्लोकजालेन। एवमेतत् सृष्टिस्थित्यप्ययात्मना स्थितं चक्रं महाचक्रम्। कोऽर्थः? सृष्ट्याद्यनुग्रहपर्यन्तकृत्यपञ्चककर्तृ आणवादिमलत्रयभेतृ मायादिरागान्तकञ्चुकपञ्चकभेतृ निवृत्त्यादिशान्त्यतीतान्तकलापञ्चकविगलयितृ मूलादिभ्रूमध्यान्तग्रन्थिद्वादशविगलयितृ व्योमपञ्चकभञ्जयितृ कालाग्न्यादिशिवान्तविश्वधर्तृ अकुलकुलाकुलरश्मिपुञ्जप्रोतमणिगणमहासूत्रपरापरकुण्डलिनीशक्तिकदम्बरूपं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः परममभिव्यक्तियोग्यं दर्पणस्थानीयकमिदं चक्रमित्यर्थः। **महाश्रीत्रिपुरामयमिति।** न केवलमभिव्यक्तिस्थानीयमिदं चक्रमित्येतावत्, किन्तु महच्छब्दलक्षितायाः श्रीत्रिपुरायास्त्रिपुरीकृतायाः परं विग्रहरूपमेवेदं चक्रमित्यर्थः। **क्लेदनम्।** क्लेदयति समस्तं जगदिति क्लेदनम्। कोऽर्थः? सर्वप्राणिनामन्तश्चिच्चन्द्रमण्डलतया ब्रह्मरन्ध्रान्तः प्रविश्य परामृतास्रावरूपेण शिवादिकालाग्न्यन्तं जगदाह्लादयतीत्यर्थः। पातालादिष्ववतीर्णानां सर्वासां सुन्दरीणां विक्षोभकमित्यर्थः। **द्रावणं चेति।** द्रावयति समस्तं जगदिति द्रावणम्।

ब्रह्माण्डकुहरान्तश्चारिपरितप्तानुग्राह्यजीवराशीनां कल्याणदेशिककटाक्षवीक्षणवशात् कालानलमाविश्य दक्षिणावर्तवातचक्रविक्षोभवशात् तडित्कोटिज्वालाजटिलमहाकुण्डलीवलयपरिवेष्टितोर्ध्वमार्गचटुलचारचतुरमाब्रह्मविलोकनोत्सुकमिदं चक्रं निखिलपाशजालं द्रावयति विलापयतीत्यर्थः। अथवा समस्तसुरासुरसुन्दरीमदनमन्दिरान्तः परिचिन्तितमिदं चक्रं द्रावयतीति। कोऽर्थः? मदनमन्दिरारविन्दस्यन्दिमकरन्दमहामदवारिसरित्प्रवाहप्रवर्तकमिदं चक्रमित्यर्थः। **क्षोभणं चेति**। क्षोभयति समस्तं जगदिति क्षोभणम्। समस्तसुरासुरयक्षराक्षसगन्धर्वाप्सरोगणब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवादिपरिपूरितमिदं दहराकाशकुशेशयकोटरान्तःप्रस्फुरन्महाचक्रकालानलप्रभाच्छटानिबिडीकृतदक्षिणावर्तवातचक्रप्रक्षोभितं स्वान्तश्चिन्त्यमानं जगत् क्षोभयतीत्यर्थः। आकुलं करोतीति यावत्। **मोहनं तथेति**। पूर्वोक्तदहराकाशान्तश्चक्रमध्यवह्निसन्तापशिथिलीकृतमनोवारणानां साध्यवृन्दानां मोहनं भवति। परवशीभावं नयति स्वमध्यस्थानित्यर्थः।

आकर्षणमिति। चक्रमध्यस्थितत्वेन चिन्तितमाकर्षयति। जम्भनमावर्जनम्। स्तम्भनं निश्चेष्टीकरणम्। **व्याधिदारिद्र्यशमनमिति**। व्याधिः स्वरूपापरिज्ञानम्, तन्मूलत्वाद्बाह्याभ्यन्तरक्लेशानाम्। दारिद्र्यं स्वस्वरूपालाभः। शमनं स्वविमर्शपराहन्तेश्वरस्वरूपो ल्लासप्रदर्शनेन परिपूर्णपराद्वयानन्दात्मप्रकाशनेन च। तदुभयं प्रणाशयतीदं चक्रमित्यर्थः। अथवा व्याधयो राजयक्ष्मादयः, दारिद्र्यं रिक्तता, तदुभयमपि स्मृतिमात्रेण प्रणाशयतीदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वदुःखार्तिनाशनमिति**। अतीतानन्तजन्मोपात्तकल्मषवशादेकमपि दुःखं बहुधा भवति, अर्थपुत्रकलत्रलोभनिमित्तवशात्। तस्य सर्वदुःखस्य नाशनं तत्तदिष्टसार्थप्रकृष्टसम्पत्प्रदानेनेति। आर्तिरिति क्लेशः, आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकस्त्रिविधोऽपि। आध्यात्मिकस्तु वायुपित्तश्लेष्मादीनां प्रकोपसम्भवः। आधिदैविकस्त्वतिवृष्ट्यादिदेवताप्रकोपसम्भवः। आधिभौतिकश्चौरव्याघ्रापस्मारादिभूतप्रकोपसम्भवः। एवं त्रिविधानामप्यार्तीनां स्मृतिमात्रेण प्रशमं करोतीदं चक्रमित्यर्थः।।४८-४९।।

❊ सेतुबन्धः ❊

इदानीं चक्रराजार्चनस्य महान्तं महिमानमुपदिशति एवमित्यादिभिः सपादशभिः श्लोकैः—महाचक्रमर्चितमिति शेषः। मह पूजायामिति धातोः पूज्यं चक्रमित्येव वा तदर्थः। चक्रपूजनमिति तु पर्यवसितोऽर्थः। पूजनात्मकक्रियायाः फलप्रपञ्च उत्तरग्रन्थः। त्रिपुरामयं देव्या अभिव्यक्तिस्थानम्। क्लेदनमनार्द्रस्वभावस्याप्यार्द्रतासम्पादकम्। द्रावणं घनस्वभावस्यापि घृतवद्द्रवापादकम्। क्षोभणमिच्छौत्कट्यजनकम्। मोहनं कृत्याकृत्ययोरस्फूर्तिकृत्। जृम्भणमणोर्महत्त्वापादकम्। स्तम्भनं निश्चेष्टीकरणम्।।४८-४९।।

शान्तिपुष्टिधनारोग्यमन्त्रसिद्धिकरं परम्।
भोगदं मोक्षदं चैव खेचरत्वप्रवर्तकम् ।।५०।।

यह शान्ति, पुष्टि, धन तथा आरोग्य देने वाला, मन्त्रसिद्धिप्रदाता, सर्वोत्तम भोग, मोक्षदाता तथा खेचरत्वप्रवर्त्तक है।।५०।।

शान्तिकरं—विद्यानन्द के अनुसार अर्थ है—समस्त विघ्नउपद्रवों को शान्त करने

वाला। **पुष्टिकरं**—विद्यानन्द के अनुसार पुष्टि का अर्थ है—समस्त सम्पत्ति समृद्धि, जो साधक को प्रदान करे। **धनकरं**—जो साधक के पास धनसंचय कराये, वह। **आरोग्यकरं**—विद्यानन्द कहते हैं—आरोग्य अर्थात् देहपीड़ा न होना। यह जो सम्पन्न कराये, वहा। **मन्त्रसिद्धिकरं**—जो मन्त्रों की सिद्धि कराये, वह। मन्त्र अर्थात् आणवोपाय, शाक्तोपाय तथा शाम्भवोपाय के मन्त्र। **भोगदं**—विद्यानन्द कहते हैं—ऐहिक तथा आमुष्मिक भोग देने वाला। ऐहिक भोग = सकृद् चन्दन, वनितादि भोग्य वस्तु। आमुष्मिक भोग = विविध दिव्य वाद्यध्वनि के साथ तुम्बुरु नारदादि सिद्धवर्ग द्वारा गीत-संगीत मुखरित नन्दन कानन के अति मनोहर परिवेश में माला-अलंकार से सुसज्जिता सुरयुवतियों द्वारा अविरत विनोदादि का अनुभव। यह श्रीचक्र इन दोनों भोगों को देता है। भोग पारमार्थिक भी होता है। नि:स्पृह परमयोगी के पञ्चशक्ति चतुर्व्यूहात्मक देहरूप (साधक का देह ही श्रीचक्र है, जो पंचशक्ति-चतुर्व्यूहात्मक है) महापीठ में प्रकाश-विमर्शमयी परमानन्दलक्षणा स्वात्मदेवता त्रिपुरसुन्दरी के अनुसंधानकारी योगी का परमशिवसामस्यरूप परम भोग। योगी स्वात्मदेवता के साथ एक हो जाता है। **मोक्षदं**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—चित्तकल्मष-निवृत्ति के पथ में ज्ञान प्रदान करता है। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—जीवन्मुक्ति-प्रदाता। **खेचरत्वप्रवर्त्तकम्**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि यह श्रीयन्त्र 'ख' अर्थात् चिन्मय पराकाश में, उसमें चारित्व अर्थात् समरसता ही खेचरत्व है। उसका प्रवर्त्तक है। इन्होंने अन्य व्याख्या भी किया है। जैसे—अणिमादि-अष्ट सिद्धि-समन्वित, सर्वदा सृष्टि और पंचकृत्यकारी, स्वेच्छागृहीत विग्रह, स्वच्छन्दचारी, महाभैरवदशा-प्राप्त, खेचरी गण के साथ अर्थात् उक्त गुणविशिष्ट ६४ योगिनीगण के साथ क्रीड़ा करने से वह खेचर हो जाता है। अतएव श्रीयन्त्र खेचरत्व-प्रवर्त्तक है।।५०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शान्तीति। अत्र करशब्द: प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते। शान्तिकरमित्यादि। परं सर्वोत्कृष्टम्। भोगदं भोगार्थिनाम्। भोगश्चमत्कार:। मोक्षदं मोक्षार्थिनाम्। चित्तकल्मषनिवृत्तिद्वारेण ज्ञानं प्रयच्छतीति भाव:। खेचरत्वप्रवर्तकं विद्याधराद्याधिपत्यप्रवर्तकम्।।५०।।

* अर्थरत्नावली *

शान्तिपुष्टिधनारोग्येति। शान्तिकरं समस्तविघ्नोपद्रवप्रशमकरमित्यर्थ:। पुष्टिरिति समस्तसम्पत्समृद्धि: तामप्यस्मै साधकाय ददातीति पुष्टिकरम्। अर्थानां सञ्चयो धनम्, तदस्मै ददातीति धनकरम्। आरोग्यं जाठरजातवेदसो दीपनादिद्वारेण देहपीडाभाव:, तत्करोतीत्यारोग्यकरम्। मन्त्रसिद्धिकरं मन्त्राणां सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिस्तां करोतीति मन्त्रसिद्धिकरम्। मन्त्रा आणवाद्युपायसम्बन्धिनस्तेषां सिद्धि: शक्तिचक्रोच्चारणेनैव सम्भवति नान्यथेत्यर्थ:। तथा चोक्तं शिवेनोत्तरषट्केऽपि—

तद्यदुच्चरते मन्त्री मन्त्रवर्णं शुभाशुभम्।
तत्तत्सिद्ध्यति देवेशि योनिमुद्रानिबन्धनात्।। इति।

भोगदं भोगं ददातीति भोगदम्। भोगस्तु द्विविध:—ऐहिक:, आमुष्मिक इति। ऐहिकस्तु स्रक्चन्दनवनितादि:। आमुष्मिकस्तु हृद्यनन्दनोद्यानमध्यस्थितकेलिशैलदरीषु सरभसप्रहतमृदङ्गवेणुवीणामर्दलकाहलादिदिव्यध्वनिपरिबृंहिततुम्बुरुनारदप्रमुखसिद्धगन्धर्वोपगीयमानदिव्यगीतपरिपूरितश्रवणविवराभिर्नवनवप्रवृद्धरागसागरनिमग्नमानसाभि: प्रियजनहृदयविदारणप्रवीणनिशितकुसुमशरसदृशनयननलिनाभि: कलरणितमणिगणाद्यनेकाकल्पकल्पितालङ्कारललिततनुलताभिरमरविलासिनीभिरविरतविनोदनम्। एतदुभयं स्मृतिमात्रेण ददाति। ऐहिकामुष्मिकनिरीहचेतस: परमयोगिन: पुन: पञ्चशक्तिचतुर्वह्न्यात्मकदेहमहापीठे प्रकाशविमर्शमयीं परमानन्दलक्षणां स्वात्मदेवतां त्रिपुरसुन्दरीमनुसन्दधानस्य परमशिवसामरस्यपरमभोगं प्रयच्छतीत्यर्थ:। **मोक्षदं चेति।** जीवन्मुक्तिं प्रयच्छतीत्यर्थ:। इदन्ताभरितस्य कृत्रिमाहंस्वरूपस्य जीवत एव जप्तृकर्तृस्वभावपराहंभावभावनात्मकविमर्शानन्दलक्षणस्वरूपाभिव्यक्तिं करोतीत्यर्थ:। **खेचरत्वप्रवर्तकमिति।** खे चिन्मये पराकाशे तत्र चारित्वं समरसता खेचरत्वम्। अथवाऽणिमाद्यष्टसिद्धिसमन्वित: सदा सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यकारी स्वेच्छागृहीतविग्रह: स्वच्छन्दचारी महाभैरवदशामापन्न: खेचरीभिरेवंगुणविशिष्टाभिश्चतुष्षष्टियोगिनीभि: सञ्चरन् क्रीडमान: खेचर इत्युच्यते। तथात्वप्रवर्तकमिति यावत्।।५०।।

सर्वरक्षाकरं देवि सर्वानन्दकरं तथा।
सर्वकर्मकरं चापि सर्वकार्यार्थसाधकम्।।५१।।

हे देवि! यह सर्वरक्षाकर, सर्वानन्दकर, सर्वकर्मकर तथा सर्वकार्यार्थसाधक है।।

सर्वरक्षाकरं—विद्यानन्द के मत से शस्त्र-अग्नि-रोगादि से रक्षा-कारक है। उन्होंने अन्य अर्थ किया है कि सब समयनिष्ठ की (आचारनिष्ठ की) समयच्युति सम्भावनादि अनिष्टों से रक्षा करने वाला श्रीचक्र। **सर्वानन्दकरं**—शिवानन्द के मत से उन-उन भुवनों के पथ पर, उन-उन आधिपत्य के मार्ग पर सर्व आनन्द का विधान करने वाला है यह श्रीचक्र। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—सबको सकल को आनन्द देने वाला। सकल का अर्थ करते हैं—शरीराधान नाड़ी-समूह की अधिष्ठात्री चौंसठ लाख कोटि योगिनीगण, समस्त कुलदेवीगण। **सर्वकर्मकरं**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—वश्यादि सर्वकर्म। वह जो करे, वह है सर्वकर्मकर। विद्यानन्द इसका तात्पर्य बतलाते हैं—सब कर्मों के परे। वचन-आदान-गमन-आनन्दात्मक कर्म[1] एवं श्रवण-स्पर्शनादि कर्म[2]। **सर्वकार्यार्थसाधकम्**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि सब कर्त्तव्यों का साधक। विद्यानन्द का भी यही मत है। इनके अनुसार कार्य अर्थात् कर्त्तव्य, अर्थ: अर्थात् पुरुषार्थ। कर्त्तव्यरूपेण अभिप्रेत जो पुरुषार्थ है, उन सबका साधक।।५१।।

---

[1] वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रिय कर्म हैं।

[2] कर्ण-त्वक् इत्यादि पाँच ज्ञानेन्द्रिय कर्म हैं।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

सर्वरक्षाकरं शस्त्रसलिलाग्निराजचोरवातादिभ्यः सर्वेभ्यः। सर्वानन्दकरं तत्तद्भुवनतत्तदाधिपत्यद्वारेण। सर्वकर्मकरं वश्यादीनि कर्माणि साधकस्य करोति। सर्वकार्यार्थसाधकं यत्कर्तव्यमर्थ्यं च तस्य सर्वस्य साधकमित्यर्थः।।५१।।

※ अर्थरत्नावली ※

सर्वरक्षाकरं चैवेति। सर्वतः शस्त्रवह्निरोगादिभ्यः स्मर्तुः साधकस्य रक्षां करोतीत्यर्थः। अथवा सर्वेषां समयनिष्ठानां समयच्युतिसम्भवाद्यनिष्टेभ्यो रक्षतीति यावत्। **सर्वानन्दकरं तथेति।** सर्वेषामानन्दकरम्। अयमर्थः—ब्रह्मरन्ध्रसहस्राराम्बुजोदरगतमेतन्मातृकापीठं परमानन्दामृतपूर्णं शरीराधारनाड्यधिष्ठितानां चतुष्षष्टिलक्षकोटिप्रभृतियोगिनीनां सर्वासां कुलदेवीनामविरतवर्षत्परामृतवर्षधाराप्लावितानां परमसमावेशकरमित्यर्थः। **सर्वकर्मकरं चापीति।** शिवशक्त्यात्मकं चक्रं प्राणापानात्मनाऽन्तःकरणबहिष्करणात्मना च प्रविश्य वचनादानगमनोत्सर्गानन्दात्मकं श्रवणस्पर्शनादिकं च करोतीति यावत्। अथवा वश्याकृष्ट्यादिसर्वकर्मकरं चेत्यर्थः। **सर्वकार्यार्थसाधकमिति।** कार्यं कर्तव्यम्। अर्थः पुरुषार्थः। कर्तव्यतयाऽभिप्रेतपुरुषार्थानां सकलानां साधकमिदं चक्रमित्यर्थः।।५१।।

सर्वावेशकरं देवि सर्ववेधकरं परम्।
सर्वतत्त्वमयं देवि सर्वज्ञानप्रदं तथा ।।५२।।

हे देवि! यह चक्र सर्वावेशकर, सर्ववेधकर, अनुपम, सर्वतत्त्वमय तथा सर्वज्ञानप्रद है।।५२।।

सर्वावेशकरं—शिवानन्द के मत से साधक द्वारा समीरित सबका आवेश करने वाला। विद्यानन्द के मत से यहाँ 'सर्व' का अर्थ है—भूत-प्रेतादि समय दुष्टचेताओं का आवेशकर अर्थात् महाभय उत्पादन द्वारा कम्पकर। अतः विद्यानन्द के अनुसार इस चक्र के दर्शनमात्र से भूत-प्रेतादि महाभय भी कांप जाते हैं। तभी यह सर्वावेशकर है। **सर्ववेधकरं**—भास्करराय के मत से सर्वावयवावच्छेदरंजन जो करे, वह। विद्यानन्द के मत से आणव वेधशाक्त वेध तथा शाम्भव वेधरूपी तीनों वेधों का यह श्रीचक्र कारक होने से सर्ववेधकर है। शिवानन्द भी आणव-शाक्ति-शाम्भव समावेश को वेध कहते है। यह उसका कारक है। **परम्**—अनुपम। सर्वभूतमयं की व्याख्या करते हुये शिवानन्द कहते हैं कि यह चक्र महासंवित् का आधार है। तदुल्लसित षट्त्रिंशत्तत्त्वमय है। विद्यानन्द का अर्थ है कि आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व के अन्तर्भूत समस्त तत्त्वों का स्वरूप है श्रीचक्र। **सर्वज्ञानप्रदं**—सर्वज्ञान का अर्थ है—समस्त शास्त्रज्ञान तथा तत्त्वज्ञान। यह जो करे, वह सर्वज्ञानप्रद।।५२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वावेशकरं साधकसमीहितसर्वावेशकरम्। **सर्ववेधकरमिति।** अयमर्थ:—

उच्चारकरणध्यानवर्णस्थानप्रकल्पनै: ।
यो भवेत् स समावेश: सम्यगाणव उच्यते।।
उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्।
यं समावेशमाप्नोति शाक्त: सोऽत्राभिधीयते।।
अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधत:।
उत्पद्यते य आवेश: शाम्भव: स उदाहृत:।। (२.२१-२३)

इति श्रीमालिनीविजयोत्तरनिर्णीतदिशा आणवशाक्तशाम्भवसमावेशरूपं वेधं करोतीति। सर्वतत्त्वमयं महासंविदाधारत्वात् तदुल्लासितषट्त्रिंशत्तत्त्वमयम्। सर्वाज्ञानिलयम्। आज्ञा शास्त्राणि, तेषां निलय: कोशगृहम्। उक्तं च—'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे' इति। सर्वान्वयोत्पत्तिभूमिमहाशक्त्यधिष्ठानमित्यर्थ:।।५२।।

* अर्थरत्नावली *

सर्वावेशकरमिति। सर्वेषामावेशकरं सर्वेषां भूतप्रेतपिशाचादीनां दुष्टचेतसां दर्शनमात्रेणावेशकरं महाभयोत्पादनद्वारेण कम्पकरमिदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्ववेधकरं परमिति।** आणवशाक्तशाम्भवप्रकारेण त्रिविधो वेध:। तस्य सर्वस्य कारकमिदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वतत्त्वमयं देवीति।** सर्वेषां तत्त्वानामात्मविद्याशिवतत्त्वान्तर्भूतानां समुदायस्वरूपमिदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वज्ञानप्रदं तथेति।** सर्वेषां प्राणिनामन्त:प्रविश्य तत्तच्छ्रोत्रादिघ्राणान्तेन्द्रियमुखेनात्मशक्त्युपोद्वलितेन शब्दादिगन्धान्तानामर्थानां विषयभूतानां ज्ञानानि तेषां ददात्यनुग्रहीतुमिच्छयेदं चक्रमित्यर्थ:। अथवा सकलशास्त्रतत्त्वज्ञानं ददातीति सर्वज्ञानप्रदम्।।५२।।

* सेतुबन्ध: *

सर्वावेशकर-माणवावेश-शाक्तावेश-शाम्भवावेशानां जनकम्। तल्लक्षणानि च माधि(लि)नीविजयतन्त्रे—

उच्चारकरणध्यानवर्णस्थानप्रकल्पनै: ।
यो भवेत्स समावेशो बुधैराणव उच्यते।।
उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्।
यं समावेशमाप्नोति शाक्त: सोऽत्राभिधीयते।।
अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधित:।
उत्पद्यते य आवेश: शाम्भवोऽसावुदीरित:।। इति।

सर्ववेधकरं सर्वावयवावच्छेदनरञ्जनं वेधस्तत्करम्।।५२।।

सर्वसिद्धिप्रदं चैव सर्वश्रेयस्करं परम्।
सर्वमन्त्रमयं देवि सर्वयोगीश्वरीमयम्।।५३।।

हे देवि! यह सर्वसिद्धिदायक, सर्वश्रेयस्कर, अनुपम, सर्वमन्त्रमय, सर्वयोगीश्वरीमय है।।५३।।

सर्वसिद्धिप्रदं—अणिमादि सर्व सिद्धि देने वाला। **सर्वश्रेयस्करं**—श्रेय शब्द का अन्यतम अर्थ है—कल्याण। जो सर्व प्रकार का विधान करे, वह श्रेयस्कर। विद्यानन्द के मत से श्रेयः का अर्थ है—योगान्तरायभूत सब अर्वाचीन सिद्धि तथा उपसिद्धि। उसका जो विधान करे, वह श्रेयस्कर है। **सर्वमन्त्रमयं**—विद्यानन्द के मत से वर्ण नामक अध्वा से सम्भूत सप्त कोटि महामन्त्र चित् शक्ति की उल्लासात्मकता का आश्रय करके विभासित होते हैं तथा सर्वकामफलप्रद हो जाते हैं। **सर्वयोगेश्वरीमयम्**—विद्यानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि गगन, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तथा नाग नामक पंचस्थल के अधिकारी क्रमशः हैं—श्रीकण्ठ, (गगन के श्रीकण्ठ), अनन्त (स्वर्ग के अनन्त), शंकर (मर्त्य के शंकर), पिङ्गल (पाताल के पिंगल), सादाख्य (नाग के) उनका परिग्रह इस प्रकार है—श्रीकण्ठ का ६४ लक्षकोटि, अनन्त का ३२ लक्षकोटि, शंकर का १६ लक्षकोटि, पिंगल का आठ लक्षकोटि तथा सादाख्य का है चार लक्षकोटि डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा हाकिनी की अंशभूता योगेश्वरी। उनके स्वरूप को (श्रीयन्त्र के स्वरूप को) सर्वयोगेश्वरीमय कहा गया है। सामान्यतः यह चक्र समस्तयोगिनीवृन्द का विग्रह है।।५३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वश्रेयस्करं सर्वस्य श्रेयसः कारकम्। परम् अनु-पमम्। सर्वमन्त्रमयं पूर्णाहन्तासारत्वात्। सर्वयोगेश्वरीमयं महाशक्त्यधिष्ठानत्वात्, 'चतुष्षष्टिर्यतः' (४.५७) इत्युक्तत्वाच्च।।५३।।

* अर्थरत्नावली *

सर्वऋद्धिप्रदं चेति। सर्वासामृद्धीनां प्रदं सर्वऋद्धिप्रदम्। पुत्रमित्रकलत्रवित्तरत्नगजतुरगपशुदासदासीगृहगृहोपकरणगुणवृत्तशीलदाक्षिण्यसौन्दर्यविचित्रभूषणादीनामृद्धिमुन्नतिमन्वहं ददाति स्मरणमात्रेणेदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वश्रेयस्करं परमिति**। सर्वेषां श्रेयसां करं सर्वश्रेयस्करम्। योगान्तरायभूतानामर्वाचीनसिद्ध्युपसिद्ध्याख्यश्रेयसां सर्वेषां स्मरणमात्रेण सम्पादकमिदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वमन्त्रमयं देवीति**। वर्णाध्वसम्भवा ये सप्तकोटिमहामन्त्रास्तेऽपि चिच्छक्त्युल्लासात्मकतामाश्रित्य दीपिताः सर्वकामफलप्रदा भवन्तीत्यतः सर्वमन्त्रमयमिदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वयोगेश्वरीमयमिति**। गगनस्वर्गमर्त्यपातालनागाख्यपञ्चस्थलेषु श्रीकण्ठानन्तशङ्करपिङ्गलसादाख्याः पञ्च नाथा अधिकारिणः। तत्परिग्रहाश्चतुष्षष्टिलक्षकोटिद्वात्रिंशल्लक्षकोटिषोडशलक्षकोटिअष्टलक्षकोटिचतुर्लक्षकोटि(एकलक्षकोटि)डाकिन्यादिहाकिन्यन्तषड्योगिन्यंशभूतानां समस्तयोगेश्वरीणां स्वरूपं समस्तयोगिनीवृन्दविग्रहमिंद चक्रमित्यर्थः।।५३।।

* सेतुबन्धः *

सर्वसिद्धिप्रदमणिमादिप्रदम्। सर्वामृतमयं पञ्चविधमोक्षावहम्, मृतमनिष्टं तन्निवारकमिति

केचित्। सर्वोन्मादकरं भूताद्यावेशजन्यचित्तविकारकारि। सर्वसिद्धिप्रदं चक्रमिति तु त्रिकोणचक्रस्य निर्देशः। चक्रपदसामानाधिकरण्यात्। सर्वाशापरिपूरकप्रायपाठाच्च। तत्फलं त्ववयवद्वाराऽवयविनः स्तुतिः। अष्टाकपालादिभिरिव द्वादशकपालस्य। तेन न पूर्वोक्तविशेषणेन पौनरुक्त्यशङ्कावकाशः।।५३।।

सर्वपीठमयं देवि सर्वज्ञानमयं प्रिये।
सर्वदोषहरं देवि सर्वतीर्थमयं पुनः।।५४।।

हे देवि! यह चक्र सर्वपीठमय-सर्वज्ञानमय है। हे प्रिये! यह सर्वदोषहारी तथा सर्वतीर्थमय भी है।।५४।।

सर्वपीठमयं—शिवानन्द के मत से यह विश्व के कारण की उपलब्धि का स्थान होने के कारण सर्वपीठमय है। विद्यानन्द इस पद का अर्थ करते हैं—योगपीठमय। योगपीठ की व्याख्या में यह कहते हैं कि पीठ-उपपीठ, सन्दोह-उपसन्दोह, क्षेत्र-उपक्षेत्र, पीठेश-उपपीठेश, क्षेत्रपाल, बटुक, गणेश इत्यादि के साथ सभी योगी पीठ के अन्तर्भूत हैं। **सर्वज्ञानमयं**—शिवानन्द कहते हैं कि इस चक्रोपासना से सर्वज्ञत्व मिलता है, सर्वज्ञान प्राप्त होता है। विद्यानन्द कहते हैं कि इस पद का अर्थ है—अकुल, कुल, कुलाकुल, कौल तथा शुद्धकौल नामक कुलपंचक शास्त्रप्रतिपाद्य तत्त्वज्ञान देने वाला। **सर्वदोषहरं**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं—ब्रह्महत्यादि दोष, उसका नाशक। **सर्वतीर्थमयं**—शिवानन्द के मत से गंगा आदि से जो पुण्य होता है, सभी इसमें है। विद्यानन्द कहते हैं कि इस पद में उपलक्षित है सर्वशुद्धि। जो सर्वशुद्धि कराये, वह सर्वतीर्थमय।।५४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वपीठमयं विश्वकारणोपलब्धिस्थानत्वात्। सर्वार्थसंयुतं सर्वप्रयोजनसंयुतम्। सर्वज्ञानमयम् एतदुपासनेन सर्वज्ञत्वसिद्धिरित्यर्थः। वेदमयं वेदेषु यत्फलं तदत्रेति। तीर्थमयं गङ्गादिषु यत्पुण्यं तदत्रेति।।५४।।

* अर्थरत्नावली *

सर्वपीठमयं चैवेति। सर्वपीठानि चतुष्षष्टिसंख्याकानि। पीठोपपीठसन्दोहोपसन्दोहक्षेत्रोपक्षेत्रपीठेशपीठेशीक्षेत्रपालवटुकगणेशादिसहितं सर्वमेवाध्युष्टयोगपीठान्तर्भूतम्। तादृशयोगपीठमयमिदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वज्ञानमयं प्रिये इति।** अकुलकुलकुलाकुलकौलशुद्धकौलाख्यकुलपञ्चकशास्त्रप्रतिपाद्यतत्तज्ज्ञानमयमिदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वदोषहरं प्रिये इति।** दोषा ब्रह्महत्यादयस्तान् स्मरणमात्रेण नाशयतीदं चक्रमित्यर्थः। **सर्वतीर्थमयं पुनरिति।** सर्वासां शुद्धीनां सर्वतीर्थशब्दोपलक्षितानां स्वरूपमिदं चक्रमित्यर्थः।।५४।।

सर्वव्रतमयं चैव सर्वामृतमयं तथा।
सर्वदुःखप्रशमनं सर्वशोकनिवारणम्।।५५।।

यह सर्वव्रतमय, सर्वामृतमय, सर्वदु:खप्रशमन करने वाला तथा सर्वशोकनिवारक है।।५५।।

सर्वव्रतमयं—कृच्छ्रसाध्य व्रतादिपालन का जो फल है, वह इस श्रीचक्र की उपासना से प्राप्त होने के कारण यह सर्वव्रतमय है। **सर्वामृतमयं**—भास्करराय के अनुसार यह पंचविध मोक्ष-कारक है। उनका कथन है कि कोई-कोई मृत का अर्थ करते हैं—अनिष्ट। उस मत का निवारण करके कहते हैं कि यह अमृतमय है। **सर्वदु:खप्रशमनम्**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—आध्यात्मिकादि सर्वदु:खों का प्रशमन करने वाला। दु:ख त्रिविध हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। आध्यात्मिक दु:ख द्विविध है—शाररिक तथा मानसिक। शारीरिक दु:ख है—वात-पित्त-कफादि-जनित। मानसिक है—काम-क्रोधादि-जनित। आधिदैविक दु:ख है—यक्ष-राक्षसादि-जनित। प्राकृतिक विपर्ययजनित दु:ख है आधिदैविक। आधिभौतिक दु:ख है—मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृपादि-जनित। **सर्वशोकनिवारणम्**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—इष्ट विषय वियोग-जनित सर्व दु:ख-निवारक। विद्यानन्द इस पद का अर्थ करते हैं कि पुत्र-मित्र-कलत्र आदि के वियोग-जनित दु:खों का निवारण करने वाला श्रीचक्र।।५५।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

व्रतमयं कृच्छ्रादिषु यत्फलं तदत्रेति। सर्वामृतमयम्। यद्यदनिष्टं तत्तन्मृत्युरूपम्, तस्य सर्वस्य प्रत्यनीकमिदं चक्रमित्यर्थ:। दु:खप्रशमनम् आध्यात्मिकादिदु:खानां प्रशमनम्। शोकनिवारणम् इष्टविषयवियोगजानां शोकानां निवारणम्। अयं भाव:—सवासनस्य चक्रराजस्योपासनेन सर्वविषयसङ्गहेतुभूताज्ञाननिवर्तकमात्मज्ञानमुदेति। यदुपनिषत्—'सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मवित्। श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति। सोऽहं भगव: शोचामि। तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु' (छा० उ० ७.१.३) इत्युपक्रम्य 'स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय (देवर्षये नारदाय) तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार:' (छा० उ० ७. २६. २) इति चोपसंहरति।।५५।।

*** अर्थरत्नावली ***

सर्वामृतमयं तथेति। मृत्युपाशपाशितानां सर्वप्राणिनाममृतमयं मृत्युपाशजालमोचनकरमिदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वदु:खप्रशमनमिति।** सर्वेषां मानसानामाधिसम्भवानां दु:खानां प्रशमनमिदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वशोकनिवारणमिति।** सर्वेषां पुत्रमित्रकलत्रादिवियोगजानां शोकानां निवारणमिदं चक्रमित्यर्थ:।।५५।।

सर्वोन्मादकरं देवि सर्वाह्लादनकारकम्।
सर्वदौर्भाग्यशमनं सर्वविघ्ननिवारणम्।।५६।।

समस्त उन्माद को उत्पन्न करने वाला, समस्त आह्लादों को प्रदान करने वाला,

समस्त दुर्भाग्य का विनाश करने वाला, समस्त विघ्नों का विनाशक यह है।।५६।।

सर्वोन्मादकरं—शिवानन्द उन्माद का अर्थ करते हैं—विभ्रम अर्थात् लोकोत्तर विलास। इसका जो संघटन करता है, वह है—उन्मादकर। सभी का उन्मादकारी जो है, वह है सर्वोन्मादकर। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—भूतादि के आवेशजनित चित्त-विभ्रमकारी। सर्वाह्लादकारकम्—शिवानन्द कहते हैं कि महानन्द हेतु से यह सर्वाह्लादकारक हैं। विद्यानन्द के मत से समस्त संसार तापपरितप्त चित्त वालों व्यक्तियों को संसार ताप-प्रशमन के द्वारा आह्लादकारक है। **सर्वदौर्भाग्यशमनं**—शिवानन्द दौभाग्य का अर्थ करते हैं—अस्पृहणीयता। उसे जो प्रशमित करे, वह सर्वदौर्भाग्यशमन करता है। **सर्वविघ्ननिवारणम्**—विद्यानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि जो योग का अन्तराय है, वही है—विघ्न। जो ऐसे समस्त विघ्नों का निवारण करे, वह 'सर्वविघ्ननिवारणम्'।।५६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वोन्मादकरम्। उन्मादो विभ्रम:, लोकोत्तरो विलास इत्यर्थ:। सर्वाह्लादनकारकं महानन्द-हेतुत्वात्। दौर्भाग्यम् अस्पृहणीयता। विघ्न: प्रस्तुतहन्ता।।५६।।

* अर्थरत्नावली *

सर्वोन्मादकरं चेति। सर्वासां सुन्दरीणां कन्दर्पदर्पजन्यप्रेमगर्भोपबृंहितकृत्याकृत्यापरिज्ञानेनोन्मत्तवत् स्वात्मवृत्तानभिज्ञानप्राय: कोऽप्यान्तरो भाव उन्माद:। साधकार्थे तमर्थयुक्तं करोतीदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वाह्लादकरं तथेति।** सर्वेषामाह्लादकरं सर्वाह्लादकरम्। सर्वेषां संसार-तापपरितप्तचित्तानां देशिकेन्द्रपादोपसर्पणसंलब्धचक्रविभवानां स्वविन्यासपरिज्ञानमात्रेण संसार-तापप्रशमनद्वारेणाह्लादकरम् आह्लादं जनयतीदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वदौर्भाग्यशमनमिति।** दौर्भाग्यं दुर्भगत्वं सकललोकपरिहासविषयत्वम्। तच्छमयतीदं चक्रमित्यर्थ:। **सर्वविघ्ननिवारणमिति।** सर्वेषां योगान्तरायभूतानां विघ्नानां निवारणमित्यर्थ:।।५६।।

सर्वसिद्धिप्रदं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम्।
रौद्राभिचारकोदण्डं परमन्त्रौघभक्षणम् ॥५७॥

यह चक्र सर्वसिद्धिप्रद, सर्वाशपरिपूरक, शत्रुओं के रौद्राभिचारक उद्दण्ड मन्त्रों का भक्षणकारी है।।५७।।

सर्वसिद्धिप्रदं—सर्वसिद्धि का अर्थ है—अणिमादि। इन्हें प्रदान करने वाला श्रीचक्र। **सर्वाशापरिपूरकम्**—सर्वाशा का तात्पर्य है—सर्व मनोरथ। उसका परिपूरक अर्थात् पूर्णकारी। **रौद्राभिचारकोद्दण्डपरमन्त्रौघभक्षणम्**—शिवानन्द के अनुसार रौद्र अर्थात् क्रूर। विद्यानन्द रौद्र का अर्थ करते हैं—निर्घृण। अभिचारक का अर्थ करते हैं—अभिचार कर्म में प्रयुक्त, उद्दण्ड का अर्थ है—नृशंस। पर का अर्थ है—शत्रु। मन्त्रौघ अर्थात् मन्त्रसमूह, ऐसे मन्त्रों का भक्षणकारी।।५७।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

सिद्धिरणिमाद्या विभूति:। **रौद्रेति।** रौद्रा: क्रूरा:। अभिचारका हिंसितार:। अत एवोद्दण्डा उन्मार्गा:। परे शत्रव:। तेषां मन्त्रौघो मन्त्रराशि:। तस्य भक्षणम्। अक्रमोपासकानामयथादेवताज्ञानानां मन्त्रग्राममघस्मरमिदं चक्रमिति भाव:।।५७।।

※ अर्थरत्नावली ※

सर्वसिद्धिप्रदमिति। सर्वासामणिमादीनां सिद्धीनां साधकमिदमित्यर्थ:। **सर्वाशापरिपूरकमिति।** सर्वेषां मनोरथानां परिपूरकं साधकमिदं चक्रमित्यर्थ:। **रौद्राभिचारकोद्दण्डपरमन्त्रौघभक्षणमिति।** परै: शत्रुभि: साधकध्वंसमाशंसमानैरभिचाराय प्रयुक्ता ये मन्त्रास्ते रौद्रा निर्घृणा:, उद्दण्डा नृशंसा:, तान् मन्त्रान् भक्षयति तत्सामर्थ्यमुपसंहरतीदं चक्रमित्यर्थ:।।५७।।

परसिद्ध्याकर्षणं च पराज्ञाकर्षणं तथा।
परसैन्यस्तम्भकरं परविज्ञानमोहनम्।।५८।।

यह परसिद्धियों का आकर्षण करने वाला, पराज्ञाकर्षणकारी, परसैन्यस्तम्भनकारी तथा परविज्ञान का मोहन करने वाला है।।५८।।

परसिद्ध्याकर्षणं—इस पद की व्याख्या करते हुये विद्यानन्द कहते हैं कि पर अर्थात् प्रसिस्पर्द्धी जो सब सिद्ध शत्रु हैं, जो मारणादि क्रिया में निपुण है तथा जो क्षुद्र सिद्धिसम्पन्न हैं, यह उनकी सिद्धियों का आकर्षण कर लेता है। अर्थात् इस चक्र का उपासक साधक उनकी सिद्धियों का आकर्षण कर लेता है। **पराज्ञाकर्षणं**—विद्यानन्द के मत से पर अर्थात् पूर्वोक्त प्रतिस्पर्द्धी साधक। उनकी आज्ञा अर्थात् निग्रहानुग्रहकरी आज्ञा। जो आकर्षणकारी है। **परसैन्यस्तम्भनकरं**—पर अर्थात् शत्रु। उनकी सेना का स्तम्भन करने वाला। स्तम्भ अर्थात् जड़ीभूतकरण। **परविज्ञानमोहनम्**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं कि पर अर्थात् अन्य का विज्ञान उसका मोहन अर्थात् अपहरणकारी।।५८।।

※ अर्थरत्नावली ※

परसिद्ध्याकर्षणं चेति। परा: प्रतिस्पर्द्धिनो ये सिद्धा: शात्रवं गता मारणादिक्रियानिपुणा: क्षुद्रसिद्धिसम्पन्नास्तेषां सिद्धिं साधकेन स्वचक्रमध्यस्थिततया चिन्तितां तामाकर्षयतीदं चक्रमित्यर्थ:। **पराज्ञाकर्षणं तथेति।** परेषामन्येषां प्रतिस्पर्द्धिनामाज्ञां निग्रहानुग्रहकरीमपि चक्रवैश्वानरपरितप्ततया चिन्तितामाकर्षयतीदं चक्रमित्यर्थ:। **परसैन्यस्तम्भकरमिति।** परेषां शत्रूणां सैन्यं स्तम्भयतीदं चक्रमित्यर्थ:। स्तम्भनप्रकारश्च प्रयोगप्रकरणे तदवसरे भणितव्य:। **परविज्ञानमोहनमिति।** परेषामन्येषां विज्ञानं तस्य मोहनं तस्य प्रमोषकरं चक्रमित्यर्थ:।।५८।।

परचक्रस्तम्भकरं शस्त्रस्तम्भकरं तथा।
महाचमत्कारकरं महाबुद्धिप्रवर्तकम्।।५९।।

यह चक्र परचक्रस्तम्भनकारी शस्त्रस्तम्भनकारी महाचमत्कारकारी तथा महाबुद्धि-प्रवर्त्तक है।।५९।।

परचक्रस्तम्भकरं—विद्यानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं कि पर अर्थात् अपने से विपरीत अन्य राज्य से आये राजा। उनका चक्र। उस चक्र का स्तम्भन करने वाला। **शत्रुस्तम्भकरं**—विद्यानन्द के अनुसार शत्रु अर्थात् पर द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों का स्तम्भन करने वाला। **महाचमत्कारकरं**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि वधिर तथा मूक को भी हस्त-मस्तक-संयोग से सारस्वतादि आवेश-कारक। विद्यानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि महाचमत्कार अर्थात् उड्डीनादि प्रयोग, जिससे लोक समाज में अनेक सम्मान प्राप्त होता है, उस प्रयोग का सम्पादन करने वाला। इस चक्रोपासना के फल से आकाशगमनादि जो सब विभूति मिलती है, उससे साधक लोक समाज में अनेक सम्मान पा लेता है। विद्यानन्द अन्य अर्थ भी करते हैं। जैसे—महा अर्थात् महती, परा अर्थात् त्रिपुरा, उनका चमत्कार अर्थात् अनुभव अर्थात् शक्तितत्त्वविज्ञान, उसका विधानकारी। **महाबुद्धिप्रवर्त्तकम्**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—अव्युत्पन्न लोगों में भी वेदादि शास्त्र-प्रवर्त्तनकारी।।५९।।

❄ ऋजुविमर्शिनी ❄

महाचमत्कारकरम्। अनेडमूकानामपि हस्तमस्तकसंयोगात् सारस्वताद्यावेशकरमित्यर्थ:। महाबुद्धिप्रवर्तकम् अव्युत्पन्नानामपि वेदशास्त्राद्युपन्यासकरम्।।५९।।

❄ अर्थरत्नावली ❄

परचक्रस्तम्भकरमिति। परेषां स्वविपरीतानां विषयान्तरादागतानां राज्ञां चक्रं स्तम्भयतीदं चक्रमित्यर्थ:। **शस्त्रस्तम्भकरमिति**। परै: शत्रुभि: प्रयुक्तानि शस्त्राणि स्तम्भयति, यथा साधकस्य बाधकानि न भवन्ति तथा करोतीदं चक्रमित्यर्थ:। **महाचमत्कारकरमिति**। महाचमत्कारा उड्डीनादयो झटिति लोकानां बहुमानहेतव: प्रयोगविशेषा:, तेषां सम्पादनकरं चक्रमित्यर्थ:। अथवा महत्या परायास्त्रिपुरायाश्चमत्कारोऽनुभव:, शक्तितत्त्वपरिज्ञानमिति यावत्। **महाभुक्ति-प्रवर्तकमिति**। हाटकेश्वरादिभुवनेष्वधिकारितया स्थितिर्महाभुक्तिस्तत्सम्पादकमित्यर्थ:।।५९।।

❄ सेतुबन्ध: ❄

परचक्रस्तम्भकरं शत्रुकृतयन्त्राणां मोघतापादकम्।।५९।।

महावाणीकरं देवि महासौख्यप्रदायकम्।
महावश्यकरं देवि महासौभाग्यदायकम् ।।६०।।

हे देवि! यह महावाणीकर, महासौख्यप्रदायक, महावश्यकर तथा महासौभाग्यदायक है।।६०।।

महावाणीकर—शिवानन्द के मत से इस पद का अर्थ है—अशिक्षित। एक पद-प्रयोग में जो निपुण नहीं है, उसे भी काव्यकर्त्तृव्य-प्रदानकारी। **महासौख्यप्रदायकम्**—महासुख प्रदानकारी। **महावश्यकरं**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—समस्त लोक को वश में करने वाला। **महासौभाग्यदायकम्**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—सर्वस्पृहणीयता प्रदानकारी विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—सभी सुन्दरीगण का वल्लभत्वसम्पादक है यह श्रीचक्र।।६०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

महावाणीकरम् अशिक्षितैकपदप्रयोगनिपुणानामपि महाकाव्यकर्तृताकरमित्यर्थः। महासौभाग्यं सर्वस्पृहणीयता।।६०।।

* अर्थरत्नावली *

महावश्यकरं देवीति। समस्तलोकवशङ्करमित्यर्थः। **महासौभाग्यदायकमिति।** समस्तसुन्दरीवल्लभसम्पादकमित्यर्थः।।६०।।

* सेतुबन्धः *

महावश्यकरं महच्च तदावश्यकं च तद्रात्यादत्त इति विग्रहः। तेन न पौनरुक्त्यम्।।६०।।

महाज्वरहरं देवि महाविषहरं तथा।
महामृत्युप्रशमनं महाभयनिवारणम्।।६१।।

हे देवि! यह चक्र महाज्वरहर, महाविषहर, महामृत्युप्रशमनकारी तथा महाभयनिवारणकारी है।।६१।।

महाज्वरहरं—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि अभिचार आदि कृत ज्वरों का प्रशमन करने वाला। **महाविषहरं**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—अत्युग्र विष-महाविष का नाशक। **महामृत्युप्रशमनं**—विद्यानन्द के अनुसार अर्थ है—किसी दोष के कारण होने वाली अपमृत्यु तथा कालप्राप्त मृत्यु का नाशक। **महाभयनिवारणम्**—विद्यानन्द के मत से राजा-चोर इत्यादि के भय का नाशक। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—काया को प्रमाता मानना, कायाभिमान ही महाभय है। यही सर्व भय का मूल है। इसका निवारक श्रीचक्र है।।६१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

महाज्वरोऽप्यभिचारादिकृतः। महामृत्युः कालप्राप्तः। महाभयं देहप्रमातृता। तदुक्तं क्षेमेन्द्रेण गीतानिष्यन्दे—

तावद् व्याघ्रभयं नृपानलभयं वेतालकृत्याभयं
शून्यारण्यभयं महाशनिभयं दुःस्वप्नशङ्काभयम्।

वातोत्पातभयं ग्रहज्वरभयं क्षुब्धाब्धिवेलाभयं
वैराग्येण न यावदेव गलित: कायाभिमानभ्रम:।। इति।।

⁂ अर्थरत्नावली ⁂

महाज्वरहरं देवीति। महतां चातुर्थिकादीनां ज्वराणां नाशकरमिति यावत्। **महाविषहरं परमिति।** महतामत्युग्राणामपि विषाणामपहारकमिति यावत्। **महामृत्युप्रशमनमिति।** केनचिद्दोषेणाकालसम्भवानामपि मृत्यूनां नाशकरमित्यर्थ:। अथवा कालमृत्यूनां नाशकरं भवति। **महाभयविनाशकमिति।** राजचौरादिनिमित्तानामपि भयानां नाशकरमित्यर्थ:।।६१।।

महावश्यकरं देवि महावेधकरं पुरम्।
महापुरक्षोभकरं महासुखशुभप्रदम्।।६२।।

हे देवि! यह महावश्यकर, महावेधकर, श्रेष्ठ महापुरक्षोभकर तथा महासुख एवं महाशुभदायक है।।६२।।

महावश्यकरं—समस्त लोकों को वश में करने वाला। **महावेधकरं**—शिवानन्द के अनुसार पर्वत, गज आदि का भी वेधकारी। भास्करराय के मतानुसार अजर का भी महाछिद्रजर्जरीकरण ही महावेध है, उसका कारक। **महापुरक्षोभकरं**—इसका अर्थ शिवानन्द कहते हैं कि द्वारका-इन्द्रप्रस्थ-मथुरादि पुर में कृष्ण का आगमन होने से अथवा देवदारु वनादि में परमेश्वर के प्रवेश से जो क्षोभ होता है, वैसा ही साधक का पुरप्रवेश भी क्षोभ उत्पन्न करने वाला है। क्षोभ अर्थात् आलोडन। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं कि श्रीचक्र इन्द्र-चन्द्र आदि के पुर में भी क्षोभकारी है। तब भूतल के अन्य पुरों के क्षोभ की तो बात ही क्या है? भास्कराय कहते हैं कि यह वैकुण्ठादि का भी क्षोभक है। **महासुखशुभप्रदम्**—शिवानन्द इसका अर्थ कहते हैं कि पूर्णाहन्ता भावना ही महासुख है। महाशुभ का अर्थ है—विश्वदेहीविलय; इन दोनों को देने वाला महासुखशुभप्रद श्रीचक्र। इसकी अन्य व्याख्या भी है। जहाँ मन की तुष्टि हो, वहाँ उसे स्थिर करने पर परमानन्दरूप अनुभव होता है। यह अनुभव ही है—महासुख और यह महासुख ही महाशुभ है। श्रीचक्र इसका सम्पादनकारी है।।६२।।

⁂ ऋजुविमर्शिनी ⁂

महावश्यकरं राजोर्वश्यादीनामपि। महावेधकरं पर्वतादीनामपि। महापुरक्षोभकरं साधकेन्द्रे प्रविष्टे द्वारवतीन्द्रप्रस्थमथुरादिषु कृष्णाभिगमने यथा, यथा वा देवदारुवनादिषु परमेश्वरप्रवेशे। महासुखशुभप्रदम्। महासुखं महाशुभमिति। महासुखम् अकृत्रिमाहंपरामर्श:। महाशुभं विश्वदेहिविलय:।।६२।।

⁂ अर्थरत्नावली ⁂

महापुरक्षोभकरमिति। महतामिन्द्रचन्द्रादिपुराणामपि क्षोभकरम्, किमुताल्पविभवानां

भूवलयसंस्थितानामिति यावत्। **महासुखशुभप्रदमिति।** समस्तकरणोल्लाससङ्कोचवशाद् मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तरालकुहरस्फुरितमहायोगपीठपीठिकासु समुल्लसिताकारपरापरलिङ्गमहाह्रदनिमग्नमनोमहावारणानां महायोगिनां यदनुभवसुखं तदेव शुभं प्रकाशयति। तत्सुखं ददातीति यावत्। उक्तं च श्रीमतशास्त्रे—

यत्र यत्र मनस्तुष्टिस्तत्र तत्रैव धारयेत्।
तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं सम्प्रकाशते।।

अथवा शुभं शोभनं तत्सम्पादकमित्यर्थः।।६२।।

※ सेतुबन्धः ※

महावेधकर-मजरस्यापि महाछिद्रजर्जरीकरणम्। महापुरक्षोभकरं वैकुण्ठादेरपि क्षोभकम्। स्पष्टमन्यत्। अत्र चक्रराजार्चनेनेमानि फलानि भावयेदिति विधिः परिणमति। न च भाव्यानेकत्वकृतो वाक्यभेदः। सर्वकार्यार्थसाधकमित्येकेन पदेन सकलफलकथनेन तदभावात्। क्लेदनादिपदानि तु सर्वपदस्यार्थविवरणरूपाणीति न तद्वैयर्थ्यम्। 'सर्वेभ्यः कामेभ्यो ज्योतिष्टोमः' इतिवाक्यस्थसर्वपदविवरणार्थताया 'एकस्मै वा अन्ये यज्ञक्रतवः कामायाऽऽह्रियन्ते' इतिवाक्यशेषेऽङ्गीकारेणैवमेव वाक्यभेदस्य तान्त्रिकैः परिहृतत्वात्।।६२।।

महालक्ष्मीमयं देवि महामाङ्गल्यदायकम्।
महाप्रभावसंयुक्तं महापातकनाशनम्।।६३।।

हे देवि! यह चक्र महालक्ष्मीमय, महामाङ्गल्यदायक, महाप्रभावयुक्त तथा महापातकनाशी है।।६३।।

महालक्ष्मीमयं—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि शिव-शक्ति सामरस्यरूप महाविकासमय। विद्यानन्द इसका तात्पर्यार्थ बतलाते हैं कि महालक्ष्मी अर्थात् राज्य आदि का लाभ। यह जिसकी पूजा से हो, वह 'महालक्ष्मीमयं' श्रीचक्र। **महामाङ्गल्यदायकम्**—विद्यानन्द के अनुसार महा अभ्युदयपरम्पराप्रदायक। शिवानन्द का मत है कि सब द्वैत की निन्दा है। वह देने वाला जो, वह है—महामांगल्यदायक। श्रीचक्र-पूजन के फल से साधक का द्वैतज्ञान तिरोहित हो जाता है। **महापातकनाशनम्**—शिवानन्द शिव तथा जीव के भेदानुभव को महापातक बतलाते हैं, इसका जो नाश करे। इसकी व्याख्या में विद्यानन्द का कथन है कि सामान्यतः जिन पातकों को महापातक कहा जाता है, कुलमार्गी के लिये महापातक की पृथक् स्थिति है। उनके महापातक पाँच हैं—वीरहत्या (वीराचारी की हत्या), वृथा मद्यपान, वीरपत्नी गमन, वीरद्रव्य-अपहरण तथा इन चारों पातकों का संश्रव। ये पंचपातक भी श्रीचक्र के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। जनसामान्य के लिये स्मृति में इन्हें महापातक बतलाया गया है—ब्रह्महत्या, सुरापान, चौर्य, गुरुपत्नीगमन तथा इन चारो का संश्रव। (मनुसंहिता-११.५५)।।६३।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

महालक्ष्मीमयम्। शिवशक्तिसामरस्यरूपं महाविकासमयमित्यर्थः। महामाङ्गल्यदायकम्। महामाङ्गल्यं द्वैतग्रामधिक्कारः। महाप्रभावं सदाशिवादिकं यद्बलम्। महापातकं शिवातमभेदपरामर्शः। तदुक्तं भट्टगङ्गाधरेण—

आत्मेशजगतां भेदं यो नरः कुरुतेऽमतिः।
स महापातकी सत्यं पातकस्य महत्त्वतः।। इति।

※ अर्थरत्नावली ※

महालक्ष्मीमयं देवीति। महालक्ष्मी राज्यादिलाभस्तं ददातीत्यर्थः। **महामङ्गलदायकमिति**। महाभ्युदयपरम्पराप्रदायकमिति यावत्। **महाप्रभावसंयुक्तमिति**। महासामर्थ्यं ददातीत्यर्थः। **महापातकनाशनमिति**। प्राकृतानां ये ये पातका न ते कुलमार्गवर्तिनां महापातकाः, किन्तु वीरहत्यादयोऽन्ये महापातकाः पञ्च। तेषामपि नाशकरमिदं चक्रमित्यर्थः।।६३।।

एवमेतस्य चक्रस्य प्रभावो वर्णितो मया।
न शक्यते महादेवि कल्पकोटिशतैरपि ।।६४।।

हे महादेवि! इस प्रकार के प्रभावयुक्त इस चक्र की महिमा का वर्णन शतकोटि कल्पपर्यन्त में भी मैं पूर्ण नहीं कर सकता।।६४।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

किं बहुना, चक्रराजवर्णनं कर्तुमशक्यमित्याह—**एवमेतस्येति**। अर्थवादाशङ्का न कार्या। तदुक्तं श्रीत्रिंशिकाशासने—

नार्थवादादिशङ्का च वाक्ये माहेश्वरे भवेत्।
अबुद्धिपूर्वं हि तथा संस्थिते सततं भवेत्।।
अनवच्छिन्नविज्ञानवैश्वरूप्यसुनिर्भरः ।
शास्त्रात्मना स्थितो देवो मिथ्यात्वं क्वापि नार्हति।। इति।

(तन्त्रा० ४.२३२-३४)

※ अर्थरत्नावली ※

एवमेतस्येत्यारभ्य कल्पकोटिशतैरपीत्यन्तस्यायमर्थः—एवंप्रभावस्यास्य महाचक्रस्य प्रभावो वर्णयितुं मया न शक्यते। बहुकालं वर्णयता मयापीति यावत्।।६४।।

श्रीचक्रसाधनम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिपुराचक्रमन्यथा।
तदर्थं देवि कुर्वीत त्रिहस्तं मण्डलोत्तमम् ।।६५।।
अस्य कार्या तृतीयेन कर्णिका चक्रलाञ्छिता।
पद्मद्वयं द्वितीयेन चतुरस्रं च शेषतः ।।६६।।

तदनन्तर अन्य प्रकार से त्रिपुराचक्र का विन्यास कहता हूँ। देवि! उसके लिये तीन हाथ का उत्तम मण्डल करना चाहिये। इसके तृतीय भाग द्वारा चक्रलाञ्छिता कर्णिका बनानी चाहिये। द्वितीय भाग द्वारा पद्मद्वय तथा अवशिष्ट भाग द्वारा चतुरस्र बनाना चाहिये।।६५-६६।।

तदर्थं—चक्रविन्यासार्थ। **मण्डलोत्तमम्**—शिवानन्द इस पद का अर्थ करते हैं चक्रराजविन्यास के लिये स्वीकृत उत्तम क्षेत्र। **त्रिहस्तम्**—शिवानन्द के मत से त्रिहस्त शब्द द्वारा समान त्रि अवयवता प्रकट होती है। त्रि अवयवता अर्थात् तीन भाग। **चक्रलाञ्छिता**—भास्करराय इस पद का अर्थ करते हैं—चतुर्दशारान्त चक्रचिह्नित। सहज बात है कि इसका अर्थ है—कर्णिकावृत्त के मध्य शक्ति त्रिकोण तथा बहिस्त्रिकोण है। **पद्मद्वय**—अष्टदल पद्म तथा षोडशदल पद्म। **चतुरस्रं**—भास्करराय चतुरस्र का अर्थ करते हैं—त्रिरेखात्मक भूपुर।।६५-६६।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

अथात इत्यादिसूत्रसप्तदशकेन पुनरपि प्रकारान्तरेण चक्रराजविन्यास माह। अन्यथा 'शक्त्या शक्तिम्' (१.२९) इत्युक्तक्रमात्। तदर्थं चक्रराजविन्यासार्थम्। त्रिहस्तं मण्डलोत्तममिति चक्रराजविन्यासाय स्वीकृतं क्षेत्रमुच्यते। तत् त्रिहस्तं कुर्यात्। त्रिहस्तशब्देन समानं त्र्यवयवकतामात्रमुच्यते। अमुमेवार्थं स्फुटीकरोति—**अस्येत्यादिना**। अयमर्थः—स्वीकृतस्य क्षेत्रस्य भागेनैकेन कर्णिकां भागेन पद्मद्वयं भागेन चतुरश्रं च कुर्यादिति।।६५-६६।।

*** सेतुबन्धः ***

इदानीं प्रकारान्तरेण लघुमार्गेण श्रीचक्रसाधनमुपदिशति अथात इत्यादिभिः सप्तदशभिः श्लोकैः। अथानन्तरम्। अतः पूर्वोक्तप्रकारस्य दुरवगाहत्वात्। अन्यथा पूर्वोक्तप्रकारवैलक्षण्येन। त्रिहस्तमित्यत्र हस्तशब्दश्चतुर्विंशत्यङ्गुलवचनस्तावत्संख्याकभागमात्रोपलक्षणम्। ततश्च समपरिमाणकद्विसप्ततिभागात्मकं मण्डलोत्तमं चतुरस्राकारं समं भूभागं परिगृह्णीयादित्यर्थः। अस्य मण्डलस्य तृतीयेन भागेन चतुर्दशारान्तचक्रचिह्निता कर्णिका कर्तव्या। मध्यभागे कर्काटकाग्रं संस्थाप्य ततो द्वादशाङ्गुलव्यवधानेन रेखामुत्पाद्य भ्रामयन् कर्णिकावृत्तमुत्पादयेत्। तेनोर्ध्वभागाधोभागयोरेकैकहस्तपरित्यागेन मध्यभागे हस्तमात्रा कर्णिका भवति। सोऽयं तृतीयो भागः। ततश्च कर्णिकाया उपरि द्वादशाङ्गुलमधश्च द्वादशाङ्गुलं परिगृह्य सम्भूय जातेन हस्तेनाष्टदलषोडशदलपद्मौ कुर्यात्। तत्र च समं स्यादश्रुतत्वादितिन्यायेन कर्णिकोर्ध्वाधःस्पृष्टाव्यवहितषट्षडङ्गुलभूभागेऽष्टदलं तदुभयभागस्पृष्टे तावत्येव भूभागे षोडशदलं भवति। सोऽयं द्वितीयो भागः। शेषतोऽवशिष्टेन प्रथमेन हस्तेन चतुरस्रं कार्यम्। षोडशारोर्ध्वाधोभागसंलग्नद्वादशाङ्गुलभूभागे भूबिम्बं भवति। तत्रापि समं स्यादिति न्यायेनाभितश्चतुश्चतुरङ्गुले चतुरस्रस्य तृतीया रेखा, तदव्यवहिते चतुरङ्गुले द्वितीया रेखा, सर्वबहिर्भूते चतुरङ्गुले भूगृहस्य प्रथमा रेखेति संहत्यावयवत्रयात्मकं चतुरस्रं यत्र भवति

सोऽयं प्रथमो भागः। अत्राऽऽदिमेन चतुरस्रकमित्यनुक्त्वा शेषत इत्युक्त्या वृत्तत्रयस्य प्रथमभागमध्य एवान्ते लेखनं न द्वितीयभागादाविति लब्धं गुणवृत्तलेखोत्तरं यावदवशिष्यते तत्रैव चतुरश्रत्रयस्य यथाविभागं लेख इति तदर्थस्वरसात्। अत्र बहिर्भागमारभ्यान्तर्भागपर्यन्तं क्रमेण प्रथमद्वितीयतृतीयपदैर्व्यवहाराद्भूगृहावयवरेखाणामप्यनेनैव क्रमेण चक्रन्यासे निर्देशादावरणपूजादावयमेव क्रमो मुख्य इत्यदध्वनत्। तन्त्रान्तरे तु मण्डलस्य द्विसप्ततिभागत्वेऽप्यवान्तरविभागः प्रकारान्तरेणोपलभ्यतेपञ्चचत्वारिंशदङ्गुले भूभागे मध्यकर्णिका। तद्बहिरूर्ध्वमधश्च पृथक्पृथक्सार्धचतुरङ्गुलमानेन मिलित्वा नवाङ्गुलेऽष्टदलम्। तद्बहिश्चतुश्चतुरङ्गुलेऽष्टाङ्गुलं(ले) षोडशारं शेषेण भूगृहमिति। प्रपञ्चसारसंग्रहे त्वेष एव प्रकारोऽनुसृतः।।६५-६६।।

ब्रह्मसूत्रं पुरा दत्त्वा कर्णिकाभ्रममध्यतः ।
याम्यसौम्यायतं दद्यात्तत्रस्थं सूत्रसप्तकम् ।।६७।।
तुर्यसूत्रं ततो लुम्पेत् मध्यांशः स्याद्द्विभागतः ।
तृतीयपञ्चमौ नागभूपांशौ द्व्यंशवर्जितौ ।।६८।।

प्रथमतः कर्णिकाभूमि के मध्य में ब्रह्मसूत्र लिखे। इस बार वृत्त के मध्य में याम्य सौम्यायत सप्तसूत्र बनाये। तदनन्तर तूर्य सूत्र (चतुर्थ सूत्र) मिटा दे। अब मध्य भाग होगा—भागद्वयात्मक। अब मध्य भाग को अभिवर्द्धित करना होगा। ऐसा करने से अष्ट तथा षोडश अंश में विभक्त तृतीय तथा पञ्चम भाग से एक-एक अंश को छोड़ देना होगा।।६७-६८।।

इस मान द्वारा आलोच्य मध्यभाग होगा—सप्तवीथि। **ब्रह्मसूत्रं**—वृत्तमध्य प्रागादिपश्चिमांतनिहित सूत्र। **कर्णिकाभूमिमध्यतः**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—श्रीचक्रविन्यास के लिये स्वीकृत त्रि-अवयव क्षेत्र के मध्य से कर्णिकालाभ के उद्देश्य से विरचित वृत्तमध्य में। **याम्यसौम्यायतं**—याम्य = दक्षिण दिक्। सौम्य = उत्तर दिक्। अतः अर्थ होता है—दक्षिण-उत्तरायत। अर्थात् दक्षिण-उत्तर में विस्तृत। **तत्रस्थं सूत्रसप्तकं**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं उसमें वृत्तमध्य में सप्त तिर्यक् रेखा। इन सप्तरेखा को लिखना होगा। **तूर्यसूत्रं**—चतुर्थ सूत्र। **नागभूपांशौ**—अष्टांश तथा षोडशांश। **द्वांशवर्जितौ**—यह 'तृतीयपञ्चमौ' पद का विशेषण है। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—तृतीय भाग से उसके अष्टम अंश को छोड़ देना होगा। **तेन मानेन**—शिवानन्द का अर्थ है—परित्यक्त अंशद्वय द्वारा। भास्करराय ने अर्थ किया है—सार्ध यवयतुष्टरूप मान द्वारा।।६७-६८।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

ब्रह्मसूत्रं प्राक्प्रत्यगायतं मध्यतो निहितं सूत्रम्। पुरा प्रथमम्। कर्णिकाभूमिमध्यतः तच्चक्रराजविन्यासाय स्वीकृतस्य त्र्यवयवस्य क्षेत्रस्य मध्यतः कर्णिकालाभाय विरचितस्य वृत्तस्य मध्ये। याम्यसौम्यायतं दक्षिणोत्तरायतम्। तत्रस्थं वृत्तस्थम्। सूत्रसप्तकं सूत्राणां सप्तकम्। अयमत्र प्रकारः—प्रथमं प्राक्प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रावलम्बनेन,

प्राक् सूत्रं प्रथमं निधाय विदधीतार्धेन तस्याङ्कितं
मध्ये मत्स्ययुग् दिशोरमलधीः कीनाशवित्तेशयोः।
ताभ्यां सूत्रमभिप्रसार्य चतुरः कोणांस्ततो लाञ्छयेत्
क्षेत्रं स्याच्चतुरश्रमत्र जनयेदन्यानि कुण्डान्यपि।। (त्रिं. सा. ९.५)

इत्यभियुक्तोक्तस्थित्या समचतुरश्रोत्पादनानन्तरं त्रिभागीकृते क्षेत्रे मध्यतः कर्णिकावृत्तं विरच्य तत्र दक्षिणोत्तरायतं समकोष्ठं सूत्रसप्तकं पूर्वादिक्रमेण दद्यादिति। तुर्यसूत्रं प्रसृतेषु सप्तसु सूत्रेषु मध्ये पूर्वतश्चतुर्थं सूत्रं लुप्यात् मार्जयेत्। **मध्यांशः स्याद् द्विभागश इति।** तुर्यसूत्रमार्जने कृते मध्यतः कोष्ठद्वयमेकभागो भवतीत्यर्थः। पुनरपि मध्यमभागस्य किञ्चिद्विकासमाह—**तृतीयेति।** तृतीयपञ्चमौ। भागाविति पूर्यम्। नागभूपांशौ अष्टांशषोडशांशौ। द्व्यंशवर्जितौ द्वयेनांशेन वर्जितौ। कुर्यादित्यध्याहार्यम्। अथमर्थः—अष्टधा षोडशधा च विभक्तौ तृतीयपञ्चमौ भागावेकेनांशेन किञ्चिद्ध्रस्वीकुर्यादिति।।६७-६८।।

* सेतुबन्धः *

अथ कर्णिकावृत्तेऽष्टौ भागानारचयति सार्धश्लोकद्वयेन। वृत्तमध्ये प्रागादिपश्चिमान्तमेकं सूत्रं दत्त्वा रेखां विलिखेत्। तदेव ब्रह्मसूत्रमित्युच्यते। तत्प्रयोजनं तु शक्तिपश्चिमकोणानां वह्निपूर्वकोणानां च स्थलनिर्णयेनाऽऽनुपूर्व्यसिद्धिः। याम्या दक्षिणा दिक्। सौम्योदीची। तद्वृत्तमध्ये तिर्यग्रेखासप्तकं लिखेदिति फलितम्। एवं सति प्रथमरेखायाः पूर्वस्यां कर्णिकाभ्रमावधिक एको भागः। सप्तमरेखायाः पश्चिमस्यां कर्णिकाभ्रमपर्यन्तोऽन्यो भागः। सप्तरेखासन्धिभूताः षड्भागा इत्यष्टौ वीथ्यः सम्पन्नाः। ताश्च समं स्यादिति न्यायेन प्रत्येकं त्रित्र्यङ्गुलाः सम्पद्यन्ते। तन्त्रान्तरे तु—'कर्णिकावृत्तस्य पञ्चचत्वारिंशदङ्गुलत्वेऽपि तदवकाशस्य पुनरष्टाचत्वारिंशद्विभागान् कृत्वा तेषु नव रेखा लिखेत्' इत्युक्तम्। देवी स्तुतो मे गङ्गावल्ली स्तुतेति प्रदर्श्यत इति।

कटपयवर्गमवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः।
नेत्रे शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथिते।।

इति प्रसिद्धया वररुचिपरिभाषया देवीत्याद्यक्षराणि। तेन देवीपदेनाष्टाचत्वारिंशदंशा उच्यन्ते। तेषु नवभिस्तिर्यग्रेखाभिर्जातानां दशभागानां परिमाणबोधकानि स्तुतोम इत्यादिदशाक्षराणि। षट् षट् पञ्च त्रयस्त्रयश्चत्वारस्त्रयः षट् षट् षट् च प्राग्दिक्क्रमेण दश वीथ्यंशा भवन्तीति तदर्थः। एतत्तन्त्रेऽपि हस्तमात्रवृत्तस्याष्टाचत्वारिंशद्धा विभागे सत्येकैकोंऽशोऽर्धाङ्गुलात्मकः सम्पद्यते। तादृशाः षट्षडंशाः प्रथमद्वितीययोर्वीथ्योरष्टमादितिसृषु च भवन्तीति तावति विषये तन्त्रान्तरसंवादः स्पष्ट एव। इतरांशेऽपि संवादो मूलतो व्यक्तीभविष्यति।

चतुर्थं सूत्रं लुम्पेत् मार्जयेत्। तेन सप्तैव वीथ्यः सम्पन्नाः। परं तु तासु चतुर्थी वीथीतरवीथ्यपेक्षया द्विगुणपरिमाणा भवतीत्याह—**द्विभागत इति।** भागद्वयात्मक एको मध्यभाग इत्यर्थः। षडङ्गुला तुर्यवीथीति यावत्। इदमुपलक्षणं रेखान्तराणामंशतो मार्जनस्य। तन्त्रान्तरे तृतीयपञ्चमरेखयोर्मध्यभागो गङ्गावल्लीत्युक्तत्रयोदशांशात्मक इह तु द्वादशांशात्मको भवती-

त्यतस्तदविरोधं मध्यभागाभिवर्धनेनोपदिशति—**तृतीयपञ्चमाविति**। तृतीयवीथ्या नागांशांस्त्रित्रियवात्मकानष्टावंशान्कृत्वा पञ्चमवीथ्या भूपांशान् सार्धसार्धयवात्मकान् षोडश भागान् कृत्वाऽष्टस्वेकः षोडशसु चैक इति द्वाभ्यामंशाभ्यां वर्जिताविमौ भागौ कुर्यात्। तृतीयवीथीं स्वाष्टमांशेन ह्रासयेत्। पञ्चमीं वीथीं स्वषोडशांशेन ह्रासयेदिति पर्यवसितोऽर्थः।।६७-६८।।

तेन मानेन सप्तैव वीथ्यस्तन्त्रेषु मध्यमम्।
तृतीयस्य द्वितीयस्य त्वाद्यसूत्रस्य चान्तयोः ॥६९॥
प्रसारयेदधोऽधःस्थं ततः सूत्रद्वयद्वयम्।
भौमे सप्तमके सूत्रे ब्रह्मस्थाने च संगतम् ॥७०॥

सप्तसूत्र के अर्थात् सप्तरेखा के मध्य में जो तृतीय है, उसके दोनों प्रान्त से दो रेखायें नीचे की ओर ऐसे खींचे, जिसके द्वारा शक्तित्रिकोण बन जाय। ऐसे ही द्वितीय सूत्र के दोनों प्रान्तों से दो रेखा कर्णिका वृत्तमध्यस्थ सप्तम सूत्र के मध्य भागपर्यन्त खींचे। इस प्रकार प्रथम सूत्र के उत्तर प्रान्त से दो रेखा ऐसे खींचे, जिससे वह ब्रह्मसूत्र संगत हो अर्थात् ब्रह्मसूत्र में परस्पर युक्त हो जाय।।६९-७०।।

अधोधस्थं—भास्करराय के अनुसार जिससे शक्तित्रिकोण उत्पन्न हो, ऐसे करे। **भौमे**—भास्करराय ने इसका अर्थ किया है—कर्णिकावृत्त। **ब्रह्मस्थाने**—भास्करराय कहते हैं कि इसका अर्थ है—ब्रह्मसूत्र। भास्करराय का कथन है कि प्रथम-द्वितीय-तृतीय ऊपरी भाग से इन तीन सूत्रों से तीन शक्तित्रिकोण बनते हैं तथा पञ्चम-षष्ठ-सप्तम निम्नभागीय इन तीन सूत्रों से वह्नित्रय अर्थात् तीन वह्नित्रिकोण बनते हैं।।६९-७०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तेनेति। तेन मानेन परित्यक्तांशद्वयेन मध्यभागमावर्जिततुर्यसूत्रमेकीकृतं महामध्यकोष्ठं पुनश्च विवर्धयेत् पुनरपि विकसितं कुर्यात्। तृतीय-पञ्चमौ भागौ किञ्चिद्विकसितौ कुर्यादित्यर्थादायातम्। तृतीयस्येत्यर्धपद्यं पूर्वतः पश्चिमाग्रं त्र्यश्रत्रयमाह। तृतीयस्येत्यनेनान्वितोऽन्त्यशब्दः पर्यन्तवचनः। द्वितीयस्य चाद्यस्य चेत्येताभ्यामन्तशब्दः समीपवचनः। आस्फालनीयसूत्रमर्मानुगुणस्थान इत्यर्थः। ब्रह्मस्थाने एकभागीकृतस्य महामध्यकोष्ठस्य पुनर्विकासरूपस्य प्रतिष्ठीकृतस्य पश्चिमतः परित्यक्तमहात्र्यश्राद् बहिर्यवैकमात्रे। अय-मर्थः—प्रसृतेषु सप्तसूत्रेषु मध्ये पूर्वतस्तृतीयद्वितीयाद्यसूत्राणां त्रयाणामन्तरेषु सूत्राण्याबध्य ब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रभ्रमरेखायां तदनन्तरस्थसप्तमसूत्रमध्यभागे महोपह्वरब्रह्मस्थाने च सूत्रद्वयाग्राणि यथा भवन्ति तथा प्रसारयेदिति।

* सेतुबन्धः *

तृतीयवीथ्याः स्वाष्टमांशन्यूनीकरणं द्वेधा सम्भाव्यते द्वितीयसूत्रस्य (प्रागपसारणात्तृतीयसूत्रस्य (?) प्रत्यगपसारणाच्चेति। पञ्चमवीथ्या न्यूनीकरणमपि द्वेधा। तयोर्द्वितीय एव पक्षोऽनुसर्तव्य इत्याह—**तेन मानेनेति**। तृतीयवीथ्यां निःसारितं (यवत्र)यं पञ्चमवीथीस्थः सार्धयवश्चेति सार्धय-

वचतुष्टयरूपेण मानेन षडङ्गुलात्मकं मध्यभागं पुनरपि विवर्धयेदित्यर्थ:। तृतीयपञ्चमरेखे एव प्राक्प्रत्यगपसारयेदिति यावत्। कर्णिकावृत्तसम्बन्धिनामष्टाचत्वारिंशदंशानां मध्ये त्रयोदशांशैर्मध्यभागस्तन्त्रान्तर इह त्वर्धयवाधिकैस्त्रयोदशभिरित्यल्पतरमन्तरं भवति। तृतीयवीथ्यामेवैकांशन्यूनभावस्तन्त्रान्तरे। अत्र तन्त्रे तु तृतीयपञ्चमवीथ्योर्मिलित्वा न्यूनभाव इति वैलक्षण्यं तु तन्त्रभेदान्न दुष्यति। यत्तु तृतीयवीथीस्थांशाष्टके पञ्चमवीथीस्थांशषोडशके च द्वौ द्वावंशौ पार्थक्येन न्यूनीकुर्यादिति व्याख्यानं तत्तन्त्रान्तरेण भूयो विसंवादापत्तेरुपेक्षितम्। अत्रेदं बोध्यम्—प्रथमसूत्रमष्टाचत्वारिंशद्धा विभज्य तदुभयभागे पृथक्पृथगंशत्रयमिति मिलित्वा तस्य षड्भागान् मार्जयेत्। एवं सप्तमरेखायामपि। द्वितीयरेखाया उभयत: पञ्च पञ्चांशानिति दशांशान् मार्जयेत्। षष्ठरेखायां त्यु(तू)भयतश्चतुरश्चतुरोंऽशानित्यष्टावंशान् मार्जयेत्। तदुक्तम्—

आद्ये द्वितीये षष्ठे च सप्तमे च यथाक्रमम्।
मार्जयेद् गुणभोगान्ते त्रिपञ्च तु न मार्जयेत्।। इति।

सोऽयमर्थो मध्यांश: स्याद्द्विभागत इति चरणेनोक्त इति सुव्याख्यम्। कर्णिकामध्यगतसूत्रान्तरांशोऽपि विभागतस्तन्त्रान्तरोक्तगुणभोगाख्याविभागानुसारेण लुम्पेत्। स्यात्पदमीषदर्थकं नियमार्थकं वाऽव्ययमिति तदर्थात्। मध्यांशे द्विभागात्मकत्वस्य तुर्यसूत्रलोपादर्थसिद्धत्वेन तत्कथनस्यानावश्यकत्वादिति द्रष्टव्यम्।

एवं सप्तानां सूत्राणां मध्ये यत्तृतीयं सूत्रं तस्यान्तयो: कर्णिकावृत्तस्पृष्टयो: प्रान्तभागयोरारभ्य पश्चिमस्यां दिशि भौमपर्यन्तं सूत्रद्वयं प्रसारयेत्। अधोऽध:स्थं शक्तित्रिकोणानुगुणं यथा भवति तथा। भौमं नाम कर्णिकावृत्तम्। तथा यद्द्वितीयं सूत्रमस्पृष्टकर्णिकमुभयतोमार्जितपञ्चपञ्चांशं तस्यान्तयोरारभ्य पश्चिमस्यां दिशि सप्तमसूत्रमध्यभागावधि द्वे रेखे विलिखेत्। ततो यदाद्यं सूत्रमस्पृष्टकर्णिकमुभयतोमार्जितत्रित्रिभागं तस्यान्तयोरारभ्य प्रत्यग्दिशि मार्जिततुर्यसूत्रादध:स्थाने ब्रह्मसूत्रसङ्गतं यथा भवति तथा रेखाद्वयं लिखेत्। अयं च कोण: पञ्चसूत्रमध्यभागात्पूर्वस्यां दिशि किञ्चिदधिकयवत्रयोपरि निपततीति बोध्यम्। अन्ये तु अन्तशब्दस्तृतीयस्येत्यनेनान्वयदशायां प्रान्तपर:। द्वितीयाद्याभ्यामन्वयदशायां समीपपर इत्याहुस्तदयुक्तम्। पूर्व (र्व) प्रथमादिरेखा(णा)मंशतो मार्जनस्य मूलारूढीकरणेन अस्मन्मतरीत्या सर्वत्र प्रान्तार्थकत्वेनावैरूप्यस्य सम्भवतस्त्यागायोगात्।।६९-७०।।

आपञ्चमादध:स्थानां त्रयाणां चान्ततो नयेत्।
भौमे प्राथमिके सूत्रे विश्रान्तं च तृतीयके।।७१।।
सूत्रद्वयं चान्य(तस्तु) त्र्यस्राण्येवं भवन्ति षट्।
चतुर्दशारं देवेशि दशारं चात्र सिध्यति।।७२।।

पञ्चम सूत्र से प्रारम्भ करके निम्न भाग के तीन सूत्रों में से प्रत्येक के उभय प्रान्त से दो-दो रेखा ऊपर की ओर खींचनी होगी। पंचम सूत्र के उभय प्रान्तों से दो रेखा इस

प्रकार से खींचनी होगी। जिससे वह कर्णिकावृत्त में परस्परत युक्त हो जाय। तदनन्तर षष्ठ सूत्र के उभय प्रान्तों से दो रेखा ऐसी खींचे, जिसे प्रथम सूत्र के मध्य भाग में परस्पर युक्त करना होगा। अब सप्तम सूत्र के उभय प्रान्त से दो रेखा खींचकर तृतीय सूत्र के मध्य भाग में परस्परतः युक्त करे। इसी प्रकार से षट्त्रिकोण होगा। अर्थात् पूर्वोक्त तीन शक्तित्रिकोण तथा इन तीन वह्नित्रिकोण में मिलकर षट्त्रिकोण होता है। हे देवेशि! इस प्रकार से शक्तित्रिकोण तथा वह्नित्रिकोण मिलकर चतुर्द्वार तथा बहिर्दशार नामक दो चक्र उत्पन्न हो जाता है।।७१-७२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

आपञ्चमेत्यर्धपद्यं पश्चिमतः पूर्वाग्रं त्र्यश्रत्रयमाह। अयमर्थः—प्रसृतेषु सूत्रेषु मध्ये पूर्वतः पञ्चमसूत्रमारभ्य पश्चिमतोऽवस्थितानां त्रयाणां सूत्राणां पूर्वदलेषु सूत्राण्याबध्य ब्रह्मसूत्रप्रागग्रभ्रमरेखायां तदनन्तरस्थप्रथमसूत्रमध्यभागे तदनन्तरस्थतृतीयसूत्रमध्यभागे च सूत्राग्राणि यथा भवन्ति तथा प्रसारयेदिति। एवं कृते त्र्यश्रषट्कं सम्पद्यते। आद्या शक्तिराद्यं वह्निपुरं च कर्णिकाभ्रमसंश्लेषीति चक्रराजस्येयं महोपनिषत्। शक्त्या शक्तिक्रमेऽप्येवं द्रष्टव्यम्। एतावति कृते चतुर्दशारनिष्पत्तिः सम्पन्नेत्याह—**चतुर्दशारमिति**।।७१-७२।।

* सेतुबन्धः *

एवं प्राच्येन सूत्रत्रयेण शक्तित्रयमुत्पाद्य प्रतीच्येन तेन वह्नित्रयमुत्पादयति आपञ्चमादिति द्वाभ्याम्। यथा प्राच्यतिर्यग्रेखात्रयप्रान्तेभ्यः पार्श्वरेखे द्वे द्वे अधो नीते एवमन्ये अपि द्वे द्वे सूत्रे पञ्चममारभ्याधःस्थानां त्रयाणां तिर्यक्सूत्राणां प्रान्तत ऊर्ध्वं नयेत्। ततो यत्षष्ठं सूत्रमस्पृष्टकर्णिकमुभयतोमार्जितचतुश्चतुर्भागं तस्यान्ताभ्यां पार्श्वरेखे आकृष्य प्राच्यां प्राथमिकतिर्यक्सूत्रमध्यभागे योजयेत्। ततो यत्सप्तमं सूत्रमुभयतोमार्जितत्रित्रिभागं तदग्राभ्यां द्वे रेखे आकृष्य पूर्वस्यां दिशि तृतीयतिर्यक्सूत्रस्य मध्यभागे मेलयेत्। एवं रीत्या पार्श्वरेखायुगलानि षड्भवन्ति। वस्तुतस्त्र्यस्राण्येवं भवन्ति षडिति ऋजुविमर्शिन्युक्त एव पाठः साधुः। एवं प्रकारेण शक्तित्रयवह्नित्रयाभ्यां मन्वस्रबहिर्दशाराख्ये द्वे चक्रे सम्पन्ने भवतः।।७१-७२।।

सूत्राद् द्वितीयकात् षष्ठाद् ब्रह्मसूत्रस्य पार्श्वयोः ।
सूत्रद्वयद्वयं देयमध ऊर्ध्वक्रमात्मकम् ।।७३।।
तत्कोटिसङ्गतं पश्चात् सूत्रयुग्मं प्रसारयेत् ।
दशारं देवि संसिद्धमेतच्चक्रं तृतीयकम् ।।७४।।

द्वितीय सूत्र के मध्य भाग से नीचे की ओर ब्रह्मसूत्र के दोनों पार्श्व-स्थित द्वितीय शक्तित्रिकोण की जो दो रेखा है, वहाँ तक दो रेखा खीचना होगा तथा इन दोनों रेखा के अग्रभाग में और रेखा खींचकर युक्त करे। उसी प्रकार षष्ठसूत्र के मध्य भाग से ऊपर की ओर ब्रह्मसूत्र के दोनों ओर द्वितीय वह्नित्रिकोण की जो दो रेखा है, वहाँ तक दो रेखा

खींचना होगा तथा इन दोनों रेखा के अग्र भाग में और एक रेखा खींचकर युक्त करना होगा। हे देवि! इस प्रकार करके यह तृतीय चक्ररूप अन्तर्दशार सम्पन्न हो जाता है।।७३-७४।।

तत्कोटिसङ्गतम्—सूत्रद्वय के अग्रभाग से संगत। तृतीयकम्—चतुर्दशार के प्रथम चक्र से गणना करने पर तृतीय चक्र।।७३-७४।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

सूत्राद् द्वितीयकादिति द्वाभ्यां पुनर्दशारमाह। द्वितीयकात् पूर्वतो द्वितीयकात् सूत्रात्। षष्ठात् पूर्वत: षष्ठात् सूत्रात्। ब्रह्मसूत्रस्य प्राक्प्रत्यङ्निहितस्य महासूत्रस्य। तत्कोटिसङ्गतम् अधऊर्ध्वक्रमात्मकं विन्यस्य सूत्रद्वयाग्रसङ्गतम्। अयमर्थ:—पूर्वतो द्वितीयसूत्रमध्यभागमारभ्य ब्रह्मसूत्रस्य पक्षयोरनन्तरकोणक्लृप्तदशारकोणद्विरेखावधि पूर्वाग्रं सूत्रद्वयं प्रसार्य पुनस्तत्तत्सूत्राग्रावलम्बनेन दक्षिणोत्तरत: सूत्रद्वयं प्रसारयेदिति। एवं कृते पुनर्दशारं सम्पन्नमित्याह—**दशारं देवीति**।।७३-७४।।

*** सेतुबन्ध: ***

अथान्तर्दशारं द्वाभ्यामाह। द्वितीयसूत्रस्य प्रान्ताभ्यामधो द्वे रेखे पूर्वमेव लिखिते इति पुनस्ततो रेखारम्भासम्भवात् मध्यभाग एवाऽऽक्षिप्यते। तेन द्वितीयसूत्रस्य मध्यभागादारभ्याधोमुख्यौ रक्षोवायुकोणाभिमुख्येन द्वे रेखे लेख्ये। तयोरवधिमाह—**ब्रह्मसूत्रस्येति**। प्राक्प्रत्यगायतं यद्ब्रह्मसूत्रं तस्य पार्श्वयो: पार्श्वद्वयवर्तिरेखावधिकतयेत्यर्थ:। साम्प्रतं लिखितशक्तित्रये या मध्यशक्तिस्तदीयपार्श्वरेखाद्वयावधीति यावत्। एवं षष्ठसूत्रस्यापि प्रान्ताभ्यां रेखाद्वयस्योर्ध्वक्रमेण लिखितत्वात् तन्मध्यभागादारभ्यैवेशाग्निकोणाभिमुख्येन द्वे रेखे लिखेत्। तयोरवधिस्तु साम्प्रतं लिखितवह्नित्रये यो मध्यमो वह्निस्तदीयपार्श्वद्वयमेव। तदिदमवधिद्वयं तन्त्रेण बोधयितुं ब्रह्मसूत्रस्य पार्श्वयोरित्युक्तम्। ऋजवस्तु—द्वितीयसूत्रस्य षष्ठसूत्रस्य च यो मध्यभागस्तस्य ब्रह्मसूत्रस्पृष्टत्वात् तत्पार्श्वयोरित्यनेन तन्त्रेण वह्निप्राक्कोणशक्तिप्रत्यक्कोणयोरेव स्थाननिर्देश इति व्याचक्षते। एवं सूत्रद्वयद्वयं दत्त्वा पश्चादनन्तरं सूत्रयुग्मे तिर्यक्सूत्रयुगलं प्रसारयेत्तिर्यग्लिखेत्। द्वितीयसूत्रमध्यारब्धवह्निपार्श्वद्वयरेखाकोटिस्पृष्टं पञ्चमसूत्रादुपरि यवत्रयपरिमितदेशवर्ति च यथा भवति तथा तिर्यक्सूत्रं विलिख्य वह्निं साधयेत्। षष्ठसूत्रमध्यारब्धशक्तिपार्श्वरेखाद्वयाग्रस्पर्शि तृतीयसूत्रादधो यवत्रयपरिमितदेशवर्ति च यथा स्यात्तथा तिर्यक्सूत्रं विलिख्य शक्तिं साधयेदिति यावत्। एवं कृते सति यद्यपि षट्कोणमेव भवति तथाऽपि षट्कोणस्य विदिक्चतुष्टयेऽपि चत्वारि त्र्यस्राणि पूर्वमर्धसिद्धानि षट्कोणपार्श्वरेखाभिरेव पूर्णानि जातानीत्याशयेनान्तर्दशारं मन्वस्रापेक्षया तृतीयं चक्रं सम्यक् सिद्धमित्युक्तम्।।७३-७४।।

सूत्रात्पञ्चमकान्मध्यादन्यत्सूत्रद्वयं नयेत्।
ऊर्ध्वाधोमुखमध्यस्थत्र्यस्रमर्मद्वयावधि ।।७५।।

दद्यात्तृतीयकं सूत्रं तयोरन्योन्यसङ्गतम् ।
एवं चतुर्थमष्टारं मध्ययोनिश्च पञ्चमी ।।७६।।

पञ्चम सूत्र के मध्य भाग से और दो रेखा ब्रह्मसूत्र के दोनों और ईशान तथा अग्नि कोण की ओर ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख त्रिकोण के मध्यस्थ त्र्यस्रद्वय द्वारा संघटित मर्म तक खींचना होगा। दोनों रेखा पूर्वोक्त ऊर्ध्वमुख त्रिकोण की पार्श्वरेखा से युक्त होगी। अव उक्त रेखाद्वय के अग्र भाग में तृतीय एक रेखा खींचकर युक्त करना होगा। इस प्रकार सृष्ट होगा—चतुर्थ चक्र अष्टकोण एवं मध्ययोन्यात्मक पंचम चक्र त्रिकोण।।७५-७६।।

ऊर्ध्वाधोमुखमध्यस्थत्र्यस्र—ऊर्ध्वमुख एवं अधोमुख अर्थात् ऊर्ध्वमुख तथा अधोमुख त्रिकोणद्वय। भास्करराय के मत से ऊर्ध्वाधोमुख शब्द द्वारा सम्प्रति लिखित षट्कोण का अर्थ है। इस षट्कोण के मध्यस्थ त्र्यस्रद्वय से तात्पर्य है—षट्कोण के मध्य में स्थित प्रथम शक्तित्रिकोण तथा प्रथम वह्नित्रिकोण। **मर्म**—भास्करराय के मत से यहाँ मर्म का अर्थ है—सन्धि। यह सन्धि ही मर्म में परिणत होती है; अतः मर्म को सन्धि कहना युक्तियुक्त है।।७५-७६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सूत्रात् पञ्चमकादित्यर्धपद्यमष्टारं मध्ययोनिं चोत्पादयति। पञ्चमकात् पूर्वतः प्रसृतपञ्चमसूत्रात्। मध्यात् मध्यमभागात्। अयं विन्यासक्रमः—पूर्वतः पञ्चमसूत्रमध्यभागमारभ्य ब्रह्मसूत्रभागयोः प्रागग्रमूर्ध्वाधोमुखयोर्मध्यस्थयोस्त्र्यश्रयोः पक्षद्वयप्राप्तमर्मयुगावधि सूत्रद्वयं प्रसार्य तदग्रावलम्बनेन दक्षिणोत्तरतः सूत्रमेकं निदध्यादिति। एवं कृतेऽष्टारं मध्यत्र्यश्रं च सम्पन्नमित्याह—**एवमिति**।।७५-७६।।

* सेतुबन्धः *

अथ वसुकोणत्रिकोणचक्रे द्वाभ्यामाह। पञ्चमसूत्रस्य मध्यभागादारभ्यैशानाग्नेयाभिमुख्येन द्वे सूत्रे लिखेत्। वृक्षात्पतत्यग्रात्पततीत्यादाविव क्रियावृत्त्योभयोरप्यपादानत्वम्। अनावृत्तौ वृक्षपदस्येव तत्सम्बन्धिनि लक्षणा। तयोरवधिमाह—**ऊर्ध्वेति**। ऊर्ध्वाधोमुखशब्दाभ्यां साम्प्रतं लिखितषट्कोणमुच्यते। तन्मध्यस्थं यत्त्र्यस्रं प्रथमशक्तिरूपं तत्पार्श्वरेखयोः प्रथमवह्निपार्श्वरेखाभ्यां सम्बन्धात्सन्धिद्वयं तयोरेव द्वितीयवह्निपार्श्वरेखाभ्यां योगे तृतीयशक्तिप्राच्यरेखयाऽपि योगान्मर्मद्वयं चास्ति। तादृशमर्मद्वयाधःसमीपदेशो लक्षणया निर्दिश्यते। तदवधि लिखेदित्यर्थः। वस्तुतस्तु सन्धिरेव मर्मपदेन लक्ष्यते। तस्यैव भाविमर्मत्वादिति युक्तम्। ततस्तयोः पार्श्वरेखयोरन्योन्यसम्बद्धं यथा स्यात्तथा सूत्रं तिर्यक्सूत्रं दद्यात्। तच्च पार्श्वरेखाद्वयमपेक्ष्य तृतीयं भवतीति। एवं सति चतुर्दशारमारभ्य गणनायां चतुर्थं वसुकोणात्मकं पञ्चमं मध्ययोन्यात्मकं च चक्रं सिध्यतीत्यस्यापकर्षेणान्वयः।।७५-७६।।

एवं सिध्यति देवेशि सर्वचक्रं मनोहरम्।
तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम् ।।७७।।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसम्भवः ।

हे देवेशि! इस प्रकार मनोहर सर्वचक्र निष्पन्न होता है। सृष्टिक्रम में शक्तिपंचक तथा लयक्रम में वह्निचतुष्टय को लेकर वह चक्र। पञ्चशक्ति तथा चतुर्वह्नि के संयोग से यह चक्र सम्भूत होता है।।७७।।

सर्वचक्रं—भास्करराय के मत से 'सर्व' का तात्पर्य है—कोण के अन्तर्गत चतुर्दशार से बिन्दु-पर्यन्त। इसे लेकर जो चक्र है, वही है—सर्वचक्र। **मनोहरम्**—शिवानन्द कहते हैं कि आश्चर्यरूपत्व—हेतु मनोहारी। शक्तिपञ्चकसृष्ट्या की व्याख्या में भास्कराचार्य कहते हैं कि सृष्टि अर्थात् आत्माभिमुखता, तादृशाग्र शक्तिपञ्चक। लयेनाग्निचतुष्टयम् की टीका में भास्करराय मूल के 'लय' शब्द के स्थान पर 'लेप' शब्द का व्यवहार कर रहे हैं अर्थात् उन्होंने लय का अर्थ किया है—लेप। इनका कथन है कि लेप अर्थात् पराङ्मुखता, तादृशाग्र वह्निचतुष्टय।।७७।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

समम् अन्योन्यतः। मनोहरम् आश्चर्यरूपत्वात्। तच्चक्रं पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगात् पञ्चानां शक्तीनां चतुर्णां वह्नीनां संयोगात्।।७७।।

*** सेतुबन्धः ***

सर्वं कर्णिकान्तर्गतं चतुर्दशारादिबिन्द्वन्तम्। बिन्दोः कर्काटकेन कर्णिकावृत्तनिर्माणदशायामेव सिद्धत्वात्। अथवा—

त्रिकोणे बैन्दयं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके।।

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तरीत्या चतुर्णां चक्राणां पञ्चसु चक्रेष्वन्तर्भावाभिप्रायेणैतावत एव सर्वचक्रमिति व्यपदेशः। एतेन बहिरन्तर्दशारयोर्द्वितीयतृतीयावरणत्वाभ्यां व्यपदेशौ मूले करिष्यमाणौ संगच्छेते। सर्वपदेन न्यूनमात्रव्यवच्छेदो नाधिकस्येति तु केचित्। आत्माभिमुखता सृष्टिस्तादृशाग्रं शक्तिपञ्चकम्, पराङ्मुखता लयस्तादृशाग्रं वह्निचतुष्टयम्। एवं नवानामुक्तरीत्या सम्यग्योगाच्चक्रोत्पत्तिः।।७७।।

तत्रैकमष्टकं देवि द्वे दशारे चतुर्दश ।।७८।।
चतुर्दश दशद्वन्द्वमष्टावेकं महेश्वरि ।
सृष्टिसंहारयोगेण शक्तिस्थानान्यनुक्रमात् ।।७९।।
स्थितानि त्रिपुराचक्रे यद्बोधाद् भैरवो भवेत्।

हे देवि! वहाँ सृष्टिक्रम में बिन्दुमध्य, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार तथा चतुर्दशार अवस्थित है। हे महेश्वरि! संहारक्रम में चतुर्दशार, बहिर्दशार, अन्तर्दशार, अष्टकोण तथा बिन्दुमध्य त्रिकोण अवस्थित हैं (जिस त्रिकोण से मध्य में बिन्दु है, वह अवस्थित है)। सृष्टि तथा संहार के योग में अवस्थित त्रिकोण का बोध जिसे होता है, वह भैरव हो जाता है।।७८-७९।।

सृष्टिसंहारयोगेन—सृष्टिक्रम में तथा संहारक्रम में। **शक्तिस्थानानि**—शक्तिस्थान अर्थात् त्रिकोण। **त्रिपुरचक्रे**—श्रीचक्र में। **भैरव:**—शिवानन्द के अनुसार जगत् भरण लक्षण चित्—नाथ। भास्कराचार्य के अनुसार—परमशिव।।७८-७९।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

भैरव: जगद्भरणलक्षणश्चिन्नाथ:।।७८-७९।।

*** सेतुबन्ध: ***

एकमित्यादिना सृष्टिक्रमेण त्रिचत्वारिंशतस्त्रिकोणानां गणनम्। चतुर्दशेत्यादिकं तु संहारक्रमेण। शक्तिस्थानानि त्रिकोणानि। यत्तु सौन्दर्यलहर्याम् 'चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलास्त्रत्रिवलया' इत्यादिगणनं तद्बिन्दुसाहित्याभिप्रायेण। त्रयश्चत्वारिंशदित्येव वा तत्र पाठ इत्यविरोध:। यस्य चक्रस्य बोधात्साधकोऽपि भैरव: परमशिव एव भवति। अत्र द्विविधेऽपि चक्रोद्धारे बिन्दो: कण्ठरवेणानुक्तिस्तु यत्र काम्यप्रयोगविशेषेषु पूर्णचक्रस्य नवयोनिचक्रमात्रस्य वा द्वितीयपटले चतुर्थपटले च विनियोगो वक्ष्यते तत्र मध्ये लेखनीयांशस्य चिन्तनीयांशस्य वा विधानसत्त्वे बिन्दुरहितस्यैवोपस्थित्यर्था, तदसत्त्वे त्वर्थाद्बिन्दुप्राप्ति: सर्वशून्यस्यैव बिन्दुरूपत्वादिति।।७८-७९।।

बहि: पद्मद्वयं कुर्यादष्टषोडशकच्छदम् ।।८०।।
गुणवृत्तं तत: कुर्याच्चतुरस्रं च तद्बहि: ।
चतुर्द्वारसमायुक्तमेवं स्याच्चक्रमुत्तमम् ।।८१।।

चतुर्दशार तथा कर्णिकावृत्त के बाहर अष्टदल तथा षोडशदल पद्म की रचना करनी होगी। उसके बाहर वृत्तत्रय एवं उसके बाहर चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र की रचना करनी होगी। इस प्रकार से उत्तम चक्र रचित होगा।।८०-८१।।

गुणवृत्तं—गुण तो संख्यावाचक है अर्थात् तीन (क्योंकि सत्त्व रज: तम तीन गुण होते हैं); अत: गुणवृत्त का अर्थ है—वृत्तत्रय।।८०-८१।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

गुणवृत्तं गुणशब्दस्त्रित्वं लक्षयति।।८०-८१।।

*** सेतुबन्ध: ***

बहिर्मध्यमं तृतीयभागमभितो द्वादशद्वादशाङ्गुले भूभागे। ततो द्वितीयभागं हस्तात्मकं परितो

यथोचितभागे। तद्बहिर्वृत्तत्रयाद्बहि: किञ्चिद्वना(द्यवा)धिकैकादशाङ्गुलभूभागे। एवं सति 'शक्त्या शक्तिम्' (१/३१) इत्यादिपूर्वोक्तप्रकारापेक्षयोत्तमं सुलभलेखं चक्रं भवतीत्यर्थ:। मध्यस्य कर्णिकावृत्तस्य यावती क्षेत्रफलसंख्या यवयूकादिपरमाण्वन्तानां भवति तस्या: सकाशात् त्रिचत्वारिंशत् त्रिकोणानाक्रान्तभूभागक्षेत्रफलसंख्यामपनीयावशिष्टायास्त्रिचत्वारिंशता विभजने या लब्धसंख्या भवति तावद्भिर्यवादिभि: प्रमिताया: प्रथमशक्तेर्निर्माणस्य निपुणतरगणकाग्रण्येकसाध्यत्वेन प्रथमप्रकारस्येतरेषां दुस्तरत्वादिति भाव:। एते च सप्तदश श्लोका: कस्याञ्चिट्टीकायां न दृश्यन्ते। अन्यस्यां दृश्यन्ते च।।८०-८१।।

संस्थिताऽत्र महाचक्रे महात्रिपुरसुन्दरी।
शृणु देवि यथा साऽत्र पूज्यते साधकोत्तमै: ।।८२।।

इस प्रकार महाचक्र में महात्रिपुरसुन्दरी सम्यक् स्थिता है। हे देवि! उत्तम साधकगण इस चक्र में जैसे उनकी पूजा करते हैं, वह सुनो।।८२।।

महाचक्रे—श्रीचक्र। भास्करराय कहते हैं चक्र है कि सिन्दूर अथवा कुंकुमलिखित अथवा स्वर्ण, रौप्य, पंचलौह, रत्न, स्फटिकादि पर उत्कीर्ण।।८२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवमुभयथा चक्रराजप्रस्तारमभिधायात्र पूज्यां देवतामाह—**संस्थितेति**। वशिन्यादिवाग्देवताष्टकोपेता महादेवी चक्रराजेऽस्मिन् पूज्येत्याह—**शृणु देवीति**। अत्र चक्रराजे पूज्यते।

निर्विकल्पे परे व्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लय: (वि० भै० १४७) इति।

न पूजा बाह्यपुष्पादिद्रव्यैर्वा प्रथिताऽनिशम्।
स्वे महिम्न्यद्वये धाम्नि सा पूजा या परा स्थिति:।। (सं० प०)

इति चोत्तमविषये पूजोपनिषत्। इह तु साधकान् प्रति पूजा।।८२।।

* अर्थरत्नावली *

संस्थिताऽत्रेति। एवंभूते श्रीचक्रे सम्यक् स्थिता पुरत्रयस्य स्वामिनी महात्रिपुरसुन्दरी। सा तु येन प्रकारेण पूज्यते तथाऽवधारयेत्यर्थ:।।८२।।

* सेतुबन्ध: *

एवं चक्रोद्धारमुपदिश्य वक्ष्यमाणपूजोपोद्घाततया मन्त्रोद्धारमुपदिशति 'संस्थिताऽत्र' इत्यादिना चतुश्चत्वारिंशता 'त्रैलोक्यवशकारिणी' (श्लो. १२५) इत्यन्तेन। बाणलिङ्गादौ हि सार्वकालिकं शिवतेज:सान्निध्यम्। पार्थिवलिङ्गादौ तु यावदर्चनकालमेवेति स्थिति:। प्रकृते तूभयथाऽपीतोद्योतनायात्रेति वारद्वयं निर्देश:। तेन स्वर्णादिनिर्मिते चक्रे सार्वकालिकं देव्या: सान्निध्यम्, भुवि लिखिते तु यावदर्चनकालमिति सिध्यति। ततश्च 'आलिखेत्प्रथमं चक्रम्' (१/१३१) इति वक्ष्यमाणत्वेऽपि न तत्रैव पूजाऽपि तु स्वर्णादिनिर्मितेऽपीति ध्वनितम्। स्वर्णाद्याधारभेदेन सान्निध्ये कालभेदास्तन्त्रान्तरे दृश्यमाना अप्यनुमता एवेति द्रष्टव्यम्। एतेन महाचक्रराजं

सिन्दूरकुङ्कुमलिखितं चामीकरकलधौतपञ्चलोहरत्नस्फटिकाद्युत्कीर्णं वा निवेश्येति कल्पसूत्रमुपपद्यते।।८२।।

वशिन्यादिवाग्देवतामन्त्राः

वर्गानुक्रमयोगेण देवताष्टकसंयुता।
अवर्गः प्रथमो देवि वशिनी तत्र देवता।।८३।।

हे देवि! अष्टवर्गानुक्रम योग में जो अष्टदेवता विराजित हैं, उनके सहित युक्ता हैं—महात्रिपुरसुन्दरी। अष्टवर्ग का प्रथम वर्ग है—अवर्ग, उसकी देवता हैं—वशिनी।।८३।।

वर्गः—मातृकावर्ण का अ क च ट त प य श अष्टवर्ग है। **देवताष्टकसंयुता**—अष्टवर्ग में से प्रत्येक की वशिनी आदि एक-एक देवता हैं। ये अष्टदेवता के साथ युक्ता हैं। **वशिनी**—अवर्ग की अधिष्ठात्री वागीश्वरी अथवा वाग् देवता।।८३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अवर्गेत्यादिसार्द्धत्रिभिर्वशिन्यादिवाग्देवताष्टकानां नामधेयं मातृकाष्टवर्गं च यथायोगं संश्लेषयति।।८३।।

* अर्थरत्नावली *

वर्गानुक्रमयोगेनेत्यादि। मातृकाया अष्टवर्गानुक्रमयोगेन वशिन्यादिकौलिन्यन्ताष्टवागीश्वरीसहिता पूज्येत्यर्थः। अवर्गः प्रथम इत्यादिना देवताष्टकं निर्दिशति।।८३।।

* सेतुबन्धः *

तत्र प्रथमं वशिन्यादिवाग्देवताष्टकमन्त्रानुद्धरति। अकचटतयशाख्यवर्गाणामनुक्रमेण सम्बन्धोपलक्षितवशिन्यादिवाग्देवताष्टकेन युक्ता सेति पूर्वान्वयि। अवर्गः षोडशस्वरात्मकः प्रत्यक्षरं बिन्दुयुक्तः। बिन्दुयोगं विना बीजत्वायोगात्। अत एव शुद्धमातृकान्यास एकैकबिन्दुयुतः। सबिन्दुकमातृकान्यासस्तु द्विद्विबिन्दुयुत इति गुरुमुखैकवेद्यः सम्प्रदायः। एवमुत्तरत्र कवर्गादिमात्रनिर्देशेऽपि सबिन्दुकतोहनीया। अत एव वशिन्यादिन्यासप्रकरणे कल्पसूत्रम् 'सर्वत्र वर्गाणां बिन्दुयोगः' इति। करिष्यमाणवाग्भवपाशचापादिबीजोद्धारेऽप्येवमेव बिन्दुयोगो द्रष्टव्यः।।८३।।

तत्परस्तु कवर्गोऽयं तत्र कामेश्वरी स्थिता।
मोदिनी तु चवर्गस्था टवर्गे विमला स्मृता।।८४।।
अरुणा तु तवर्गस्था पवर्गे जयिनी तथा।
सर्वेश्वरी यवर्गे तु शवर्गे कौलिनीति च।।८५।।
एता वर्गाष्टके सम्यगष्टावेव हि देवताः।
अर्चिताः पुरुषस्याऽऽशु प्रकुर्वन्ति वशं जगत्।।८६।।

तदनन्तर कवर्ग। उसमें अधिष्ठिता हैं—कामेश्वरी। चवर्ग में मोदिनी, टवर्ग में

विमला, तवर्ग में अरुणा, पवर्ग में जयिनी, यवर्ग में सर्वेश्वरी तथा शवर्ग में कौलिनी अधिष्ठिता हैं। इस अष्टवर्ग के अष्टदेवताओं का सम्यक् पूजन करने से ये जगत् को पूजक के वश में कर देते हैं।।८४-८६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सम्यग् अविपर्यस्तत्वेन।।८४-८६।।

* अर्थरत्नावली *

वर्गाष्टकेऽपीत्यादि। वर्गाष्टकदेवता वशन्यादयः साधकेनार्चितास्तस्य वशे जगत् कुर्वन्तीत्यर्थः।।७४-८६।।

* सेतुबन्धः *

कवर्गादयः पञ्च पञ्चवर्णाः। यवर्गश्चतुर्वर्णः। शवर्गः षड्वर्णः। अत एव 'यादिचतुष्टकम्, शादिषट्कम्' इति कल्पसूत्रमुपपद्यते। यवर्गषवर्गयोरपि पञ्चपञ्चवर्णात्मकतैवेति तु केचित्। तद् अर्णवसंहितादितन्त्रैर्महोदध्यादिबहुग्रन्थैश्च विरुद्धत्वादुपेक्ष्यम्। 'कौलिनीपञ्चमं देवि' (१/१००) इत्युत्तरग्रन्थविरोधस्तु तत्रैव परिहरिष्यते।।८४-८६।।

उद्धरेत्प्रथमं रेफं तदधः कुटिलान्तकम्।
तदप्यवनिबीजस्थषष्ठस्वरसमन्वितम् ।।८७।।
ऊर्ध्वमर्धेन्दुबिन्द्वाढ्यं कारयेत्परमेश्वरि।
एतत्तु वशिनीबीजं योगिनीनां मुखे स्थितम् ।।८८।।

प्रथमतः रेफ का उद्धार करे। उसके नीचे कुटिलान्तक लगाये। इन दोनों से होगा—अवनीबीजस्थ। उससे युक्त होगा—षष्ठ स्वर। परमेश्वरी के ऊपर अर्धचन्द्र तथा बिन्दु का योग करे। यह है—वशिनी बीज! यह बीज योगिनीगण के मुख में अवस्थित है।।८७-८८।।

इन दोनों श्लोकों में वशिनी का बीजमन्त्र लिखा है, जिसे सांकेतिक भाषा में विवृत किया गया है। **कुटिलान्तकम्**—कुटिल अर्थात् 'फ'। उसका अन्तक अर्थात् परवर्त्ती वर्ण 'ब'। **अवनिबीजस्थं**—अवनी बीज 'लं'। भास्करराय कहते हैं कि सम्प्रदायानुरोध से यहाँ केवल ल्र व्यञ्जनवर्ण ग्राह्य है। अतः होता है—'ल्रस्थं'। इसका अर्थ है कि पूर्वोक्त रेफ तथा ब, र के साथ ल्र का योग करना होगा। **षष्ठस्वरसमन्वितम्**—षष्ठ स्वर है—ऊ। पूर्वोक्त रेफ, ब तथा ल्र के साथ ऊ को युक्त करना होगा। **योगिनीनां मुखे स्थितम्**—भास्करराय व्याख्या में कहते है कि 'योगिनीनां' अर्थात् तद्वाचक वशिनी पद के मुख में स्थित अर्थात् आरम्भ में प्रयोज्य। वे कहते हैं कि यह उपलक्षण है। 'योगिनीनां इस बहुवचन पद द्वारा सूचित होता है कि कामेश्वरी आदि के बीजों में भी तद्वाचक पद

का आरम्भ में प्रयोग करना होगा। विद्यानन्द के मत से 'योगिनीनां मुखे स्थितम्' का तात्पर्य है कि योगिनीगण द्वारा सर्वदा जप्त।

इस प्रकार से वशिनी बीज का उद्धार किया जाता है—'ब्ल्रूँ'। भास्करराय के अनुसार वशिनी का पूजामन्त्र है—'ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं लृं एं ऐं ओं औं अं अः ब्ल्रूँ वशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।८७-८८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

उद्धरेदित्यादिपञ्चदशभिर्वशिन्यादिवाग्देवताष्टकस्य बीजाष्टकं क्रमेण कथयति। तदधः तस्याधस्तात्। कुटिलान्तकम्। कुटिलः फकारस्तस्यान्तकं बकारः, तद् बकारबीजम्। अवनिबीजं लकारः। षष्ठस्वर ऊकारः। ऊर्ध्वं शिरः। अर्धेन्दुः कला। बिन्दुरनुस्वारः।।८७-८८।।

* अर्थरत्नावली *

उद्धरेत् प्रथममित्यादि शृणु विद्याङ्गरूपिणीमित्यन्तस्यायमर्थः—आदौ रेफं वह्निं समुद्धृत्य **तदधः कुटिलान्तगमिति**। कुटिलः फकारः, तस्यान्तगं बकारमुद्धरेदित्यर्थः। **तदप्यवनिबीजस्थमिति**। तदुद्धृताक्षरद्वयं लकारस्थितं कुर्यात्, यथा भवति तथोद्धरेदित्यर्थः। **षष्ठस्वरसमन्वितमिति**। ऊकारसमन्वितमिति यावत्। ऊर्ध्वमर्धेन्दुबिन्द्वाढ्यमिति। उद्धृतवर्णचतुष्टयस्य शिरसि अर्धेन्दुं कृत्वा बिन्दुरनुस्वार एतद्द्वयमुद्धरेदित्यर्थः। यथा ब्ल्रूँ। एतद्वशिनीबीजं योगिनीनां मुखे स्थितमिति। योगिनीभिः सदा जप्तमित्यर्थः।।८७-८८।।

* सेतुबन्धः *

अथ वशिन्यादीनामसाधारणानि बीजानि क्रमेणोद्धरति। आदौ रेफस्ततः कुटिलान्तकः। कुटिलः पवर्गद्वितीयः फकारः। 'फः शिखी कुटिलो धूम्रा वामपार्श्वो जनार्दन' इति मातृकाकोशात्। तस्यान्ते विद्यमानो बकारः। स्वार्थे कन्। यद्यप्यधस्तान्निरूपितमूर्ध्वं वक्ष्यत इत्यादावूर्ध्वाधःशब्दौ परपूर्वोच्चार्यवाचकत्वेन प्रसिद्धौ तथाऽपि प्रकृतेऽधःशब्दो न पूर्वोच्चार्यपरः। तन्त्रान्तरविरोधात्। अपि तु प्रथमवर्णाधो द्वितीयवर्णलेखनस्य लिपिसम्प्रदायसिद्धत्वात्परोच्चार्यपर एव। तदपि रेफबकारोभयमपि अवनिबीजे पृथ्व्यक्षरे तिष्ठति। लमित्यस्य समुदायस्यैव पृथ्वीबीजत्वेऽपि प्रकृते सम्प्रदायात् लकाररूपं व्यञ्जनमेव ग्राह्यम्। तत्स्थमित्यनेन बकाराधो लकारलेख उक्तः। 'लो मांसं पूतना पृथ्वी माधवी शक्रनामकः' इति कोशः। ततः षष्ठस्वर ऊकारः। तदुत्तरं बिन्दुरनुस्वारः। ततोऽर्धचन्द्रो नादः। अर्धचन्द्रलक्षणं च षष्ठे पटले वक्ष्यते। अत्र हि नादबिन्दुसहिताक्षरलेखेऽक्षरशिरस्यर्धेन्दुं विलिख्य तदुपरि बिन्दुर्लिख्यत इति लिपिसम्प्रदायः। तदभिप्रायेण मूले बिन्द्वर्धेन्द्वोर्व्युत्क्रमेण निर्देशः। अत एवोर्ध्वशब्दः परोच्चार्यपरः सम्भवन्नप्यक्षरशिरोभागपरत्वेनैव व्याख्येयः। अत एव च स्पष्टं मेदिनीबीजोद्धारे वक्ष्यति—'अर्धेन्दुमस्तकाक्रान्तं बिन्दुनोपरि भूषितम्' इति। यद्वा, अर्धेन्दूत्तरको बिन्दुरिति मध्यमपदलोपी समासः। वस्तुतस्तु—अवनिबीजस्थपदेन लकाराकारबिन्दुनादात्मकसमुदाये विहिते लकारोत्तरांशस्य षष्ठस्वरविधिनाऽपवादे सत्यनेन बिन्दुनादयोः प्रतिप्रसवमात्रं क्रियत इति यथाप्राप्तस्यैव पुनर्विधावस्य तात्पर्यं

न क्रमांशेऽपीत्यदोष:। तेन रेफबकारलकारोकारानुस्वारनादै: क्रमेण घटितं ब्ल्रूँमित्याकारकं वशिनीबीजं भवति। तदिदं योगिनीनां तद्वाचकवशिनीपदस्य मुखे स्थितमारम्भे प्रयोज्यम्। इदमुपलक्षणं कामेश्वर्यादिबीजानामपि तत्तद्वाचकपदारम्भे प्रयोक्तव्यतायाः। तदभिप्रायेणैव योगिनीनामपि बहुवचनम्। एतद्बलादेव च तत्तद्बीजोत्तरं तत्तन्नामापि प्रयोक्तव्यामिति सिध्यति। तच्च नाम वाग्देवतापदोत्तरकम्। कल्पसूत्रानुसारात्। तेनैकैको वर्ग एकैकं बीजमेकैकं नामेति वर्गबीजनाम्नां क्रमेणोच्चारणं सिद्धम्। योगिनीनां वशिन्यादिबीजाष्टकस्य मुखे स्थितं तेषु प्रथममित्यर्थ इति केचित्। योगिनीभिर्जप्तमित्यर्थ इत्यन्ये। एवं 'शिवाग्निबिन्दवो देवि' (१/१६२) इत्यादिना हल्लेखारमात्मकद्वितारयोग: सर्वेषु शक्तियोग: कार्य इति वक्ष्यते। स च क्लृप्तक्रमेषु वर्गादिषु मध्यभागे निवेष्टुमशक्यत्वादन्ते च वचनान्तरेण सप्ताक्षरीयोगस्य विधानादादावेव कार्य:। अत एव बहिर्दशारस्थदेवतापूजाकथनावसर आद्यविद्ययेति द्वितार्या निर्देश उपपद्यते। अन्ते तु पादुकां पूजयामीति सप्ताक्षर: पादुकामन्त्रो योज्य:। तदुक्तं तन्त्रराजे—'एवं सप्ताक्षरी प्रोक्ता शक्तितन्त्रेषु सिद्धिदा' इत्यारभ्य—

सर्वासामपि शक्तीनां देवतानां च नामभि:।
योजयेन्नामपूर्वा सा सिद्ध्यै साधारणाऽन्यथा।। इति।

यत्तु दक्षिणामूर्तिसंहितायां सप्तविंशे पटले स्मर्यते—

अत्युपह्वरमेवेदं ज्ञात्वा चक्रं समर्चयेत्।
पादुकां पूजयामीति नमस्कारोऽथवा भवेत्।।
स्वाहा होमे तर्पणे तु तर्पयामीति संस्मरेत्। इति।

तत्र पादुकामन्त्रनम:शब्दयोर्विकल्पनेऽपि कल्पसूत्रानुसारात् न्यासे नम:शब्दोऽर्चने सप्ताक्षरीति व्यवस्थितविकल्पो ज्ञेय:। तथा च सूत्रम्—'नम:स्थाने पूजामन्त्रसंनाम' इति। कादिमते तु—'शक्तितन्त्राद्बहिर्भूततन्त्रे तु नभसा स्थिति:' इति व्यवस्थोक्ता। तेन ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अ: ब्ल्रूँ वशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामीत्याकारकस्त्रयस्त्रिंशदक्षरो वशिनीपूजामन्त्र: सिध्यति। एतदन्ते नम:पदप्रयोग: पद्धतिकाराणां तु समुच्चये मानाभावात्संहिताद्युक्तविकल्पविरोधाच्च नाऽऽदेय:। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्।।८७-८८।।

द्वितीयवर्गप्रथममिन्द्रारूढं महेश्वरि।
अधस्तान्नाभसं बीजमाग्नेयस्थं समुद्धरेत् ।।८९।।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुखण्डेन्दुलंकृतम्।
एतत्कामेश्वरीबीजं त्रैलोक्यक्षोभकारकम् ।।९०।।

हे महेश्वरि!, इन्द्रारूढ़ द्वितीय वर्ग का प्रथम अक्षर, तदनन्तर आग्नेयस्थ नाभस बीज का उद्धार करे। अब इसे चतुर्थ स्वरयुक्त करके बिन्दु के साथ अर्द्धेन्दु द्वारा अलङ्कृत करना चाहिये। यही है—त्रैलोक्य क्षोभकारक कामेश्वरी बीज।।८९-९०।।

द्वितीयवर्गप्रथमं—द्वितीयवर्ग कवर्ग है। उसका प्रथम वर्ण अर्थात् 'क्'। **इन्द्रारूढं**—इन्द्र 'ल'। यहाँ ल्। उस पर आरूढ़ 'क्' अर्थात् 'क्ल्'। **अधस्तात्**—तदनन्तर। **नाभसबीजं**—ह। **आग्नेयस्थं**—आग्नेय अर्थात् रेफ। यहाँ है 'र्'। **नाभसंबीजं**—ह् र्। **चतुर्थस्वरसंयुक्तं**—चतुर्थ स्वर अर्थात् 'ई'। उससे युक्त अर्थात् ह् र् के साथ 'ई' युक्त हो। अतएव ह्री। **बिन्दुखण्डेन्द्वलङ्कृतम्**—बिन्दु तथा अर्द्धचन्द्र से अलंकृत। उद्धार होता है कामेश्वरी बीज—'क् ल् ह्रीं'।

भास्करराय के मत से कवर्गस्था कामेश्वरी का पूजामन्त्र है—'ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं क् ल् ह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।८९-९०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

द्वितीयवर्गप्रथमं ककारः। इन्द्रो लकारः। नाभसं बीजं हकारः। आग्नेयो रेफः। चतुर्थस्वर ईकारः।।८९-९०।।

* अर्थरत्नावली *

द्वितीयवर्गप्रथममिति। द्वितीयवर्गः कवर्गस्तस्य वर्गस्य प्रथमाक्षरः ककारः। ऐन्द्रारूढमिति लकारारूढमित्यर्थः। **अधस्तान्नाभसं बीजमिति।** तदनन्तरं हकारमुद्धरेदित्यर्थः। **आग्नेयस्थं समुद्धरेदिति।** आग्नेयो रेफः। तत्स्थान्युद्धृतानि वर्णानि यथा भवन्ति तथा कुर्यादित्यर्थः। **चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुखण्डेन्द्वलङ्कृतमिति।** चतुर्थस्वर ईकारः, बिन्दुरनुस्वारः, खण्डेन्दुरर्धचन्द्रः। एतत्त्रितयमुद्धृतबीजानामुपरि कुर्यादिति यावत्। **एतत्कामेश्वरीबीजं त्रैलोक्यक्षोभकारकमिति।** कामेश्वरीबीजमित्यर्थः। यथा—क्ल्ह्री ँ।।८९-९०।।

* सेतुबन्धः *

द्वितीये कवर्गे प्रथमः ककारः। सामान्ये नपुंसकम्। अक्षराभिप्रायं वा। उद्धरेदित्यनेनान्वयाद्वितीयान्तं वा। स ककार इन्द्रं लकारमारूढः। लकारस्याधस्तात्परतो नाभसं गगनसम्बन्धि बीजं हमिति समुदायः। 'हः शिवो गगनं हंसो नागलोकोऽम्बिकापतिः' इति कोशात्। तद्बीजमाग्नेयस्थं रमित्यग्निबीजस्थम्। 'रो रक्तः क्रोधिनी रेफः पावकस्तैजसो महः' इति कोशः। अग्निर्देवताऽस्याऽऽग्नेयम्। अग्नेर्ढक्। अत्राऽऽग्नेये तिष्ठतीत्यनेन बीजयोर्योगोक्तेः सस्वरयोश्च स्वतन्त्रयोस्तदसम्भवादकारबिन्दुनादा उभयोस्तन्त्रमिति सिध्यति। सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेष्ये बाधाद्विशेषणमुपसंक्रामत इति न्यायात्। नाभसबीजाग्नेयशब्दा व्यञ्जनमात्रपरा इत्यपि केचित्। समुदाये हि दृष्टाः शब्दा अवयवेऽपि दृश्यन्त इति न्यायादिति तदाशयः। एवमुत्तरत्रापि न्यायो व्याख्याभेदो वा सञ्चारणीयः। अत्र प्रथमस्वरमात्रमपवदति—**चतुर्थेति।** चतुर्थस्वर ईकारः। तेन क्ल्ह्रीमिति कूटात्मकं बीजं भवति। ततश्च ह्रीं श्रीं कं खं गं घं ङं क्ल्ह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतापादुकां पूजयामीति त्रयोविंशत्यर्णः कामेश्वरीमन्त्रः। अत्र वशिन्यादिमन्त्राणामङ्गत्वं पञ्चदशीविद्याया एव प्राधान्यम्। 'अतः प्रधानविद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी' इति चतुर्थपटले (श्लो.

६८) वक्ष्यमाणत्वात्। ततश्चाङ्गेषु फलश्रुतिरर्थवाद: स्यादितिन्यायेन त्रैलोक्यक्षोभकारकमित्यादेरर्थवादत्वमेव यद्यपि भवति तथाऽपि वशिन्यादिमन्त्रमात्रोपासनायां तेषामेव प्राधान्यात्तदभिप्रायेण फलश्रुति: स्वार्थतात्पर्यिकाऽपि सम्भवति। अत एव आगमान्तरम्—

एकत्र तत्पराणां च मन्त्राणां शेषशेषिता।
यद्यपि स्यात्तथाऽप्येते मन्त्रा: स्यु: सर्वसिद्धिदा:।। इति।

अङ्गत्वेनोपास्यमानानामपि विद्यानां फलमस्त्येव। अङ्गेषु फलश्रुतिरिति न्यायस्य शुष्ककर्मविषयत्वात्। तदपवादायैव स्वामिन: फलश्रुतेरित्यात्रेय इति उत्तरमीमांसाधिकरणप्रवृत्ते:। मासाग्निहोत्रादीनां कौण्डपायिनामयनं प्रत्यङ्गत्वेऽपि स्वतन्त्रानुष्ठाने प्राधान्यस्य न्यायसिद्धस्यापवादायैवैकत्र तत्पराणामित्युक्तवचनप्रवृत्तेरिति तु मन्त्रदेवताप्रकाशकारा आहु:।।८९-९०।।

अरुणापञ्चमस्याधो वारुणं विनियोजयेत्।
तदधोऽपीन्द्रबीजं तु सर्वोर्ध्वमिपरं प्रिये।।९१।।
अर्द्धेन्दुमस्तकाक्रान्तं बिन्दुनोपरि भूषितम्।
एतत्तन्मोदिनीबीजं सर्वसत्त्ववशङ्करम्।।९२।।

अरुणा वर्ग के पञ्चम वर्ग के नीचे व का योग करे। उसके नीचे इन्द्रबीज का योग करे। हे प्रिये! इस सबके पश्चात् इकार के परवर्त्ती अक्षर का योग करे। उसके मस्तक पर बिन्दुपरिभूषित अर्द्धचन्द्र भूषित करे। यही है—मोदिनी बीज। यह सभी प्राणियों को वश में करता है।।९१-९२।।

अरुणापञ्चमस्य—अरुणा अर्थात् तवर्ग। उसका पंचम वर्ण है 'न'। **वारुणं**—व यहाँ 'व्'। **इन्द्रबीजं**—ल यहाँ 'ल्' **इपरं**—इकार का परवर्त्ती वर्ण 'ई'। **अर्द्धेन्दुमस्तकाक्रान्तं बिन्दुनोपरिभूषितम्**—अर्द्धचन्द्र के मस्तकस्थ बिन्दु से भूषित। इस प्रकार से उद्धार किया गया—'न् व् लीं'।

भास्करराय वाग्देवता (चवर्गस्था) मोदिनी का पूजामन्त्र बताते हैं—'ह्रीं श्रीं चं छं जं झं ञं न् व् लीं मोदिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।९१-९२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अरुणापञ्चमो नकार:। वारुणं वकार:। इन्द्रबीजं लकार:। इपरम् ईकार:। कलाबिन्दू चात्राध्याहार्यौ।।९१-९२।।

* अर्थरत्नावली *

अरुणापञ्चमस्याधो वारुणं विनियोजयेदिति। अरुणावर्गस्तवर्गस्तस्य पञ्चमो नकारस्तस्याधो वारुणं वकारं विनियोजयेदित्यर्थ:। **तदधोऽपीन्द्रबीजं त्विति।** उद्धृतवकारस्याधोदेशे इन्द्रबीजं लकारं योजयेदित्यर्थ:। **सर्वोर्ध्वमिपरं प्रिये इति।** एवमुद्धृताक्षरत्रयस्योपरि ईकारमुद्धरेत् तथा बिन्दुकलान्वितं च कुर्यात्। एतन्मोदिनीबीजम्। यथा—न्व्लीँ।।९१-९२।।

॥ सेतुबन्धः ॥

अरुणावर्गस्तवर्गः। 'अरुणा तु तवर्गस्था' (१/८५) इत्युक्तेः। तत्र पञ्चमो नकारः। वारुणं वकारः। 'वो वाणी वारुणं मेद उत्कारीशोऽनिरुद्धकः' इति वचनात्। इन्द्रबीजं लकारः। सर्वस्मादुक्ताक्षरसमुदायादूर्ध्वमनन्तरमिपरमिकारात्परं चतुर्थस्वरम्। तेन न्व्लींमिति बीजम्। मोदिन्यादिसर्वेश्वर्यन्ताः पञ्च मन्त्राः प्रत्येकं द्वाविंशत्यर्णा वेदितव्याः।।९१-९२।।

वायव्यमिन्द्रबीजस्थं षष्ठस्वरसमन्वितम्।
अर्धेन्दुमस्तकाक्रान्तं बिन्दुनोपरि भूषितम् ।।९३।।
एतत्ते कथितं देवि विमलाबीजविग्रहम्।
सर्वपापक्षयकरं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।९४।।

इन्द्रबीजस्थ वायव्य के साथ षष्ठस्वर को युक्त करके उसके ऊपर बिन्दु के साथ अर्द्धचन्द्र भूषित करना होगा। हे देवि! यह विमलाबीज का रूप तुमसे कहा। यह सर्वपापक्षयकारी तथा सर्वोपद्रव-नाशक है।।९३-९४।।

वायव्यम्—य्। **इन्द्रबीजस्थं**—इन्द्रबीज है—ल। यहाँ होगा ल्। ततस्थ अर्थात् य् के साथ ल् युक्त करे, अर्थात् य् ल्। **षष्ठस्वरसमन्वितम्**—अर्थात् षष्ठ स्वर ऊ युक्त हो अर्थात् 'य् लू'। **अर्द्धेन्दुमस्तकाक्रान्तबिन्दुना परिभूषितम्**—अर्द्धचन्द्र के साथ बिन्दुभूषित। अर्थात् य् लूं। टवर्गस्था वाग्देवता विमला का पूजा मन्त्र भास्करराय के अनुसार है—'ह्रीं श्रीं टं ठं डं ढं णं य् लूं विमलावाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।९३-९४।।

॥ ऋजुविमर्शिनी ॥

वायव्यं यकारः। सर्वपापं देहादिसङ्कुचितकर्तृत्वम्। उपद्रवो विकल्पबुद्धिः।।९३-९४।।

॥ अर्थरत्नावली ॥

वायव्यमिन्द्रबीजस्थमिति। वायव्यं यकारः। इन्द्रबीजं लकारः। षष्ठस्वरसमन्वितम् ऊकारसमन्वितम्। **अर्धेन्द्वित्यादि।** अर्धेन्दुः कला, बिन्दुरनुस्वारः, ताभ्यां विभूषितं कुर्यादित्यर्थः। **एतत्ते कथितं देवि विमलाबीजविग्रहमिति।** एतदुद्धृतं बीजं विमलारूपमित्यर्थः। यथा—य्लूँ।।९३-९४।।

॥ सेतुबन्धः ॥

वायुर्देवताऽस्य वायव्यं बीजम्। 'वाय्वृतुपित्रुषसो यत्'। 'यो वाणी वसुधा वायुर्विकृतिः पुरुषोत्तमः' इति कोशाद् यकारः। य्लूमिति बीजम्। विग्रहमिति सामान्ये नपुंसकं बहुव्रीहिरेव वा।।९३-९४।।

जकारं कालमारूढं तदधो ज्वलनाक्षरम्।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादसमन्वितम् ।।९५।।
एतत्तदरुणाबीजमरुणं सर्वमोहनम्।

काल के ऊपर आरूढ़ जकार। उसके नीचे ज्वलनाक्षर। उसके साथ युक्त चतुर्थ स्वर जो बिन्दु-नादसमन्वित है। यह अरुण अरुणा बीज सर्वमोहन है।।९५।।

कालमारूढ़ं—काल म। यहाँ होगा—म्। यहाँ जकार का विशेषण है। अत: होता है—ज् म्। **ज्वलनाक्षारम्**—र्। **चतुर्थस्वरसंयुक्तं**—चतुर्थ स्वर 'ई' युक्त हो। **बिन्दु-नादसमन्वितम्**—से समन्वित। **सर्वमोहनम्**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं कि समस्त जगत् को मुग्ध करने में समर्थ। अत: उद्धार होता है—'ज् म् र् ई अर्थात् 'ज्म्रीं'। यह है अरुणावीज। भास्करराय के मत से तवर्गस्था अरुणा का पूजा मन्त्र है—'ह्रीं श्रीं तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।९५।।

❉ ऋजुविमर्शिनी ❉

कालो मकार:। ज्वलनो रेफ:।।९५।।

❉ अर्थरत्नावली ❉

जकारं कालमारूढमिति। कालो मकार:, तं जकारस्याध: कुर्यादिति यावत्। **तदधो ज्वलनाक्षरमिति।** मकारस्याधोदेशे रेफं सम्पादयेत्। **चतुर्थस्वरसंयुक्तमिति।** चतुर्थस्वर ईकार:, तेन संयुक्तं यथा भवति शिर:स्थानं तथा कर्तव्यमित्यर्थ:। एतच्चतु:पिण्डात्मकमरुणाबीजम्। अरुणावीजं समस्तं जगन्मोहयितुं समर्थम्। यथा—ज्म्री ँ।।९५।।

❉ सेतुबन्ध: ❉

कालो मकार:। 'म: काली क्लेशित: कालो महाकालो यमोऽन्तक:' इति कोशात्। ज्वलनाक्षरं रेफ:। तेन ज्म्रीमिति बीजम्। अत्र मन्त्रे बीजस्यारुणापदेन न सन्धि:।।९५।।

शिवबीजं तदादिस्थमधस्ताच्चेन्द्रवारुणौ ।।९६।।
वायव्यमुपरोद्भिन्नं संयोज्य परमेश्वरि ।
जयिनीबीजमेवेदं कलाबिन्दुविभूषितम् ।।९७।।

शिवबीज उसका पूर्ववर्त्ती वर्णस्थ होगा। इन दोनों के नीचे रहेगा अर्थात् दोनों के साथ युक्त होगा लकार। परमेश्वरी से युक्त होगा यकार एवं ऊकार तथा उसके ऊपर रहेगी बिन्दु के साथ चन्द्रकला। यह है—जयिनी बीज।।९६-९७।।

शिवबीजं—ह्। **तदादिस्थं**—हकार से आदि (पूर्ववर्त्ती) 'स'कार। अब होता है—सकारस्थ हकार। अर्थात् हकार से युक्त सकार। **इन्द्रवारुणौ**—इन्द्र = ल्। वारुण = व्। **उपरोद्भिन्नं**—उ के पश्चात् उद्भिन्न ऊकार। **कलाबिन्दुविभूषितम्**—चन्द्रबिन्दु विभूषित। अब जयिनी बीज है—ह् स् ल् व् य् ऊ् ँ अर्थात् ह् स् ल् व् र् यूं। यह है जयिनी बीज। पवर्गस्था वाग्देवता का भास्करराय द्वारा निश्चित पूजामन्त्र है—'ह्रीं श्रीं पं फं बं भं मं ह् स् ल् व् यूं जयिनी वाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।९६-९७।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

शिवबीजं हकार:। तदादिस्तस्य हकारस्यादि:, सकार इत्यर्थ:। ऐन्द्रं लकार:। व(ा)रुणो वकार:। उपर ऊकार:।।९६-९७।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

शिवबीजमित्यादि। शिवबीजं हकारस्तदादिस्थं सकारम्। हकारस्याध: सकार: कर्तव्य इत्यर्थ:। तादृशस्य सकारस्याधोदेशे इन्द्रवारुणौ इन्द्रो लकार:, वारुणं वकार:, तदुभयमुद्धरणीयम्। वायव्यं यकार:। उपरोद्भिन्नम् उकारात् परस्थित ऊकारस्तत्सम्बद्धं कुर्यात्। उद्धृतषडक्षराणां संयोजनमेकीकरणं विधाय नादबिन्दुविभूषितं कुर्यात्। एतज्जयिनीबीजं षट्पिण्डात्मकं सर्वरोगभयापहं सर्वेषामारोग्याभयङ्करमित्यर्थ:। यथा ह्स्ल्व्य्ऊँ।।९६-९७।।

❋ सेतुबन्ध: ❋

शिवबीजं हकार:। तस्य हकारस्याऽऽदि: सकारस्तत्स्थम्। हसयोरधस्तादिन्द्रो लकारस्तदधो वारुणो वकार:। ततो वायव्यं यकार:। तदिदमुपरेणोकारषष्ठस्वरेणोद्भिन्नम्, कला नादस्तेन विन्दुना च युक्तं जयिनीबीजं नामादिसप्ताक्षर्यन्तै: संयोज्य वदेदिति शेष:। तेन ह्स्ल्व्यूमिति बीजं भवति।।९६-९७।।

उद्धरेन्मोदिनीवर्गे चतुर्थं परमेश्वरि।
अध: कालाग्निवायव्यान्क्रमेण विनियोजयेत्।।९८।।
दीर्घायुर्बीजसंयुक्तान्यथानुक्रमयोगत:।
उपरीश्वरबिन्द्वन्तानेकत्र विनियोजयेत्।।९९।।
एतत्सर्वेश्वरीबीजं सर्वत्रैवापराजितम्।

हे परमेश्वरि! मोदिनी वर्ग के चतुर्थ वर्ण का उद्धार करके उसके नीचे अर्थात् उसके साथ यथाक्रमेण मकार, रकार, यकार का योग करना होगा। उसके साथ युक्त करना होगा—दीर्घायु बीज। हे सुरसुन्दरि! इसके ऊपर होगा—सबिन्दु ईश्वर। यह सब मिलाकर होगा—एक बीज। यही है—सर्वत्र अपराजित सर्वेश्वरी बीज।।९८-९९।।

मोदिनीवर्गचतुर्थं—मोदिनी वर्ग है—चवर्ग। उसका चतुर्थ अर्थात् चतुर्थ वर्ण 'झ' जो यहाँ है—'झ्'। **काल:**—'म' जो यहाँ है—'म्'। **अग्नि:**—'र' जो यहाँ है—'र्'। **वायव्य:**—'य' जो यहाँ है—'य्'। **दीर्घायु बीज**—'ऊ'। **ईश्वर:**—नाद, कला। सब मिलकर होगा—झ् म् र् यूं। यही है—सर्वेश्वरी बीज। **सर्वत्रैवापराजितम्**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है कि यह बीजमन्त्र सर्वप्राणीगण को साधक के वशीभूत कर देता है। यवर्गस्था वाग्देवता सर्वेश्वरी का भास्करराय-निर्दिष्ट पूजामन्त्र है—'ह्रीं श्रीं यं रं लं वं झ् म् र् यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।९८-९९।।

⁕ ऋजुविमर्शिनी ⁕

मोदिनीवर्गचतुर्थो झकारः। दीर्घायुर्बीजम्। अमरेश्वरीबीजत्वादायुर्बीजमुकारः, दीर्घायुर्बीजमूकारः। ईश्वरः कला।।९८-९९।।

⁕ अर्थरत्नावली ⁕

उद्धरेन्मोदिनीवर्गेत्यादि। मोदिनीवर्गश्चवर्गस्तस्य चतुर्थो झकारस्तं झकारं प्रथममुद्धरेत्। **अधः कालाग्निवायव्यान् क्रमेण विनियोजयेदिति।** कालो मकारः, अग्नी रेफः, वायव्यो यकारः। तेन क्रमेण झकारस्याधोदेशे योजयेदित्यर्थः। **दीर्घायुर्बीजसंयुक्तानिति।** दीर्घायुर्बीजमूकारं दीर्घरूपम्, तदादाय पूर्वोक्तान् वर्णान् तेन संयुक्तान् यथानुक्रमयोगेन कुर्यादित्यर्थः। **उपरीश्वर-बिन्द्वन्तानिति।** ईश्वरो नादः। बिन्दुरनुस्वारः। समस्तानेतान् एकत्र संयोजयेत्। एकबीजतां नयेदित्यर्थः। **एतत्सर्वेश्वरीबीजमिति।** एतदुद्धृतं सर्वेश्वरीबीजं पञ्चपिण्डात्मकं सर्वाणि सत्त्वानि साधकस्य वशे करोतीत्यर्थः। यथा—झ्म्र्य्ऊँ।।९८-९९।।

⁕ सेतुबन्धः ⁕

मोदिनीवर्गश्चवर्गः। 'मोदिनी तु चवर्गस्था' इत्युक्तेः। तत्र चतुर्थं झकारमुद्धृत्य तदधः क्रमेण कालाग्निवायव्यान्मकाररेफयकारानुपरि दीर्घायुर्बीजेन षष्ठस्वरेण संयुक्तान्, ईश्वरो नादो बिन्दुश्चान्ते येषां तानेकत्र योजयेदेकीकुर्यात्।

ऊ दीपिका रतिः शान्तिः क्रोधनो मधुसूदनः।
अर्घीशः कामचारश्च दीर्घायुर्वामकर्णकः।।

इति कोशः। 'अर्धमात्रेश्वरो नादः कलार्धेन्दु सदाशिवः' इति च। तदिदं सर्वेश्वरीबीजं यथानुक्रमयोगतो यवर्गनामपादुकामन्त्रादिक्रमानतिक्रमणेनोपलक्षितं पूजायां विनियोजयेदित्यर्थः। तेन झ्म्र्य्ूमितिबीजविशिष्टो द्वाविंशत्यर्णो मन्त्रो भवति।।९८-९९।।

कौलिनीपञ्चमं देवि कालबीजोपरिस्थितम् ।।१००।।
सर्वाधस्तादपि तथा वह्निबीजं नियोजयेत् ।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादेन्दुसमलंकृतम् ।।१०१।।
एतद्बीजवरे भद्रे कौलिनीरूपमास्थितम् ।

हे देवि! कौलिनीवर्ग का पञ्चम वर्ण होगा—मकारस्थ। इसके नीचे योग करना होगा—रकार। उसे ईकारयुक्त करके चन्द्रकला तथा बिन्दु द्वारा अलंकृत करे। हे भद्रे। बीज श्रेष्ठ कौलिनीरूपाधिष्ठित है अर्थात् यही है—कौलिनी बीज।।१००-१०१।।

कौलिनीपञ्चमं—कौलिनी अर्थात् कौलिनीवर्ग अर्थात् शवर्ग। उसका पञ्चम अर्थात् पञ्चम वर्ण 'क्ष'। ळकार 'ल' के ही अन्तर्भुक्त है। अतः उसकी पृथक् अक्षरगणना नहीं की जाती। **कालबीजं**—म्। **वह्निबीजं**—र्। **नादेन्दुसमलङ्कृतम्**— ँ शोभित। इस प्रकार से उद्धार होता है—कौलिनी बीज 'क्ष् म् र् ईं' अर्थात् 'क्ष्म्रीं' का। भास्करराय के

मत से शवर्गस्था कौलिनी का पूजा मन्त्र है—'ह्रीं श्रीं शं षं सं हं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'।।१००-१०१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

कौलिनीपञ्चमं क्षकारः। वह्निबीजं रेफः। बीजानि सुभगोदये लिखितानि।।१००-१०१।।

* अर्थरत्नावली *

कौलिनीपञ्चमं देवीति। कौलिनीवर्गः शवर्गस्तस्य पञ्चमं क्षकारस्तमुद्धरेत्। **कालबीजोपरि स्थितमिति।** कालबीजं मकारस्तदुपरि तच्छिरसि स्थितं यथा भवति तथा कुर्यादित्यर्थः। **सर्वाधस्तादपि तथेति।** उद्धृताक्षरादधोदेशे वह्निबीजमिति रेफस्तं नियोजयेत्। चतुर्थस्वरसंयुक्तं चतुर्थस्वर ईकारस्तेन संयुक्तं कुर्यादित्यर्थः। **नादेन्दुसमलङ्कृतमिति।** कलानादान्वितं कुर्यादित्यर्थः। एतदुद्धृतं बीजवरं कौलिनीबीजं चतुःपिण्डात्मकमित्यर्थः। यथा—क्ष्म्रीं।।१००-१०१।।

* सेतुबन्धः *

कौलिनीवर्गः शकारादिषडक्षरात्मको वर्गस्तत्र ळकारस्यैव पञ्चमत्वेऽपि तस्य लकारेणाभेदाद्बीजघटकत्वेन स्वतन्त्रतया ळकारनिर्देशस्य तन्त्रेषु प्रायेणानुपलम्भाच्च तत्परित्यागेन गणनायां क्षकारात्मको मेरुरेव पञ्चमो भवति। अथवा कौलिनीति शकारनामैकदेशः। शकारनामसु कुलकौलिनीशब्दस्य पाठात्। तस्मात्पञ्चम इति विग्रहे ल्यब्लोपे पञ्चमी। शकारं परित्यज्य गणनायां यः पञ्चम इत्यर्थः। तेन सह षष्ठ इति यावत्। यद्वा कौलिन्यादिपञ्चममित्याऽऽदिपदस्य मध्यमपदलोपी समासः। कौलिन्यादिपदे त्वतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः। शकार आदिर्येषां षकारादीनां ते कौलिन्यादयः षकारादयः पञ्चेत्यर्थः। तेषु पञ्चमः क्षकार इति। यद्वा कौलिनीति देवीविशेषणं संबुद्धिः। ई पञ्चममिति च्छेदः। ईकारः पञ्चमो यस्मादिति विग्रहः। मातृकाचक्रे क्षकारोत्तरं पुनरकारादिगणनायामीकारस्य क्षकारपञ्चमत्वादिह क्षकार ई पञ्चमपदेन सुग्रहः। यत्तु कौलिनीवर्गः षवर्ग इति मूर्धन्यादिवर्गपरत्वेन अर्थरत्नावलीकृतां व्याख्यानं तच्छवर्गे कौलिनीति चेतिपूर्वग्रन्थविरुद्धम्। वस्तुतस्तु—तन्त्रराजे सर्वेश्वरीकौलिन्योर्यकारषकारादिपञ्चपञ्चाक्षरयोगस्याङ्गीकारात्तद्रीत्या कौलिनीपञ्चमपदेन क्षकारस्य निर्देशमात्रम्। तन्मन्त्रयोस्तु यादिचतुष्कशादिषट्कयोग एव कार्यः। अन्यथा पूर्वग्रन्थ(स्य) योगविधानैकफलकस्य विरोधापत्तेः। अस्मादेव निर्देशाज्ज्ञापकाद्विकल्पेन तन्त्रराजपक्षस्याप्यनुष्ठानमनुमतमित्यपि सुवचम्। तेन प्रथमं क्षकारस्ततः कालबीजं मकारस्ततो वह्निबीजं रेफश्चतुर्थस्वर ईकारः। इन्दुरनुस्वारः। 'बिन्दुः शून्यं पञ्चदशोऽनुस्वारश्चन्द्रनामकः' इति कोशात्। तथा च क्ष्म्रीमिति बीजम्। त्रयोविंशत्यर्णः कौलिनीमन्त्रः। यत्पक्षे द्वाविंशत्यर्णस्तदा पूर्वमन्त्रस्त्रयोविंशत्यर्णो ज्ञेयः।।१००-१०१।।

एवमेतानि बीजानि क्रमादष्टौ महेश्वरि ॥१०२॥
कथितानि मयेदानीं शृणु विद्याङ्गरूपिणीः ।
करशुद्धिकरी विद्या तथाऽङ्गन्यासरूपिणी ॥१०३॥

आत्मासनगता चापि तथा चक्रासनसंस्थिता ।
सर्वमन्त्रासनगता साध्यसिद्धासनस्थिता ।।१०४।।
देव्यावाहनविद्याऽपि मूलविद्यां शृणु प्रिये ।

हे महेश्वरि! इस प्रकार अष्टबीज को यथानुक्रम मैंने व्यक्त किया। अब मैं विद्यांगरूपिणी गण का वर्णन करता हूँ। हे प्रिये! करशुद्धिकरी विद्या, अङ्गन्यासरूपिणी विद्या, आत्मासनागता विद्या, चक्रासनगता विद्या, सर्वमन्त्रासनगता विद्या, साध्यसिद्धासनस्थिता विद्या, देवी की आवाहन विद्या तथा मूलविद्या को सुनो।।१०२-१०४।।

बीजानि क्रमादष्टौ—यथानुक्रमेण वशिनी आदि अष्ट वाग्देवता का बीज। **विद्याङ्गरूपिणी**—विद्या अर्थात् पञ्चदशी श्रीविद्या। उसकी अंगरूपिणी विद्यासमूह। **करशुद्धिकरी**—शिवानन्द इसे स्पृष्ट पदार्थों की शुद्धि हेतु अंगुलितलशोधिनी विद्या कहते हैं। विद्यानन्द के मत से जो विद्या करस्थित पूजोपकरण द्रव्य की स्पर्शयोग्यता लाभ कराये, वह है—करशुद्धिकरी विद्या। **अङ्गन्याससंस्थिताम्**—विद्यानन्द के मत से अंगन्यासरूपिणी। मूल विद्या के षडङ्गन्यास से जिस विद्या का विनियोग हो, वह है अंगन्यासरूपिणी। **आत्मासनगतां**—विद्यानन्द के मत से देवीरूप साधक के आत्मासन पर विनियुक्ता जो विद्या है, उसे आत्मासनगता कहा गया है। **चक्रासनसंस्थिता**—विद्यानन्द के मत से चक्रासन में विनियुक्ता विद्या। **देव्यावाहनविद्यां**—देवी अर्थात् श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करने वाली विद्या। **सर्वमन्त्रासनगतां**—विद्यानन्द के मत से सर्व मन्त्रों के आसन में विनियुक्ता विद्या। **साध्यसिद्धासनस्थिताम्**—साध्यसिद्धासन में विनियुक्ता विद्या। **मूलविद्यां**—शिवानन्द के अनुसार अङ्गिविद्या। विद्यानन्द के मतानुसार समस्त विद्याओं की आदिभूता श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की वाचिका विद्या।।१०२-१०४।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

एवमादि मयान्तेन वृत्तानुवादः क्रियते। **इदानीं शृणु विद्याङ्गरूपिणी**मित्यनेन भागेन सह सूत्रद्वयेन वक्ष्यमाणविद्योद्देशः क्रियते। विद्याङ्गरूपिणीं प्रधानविद्याया अङ्गरूपिणीं विद्यां शृण्वित्यर्थः।

करशुद्धिकरीं स्पृष्टपदार्थविशुद्ध्यर्थमङ्गुलितलशोधिनीं विद्यामित्यर्थः। अङ्गन्याससंस्थिताम्। अङ्गन्यासः षडङ्गविधिः। **मूलविद्यां शृणु प्रिये! इति।** मूलविद्याम् अङ्गिविद्याम्। शृण्वित्यत्र पुनराख्यातं श्रोतृजनप्रवृत्त्यर्थम्। प्रिये इत्यामन्त्रणयोग्यतांप्रदर्शनम्। यच्छ्रुतिः—

ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः।
विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि षण्मम।। इति।
(सं० ब्रा० ३)

※ अर्थरत्नावली ※

एवमेतानीत्यादि। एवमुक्तप्रकारेण। एतानि बीजान्युद्धृतानि क्रमाद्। यथानुक्रमेण अष्टौ अष्टसंख्याकानि। हे महेशानि! प्रकाशितानीत्यर्थः।

शृणु विद्याङ्गरूपिणीमित्यारभ्य एवमेतस्य चक्रस्य साधकोऽर्चा समारभेदित्यन्तस्य व्याख्या लिख्यते। हे देवि! शृणु श्रोतुमर्हसि। **विद्याङ्गरूपिणीमिति**। मूलविद्याया अङ्गरूपिणीं विद्यां शृण्विति समुदायोक्तिः।

पुनर्विशेषतस्तासामङ्गविद्यानां नामानि निर्दिशति शिवः—**करशुद्धिकरीं विद्यामिति**। करस्थस्य पूजोपकरणद्रव्यस्य स्पर्शयोग्यतामापादयति या विद्या सा करशुद्धिकरी विद्येति। **तथाङ्गन्यासरूपिणीमिति**। अङ्गन्यासे विनियुक्ता या विद्या सा अङ्गन्यासरूपिणी विद्या। **आत्मासनगतां चापीति**। देवीरूपस्य साधकस्य आत्मासने विनियुक्ता या विद्यते। **तथा चक्रासनस्थितामिति**। चक्रासने विनियुक्ता सा चक्रासनस्थितेत्यर्थः। **सर्वमन्त्रासनगतामिति**। सर्वमन्त्राणामासने विनियुक्तामित्यर्थः। **साध्यसिद्धासनस्थितामिति**। तथा साध्यसिद्धासनस्थिता या विद्या। ताः सर्वाः शृण्वित्यर्थः। **देव्यावाहनविद्यां चेति**। देव्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या आवाहनविद्यां शृण्वित्यर्थः। **मूलविद्यां शृणु प्रिये इति**। हे प्रिये! समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुपरमशिवात्मशक्तेः परमानन्दभावात्मिकायाः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या वाचिका विद्या समस्तविद्यादिभूता या मूलविद्या तां शृण्वित्यर्थः।।१०२-१०४।।

※ सेतुबन्धः ※

एवं वाग्देवतामन्त्राष्टकोपसंहारपूर्वकं त्रैलोक्यमोहनादिचक्रेश्वरीमन्त्रान् प्रतिजानीते। विद्यायाः पञ्चदश्याः प्रधानदेवतामन्त्रस्याङ्गरूपिणीरष्टौ विद्याः शृणु नवमीं मूलविद्यां प्रधान-विद्यां च शृण्विति सम्बन्धः। अष्टाविति पदस्य काकाक्षिन्यायेनान्वयात्। 'एवमेतद्विद्याष्टकं महामायादेव्यङ्गभूतमाचक्षते' इति श्रुतेः। अङ्गरूपिणीरित्यनेन प्रधानजपान्तेऽङ्गमन्त्रा अपि जप्तव्या इति ध्वनितम्। करशुद्धिकरीत्यादीनि मन्त्राणां क्रमेण नामानि। अङ्गन्यासरूपिणीत्यनेन मूलविद्याषडङ्गन्यासे तस्या विनियोग इति ध्वनितम्। एतासु नवसु सप्तमी विद्या मूर्तिविद्येत्युच्यते। सा चेहैव वक्तव्याऽपि स्वतन्त्रत्वात्प्रयोजनान्तरध्वननार्थं वा उतरतन्त्रे वक्ष्यत इति नात्र परिगणिता नाप्युद्धृतेति द्रष्टव्यम्।।१०२-१०४।।

त्रैलोक्यमोहनादिचक्रेश्वरीमन्त्राः

वाग्भवं प्रथमं देवि कामराजं द्वितीयकम् ।।१०५।।
शान्तान्तं कादिसंयुक्तमैकारान्तान्तयोजितम् ।
एषा विद्या महेशानि करशुद्धिकरी स्मृता ।।१०६।।

हे देवि! प्रथम बीज है—वाग्भव। द्वितीय है—कामराज। तृतीय बीज है—औकार तथा विसर्गयुक्त सकार। हे महेशानि! इसे करशुद्धिकरी विद्या कहा गया है।

वाग्भवं—भास्करराय कहते है कि इससे वाक् का उद्भव होता है; अतएव यह वाग्भव है। शिवानन्द कहते हैं कि अनुत्तर (अ) से ही सर्व वर्णसमूह की उत्पत्ति हुई है; इस कारण 'अ' को वाग्भव कहा जाता है। **प्रथमं**—वर्णक्रम में प्रथम (अ)। **कामराजं**—भास्करराय कहते हैं—जहाँ 'काम' निवास करे, वह है—कामराज। काम है—शिव। शिव आनन्द है। शिवानन्द के मत से 'आनन्दः शिवस्तद्वीजं कामराजसंज्ञम्' आनन्द ही शिव है। उनके बीज को कहते हैं—कामराज। **द्वितीयकं**—वर्णक्रम का द्वितीय अक्षर 'आ'। 'आ' को कामराज कहा गया है। **शान्तान्तं**—शकार का अन्त जो है अर्थात् 'स'। (और औकार लगायें)। **कादिसंयुक्तम्**—कादि अर्थात् विसर्ग, उससे युक्त। इन सबसे करशुद्धिकरी विद्या का उद्धार होता है—'अं आं सौः'।।१०५-१०६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

वाग्भवमिति सार्धेकेन सूत्रेण करशुद्धिकरीं विद्यामाह। प्रथमम् अहंविमर्शप्रथमकलानुत्तराक्षरम् वाग्भवमिति वाचां प्रसवस्थानम्। अनुत्तरादेव सर्ववर्णोत्पत्तिरित्युपह्वरम्। अत्राभियुक्तोक्तिः—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।।
अनयोः सामरस्यं यत् परस्मिन् महसि स्फुटम्।
अवर्णः सर्ववर्णानां व्यापकस्त्रिविधः स्मृतः।। इति।

श्रीसिद्धामतेऽपि—

सात्र कुण्डलिनी बीजं जीवभूता चिदात्मिका।
तज्जं ध्रुवेच्छोन्मेषाख्यं त्रिकं वर्णास्ततः पुनः।। इत्यादि।

रहस्यमपि—'अकारो वै सर्वा वाक्' (ऐ० आ० २.३.६) इति, 'अ इति ब्रह्म तत्रागतमहम्' (ऐ० आ० २.३.८) इति, 'छन्दःपुरुष इति यमवोचामाक्षरसमाम्नाय एव तस्यैतस्याकारो रसः' (ऐ० आ० ३.२.३) इति च। एवमनुत्तरप्रसरत्वं विश्वस्य विश्वत्र प्रकाशितम्। इत्थमनुत्तरस्य वाग्भवत्वमभिधायानन्दस्य कामराजसंज्ञत्वमाह—**कामराजं द्वितीयकमिति।** द्वितीयकम् आनन्दः शिवस्तद्बीजं कामराजसंज्ञम्। 'प्रसरन्ती आनन्दरूपा सती' (शि० वि०) इत्यत्र महासमृद्धिरूपानन्दात्मना व्याख्याततत्वात्। अनुत्तरानन्दो सबिन्दुकाविति सम्प्रदायः। **शान्तान्तमिति।** शान्तः षकारः, तस्यान्तः सकारः। कादिसंयुक्तम्। कादिः विसर्गः। ऐकारान्तान्तयोजितम् औकारयोजितम्। **एषेति।** अस्यार्थः—एवंप्रकारा वाग्भवकामराजशक्त्यात्मिका विद्या करशुद्धिकरीति।।१०५-१०६।।

* अर्थरत्नावली *

करशुद्धिविद्येत्यादि मूलविद्यान्तं यथाक्रमेण निर्दिष्टानां विद्यानां क्रमेणोद्धारं दर्शयत्युत्तरैः

श्लोकैः। तत्र प्रथमं करशुद्धिविद्योद्ध्रयते—**वाग्भवं प्रथमं देवीत्यादिना।** वर्णक्रमस्य प्रथममक्षरं सबिन्दुकमबिन्दुकं वा करशुद्धिविद्याया आद्यं बीजम्। तदेव वाग्भवमित्युच्यते। तथा वर्गक्रमस्य द्वितीयमक्षरमाकारं करशुद्धिविद्याया द्वितीयं बीजम्। तदेव कामराजसंज्ञकम्। शान्तान्तं शकारस्यान्तं षकारस्तस्यान्तं सकारस्तं विसर्गसंयुक्तं कुर्यात्। **ऐकारान्तान्तयोजितम्।** ऐकारस्यान्तमोकारस्तस्यान्तमौकारः सविसर्गसकारौकारान्वितं कुर्यात्। यथा—अं आं सौः। **एषेत्यादि।** एषा उद्धृता श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या अङ्गविद्यानामष्टविधानां प्रथमा। अस्यास्तु करशुद्धिकर्मणि विनियोग इत्यर्थः।।१०५-१०६।।

* सेतुबन्धः *

अत्रोद्धरिष्यमाणा नव मन्त्राः प्रत्येकं त्रित्रिबीजाः। तत्र प्रथमानां बीजानां वाग्भवमिति नियता संज्ञा। द्वितीयानां कामराजमिति पुराणेषु तन्त्रेषु च तथाव्यवहारदर्शनात्। तत्र यथा देवीभागवते चतुर्थस्कन्धे—

वाग्भवं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम्।
चित्ते यस्य भवेत्तं तु न कश्चिद्बाधितुं क्षमः।।

इत्यादि। ज्ञानार्णवेऽपि द्वितीयपटले—

वाग्भवेनेन्दुमहसा वार्गीशत्यप्रदायिनी।
कामराजेन बीजेन शक्रगोपस्फुरत्त्विषा।।
त्रैलोक्यं मोहयन्तीयं शक्तिबीजेन सुव्रते।

इत्यादि। तृतीयानां तु माया शक्तिरित्यादिरनियता संज्ञा। तत्र नियते द्वे संज्ञे विधातुमाह—**वाग्भवमिति।** प्रथमबीजोद्देशेन वाग्भवसंज्ञाविधिः। एवमुत्तरत्र। वाक् भवत्यस्मादिति वाग्भवम्, कामो राजते यत्र तत्कामराजम्, तृतीयबीजस्य संज्ञाद्वयं तु मूलविद्योद्धारदशायां व्यक्तीकरिष्यति। अथवा वाग्भवोद्देशेन मातृकाप्रथमाक्षरविधिः। कामराजमुद्दिश्य मातृकाद्वितीयाक्षरविधिः। ते चाक्षरे सम्प्रदायात्सबिन्दुके। शुद्धमातृकाया अपि सम्प्रदायात्सबिन्दुकतया तत एव तत्सिद्ध्यभिप्रायेण बिन्दोरनुक्तिः। सम्प्रदायैकसिद्धत्वेन स्वशास्त्रे सबिन्दुकाया एव शुद्धमातृकात्वमिति कण्ठरवेणाकथनात्तदभिप्रायेण तत्र तत्र बिन्दोरुक्तिश्च। तेन तादृशस्थले बिन्दुयुतमातृकान्यास इव बिन्दुद्वयोच्चारणमिति तु न भ्रमितव्यम्। शक्तिपदमध्याहृत्य तदुद्देशेन तृतीयं बीजमुद्धरति—शान्तान्तमिति। शकारस्यान्तः षकारस्तदन्तं सकाराक्षरमैकारस्यान्त ओकारस्तदन्त औकारस्तेन योजितं ततः कादिना ककारात्पूर्वेण विसर्गेण योजितं चेत्सौः, इति भवति। त्रयाणां पाठक्रमेण क्रमः। तेन अं आं सौः, इति त्र्यक्षरी विद्या प्रथमचक्राधीशत्रिपुरादेव्या अनेन करशुद्धिं कृत्वेति तापनीयानुसारेण करशुद्धौ विनियोक्ष्यमाणा सम्पद्यते।।१०५-१०६।।

एओमध्यगतं बीजं वाग्विधानाय केवलम्।
रुद्रयामलतन्त्रे तु निर्दिष्टं परमाक्षरम्।।१०७।।

मादनं शक्रसंयुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम्।
ऊर्ध्वमर्धेन्दुबिन्द्वाढ्यं कामराजं समुद्धृतम् ।।१०८।।
शान्तान्तं कादिसंयुक्तमैकारान्तान्तयोजितम्।
एषा विद्या महाविद्या योगिनीनां महोदया ।।१०९।।
कुलविद्या महेशानि सर्वकार्यार्थसाधिनी।
अनया विद्यया गौरि रक्षामात्मनि कारयेत् ।।११०।।

एकार तथा ओकार के मध्यगत केवल बीज वाग्विधान हेतु विशेष करके चन्द्रबिन्दु-युक्त को रुद्रयामल तन्त्र में परमाक्षर कहा गया है। ल् युक्त क, उसके साथ चतुर्थ स्वर का योग करके उसके मस्तक पर अर्द्धेन्दु तथा बिन्दु लगाने से कामबीजराज उद्धृत होता है। सकार के साथ 'औ' का योग करके उसके साथ विसर्ग का योग करना होगा। इस प्रकार से उद्धृत त्रिबीजात्मक विद्या ही महाविद्या है, जो योगनीगण के लिये महोदया है। हे महेशानि! यह कुलविद्या सर्वार्थ-साधिका है। हे गौरि! इस विद्या द्वारा आत्मरक्षा की जाती है।।१०७-११०।।

एओमध्यगतं—एकार तथा ओकर के मध्यगत'ऐ'कार। **वाग्विधानाय**—भास्करराय के अनुसार यह सारस्वत कवित्व प्रदान करता है। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—वाक् का व्यक्त्यर्थ। **केवलं**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है बिन्दुहीन होने पर भी अर्थात् यदि 'ऐ' पर बिन्दु न भी लगाया जाय, तब भी यह सारस्वत कवित्व का हेतु हो जाता है। अतः यह बिन्दुयुक्त होने पर जो फल प्रदान करेगा, उसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या? केवलं पद का अन्य अर्थ है कि अन्य बीज की सहायता के विना ही फलप्रद है। भास्करराय कहते हैं कि इसी कारण रुद्रयामल में केवल वाग्बीज (ऐ) द्वारा ही पुरश्चरणादि निर्दिष्ट है। शिवानन्द 'केवल' पद का अर्थ करते हैं—ध्यान योगादि के विना ही फलप्रद। **तु**—शिवानन्द कहते हैं कि बीज अर्द्धचन्द्र तथा बिन्दुयुक्त हो। **परमाक्षरम्**—शिवानन्द के मत से विश्व के साथ अभेदमयत्व हेतु पारम्य। जो क्षरित न हो अथवा व्याप्त न हो, वह अक्षर 'न क्षरत्यश्नुते वेति'। पारमायुक्त अक्षर परमाक्षर। **मादनं**—ककार। **शत्रुसंयुक्तं**—शत्रु अर्थात् 'ल' से युक्त। **चतुर्थस्वर**—ई। इस प्रकार कामबीजराज है—क्लीं। **शान्तान्तं**—'श'कार का परवर्त्ती अर्थात् 'स'। **कादिसंयुक्तम्**—कादि अर्थात् 'क' से आदि जो है अर्थात् विसर्ग। अतः विसर्ग से संयुक्त। **ऐकारान्तान्तयोजितम्**—ऐकार के अनन्तर ओकार, उसके अनन्तर औ', इससे योजित अतः स+ : + औ = 'सौः'—यह है शक्तिबीज। **एषा विद्या**—इस प्रकार से उद्धृत विद्या। सम्पूर्ण विद्या है—ऐं क्लीं सौः। यह है—त्रिपुराबाला विद्या। यह है—अंगन्यासविद्या। **महाविद्या**—शिवानन्द के मतानुसार पूर्णाहन्ता प्रदत्त्वार्थ 'महा' एवं स्वरूपप्रकाशत्व के कारण 'विद्या'। विद्यानन्द

इसका अर्थ करते हैं—महा = महत्त्वसम्पादिनी, विद्या = ज्ञानप्रदा। **योगिनीनां**—शिवानन्द योगिनी का अर्थ करते हैं—नित्य समावेशरूपा। **महोदया**—शिवानन्द के अनुसार भोगमोक्षलक्ष्मी—आत्मकतृप्तिप्रदा। विद्यानन्द दोनों का अर्थ करते हैं—सम्पत्करी। अतः महोदया अर्थात् महासम्पत्कारी। **कुलविद्या**—शिवानन्द व्याख्या करते हैं कि जो विद्या योग्य व्यक्ति द्वारा ग्रहणीया है, वह है कुलविद्या। विद्यानन्द के मतानुसार यह विद्या योगिनीगण के कुलधन का मूल भाण्डार है। तात्पर्य है—सुगोप्या। **सर्वकायार्थसाधिका**—विद्यानन्द के अनुसार पुरुषार्थचतुष्टय की साधिका। **गौरि**—शिवानन्द कहते हैं कि देवी प्रकाशात्मता के कारण स्वच्छभावा हैं। अतः गौरी कही जाती हैं। **रक्षामात्मनि कारयेत्**—शिवानन्द कहते हैं कि आत्म शब्द द्वारा यहाँ देह निर्दिष्ट किया गया है। इसकी रक्षा हेतु षडंगन्यास करना होता है।।१०७-११०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

ए-ओमध्यगतमिति चतुर्भिर्महारहस्यभूतषडङ्गन्यासविनियुक्तसमस्तत्रिकभेदकन्दरूपमूलबालाविद्योद्धारः क्रियते। वाग्विधानाय वाक्प्रसरणाय (वाग्)व्यक्त्यर्थम्, (निर्दिष्टं) स्वाध्यासेन सोऽहमित्यभिसन्धानेन वा। केवलं ध्यानयोगाद्यनपेक्षमित्यर्थः। तुर्विशेषे। अर्धेन्दुबिन्द्वङ्कितमित्यर्थः। परमाक्षरम्। विश्वाभेदमयत्वात् पारम्यम्। अक्षरं प्राग्वत्। यच्छ्रुतिः—'वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य' (तै० ब्रा० २.८.८.५) इति। **मादनमिति।** मदनः कामस्तद्बीजं मादनम्। इह तदेकदेशभूतं ककारमात्रं गृह्यते मादनमिति। शक्रसंयुक्तम्। शक्रो लकारः। चतुर्थस्वर ईकारः। ऊर्ध्वं शिरः। आद्यन्ते आद्यस्य वाग्भवस्यान्ते। योजितमिति शेषः। **अतः परं पुनरिति।** कामराजबीजोद्धारात् पश्चादित्यर्थः। **शान्तान्तमिति।** अस्य बीजस्य पुनरुद्धारो मूलविद्योद्धारे पूर्णोद्धारः कर्तव्य इति द्योतयितुं महाविद्यादरविधानार्थं च। महाविद्या पूर्णाहन्ताप्रदत्वाद् महत्त्वम्, स्वरूपप्रकाशहेतुत्वाद् विद्यात्वम्। योगिनीनां नित्यसमावेशयुक्तानाम्। महोदया, भोगमोक्षलक्ष्म्यात्मकतृप्तिप्रदत्वात्। कुलविद्या कुलाङ्गनावदतिकौतुकेन योग्येन स्वीकर्तव्येत्यर्थः। हे गौरि! प्रकाशात्मतया स्वच्छभावे। **रक्षामात्मनि कारयेदिति।** अयमर्थः—अनया मूलविद्यया आत्मशब्दाभिधेये देहे रक्षार्थं षडङ्गमाचरेदिति।।१०७-११०।।

* अर्थरत्नावली *

ए-ओमध्यगतमित्यादि। ए-ओमध्यगतमैकारं यद्बीजं तदिहाङ्गन्यासविद्याया आद्यं बीजम्। तदपि वाग्भवं वाग्विधानाय केवलं रुद्रयामलतन्त्रेषु निर्दिष्टं परमाक्षरमिति यावत्। **मादनं शक्रसंयुक्तमिति।** मादनं ककारः। शक्रसंयुक्तं लकारसंयुक्तम्। चतुर्थस्वर ईकारः। ऊर्ध्वमर्धेन्दुबिन्द्वाढ्यमिति अर्धचन्द्रबिन्दुयुक्तम्। इत्युद्धृतबीजमिदमङ्गन्यासविद्याया द्वितीयं बीजम्। एतदपि कामबीजं प्रसिद्धम्। **आद्यन्तेऽतः परं पुनरिति।** आदेर्वाग्भवबीजस्यान्तेऽनन्तरमुद्धृतकामराजबीजं योज्यम्। अत इत्यस्यायमर्थः—अस्मात् कामराजादनन्तरं पुनः परं योज्यम्। परमिति सविसर्गसौकारम्। करशुद्धिविद्यायास्तार्तीयं बीजमङ्गन्यासविद्याया अपि तार्तीयत्वेन

योज्यं नान्यदिति सूचयितुं पुनः शान्तान्तमित्यादि पठति। कोऽर्थः? करशुद्ध्यङ्गन्यासविद्ययोस्तार्तीयं बीजमेकमेवेति। **एषा विद्येत्यादि।** एषा विद्या अङ्गन्यासविद्या महाविद्या महती चेयं विद्या चेति महाविद्या। महती **महत्त्वसम्पादिनी।** विद्या ज्ञानप्रदा। केषाम्? योगिनीनाम्। **महोदयेति।** उदयशब्देन सम्पत्करी। **कुलविद्येति।** योगिनीनामियं विद्या कुलधनमूलभाण्डारम्। कोऽर्थः? सुगोप्येति यावत्। **सर्वकार्यार्थसाधिकेति।** कर्तव्यत्वेनाभिमतानां चतुर्णामपि पुरुषार्थानां साधिकेयं विद्या स्वातन्त्र्येण। **ऐं क्लीं सौः इति।** इह त्वङ्गन्यासकर्मणि विनियोगः। **अनया विद्यया देवि रक्षामात्मनि कारयेदिति।** अनयोद्धृतया विद्यया हे देवि! आत्मरक्षां कारयेदित्यर्थः। आत्मनीत्यनेन तृतीयबीजे शिवान्वितत्वं सूचितम्।।१०७-११०।।

❋ सेतुबन्धः ❋

एकारस्य ओकारस्य च मध्ये पठ्यमानं द्वादशस्वररूपं बीजं सबिन्दुकमैंमिति वाग्भवम्। 'एओङ्' इति माहेश्वरसूत्र इवात्रापि प्रकृतिभावः। तदिदं केवलं बिन्दुहीनमपि वाचः सारस्वतस्य कवित्वस्य विधानाय प्राप्तये भवति किमुत सबिन्दुकमिति भावः। तथा च देवीभागवते तृतीयस्कन्धे नवमेऽध्याये—

अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसङ्गेनापि भाषितम्।
ददाति वाञ्छितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा।।
ऐ ऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने।
बिन्दुहीनमपि प्रोक्तं वाञ्छितं प्रददाति वै।।
अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः।
श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात् समुच्चार्य स्वयं ततः।।
बिन्दुहीनं प्रसङ्गेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः।
ऐकारोच्चारणादेव तुष्टा भगवती तदा।।
चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी।
त्रैलोक्ये विश्रुतश्चाऽऽसीत्कविः सत्यव्रतो द्विजः।।
अनाराध्य महाकालीं शुष्कार्द्राभ्यां महेश्वरीम्।

इत्यादि। अथवा केवलं बीजान्तरासहकृतम्। अत एव वाग्बीजमात्रस्यैव पुरश्चर्यादिकं रुद्रयामलाख्ये तन्त्रे स्वेनैव निर्दिष्टम्।

करशुद्ध्यादिविद्यानामेकैकं परमेश्वरि।
रुद्रयामलतन्त्रे तु कर्म प्रोक्तं मया पुरा।।

इति चतुर्थे पटले (श्लो. ६१) वक्ष्यमाणत्वात्। मादनं मदनसम्बन्धि, ककारः। 'मदनो ब्रह्मा क्रोधीशः कुलपालिनी' इति कोशात्। शक्रो लकारस्तेन संयुक्तम्। चतुर्थस्वर ईकारः। तदिदं कामराजाख्यं क्लीमिति बीजम्। कामराजमित्यनेन राज्यप्रदत्वमुक्तं भवति। एतदपि तत्रैव सप्तदशेऽध्याये—

एकस्मिन्समये तत्र विदल्लं समुपागतम्।
क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमाजुहाव तदन्तिके।।
सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम्।
अनुस्वारयुतं तच्च प्रोवाच स पुनः पुनः।।
बीज वै कामराजाख्यं गृहीतं मनसा तदा।
जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि सादरम्।।
ऋषिच्छन्दोविहीनं च न्यासध्यानादिवर्जितम्।

इत्यादि। शान्तान्तमित्यादि पूर्ववत्। तेन—ऐं क्लीं सौः, इत्याकारको बालामन्त्रः सिद्धः। कुलविद्येत्येतस्या एव संज्ञान्तरम्। तथा च प्रयोक्ष्यते—'ततो रक्षां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तकुलविद्यया' इति। एतस्या विनियोगं विधत्ते—**अनयेति**। आत्मनि रक्षामात्मविषयकरक्षणम्। 'विद्येयं रक्षाकरी' इति श्रुतेः। उत्तरत्र वक्ष्यमाणो विधिस्तु क्रमविधानार्थ इति नान्यतरवैयर्थ्यम्।।१०७-११०।।

एतस्या एव विद्यायाः शिवमायाग्निबिन्दुमत्।
बीजमादिपदे युक्तं तदाऽऽत्मासनरूपिणी ।।१११।।

इस कुलविद्या, इस आत्मरक्षा विद्या के आदि पद के स्थान पर यदि हकार के साथ 'र' का योग करें और उसके साथ 'ई' एवं बिन्दु का योग किया जाय, तब जो बीज प्राप्त होगा, उसे योग करने से आत्मासनरूपा विद्या होती है।।१११।।

शिवः—हकार। **माया**—ईकार। **अग्निः**—रकार। **बिन्दुः**—अनुस्वार। इस प्रकार से यह बीजोद्धार होता है—ह्रीं। **आदिपदे**—आदि पद के स्थान पर। कुलविद्या का आदि पद है—'ऐं'; उसके स्थान पर। **आत्मासनरूपिणी**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—उन देवी की आत्मासनरूपा।

शिवानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं—'आत्मानः स्वस्य साधकस्य' अर्थात् साधक की आसनरूपिणी। यहाँ आत्मानः का अर्थ है—अपने (साधक की) आसनरूपिणी। यह आत्मासन-रूपिणी विद्या है—'ह्रीं क्लीं सौः'।।१११।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतस्या एवेत्यादिपञ्चभिरासनचतुष्टयमाह। एतस्या मूलविद्यायाः। आदिपदे आदिस्थाने। शिवो हकारः। माया ईकारः। अग्नी रेफः। अयमर्थः—अस्या विद्याया वाग्भवस्थाने भुवनेश्वरीबीजं युक्त्वा स्थिता यदा, तदेयमात्मासनरूपिणी विद्येति। आत्मनः स्वस्य साधकस्य।।१११।।

* अर्थरत्नावली *

एतस्या एव विद्यायाः शिवमायाग्निबिन्दुमद् बीजमादिपदे युक्तमिति। एतस्या आत्मरक्षाविद्यायाः। आदिपदे आदिस्थाने स्थितं वाग्भवमुद्रास्य बीजान्तरं प्रक्षिपेत्। शिवो

हकारः। माया ईकारः। अग्नी रेफः। बिन्दुरनुस्वारः। एतेषां चतुर्णां समुदायरूपं बीजं यदा प्रक्षिप्तं भवति तदा आत्मासनरूपिणी भवतीयं विद्येत्यर्थः। ह्रीं क्लीं सौः इति।।१११।।

* सेतुबन्धः *

एतस्याः कुलविद्याया एवाऽऽदिपद आद्यबीजस्य स्थाने यदा शिवो हकारः, मायेकारः, अग्नी रेफः, बिन्दुरनुस्वार एतैर्युक्तं ह्रीमिति हृल्लेखा बीजं योज्यते, इतरद्बीजद्वयमविकृतमेव तदा ह्रीं क्लीं सौः, इति विद्या तस्या देव्या आत्मासनस्वरूपा भवति। अत्र मायाग्न्योर्व्यत्ययेन योगः। बिन्दोरव्यवहितापूर्वतायाः स्वरेष्वन्यतःसिद्धत्वात्। 'हः शिवो गगनं हंसः' इति, 'ई त्रिमूर्तिर्महामाया' इति च कोशः।।१११।।

पुनर्विद्याद्यमस्योर्ध्वमन्तरं तु शिवान्वितम्।
त्रैलोक्यमोहिनीयं सा विद्या चक्रासनस्थिता।।११२।।

आत्मासन विद्या की जो आद्य अर्थात् आत्मरक्षा विद्या है, उसका परवर्त्ती विद्यारूपेण उद्धार करना होगा। यहाँ यह वैलक्षण्य है कि आत्मरक्षा विद्या के प्रत्येक बीज के साथ हकार का योग। इस प्रकार से प्राप्त विद्या का नाम है—त्रैलोक्यमोहिनी। यही है—चक्रासनस्थिता विद्या।।११२।।

पुनर्विद्याद्यम्—भास्करराय कहते हैं कि यहाँ विद्या का अर्थ है—आत्मासन विद्या। उसके आद्यम् अर्थात् पूर्वपठित जो विद्या है, अर्थात् आत्मरक्षाविद्या अथवा त्रिपुराबाला विद्य, वह है—ऐं क्लीं सौः। **अस्योर्ध्वम्**—भास्करराय अस्य का अर्थ करते हैं 'आत्मासन विद्या के' तथा उर्ध्वम् का अर्थ करते हैं—उत्तरत्र। **अन्तरं**—वैलक्षण्य। **शिवान्वितम्**—हकारयुक्त। इस प्रकार से उद्धार करने से प्राप्त होने वाली विद्या है—हैं ह्क्लीं ह्सौः। **त्रैलोक्यमोहिनी**—त्रैलोक्यमोहकारिणी। **चक्रासनस्थिता**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—चक्रासनरूपेण अवस्थिता। विद्यानन्द के मत से अर्थ है कि चक्रासन इस विद्या का विनियोग है।।११२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पुनर्विद्यादिमस्योर्ध्वमन्तमन्तं शिवान्वितमिति। विद्यादिमस्य मूलविद्याया आदिभूतस्य वाग्भवस्य। ऊर्ध्वम् उपरि। अन्तं सकारः। कथं सकारस्यान्तत्वमिति चेत्? उच्यते—अत्र वक्तुः शिवशक्तिबीजे बुद्धिस्थे। इह सर्वत्र विद्यासु हंसात्मनोः शिवशक्तिबीजयोः सन्निहितत्वात्तयोरादिबीजं हकारः, अन्तबीजं सकारः। अत्रान्तबीजं सकारमादौ विनियुङ्क्ते, आदिबीजं हकारमन्ते विनियुङ्क्त इति। आदिबीजस्योपरि अन्तं सकारं कुर्यादिति शेषः। अन्तं तृतीयबीजम्। शिवान्वितं हकारान्वितम्। चक्रासनस्थिता चक्रस्यासनतया स्थिता।।११२।।

* अर्थरत्नावली *

पुनर्विद्याद्यमित्यादि। पुनरपि विद्याद्यम् आत्मरक्षाविद्याया आदिस्थाने स्थितं वाग्भवमेव

चतुष्कलमुद्रास्य प्रक्षिपेदित्यर्थः। **अस्योर्ध्वेऽनन्तरं तु शिवान्वितमिति।** अस्योऽर्ध्वे अस्य बीजत्रयस्योर्ध्वे। अनन्तरम् आदिमध्यान्तरम्। प्रत्येकं बीजानामासनस्थाने शिवान्वितं शिवो हकारस्तेनान्वितं सम्बद्धं कुर्यादित्यर्थः। हैं ह्क्लीं ह्सौः। **त्रैलोक्यमोहनीयं सा विद्या चक्रासनस्थितेति।** अस्या विद्याया नाम त्रैलोक्यमोहनीति न केवलं नामतः, अर्थतोऽपि त्रैलोक्यमोहनीति त्रैलोक्यं मोहयतीति, योगिन्यावृतेत्यर्थः। अस्या विद्यायाश्चक्रासनेऽत्र विनियोगः।।११२।।

❊ सेतुबन्धः ❊

पुनर्विद्याशब्देन तृतीयविद्यैवोच्यते। द्वितीयविद्याया एव पुनरुच्चरितत्वात्। एकदेशविकृतमनन्यवद्भवतीति न्यायात्। तेन पुनर्विद्याया आत्मासनविद्याया यदाद्यं पूर्वपठितं बालाविद्यात्मकं तदेवास्याऽऽत्मासनमन्त्रस्योर्ध्वमुत्तरत्र पठनीयम्। द्वितीयविद्यैवेषद्वैलक्षण्येन चतुर्थविद्या भवतीत्यर्थः। अन्तरं तु वैलक्षण्यं तु शिवान्वितं हकारयोग एव। सेयं चक्रासनविद्या सम्पद्यते। हकारयोगस्तु विनिगमनाविरहात्प्रतिबीजं कार्यः। तत्रापि स्वरान्ते व्यञ्जनयोगासम्भवात् क्लृप्तक्रमाणां च व्यञ्जनानां विश्लेषे प्रमाणाभावात्प्रतिबीजमादौ हकारो योज्य इति फलति। तथा च 'हैं ह्क्ली ह्सौः' इति मन्त्रो भवति। केचित् तु—विद्याया बालाया आद्यं बीजमस्योर्ध्वं द्वितीयं बीजम्। अस्यान्तरमेतद्बहिर्विद्याशब्देन बालैव च कथं लब्धेति चिन्त्यम्। अन्ये तु—'पुनर्विद्यादिमस्योर्ध्वमन्तमन्तं शिवान्वितम्' इति पठित्वा विद्यादिमस्य मूलविद्याया आदिभूतस्य वाग्भवस्योर्ध्वमन्तं सकारं कुर्यात्। हंसमन्त्रे सकारस्यान्त्यत्वाभिप्रायेणेह तथा निर्देशः। अन्तं तृतीयबीजं तु शिवान्वितं कुर्यादिति व्याचख्युः। तत्क्लिष्टमखिलतन्त्रविरुद्धं यद्वा तद्वा चेत्युपेक्ष्यम्।।११२।।

पुनराद्यां महाविद्यां शिवचन्द्रसमन्विताम्।
कृत्वा कामप्रदा विद्या सर्वमन्त्रासनस्थिता।।११३।।

अब महाविद्या आद्या को (आत्मरक्षा विद्या को) हकार तथा सकारयुक्त करना होगा। इस प्रकार से प्राप्त विद्या कामप्रदा सर्वमन्त्रासन-स्थिता है।।११३।।

आद्यां—कुलविद्या अथवा आत्मरक्षा विद्या। **महाविद्यां**—शिवानन्द के मत से सर्वविद्याओं की कन्दभूमि होने के कारण यह महाविद्या है। **शिवचन्द्रसमन्विताम्**—शिव—ह। चन्द्र—स। उभय समन्वित। अर्थात् कुलविद्या के प्रत्येक बीज के साथ ह् स् का योग करना होगा। इस प्रकार से प्राप्त विद्या है—ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः। टीकाकारों के मतानुसार तृतीय बीज में सम्प्रदायानुसार केवल ह् युक्त होगा, स् नहीं होगा। **कामप्रदा**—विद्यानन्द के अनुसार अर्थ है—ऐश्वर्यप्रदा। **सर्वमन्त्रासनस्थिता**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—सर्व मन्त्रों के आसनरूप से स्थिता। विद्यानन्द का तात्पर्यार्थ है—सर्व मन्त्रों के आसन में उक्त विद्या का विनियोग है।।११३।।

❈ ऋजुविमर्शिनी ❈

पुनराद्यामिति। आद्यां कुलविद्याम्। महाविद्यां सर्वविद्याकन्दभूमिम्। शिवचन्द्रसमन्विताम्। शिवचन्द्रौ हकारसकारौ। सर्वमन्त्रासनस्थिता। सर्वेषां मन्त्राणामासनतया स्थिता। शिवचन्द्रसमन्वितामित्यविशेषोक्तेऽपि तृतीयबीजस्य पूर्वमेव तत्सम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् शिवचन्द्रसमन्वितत्वं पूर्वबीजयोरेवेति तात्पर्यम्।।११३।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

पुनराद्यां महाविद्यां शिवचन्द्रसमन्वितां कृत्वेति। पुनरप्याद्यां विद्याम्। आत्मरक्षाविद्यामित्यर्थः। शिवो हकारः। चन्द्रः सकारः। प्रतिबीजमादिस्थाने तदुभयान्वितं कुर्यादितीयं विद्या कामप्रदा भवति। न केवलमैश्वर्यार्थं, अत्रास्या विद्यायाः सर्वमन्त्रासने विनियोगः। ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः इति।।११३।।

❈ सेतुबन्धः ❈

पूर्वश्लोक आद्यपदेन या विद्या निर्दिष्टा तामेव बालाख्यां महाविद्यां पुनरप्यस्य चतुर्थस्याप्यूर्ध्वं पठेत्। अस्योर्ध्वपदयोरनुवृत्तिः। क्रियाया अध्याहारश्च। यदनयोरन्तरं तदाह—**शिवचन्द्रेति।** शिवो हकारश्चन्द्रः सकारस्ताभ्यां प्रतिबीजं प्रथमभागे समन्वितां कृत्वेत्यर्थः। तेन ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः, इति पञ्चमो मन्त्रः सिध्यति। 'सो हंसः सहजा विष्णुर्भृग्वीशश्चन्द्रसंज्ञकः' इति नन्दनकोशः। चरमबीजे सकारान्तरयोगे नास्तीति सम्प्रदायः। मतान्तरयोस्त्वाद्यपदेन बालैव कथं परामृश्यत इति चिन्त्यम्। सेयं सर्वमन्त्रासनविद्या भवति।।११३।।

देव्यात्मासनविद्यायाः पूर्वोक्ताया यथाक्रमम्।
अन्तदेशे तोयबिन्दुशक्रशक्तीरनुक्रमात् ।।११४।।
संयोज्य परमेशानि साकमर्धेन्दुनादतः।
केवलाक्षरभेदेन साध्यसिद्धासनस्थिता ।।११५।।

हे परमेशानि! पूर्वोक्त देव्यात्मासन विद्या का यथाक्रमेण अन्तदेश में वकार, लकार तथा एकार के साथ अर्द्धचन्द्र तथा बिन्दु का योग करना होगा। इस प्रकार से प्राप्त विद्या केवलमात्र अन्तदेश में बीजाक्षर द्वारा पूर्वोक्ता आत्मासन विद्या से भिन्न है। यह विद्या है—साध्यसिद्धासनस्थित।।११४-११५।।

देव्यात्मासनविद्यायाः—शिवानन्द के मत से इस पद का अर्थ है—देवीरूपताप्राप्त साधक के आसनरूपेण अवस्थित। भास्करराय अर्थ करते हैं—देवी-सम्बन्धी आत्मासन विद्या। **यथाक्रमम्**—प्रथम तथा द्वितीय बीज के क्रम को अव्याहत रखे अर्थात् प्रथम तथा द्वितीय बीज जैसे हैं, वैसे रखे। **अन्तदेश**—तृतीय बीज के स्थल में। **तोयः**—वकार। **बिन्दुः**—अनुस्वार। **शत्रुः**—लकार, **शक्तिः**—एकार। **साकमर्द्धेन्दुना**—अर्द्धेन्दुसहित। **अनुक्रमात्**—गुरु के उपदेशानुसार यथाक्रम से। **केवलाक्षरभेदेन**—

इसकी व्याख्या में शिवानन्द कहते हैं कि केवलमात्र अन्तदेशस्थ बीज के अर्थात् तृतीय बीज के व्यतिक्रम के साथ पूर्वोक्ता आत्मासन विद्या ही साध्य-सिद्धासनस्थिता विद्या है। **साध्यसिद्धासनस्थिता**—इसकी व्याख्या करते-करते शिवानन्द का कथन है कि उन-उन मन्त्रप्रतिपाद्य साध्य तथा सिद्ध देवताओं के आसनरूपेण स्थिता। इन दोनों श्लोकों के अनुसार मन्त्रोद्धार है—'ह्रीं क्लीं लें'।।११४-११५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

देव्यात्मासनेति। देव्यात्मासनविद्याया देवीरूपतामापन्नस्य साधकस्यासनतया स्थितायाः। अन्तदेशे तृतीयबीजस्य स्थाने। **तोयबिन्दुशक्रशक्तीरनुक्रमात्**। तोयं वकारः। शक्रो लकारः। शक्तिरेकारः, योन्याकारत्वात्। केवलाक्षरभेदेन तृतीयस्थानप्राप्ताक्षरमात्रेण। साध्यसिद्धासनस्थिता तत्तन्मन्त्रप्रतिपाद्यानां साध्यानां सिद्धानां च देवतानामासनतया स्थिता। देवतानां तु द्वयी स्थितिः—कर्मसिद्धा आजानसिद्धा इति।।११४-११५।।

* अर्थरत्नावली *

देव्यात्मासनविद्यायाः पूर्वोक्ताया यथाक्रममिति। पूर्वोक्ताया देव्या आत्मासनविद्याया बीजद्वयं यथाक्रमेण स्थितं भवतु। अन्तदेशे तार्तीयबीजस्थाने पूर्वस्थितबीजं विसृज्य बीजान्तरं प्रक्षेपणीयम्। **तोयबिन्दुशक्रशक्तीरनुक्रमादिति**। तोयो वकारः। बिन्दुरनुस्वारः। शक्रो लकारः। शक्तिरेकारः। एतान् यथाक्रमं संयोज्य गुरूपदेशपूर्वकम्। **साकमर्धेन्दुनादत इति**। अर्धेन्दुनादतः कलानादाभ्यामुपेतं कुर्यात्। **केवलाक्षरभेदेन विद्या सिद्धासनस्थितेति**। केवलमन्तदेशस्थबीजव्यत्यासमात्रेण पूर्वोक्तात्मासनविद्यैव साध्यसिद्धासनस्थिता भवतीत्यर्थः। ह्रीं क्लीं ब्लें।।११४-११५।।

* सेतुबन्धः *

देवीसम्बन्धिन्या आत्मासनविद्यायाः पूर्वं तृतीयस्थाने कथिताया यथाक्रमं प्रथमद्वितीयबीजयोः क्रममनतिक्रम्यान्तदेशे तृतीयबीजस्थाने तोयं वकारः शक्रो लकारः शक्तिरेकारो बिन्दुश्चेत्येतानर्धचन्द्रेण नादेन रोधिन्यादिसप्तकेन च साकमनुक्रमात् प्रसिद्धक्रमानुसारेण संयोज्य पठेत्। सेयं षष्ठी विद्या तृतीयविद्यातः केवलाक्षरभेदेनैव भिन्ना सती साध्यसिद्धासनस्थिता भवति। न पुनर्द्वितीयतुरीयपञ्चमविद्यानामिवास्वतन्त्रव्यञ्जनमात्रभेदकृतो भेद इति भावः। अत्र तोयशब्देन जलबीजं दन्तोष्ठस्थानकं न तु वशिन्यामिव पवर्गतृतीयम्। वकाराधिकारे—'खड्गीशो ज्वालिनी चक्रं कलशो वारिनामकः' इति कोशात्, 'एकारो वाग्भवः शक्तिर्झिण्टीशोष्ठौ भगं मरुत्' इति च। तेन ह्रीं क्लीं ब्लेमिति मन्त्रः सिध्यति।।११४-११५।।

हंसबीजसमारूढामाद्यामग्न्यासनस्थिताम् ।
सर्वार्थसाधिका विद्या देव्यावाहनकर्मणि ।।११६।।

हकार तथा सकार आरूढ़ आत्मरक्षा विद्या को वकारयुक्त करना होगा। इस प्रकार से प्राप्त विद्या सर्वार्थसाधिका है। देवी के आवाहन कर्म में इसका विनियोग है।।११६।।

हंसबीजसमारूढ़म्—शिवानन्द तथा विद्यानन्द दोनों ही इसका अर्थ करते हैं कि हकार-सकार पर आरूढ़ा को। इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक बीज के आदि में ह् स् युक्त होगा। **आद्यां**—आद्या का अर्थ यहाँ है—आत्मरक्षाविद्या। **अग्न्यासनस्थितां**—अग्नि: रकार, रकारासन-स्थिता। इसका अर्थ है—रकारयुक्ता। इस सम्बन्ध में भास्करराय का मत है कि हकार-सकार के पश्चात् एवं रकार के पूर्व सिद्ध व्यञ्जन रहे। प्रथम बीज है—ऐं। इसमें व्यञ्जन नहीं है। अतएव इसके साथ ह् स् र् का योग करने से होगा 'ह्स्रैं'। द्वितीय बीज है—क्लीं। इसके साथ ह् स् र् का योग करने पर होगा—ह् स् क् ल् रीं। तृतीय बीज है—सौ:। इसके साथ ह् स् र् का योग करने से होगा—ह् स् स्रौ:। विद्या होगी—ह्स्रैं ह् स् क् ल् रीं ह् स् स्रौ:।।११६।।

* ॠजुविमर्शिनी *

देव्यावाहनविद्यामाह-—**हंसेति।** आद्यां मूलविद्याम्। हंसबीजसमारूढाम्। हंसशब्देनानच्कौ हकारसकारौ लक्ष्येते। अग्न्यासनस्थितां रेफासनस्थिताम्, कुर्यादिति शेष:। सर्वार्थसाधिका पुरुषार्थचतुष्टयकरी। इयं विद्या देवीसन्निधिकरीत्यभिप्राय:। एतद्विद्योद्धारेऽभियुक्तोक्ति:—

व्योमेन्दुवह्न्यधरबिन्दुभिरेकमन्यद्रक्ताच्छकेन्द्रशिखिभि: सरमार्धचन्द्रै:।
अन्यद् द्युशीतकरपावकमन्वमन्तैर्बीजैरमीभिरुदिता त्रिपुरेति विद्या।। इति।
(प्र० सा० ९.३)

* अर्थरत्नावली *

हंसबीजसमारूढामाद्यामग्न्यासनस्थितामिति। हंसबीजं हकारसकारौ। तदारूढामाद्यां विद्याम् आत्मरक्षाविद्याम्। अग्न्यासनस्थितां रेफसहितां कुर्यादिति यावत्। **सर्वार्थसाधिका विद्या देव्यावाहनकर्मणीति।** इयमुद्धृता विद्या धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुष्टयानां साधकी पञ्चकूटात्मिका। अस्या विनियोगो देव्यावाहनकर्मणीत्यर्थ:। ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौ:।।११६।।

* सेतुबन्ध: *

सप्तम्या विद्याया उत्तरतन्त्रे वक्ष्यमाणत्वादष्टमीमेवोद्धरति। हंसो हकार:। समस्य सर्वस्य बीजं बीजसमम्। राजदन्तादित्वात्परनिपात:। तस्याऽऽकृति-गणत्वात्। जगद्बीजमिति यावत्। तच्च सकार एव। सकाराधिकारे—'जगद्बीजं शक्तिनामा सोऽहंवेगवत भृगु:' इति नन्दनोक्ते:।

प्राञ्चस्तु—हंसमन्त्रघटकं व्यञ्जनद्वयमित्येव हंसपदार्थ:। तेन हकारसकारौ द्वावपि सिध्यत इत्याहु:। ये तु हंसेति स्वरूपमेव न बीजनामेति व्याचक्षते तेषां मते 'गुहा हसा मातरिश्वाऽभ्रमिन्द्र:' इतिं श्रुताविव प्रकृतेऽपि बिन्दुपाठो न स्यात्। वस्तुतस्तु हंसशब्दोऽयं नानार्थ:। तथा च कोश:—'ह: शिवो गगनं हंस:' इति, 'सो हंस: सहजा विष्णु:' इति च। परं त्वेतत्पक्ष एकपदोपात्तयोर्द्वयोर्बीजयो; क्रमे सम्प्रदाय एव शरणम्। हकारसकारावारूढौ प्रतिबीजं यस्यां तामाद्यां बालाविद्यामग्निरूपे रेफात्मक आसने प्रतिबीजं स्थितां कृत्वा पठेत्। अयं भाव:—

मन्त्रघटकस्वरत्रयस्याङ्गभूतानि तेभ्यः पूर्वं पठ्यमानानि यानि व्यञ्जनानि तेभ्यः सपूर्वं हकारसकारौ कुर्यात्। तेभ्यं परं रेफं कुर्यादिति। हकारसकाराभ्यां परतो रेफात्पूर्वं पूर्वसिद्धव्यञ्जनानां निवेश इति यावत्। तेन वाग्भवे पूर्वसिद्धव्यञ्जनस्यैवाभावाद्धकारसकाररेफाणामव्यवधानम्। कामराजे तु हसयोः परतः ककारलकारौ तत्परतो रेफः। तृतीयबीजे तु हसयोः परतः पूर्वसिद्धसकारस्ततो रेफ इति क्रमः सिध्यति। ऋजवस्तु—ईदृशं क्रमं मूलानुक्तं मन्यमानास्तदर्थं सम्प्रदायमेव शरणीकुर्वन्ति। तेन ह्सैं, ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौः, इत्यष्टमो मन्त्रः सिद्धः। सेयं विद्या प्रधानदेव्या आवाहनाख्ये कर्मणि विनियोक्ष्यते। विद्येयमाह्वानकर्मणि सर्वतोऽधिकेति श्रुतेः।।११६।।

एवमेता महाविद्या देवि सर्वार्थसिद्धिदाः।
महात्रिपुरसुन्दर्या मूलविद्यां शृणु प्रिये ।।११७।।

हे देवि! यह सब महाविद्या सर्वार्थसिद्धिप्रदा है। प्रिये! यह सब जिसकी अंगभूता है, उन महात्रिपुरसुन्दरी मूल विद्या को कहता हूँ; सुनो।।११७।।

एवमेता—श्लोक १०५ से प्रारम्भ करके ११६ श्लोक तक पूर्वविवृता सप्त विद्या है। जैसे करशुद्धि विद्या, आत्मरक्षा विद्या, देवात्मासन विद्या चक्रासनस्था विद्या, त्रैलोक्यमोहिनी विद्या, साध्यसिद्धासन विद्या तथा देव्यावाहन विद्या।।११७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

करशुद्ध्याद्यावाहनान्ता उद्धृता विद्याः स्तौति—**एवमिति।** ऋतुविमर्शिन्यां विद्या न लिख्यन्ते, सुभगोदये लिखितत्वात्। ऋजुविमर्शिन्यां तु ग्रन्थविवरणं क्रियते। इदमप्युक्तमस्माभिः—

पूर्वं विद्यां गुरोर्लब्ध्वा मूलमृजुविमर्शिनीम्।
महासारं सुकृतिनः पश्यन्तु सुभगोदयम्।। इति।

* अर्थरत्नावली *

एवमेता महाविद्या देवि सर्वार्थसिद्धिदा इति। एवमुद्धृता विद्याः करशुद्ध्याद्यावाहनान्तेषु कर्मसु विनियुक्ताः सर्वार्थसिद्धिदाः सकलपुरुषार्थसाधिका इत्यर्थः। तत्र प्रथमोद्धृता करशुद्धिकरी विद्या प्राधान्येन विद्यैश्वर्यप्रदा। तत उद्धृता अङ्गन्यासविद्या आत्मरक्षाकर्मणि विनियुक्ता द्वितीया। तृतीयविद्या च साधयति यत्किञ्चित्तल्लोके नास्ति, तथा देव्यात्मासनकर्मणि (विनियुक्ता)। चतुर्थी विद्या समस्तसम्पदमाकर्षयति, तथा चक्रासनकर्मणि विनियुक्ता। पञ्चमी विद्या त्रैलोक्यं मोहयति, तथा सर्वमन्त्रासनकर्मणि स्थिता। षष्ठी विद्या प्राधान्येन समग्रैश्वर्यप्रदा, तथा साध्यसिद्धासनकर्मणि विनियुक्ता। सप्तमी विद्या किं किं न साधयेत्, सर्वमपि साधयेदित्यर्थः, तथा देव्यावाहनकर्मणि स्थिता पञ्चकूटसं(ज्ञाष्टमी? ज्ञा सप्तमी) महाविद्या सर्वार्थसाधकीत्यर्थः। एवं स्वातन्त्र्येण सर्वार्थसाधक्यो विद्या यस्या मूलविद्याया अङ्गभूतास्तस्याः सकलपुरुषार्थसाधनसामर्थ्यमस्तीति किमु वक्तव्यम्। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

आसामष्टविधानां तु विद्यानां पृथग् नामग्रहणं कृतम्। तथा—

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च सुन्दरी पुरवासिनी।
श्रीर्मालिनी च सिद्धाम्बा त्वष्टमी त्रिपुराम्बिका।।
त्रिपुरा प्रथमा नित्या द्वितीया त्रिपुरेश्वरी।
सुन्दरीति तृतीया स्याच्चतुर्थी पुरवासिनी।।
पञ्चमी त्रिपुराश्रीः स्यात् षष्ठी त्रिपुरमालिनी।
सप्तमी त्रिपुरासिद्धा त्वष्टमी त्रिपुराम्बिका।। इति।

अथेदानीं मूलविद्यामुद्धर्तुमुपक्रमते—**महात्रिपुरसुन्दर्या मूलविद्यां शृणु प्रिये इति**।।११७।।

* सेतुबन्धः *

उक्तोपसंहारपूर्वकं प्रधानविद्योद्धारं प्रतिजानीते। स्पष्टोऽर्थः।।११७।।

मूलविद्योद्धारः

मादनं तदधः शक्तिस्तदधो बिन्दुमालिनी।
ऐन्द्रमाकाशबीजस्थमधस्ताज्ज्वलनाक्षरम् ।।११८।।
मायाबिन्द्वीश्वरयुतं सर्वोपरिनियोजितम्।
अयं स वाग्भवो देवि वागीशत्वप्रवर्तकः ।।११९।।

मादन, तदनन्तर शक्ति, तदनन्तर बिन्दुमालिनी, तदनन्तर ऐन्द्र, तत्पश्चात् ई तथा रकारयुक्त हकार एवं ह के साथ माया बिन्दु तथा ईश्वर युक्त होगा। हे देवि! इस प्रकार से वागीश्वरत्व-प्रवर्त्तक वाग्भवबीज अथवा वाग्भवकूट का उद्धार होगा।।११८-११९।।

यहाँ पर महात्रिपुरसुन्दरी विद्या का उद्धार हादिमत से तथा कादिमत से हुआ है। **हादिमत से जैसे**—मादनं—ह, शक्तिः—स, बिन्दुमालिनी—क, ऐन्द्रं—ल, आकाशबीजं—ह, ज्वलनाक्षरं—र, माया—ई, बिन्द्वीश्वरः—ँ। इस प्रकार से हादिमत का वाग्भव कूट है—हसकलह्रीं। **कादिमत से**—मादनं—क। शक्तिः—ए। बिन्दुमालिनी—ई। ऐन्द्रं—ल। आकाश-बीजं—ह। ज्वलनाक्षरं—र। माया—ई। बिन्द्वीश्वरः—ँ। कादिमत का वाग्भवकूट है—कएईलह्रीं।।११८-११९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मादनमित्यादिसप्तकेन मूलविद्योद्धारः क्रियते। एतद्विषयेऽभियुक्तवचनम्—

अनेककोटिभेदैस्तु गदितं त्रैपुरं महः।
तन्मध्ये तु परा दीप्ता महात्रिपुरसुन्दरी।। इति,
प्रोत्कीलनं विधायास्या देवदेवेन दर्शितम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रो रससारकसंज्ञके।। इति।

अत्र लोपामुद्राप्रस्थानमाश्रित्य निष्कीलविद्यानुसारेण सत्सम्प्रदायान्वयेन व्याख्या लिख्यते। अस्याः सत्सम्प्रदायान्वितत्वं नाम ओड्याणकामरूपजालन्धरपूर्णगिरिपीठचतुष्टयाश्रयश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिनीदेवीस्वरूपविमर्शकचर्यानाथोड्डीशनाथषष्ठीशनाथमित्रीशनाथलोपामुद्रागस्त्यकङ्कालतापसधर्माचार्यमुक्तकेशीश्रीमद्दीपकनाथदिव्यसिद्धक्रमान्वितत्वात्, दीपकाचार्यैरसपुत्रसङ्केतपुञ्जप्रकाशकजिष्णुदेवप्रभृतिमहायोगिवर्यमानवौघपरिगृहीतत्वाच्च। इयं मध्यमवीजप्रधाना विद्या, बीजत्रयेऽपि कामराजबीजसंयोगात्। मादनं मदयति हर्षयतीति मादनः प्राणः शिवरूपः। सति हि प्राणे हर्षे सर्वे प्रहृष्यन्ति नासति। प्राणस्य वृत्त्यन्तरात्मन्यपाने मदशब्दः श्रुतौ दृष्टः—'प्राणो वै गृत्सोऽपानो मदः' (ऐ० आ० २.२.१) इति। तत्संबद्धं वीजं मादनम्। स च महाप्राणरूपो हकारः, शिवबीजमित्यर्थः। अथवा माद्यतीति शक्त्युपभोक्तुः शिवस्य मादन इति नाम। ननु शास्त्रेऽत्र सर्वत्र मादनशब्दः ककारवाचकः, इह कथमन्यथेति। उच्यते, सत्यम्। किन्त्विहत्यो मादनशब्दो हकारमेव गृह्णाति। कथम्? विद्याया निष्कीलत्वात् सत्सम्प्रदायान्वितत्वादतिरहस्यत्वाच्च, आगमान्तरे तथा व्याख्याततत्वाच्च। सत्सम्प्रदायविहीना पुनरत्रापि स्वोत्प्रेक्षया तथा मन्यन्त इत्यस्मदुक्तमेव समञ्जसम्। तदधः तस्य हकारस्याधः। शक्तिः अमृतबीजम्, सकार इत्यर्थः। मादनशक्तिशब्दाभ्यामाधाराधाररूपं शिवशक्त्यात्मकं हंसबीजमुद्धृतमिति यावत्। तदधः तस्य सकारस्याधःप्रदेशे। बिन्दुमालिनी तुण्डबीजम्, ककार इत्यर्थः। तदुक्तं रससारसंग्रहे—

विद्यां तु नवमीं सम्यक् प्रवक्ष्यामि समासतः।
कीलिता या रहस्यत्वान्मादनेत्यादितः क्रमात्।।
मादनः प्राणरूपस्तु विकासः शिव उच्यते।
सकारस्त्वपरो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपवान्।।
सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमः शिवः।
सङ्कोचश्च विकासश्च हस इत्यक्षरद्वयम्।।
तयोराधाररूपेण कर्तनं बिन्दुमालिनी।
प्राणो बिन्दुरिह प्रोक्तः साहचर्यादपानके।।
अधो धरेन्द्रमाकाशं ज्वलनं च तयोरधः।
मायाबिन्दूर्ध्वगौ चैव वाग्भवोऽसावकीलितः।। इति।

श्रीहंसपारमेश्वरेऽपि—

मा शक्तिस्तु समाख्याता दनं स्वीकारकृच्छिवः।
स वै मादन इत्युक्तो हकारः शिवसंज्ञकः।।
तत्र शक्तिर्यथार्थत्वे सकारत्वं विधीयते।
शिवे हकार इत्युक्तः सकारे शक्तिरव्यया।।
बिन्दुभालिनिकार्णस्य पर्यायं परमेश्वरि।

शक्रव्योमानलार्णा ये मायाबिन्द्वीश्वरादयः।।
यथा स्थिताश्च तत्तथ्या वाग्भवः स निराविलः।
द्वावन्यौ कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलितात्मकौ।। इति।

अत्र त्रिपुरसुन्दरीकल्पलतायामभियुक्तोक्तिः—

प्राणौ देवीसखाद्यो दशशतनयनः शम्भुरग्निस्त्रिमूर्तिः।
शून्यश्चन्द्रार्धनादः शिखिरुचिरुचिरो वाग्भवोऽसावकीलः।। इति।

ऐन्द्रं लकारः। आकाशबीजं हकारः। ज्वलनाक्षरं रेफः। माया ईकारः। बिन्दीश्वरौ प्राग्वत्। अयं स वाग्भव इति। एवमुद्धृतोऽयं वाग्भव इत्यर्थः।।११८-११९।।

※ अर्थरत्नावली ※

मादनं तदधः शक्तिस्तदन्तर्बिन्दुमालिनीति। मादनं क्रोधीशः। तस्याधोदेशे शक्तिर्झिण्टीशः। तदधस्तस्याधोदेशे बिन्दुमालिनी त्रिमूर्तीशः। **ऐन्द्रमाकाशबीजस्थमिति।** ऐन्द्रं पिनाकीशः। आकाशबीजस्थमिति लकुलीशः। लकारं हकारोपरि स्थितं यथा भवति तथा कुर्यादित्यर्थः। **अधस्ताज्ज्वलनाक्षरमिति।** आकाशबीजस्याधःस्थाने ज्वलनाक्षरं भुजङ्गीशः। माया त्रिमूर्तीशः। बिन्दुरनुस्वारः। ईश्वर इति नादः। पूर्वोद्धृतबीजवरस्य शिरःस्थाने बिन्दुनादान्वितं यथा भवति तथा नियोजितं बीजं वाग्भवसंज्ञकं भवतीति। **अयं स वाग्भवो देवि वागीशत्वप्रवर्तक इति।** अयं स वाग्भव इति प्रसिद्धो वागीशत्वं प्रवर्तयतीति भावः।।११८-११९।।

※ सेतुबन्धः ※

यद्यपि प्रधानविद्या अपि तन्त्रान्तरे श्रुतिषु च मनुचन्द्रादिभेदेन बहुविधा उपलभ्यन्ते। तासु च न परस्परमङ्गाङ्गिभावः। मानाभावात्। अत एव नोत्कर्षापकर्षौ। तयोस्तात्त्विकभेदव्याप्यत्वेन विद्यानां तादृशभेदाभावेन तदयोगाच्च। तत्र न तावच्छब्दान्तराद्भेदः। विदिधातोरेकत्वात्। नाप्यभ्यासात्। 'तत्त्वमसि' इत्यस्य नवकृत्वोऽभ्यासेऽपि ब्रह्मविद्याया एकत्वात्। मन्वाद्युपासितत्वरूपगुणान्तरविधानेन पुनःश्रुतेरन्यपरत्वाच्च। 'अपः प्रणयति' इत्यस्यार्थवादभेदार्थं षड्वारं श्रवणेऽपि प्रणयनभेदाभावात्। नापि संख्यया। द्वादश महाविद्या इति संख्याबोधकवाक्य उपासकनिष्ठसंख्याया एव स्वाश्रयोपास्यत्वसम्बन्धे तत्र कीर्तनोपपत्तौ वास्तविकसंख्यासद्भावे मानाभावात्। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरास्त्रय इति संख्यायाः सृष्ट्यादिकृत्यनिष्ठसंख्ययैव संख्यावत्त्वबोधकतया तेषां वास्तविकाभेदविघटनाभावात्। नापि मनुचन्द्रादिसंज्ञाभिः। तासामप्युपासकनिष्ठानामेव तत्र भानात्। क्वचित् तन्त्रे हादिविद्यायाः पञ्चदश्या लोपामुद्रेति संज्ञा, तन्त्रान्तरे कादिविद्यायाः सप्तदश्याः सेति दर्शनेन तासामव्यवस्थिततत्वाच्च। एकस्या एवागस्त्यलोपामुद्रासंज्ञाद्वयदर्शनेन व्यभिचरितत्वाच्च। नापि गुणात्। परस्परानन्वयिनां गुणानामदर्शनात्। ये तु तन्त्रभेदादङ्गभेदा न ते भेदकाः। अग्निहोत्रादीनां शाखाभेदेनाङ्गवैलक्षण्यदर्शनेऽपि तदभेदस्य शाखान्तराधिकरणसिद्धत्वात्। यदाहुः—'सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्म' इति। उत्तरमीमांसायामपि सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषादित्यधिकरण उपनिषद्भेदेनोक्तानां दहरादिविद्यानामङ्गवैलक्षण्येऽप्यभेद एव

हि साधितः। अत एव परस्परं गुणोपसंहारो युज्यते। न च तासां विद्यानां मानसक्रियारूपाणां तदधिकरणन्यायेनैकजातीयत्वसम्भवेऽपि प्रकृते मन्त्रात्मकावयविद्रव्यरूपाणां विद्यानां तदवयवाक्षरवैलक्षण्येन भेदो दुरपह्नव इति वाच्यम्। सर्वासां विद्यानां मेरुसमुद्भवत्वेनावयवभेदस्याप्यभावात्।

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ।
अर्धचन्द्रश्च बिन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते।।

इति ज्ञानार्णवोक्त्या सर्वासां नवावयवातिरिक्तावयवघटितत्वाभावात्। क्वचिदीषदवयवभेदेन परिमाणभेदेऽपि द्रव्यभेदे मानाभावात्। योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं सोऽहं स्थविरे प्रणप्तृननुभवामीतिप्रत्यभिज्ञाद्यनुसारेण तथा सिद्धान्तितत्वात्। शिवविष्ण्वादिशरीररूपद्रव्यभेदेऽपि तयोरभेददर्शनाच्च 'युञ्जन्ति हरी इषिरस्य' इत्यृच ऋक्सामयोः पाठभेदेऽप्यैक्यस्य निदानसूत्राद्यनुसारेण वृत्तचन्द्रोदयेऽस्माभिः समर्थितत्वाच्च। अत एव न विरुद्धधर्माधिकरणत्वमपि तात्त्विकाभेदे विरुद्धम्। व्यावहारिकं भेदमादायैवेन्द्रार्जुनयोरिवोपपत्तेः। एतेनैकविद्योपास्तावन्यासां त्रिविद्यानामङ्गपूजासु विनियोगदर्शनात्तारतम्यमित्यपास्तम्। एकस्या एव विद्यायाः स्थानभेदेन पूजाया दर्शनेऽप्यभेदानपलापात्। अत एव कल्पसूत्रम्—'कामेश्वर्यादिचतुर्थी नित्यानां षोडशी योगिनीचक्रदेवीनां नवमी बिन्दुचक्रस्था चेत्येकैव। न तत्र मन्त्रदेवताभेदः कार्यः। तन्महादेव्या एव। चतुर्षु स्थलेषु विशेषार्चनमावर्तते' इति तेन हादिविद्या निष्कीला कादिविद्या तु सकीलेत्यादिरीत्या हादिविद्याया उत्कृष्टत्वोक्तिः पक्षपातमात्रमेव। निष्कीलीकरणमन्त्रस्य हादिविद्याधिकारे पाठेऽपि गुणोपसंहारन्यायेन सर्वाङ्गतानपायात्। 'श्रीविद्येव तु मन्त्राणां तत्र कादिर्यथा परा' इत्यादिवचनं तु रहस्यनामसाहस्रोत्कीर्तनविधिशेषरूपत्वान्नामकीर्तनप्राशस्त्यैकतात्पर्यकं न स्वार्थेऽपि तात्पर्यशालि। 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' इत्यादेरन्यतात्पर्यकान्मन्त्रादिन्द्रस्य सर्वोत्तमत्वसिद्धेरभावात्। 'कादिरेवोत्तमा न हादिः' इत्यादिवचनानां तत्तत्प्रकरणे विद्यमानानामपि न हि निन्दान्यायेन विधेयस्तावकमात्रत्वेन तत उत्कर्षासिद्धेः। एतेन 'विद्याद्वयमिदं भद्रे दुर्लभं भुवनत्रये' इति ज्ञानार्णवादिवचनात्कादिहादिपञ्चदश्यावेवोत्तमे। तयोरपि मध्ये कामराजोपासितत्वात् कादिपञ्चदश्येवोत्तमोत्तमेत्यादय उक्तयो भक्तिपारवश्यनिमित्तका विज्ञेयाः। तथाऽपि त्रिपुरोपनिषदादावितरविद्याप्रकृतित्वेन कादिविद्याया एव प्रथममुद्धृतत्वाद्विद्याद्वयैकपरमहोपनिषद्यपि 'कामो योनिः कमला' इत्यादि श्रुत्या तस्या एव प्रथममुद्धारात् 'चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः' इत्यस्यामृच्यपि कादेरेवोद्धारात्तादृशबहुश्रुत्यानुगुण्याय 'तामीकाराक्षरोद्धाराम्'(१/८) इति श्लोके तस्या एवोपक्रान्तत्वाच्च तामेव विद्यामुपदिशति—मादनामित्यादिना।

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्याऽभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्येषा विश्वमाताऽऽदिविद्या।।

इति आथर्वणे शौनकशाखीया श्रुतिः। तत्रत्यकामादिपदचतुष्टयं मादनादिपदैः क्रमेण व्याचष्टे। मदनसम्बन्धि बीजं मादनं ककारः। स चाकारस्वरविशिष्ट एव। उक्तश्रुतौ 'हसाः सकला'

इत्येषामकारविशिष्टानामनुवादाज्ज्ञापकाद् हल्लेखानन्तर्गतहसकलानामकारयोगस्याऽऽवश्यकत्वसिद्धेः। अस्मिन्नेव तन्त्रे षट्षत्यां पञ्चकूटपञ्चमीविद्योद्धारे—

कामो विष्णुयुतः शक्तिर्माया शक्रश्च पार्वति।
पश्चाद्देवि महामायाबीजं चान्त्ये नियोजयेत्।।

इति वाग्भवकूटश्लोके कामस्य विष्णुयुतत्वविशेषणाच्च। अस्मादेव ज्ञापकाच्छ्रीविद्याकूटेषु सर्वेषु सस्वरा एव वर्णाः पठनीया इति सौभाग्यरत्नाकरोक्तेश्च। तेषु च हसौ द्वौ द्वौ कलास्त्रयस्त्रय इति दशस्वकारयोगः। तथा च सम्प्रदायार्थप्रकरणे वक्ष्यत—'श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम्' (७/४४) इति। शक्तिरेकादशस्वरः। बिन्दुमालिनी चतुर्थस्वरः। ईकाराधिकारे—'शिवोत्तमः शिवा तुष्टिश्चतुर्थी बिन्दुमालिनी' इति कोशात्। कमलेति तस्या एव संज्ञा। रससारसंग्रहे तु—'मादनं प्राणरूपं तु विकासः शिव उच्यते' इत्याद्युक्तम्। हंसपारमेश्वरेऽपि—

मा शक्तिस्तु समाख्याता दनं स्वीकारकृच्छिवः।
सैव मादनमित्युक्त्या हकारः शिवसंज्ञकः।।

इत्याद्युक्तम्। ऋजुविमर्शिन्यामपि—मादयति हर्षयतीति मादनः प्राणो हकारः। प्राणस्यैव वृत्त्यन्तरेऽपाने प्राणो वाग्रसोऽपानो मदन इति श्रुतेश्च। तस्य हकारस्याधः शक्तिः पूर्वोच्चार्यं बीजं सकारः। बिन्दुमालिनीशब्देन ककार एव गृह्यते सम्प्रदायादिति व्याख्यातम्। तत्सर्वं प्रमाणपथातीतं राजाज्ञाकल्पमिति शिष्यदन्धनायैवालं न पुनर्न्यायविदां प्रामाणिकानां तोषायेत्युपेक्ष्यम्। कौलिकार्थप्रकरणे व्योमबीजत्रयात्पार्थक्येन मादनत्रयस्य निर्देक्ष्यमाणत्वात्तद्विरुद्धं च। तस्मान्मदानः ककार एव। अत एव सौभाग्यरत्नाकरेण अस्य ग्रन्थस्य कामराजपक्षे स्फुटोऽर्थः। लोपामुद्रापक्षे त्वित्यादिनोक्तवचनान्येव लिखता पक्षान्तरमस्फुटार्थकमिति ध्वनितम्। न चोत्तरतन्त्रे वक्ष्यमाणायाः षडर्थ्या हादिविद्यानुगुणत्वेन प्रकृतश्लोकस्य कादिविद्यापरस्याप्यन्यथा नयनमुचितमिति वाच्यम्। तस्यामाद्ययोरर्थयोः कादिविद्यानुगुण्य एव स्वारस्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्। असंदिग्धार्थकोपक्रमानुसारेणैवोपसंहारपठितवाक्येऽर्थवर्णनस्य न्यायसिद्धत्वाच्च। तस्मान्महतामपि वाक्यमिदं स्वोपास्यविद्यापक्षपातमूलकतया लोभमूलस्मृतिवदप्रमाणमेवेत्यवधेयम्। ऐन्द्रं वज्रपाणिलकारः। आकाशबीजे हकारशिरसि तिष्ठति। अधस्तात्, हकाराधो ज्वलनस्याग्नेरक्षरं रेफः। माया ईकारः। बिन्दुरनुस्वारः। ईश्वरोऽर्धचन्द्रः। तैर्युतं सर्वोपरिशब्देन रोधिन्यादिसप्तकं तस्य सर्वोपरि पठ्यमानत्वात्। तैरपि नितरां योजितं कृत्वोद्धरेत्। सोऽयं वाग्भवो भवति। वेदे गुहामायाशब्दौ लज्जाबीजपरौ। यदि हादिविद्यापरत्वेनाप्येष ग्रन्थो योजनीय इत्याग्रहस्तदैवमुच्यताम्—मादनं ककार एव। तदधः, तदेव मादनमेवाधो यस्य तत्। तादृशमक्षरं शक्तिः सकारः। जगद्बीजं शक्तिनामेति सकारपर्याये कोशात्। तदधःशब्दे पुनः पूर्ववद्बहुव्रीहिः। बिन्दुमालिनी बिन्दुमालावती बिन्दुद्वन्द्वप्रियेत्यर्थः। हकार इति यावत्। तथा च हकाराधिकारे कोशः—'बिन्दुद्वन्द्वप्रिया देवी मेघश्यामेश्वरः पुमान्' इति।

ततश्च कसहा वैपरीत्येन पठनीया इति फलितार्थ इति। अस्मिन्नर्थे तात्पर्यग्राहकं तृतीयकूटस्थं प्रागुद्धारक्रमेणेति पदं सुवचमिति वक्ष्यते। परं त्वष्टमे पटले जपाङ्गसुषुप्त्यवस्थाविभावनकथनावसरे पूर्वार्णानां विलोमेनेत्यनेन प्रातिलोम्येनोद्धृतपूर्वत्वं तृतीयकूटस्यासाधारणविशेषणत्वेनानूद्यमानं विरुध्येत। प्रथमकूटस्यापि प्रातिलोम्येनोद्धारे सत्यसाधारण्यभङ्गापत्तेः।।११८-११९।।

शिवबीजं त्रिधा कृत्वा सृष्टिस्थितिलयक्रमात्।
द्वयमाद्येन रहितमाद्याधो मदनाक्षरम्।।१२०।।
पुनः स्थितिशिवाधस्तादिन्द्रबीजं नियोजयेत्।
तथा लयशिवाधोऽपि ज्वलनार्णं महेश्वरि।।१२१।।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुखण्डेन्दुसंयुतम्।
एवमेतन्महाबीजं कामराजं महोदयम्।।१२२।।

हे महादेवि! सृष्टि-स्थिति-लयक्रम में हकार को तीन स्थानों में स्थापित करना होगा। प्रथम में सृष्टि-आत्मक हकार, स्थिति आत्मक हकार तथा लयात्मक हकार आद्यरहित होगा। सृष्ट्यात्मक हकार के पश्चात् आद्या है। आद्य के पश्चात् ककार। तदनन्तर पुनः स्थित्यात्मक हकार के पश्चात् लकार का नियोग करना होगा और लयात्मक हकार के साथ 'र' का योग करके उक्त अक्षर के साथ 'ई' एवं खण्डचन्द्र तथा बिन्दु का योग करना होगा। इस प्रकार से कामराज बीज अथवा कामराज कूट का उद्धार हो गया। यह सर्वपुरुषार्थ-साधक है।।१२०-१२२।।

शिवबीजं—हकार। **द्वयमाद्येन रहितम्**—द्वयं अर्थात् स्थित्यात्मक हकार तथा लयात्मक हकार, आद्यं—सकार, अर्थात् उक्त दो हकार के साथ सकार नहीं रहेगा। **मदनाक्षरम्**—ककार। **इन्द्रबीज**—लकार। **ज्वलार्णम्**—रकार। **चतुर्थस्वरः**—ई। **बिन्दुखण्डेन्दुः**—ँ। इस प्रकार से उद्धार किया गया कामराजबीज अथवा कामराजकूट है—हसकहलह्रीं। इस कूट उद्धार में कादि तथा हादि मत में विरोध नहीं है। **महोदयम्**—विद्यानन्द के अनुसार—सकल पुरुषार्थ-साधन।।१२०-१२२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

कामराजबीजमाह—**शिवबीजं त्रिधा युक्त्वेति**। शिवबीजं हकारः। अयमर्थः—सृष्टिस्थितिसंहारक्रमबुद्ध्या हकारत्रयं योजयेदिति। **द्वयमाद्येन रहितमिति**। स्थितिसंहारात्मकहकारद्वयमाद्येन सकारेण रहितमित्यर्थः।

सामर्थ्यात् सृष्टिशिवाधःस्थाने सकारबीजमस्तीति प्राप्तम्, 'अप्रतिषिद्धमनुमत(म्' इति) न्यायेन। एवमादितो हंसबीजं सिद्धम्। **आद्याधो मदनाक्षरमिति**। आद्यस्य सकारस्याधःस्थाने ककारबीजं भवतीत्यर्थः। **पुनः स्थितीति**। अस्यार्थः—मध्यमशिवबीजस्य हकारस्याधःस्थाने, इन्द्रबीजं लकारम्, नियोजयेदिति। **तथा लयेति**। ज्वलनं रेफः। अयमभिप्रायः—

संहार-शिवरूपतृतीयहकारस्याधःस्थाने रेफं नियोजयेदिति। चतुर्थस्वरबिन्दुखण्डेन्दवः प्राग्वत्। **एवमेतदिति।** एवमुद्धृतं कामराजबीजमित्यर्थः।।१२०-१२२।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

शिवबीजं त्रिधा कृत्वा सृष्टिस्थितिलयक्रमादिति। शिवबीजं शवर्गचतुर्थमक्षरम्। तत् सृष्टिस्थितिलयक्रमात् त्रिधा कुर्यादित्यर्थः। द्वयमाद्येन रहितमिति। स्थितिलयात्मकशिवाक्षरद्वयमाद्येन चन्द्रबीजेन रहितं कुर्यादित्युक्तं भवति। द्वयमाद्येन रहितमित्युक्त्या सृष्टिशिवस्याधःस्थाने आद्योपेतं कुर्यादिति 'अप्रतिषिद्धमनुमतम्' इति न्यायेनार्थात् सम्पद्यते। अन्यच्च, समानबलयोरुभयोः प्रकृतयोः सतोस्तयोर्मध्येऽन्यतरे निषिद्धेऽन्यतरस्यापरिहार्यत्वं सम्पद्यते। **आद्याधो मदनाक्षरमिति।** आद्यस्य चन्द्रबीजस्य अधःस्थाने द्वितीयवर्गाद्यमक्षरं प्रक्षिपेदित्यर्थः। **पुनः स्थितिशिवाधस्तादिति।** मदनाक्षरस्याधःस्थाने स्थितो यः स्थितिशिवस्तस्याधस्ताद् अधःस्थाने। इन्द्रबीजं नियोजयेत्। माधवीबीजं नियोजयेदित्यर्थः। तथा तेन प्रकारेण। पूतनाबीजस्याधःस्थाने स्थितो यो लयशिवः, ज्वलनार्णं महेश्वरीति, तस्य लयशिवस्याधःस्थानेऽसृग् बीजं नियोजयेदित्यर्थः। **चतुर्थस्वरसंयुक्तमिति।** शान्त्यक्षरं नियोजयेदित्यर्थः। **बिन्दुखण्डेन्द्वलङ्कृतमिति।** एवमुद्धृतं बीजं बिन्दुनादकलान्वितं कुर्यादित्यर्थः। **एवमेतन्महाबीजं कामराजं महोदयमिति।** एवमुद्धृतं कामराजं न नामतः कामराजम्, अर्थतोऽपि महोदयं सकलपुरुषार्थसाधनमित्यर्थः।।१२०-१२२।।

❈ सेतुबन्धः ❈

एवं प्रथमकूटमुद्धृत्य द्वितीयकूटमुद्धरति। शिवबीजं हकारं त्रिषु स्थानेष्वधोऽधो निक्षिपेत्। तेषां प्रथमादिक्रमेण सृष्टिः स्थितिर्लयश्चेति संज्ञा उत्तरत्र व्यवहारार्थं प्रयोजनान्तरार्थं च कृताः। आद्येन रहितमितिपदद्वयस्य द्विवारमन्वयस्तेषां हकाराणां मध्य आद्येन रहितं द्वयमाद्येन रहितं कुर्यादिति। प्रथमहकारेण भिन्नं हकारद्वयं द्वितीय-तृतीयोभयमाद्येन हकाराद्येन सकारेण रहितं कुर्यादित्यर्थः। अनेन द्वितीयतृतीयहकारयोरप्रसक्तस्य सकारसाहित्यस्य निषेधेन तदितरस्य प्रथमहकारस्य सकारसाहित्यमावश्यकमिति सिध्यति। एकं वृणीते द्वौ वृणीते त्रीन्वृणीते न चतुरो वृणीते न पञ्चातिवृणीत इत्यत्र चतुःषडाद्यार्षेयवरणनिषेधेन पञ्चार्षेयवरणप्राप्तिदर्शनात्। 'न तु कांस्यस्य तापनम्' इति शङ्खस्मृतावीदृशनिषेधादेव कांस्येतरतापनप्राप्तेरपरार्केण व्याख्यातत्वाच्च। तच्च सकारसाहित्यं प्रथमहकारस्य पूर्वप्रदेशावच्छेदेन न भवत्यपि तु परत्रैवेति तु तस्य सृष्टिसंज्ञाबललभ्यं सृष्टेः पूर्वं कृत्यान्तरस्याभावात्। लयात्परतस्तिरोधानानुग्रहयोः सत्त्वात्। तेन लयशिवात्परतो ज्वलनार्णनिवेशानाञ्जस्यं निरस्तम्। इदमेव हि सृष्ट्यादिसंज्ञानां प्रयोजनम्। व्यवहारमात्रस्य प्रथमद्वितीयादिपदैरप्युपपत्तेः। स्थितिशिवो द्वितीयो हकारस्तदध इन्द्रबीजं लकारः। लयशिवस्तृतीयो हकारस्तदधो ज्वलनार्णं रेफमीकारबिन्द्वर्धचन्द्रादियुक्तं नियोजयेत्। तदिदं कामराजकूटं भवति।।१२०-१२२।।

मायाबीजं महेशानि मादनं शक्रसंयुतम् ।
चन्द्रबीजं केवलं तु विनियोज्य वरानने ॥१२३॥
त्यक्त्वा सृष्टिक्रमं देवि प्रागुद्धारक्रमेण तु ।
संहारक्रमयोगेन शक्तिबीजं समुद्धरेत् ॥१२४॥

हे महेशानि! मायाबीज, शक्रसंयुक्त मादन, हे वरानने! उसके अनन्तर केवल चन्द्रबीज युक्त करे। पूर्ववीज (कामराजबीज) उद्धारक्रम में जो सृष्टिक्रम है, उसका यहाँ त्याग करके संहारक्रम में शक्तिवीज का उद्धार करना होगा। उसका अर्थ इस श्लोक में मायाबीजादि जिस क्रम से विवृत है, उसे उलट देने पर शक्तिवीज का उद्धार होगा।।१२३-१२४।।

मायाबीजं—ह्रीं। **मादनं**—क। **शक्रसंयुतम्**—शक्र = ल, लकारयुक्त। इस पद की व्याख्या में व्याख्याकारों ने कहा है कि मायाबीज तथा मादन के मध्य में ल रहेगा। **चन्द्रबीजं**—स। **सृष्टिक्रमः**—अनुलोमक्रम। **संहारक्रमः**—प्रतिलोमक्रम। इस प्रकार से उद्धार किया जायेगा शक्तिवीज या शक्तिकूट—सकलह्रीं।।१२३-१२४।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

शक्तिबीजमाह—**मायेति**। मायाबीजं भुवनेश्वरीबीजम्। हे महेशानि! महेशानस्य महाभैरवस्य आत्मभूते। मादनशक्रौ प्राग्वत्। चन्द्रबीजं सकारः। **केवलमिति**। शिवबीजसंयोगवर्जितमित्यर्थः। तुरवधारणे। **संहारक्रमयोगेनेति**। वाग्भवकामराजबीजवन्नानुलोमेन शक्तिबीजोद्धारः, किन्तु विलोमेनेत्यर्थः। इह विद्यायां त्रिष्वपि बीजेष्वन्तःस्थातृतीयमस्तीति, सम्प्रदायस्य कश्मीरोद्भूतत्वात्, योगिनीप्रधानतया विद्यायाः प्राकृतभाषाविशेषत्वाच्च यथासम्प्रदायं तस्य व्यवहार इत्युपदेशः। इयं विद्या सुभगोदयेऽपि न लिखिता, अतिरहस्यत्वात्।।१२३-१२४।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

मायाबीजं महेशानीति। मायाबीजं भुवनेश्वरीबीजम्। मादनं विसर्गान्तम्। शक्रसंयुतम्। शक्रो मांसबीजम्, तत्समायुक्तं तदुपेतम्। कोऽर्थः? भुवनेश्वरीबीजस्योर्ध्वे लकारं नियोजयेत्। लकारोपरि ककारं योजयेदित्यर्थः। **चन्द्रबीजं केवलं त्विति**। हकारवर्जितं केवलं चन्द्रबीजमेवादौ योजनीयं हे वरानने! इत्यर्थः। **त्यक्त्वा सृष्टिक्रमं देवि प्रागुद्धारक्रमेण त्विति**। कामराजबीजस्योद्धारावसरे यः क्रमोऽसौ सृष्टिक्रमस्तं सृष्टिक्रमं त्यक्त्वा तत्रैव शक्तिबीजोद्धारावसरे संहारक्रम इति मन्तव्यम्। न तत्रोच्चारक्रम उक्तः। उच्चारक्रमस्तु पूर्ववत्। सृष्टिक्रम एवेत्यर्थः। पूर्वोद्धृतकामराजबीजे आदिमध्यहकारद्वयलोपात् तदेव शक्तिबीजं भवतीत्यर्थः। इदमुद्धृतं तार्तीयं बीजं शक्तिसंज्ञं सकलसामर्थ्ययुक्तम्।

अत्र लोपामुद्रामते वाग्भवोद्धारे स्वागमसम्प्रदायविशेषोऽस्तीति। तद्यथा—**मादनमिति**। मादयतीति मादनमिति व्युत्पत्त्या शक्त्युपभोक्तुः शिवस्याभिधानम्। तदधः शक्तिरिति मानसस्याभिधानम्। तदन्तर्बिन्दुमालिनीति तुण्डस्याभिधानम्। ऐन्द्रमाकाशबीजस्थमित्यादि यथापूर्वं द्रष्टव्यम्। तदुक्तं हंसपारमेश्वरे रससारसंग्रहे च—

विद्यां तु नवमीं सम्यक् प्रवक्ष्यामि समासतः।
कीलिता या रहस्यत्वान्मादनेत्यादितः क्रमात्॥
मादनः प्राणरूपस्तु विकासः शिव उच्यते।
सकारस्त्वपरो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपवान्॥
सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमः शिवः।
सङ्कोचश्च विकासश्च हस इत्यक्षरद्वयम्॥
तयोराधाररूपेण कर्तनं बिन्दुमालिनी।
प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्तः साहचर्यादपानके॥
अधो धगेन्द्रमाकाशं ज्वलनं च तयोरधः।
मायाविन्दूर्ध्वगौ चैव वाग्भवोऽसावकीलितः॥ इति।
मा शक्तिस्तु समाख्याता दनं स्वीकारकृच्छिवः।
स वै मादन इत्युक्तो हकारः शिवसंज्ञकः॥
तत्र शक्तिर्यथार्थत्वे सकारत्वं विधीयते।
शिवे हकार इत्युक्तः सकारे शक्तिरव्यया॥
विन्दुमालिनीकार्णस्य पर्यायं परमेश्वरि।
शक्रव्योमानलार्णा ये मायाबिन्द्वीरादयः॥
यथा स्थिताश्च तत्तथ्या वाग्भवः स निराविलः।
द्वावन्यौ कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलितात्मकौ॥ इति।

* सेतुबन्धः *

तृतीयं कूटमुद्धरति। अत्र मायाबीजशक्तिबीजयोरन्यतरोद्देशेनेतरसंज्ञाविधिरित्येकः पक्षः। अस्मिन्पक्षे महेशानीति न संबुद्धिः किन्तु बीजविशेषणत्वान्नपुंसकं सद्धृल्लेखापरम्। अथवा मायाबीजं हृल्लेखा, उक्तश्रुत्यनुसारात्। इदमेकमक्षरम्। मादनं शक्रसंयुतं लकारयुक्तः ककारः कल, इति द्वितीयम्। चन्द्रबीजं सकारः केवलं मादनवदक्षरान्तरेण युक्तं न भवति, इदं तृतीयम्। ये तु शक्रसंयुतमिति मायाबीजविशेषणत्वेन व्याचक्षते तेषामनुस्वारोत्तरं हलन्तरयोगस्याप्रसक्तत्वादेव पूर्वं योग इत्यस्य सुसमर्थत्वेऽपि चन्द्रबीजे केवलविशेषणस्वारस्यहानिः। अस्मन्मते तु मादनचन्द्रबीजयोर्मध्यपठितस्य विशेषणस्योभयत्रापि पक्षतोऽन्वयप्राप्तेस्तन्निरासाय केवलमितिविशेषणेनार्थात्पूर्वत्रैवान्वय इति सिध्यति। किञ्च, मादनपदेन व्यवहितस्य विशेषणस्य दूरान्वयो व्युत्पत्तिविरुद्धः। न च भवत्पक्षे मादनात्पूर्वमपि शक्रयोगापत्तिरिति वाच्यम्। पाठक्रमेण तन्निरासस‍म्भवात्। कुलविद्योद्धारे—'मादनं शक्रसंयुतम्' इत्यत्र सर्वैरपि पाठक्रमस्यैव शरणीकारात्। अथवा शक्रसंयुतमिति मायामादनयोरुभयोरपि विशेषणम्। तेन तयोर्मध्ये शक्रो लेख्यः। तथा सत्येवोभयत्र तद्योगनिष्पत्तेरिति। एतन्त्रितयं वैपरीत्येन पठेदित्याह—**त्यक्त्वेति।** प्राचोऽव्यवहितपूर्वस्य कामराजकूटस्योद्धारे यः क्रम आनुलोम्यरूपोऽवलम्बितस्तं सृष्टिक्रमं

त्यक्त्वा संहारक्रमस्य प्रातिलोम्यरूपस्य योगेनेदमुद्धरेदित्यर्थ:। हादिविद्यापक्षे प्राच: प्रथमकूटस्योद्धारक्रमेणेति संहारक्रमयोगेनेत्यस्य विशेषणं सुवचम्।।१२३-१२४।।

चक्रपूजोपदेश:

एवमेषा महाविद्या महात्रिपुरसुन्दरी।
संस्मृतैव महेशानि त्रैलोक्यवशकारिणी ॥१२५॥
एतयैतस्य चक्रस्य साधकोऽर्चनमारभेत्।

यह महात्रिपुरसुन्दरी-वाचिका महाविद्या इस प्रकार की है। इनका जप करने-मात्र से त्रैलोक्य साधक के वशीभूत हो जाता है। इस महाविद्या द्वारा साधक श्रीचक्र की अर्चना आरम्भ करे।।१२५।।

महाविद्या—विद्यानन्द कहते हैं कि सभी विद्याओं में उत्तमा महाविद्या। **संस्मृतैव**—भास्कराचार्य अर्थ करते हैं—जप करने से। **एतस्य चक्रस्य**—इस चक्र का अर्थात् पूर्ववर्णित श्रीचक्र का। श्रीचक्र महात्रिपुरसुन्दरी का वपु है। अत: श्रीचक्रार्चन अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की अर्चना।।१२५।।

✻ ऋजुविमर्शिनी ✻

विद्यास्तुति: क्रियते—**एवमेषेति**। संस्मृतैव चिन्तितैव। जपादिवैधुर्येणेत्यर्थ:। अनया चक्रार्चनमारभेदित्याह—**एतयैतस्येति**। एतया विद्यया।।१२५।।

✻ अर्थरत्नावली ✻

एवमेषा महाविद्या महात्रिपुरसुन्दरीति। एवमेषा त्रिबीजात्मिका विद्या महाविद्या सकलविद्यानां मध्ये उत्तमा विद्येत्यर्थ:। का सा विद्या? महात्रिपुरसुन्दरीवाचिकेत्यर्थ:। एवं मूलविद्यामुद्धृत्य तस्या: सामर्थ्यं वर्णयति—**संस्मृतैव महादेवी त्रैलोक्यवशकारिणीति**। संस्मृतैव संस्मृतिमात्रेणैव। इयं महाविद्या त्रैलोक्यं साधकस्य वशे करोतीत्यर्थ:। **एवमेतस्य चक्रस्य साधकोऽर्चा समारभेदिति**। यस्तावदस्यां त्रैलोक्यमोहिन्यां महाविद्यायां कल्याणदेशिककटाक्षतो लब्धचतुर्विधाभिषेक: सन्ध्यातर्पणसवितृद्वा:स्थलोकपालवास्तुस्वासनादिसपर्यापुरस्सरं कृतन्यासमण्डल:, तस्य महात्रिपुरसुन्दर्याश्चक्रस्य अर्चां समारभेत् प्रारभेदित्यर्थ:। तत्र सन्ध्यावन्दनन्यासमण्डलार्घशुद्धिपर्यन्तं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकल्पलतायामुक्तप्रकारेण द्रष्टव्यम्। एवं मन्त्रप्रमेयनिरूपणं कृतम्। इत: परं पूजाप्रयोगमुद्रादिक्रमेण तदङ्गभूतं द्रष्टव्यम्।।१२५।।

✻ सेतुबन्ध: ✻

महात्रिपुरसुन्दरीदेवत्याया: श्रीविद्यायास्तदभेदेन निर्देशो वाच्यवाचकयोरभेदविवक्षया मन्त्रस्य देवतासूक्ष्मरूपत्वाभिप्रायेण वा। सेयं विद्या संस्मृतैव जपितैव त्रैलोक्यं वशयति। लोकत्रयवशीकारस्य परशिवैकधर्मत्वात्परशिवभावफलकोऽयं विद्याजप इति यावत्। तथा च सुन्दरीतापिन्यां श्रूयते—'पञ्चदशाक्षरं त्रैपुरं योऽधीते स सर्वान् कामानाप्नोति, स सर्वान् भोगानाप्नोति,

स सर्वाल्लोकान् सृजति, स सर्वा वाचो जृम्भयति, स रुद्रत्वं प्राप्नोति, स वैष्णवं (धाम) भित्त्वा परब्रह्म प्राप्नोति, य एवं वेद' इति। इत्थं च 'सर्वेभ्यः कामेभ्यो दर्शपूर्णमासौ' इत्यत्र करणभाव्ययोः कीर्तनेन भावनाया इव प्रकृतेऽपि तदाक्षेपाच्छ्रीविद्याजपेन परशिवभावादिकं भावयेदित्यर्थः। ततश्च फलसंयोगाज्जपस्य प्राधान्ये सिद्धे फलवदफलन्यायेन वशिन्यादिमन्त्राणां श्रीविद्याङ्गत्वं सिध्यति। तेन च तत्र तत्सन्निधिपठितानाम् 'अर्चिताः पुरुषस्याऽऽशु प्रकुर्वन्ति वशं जगत्' (१/८६) इत्यादिफलबोधकवाक्यानामामनहोमार्थवादन्यायेन प्राशस्त्यमात्रबोधकत्वं सम्पद्यते न फलविधित्वम्। न च विनिगमनाविरहः।

शृणु देवि महानित्यामादौ त्रिपुरसुन्दरीम्।
यया विज्ञातया गौरि जगत्क्षोभः प्रजायते।। (१/३०)

इत्युपक्रमात्। 'त्वमेव तासां रूपेण क्रीडसे विश्वमोहिनी' इति तन्त्रान्तर उपसंहारात्। 'संस्थिताऽत्र महाचक्रे महात्रिपुरसुन्दरी' (१/८२) इत्यादिना मध्ये पुनः पुनः परामर्शाच्चास्य तन्त्रस्य प्राधान्येन त्रिपुरसुन्दर्युपासनाविधान एव तात्पर्यावगमात्। सा चोपासना मानसक्रियाविशेषरूपा। 'जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्' इति ब्रह्मसूत्रादौ तथाव्याख्यादर्शनात्। देवताविषयकोऽनुराग एवोपासनेति केचित्। तन्न। भक्तिमानुपासीतेत्यादिविधौ भक्तेरूपासनातो भेदेन निर्देशानुपपत्तेः। अनुरागस्यैव भक्तिपदवाच्यत्वात्। 'अथातो भक्तिजिज्ञासा, सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे' इति शाण्डिल्यसूत्रात्। तस्मादनुरागव्यावृत्ता क्रियैवोपासना। सा च द्विविधा—तन्मन्त्रजपरूपा तद्यन्त्रपूजारूपा चेति। जप मानसे चेतिधातुपाठस्मृत्या जपस्य मानसक्रियारूपत्वावगमात्। पूजाया अपि ध्यानादिरूपायास्तथात्वात्। उपचारसमर्पणरूपाया अपि न ममेत्याकारकमानससंकल्पैकरूपत्वात्। ततश्च त्रिपुरसुन्दरीयन्त्रपूजनस्य सप्तदशभिः श्लोकैः फलराशेः पूर्वं कथने जागरूके सति कथं फलवदफलन्यायस्य विनिगमनाविरहेण पराहतिः। न चैवं सति जपस्य पूजाङ्गत्वापत्तिः।

जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।।

इति मनुस्मृत्यादौ सिद्धिकरणताया निरपेक्षजप एव कथनात् 'चक्रराजार्चनं विद्याजपो नाम्नां च कीर्तनम्' इत्यादौ 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' इत्यादौ च 'जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्' इत्यादौ च प्रधानप्राये पाठाच्चोपांशुयाजादेरिव जपस्य प्राधान्यसिद्धेः। तेनोत्तरतन्त्रे 'चक्रपूजां विधायेत्थं……जपं कुर्यात्समाहितः' (८/१७६-१७७) इति वचने कालार्थ एव संयोगः। दर्शसोमयोरिव द्वयोरपि कृतार्थत्वात्। अन्यत्र स्वतन्त्रस्यापि जपस्य पूजायां करणे तदङ्गत्वमेव। वपनादिवदिति तु साम्प्रदायिकाः। अस्मिन्नेवार्थे ज्ञापकमुत्तरपटले स्पष्टीभविष्यति।।१२५।।

एवं सपादशतश्लोकैश्चक्रोद्धारमन्त्रोद्धारान्तमुपदिश्येदानीं प्रथमपटलसमाप्तिपर्यन्तमेकोनाशीत्या श्लोकैश्चक्रपूजामुपदिशति 'एतयैतस्य चक्रस्य' इत्यारभ्य 'क्षमस्वेति विसर्जयेत्' (१/२०४) इत्यन्तेन—

एतया कादिविद्यया हादिविद्यया वा, एतस्य पूर्वोद्धृतस्य चक्रस्य 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः' इति वचनाच्चक्राभिन्नायास्त्रिपुरसुन्दर्या इत्यर्थः। ततश्च महादेव्यर्चन एवास्या विनियोगो नान्य-देवतार्चन इत्यर्थः।।१२५।।

पूजारम्भे आवश्यकाः सम्भाराः

कुङ्कुमारुणदेहस्तु रक्तवस्त्रादिसंयुतः ॥१२६॥
ताम्बूलपूरितमुखो नः नं चे दि त रा द म।
कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गो रक्ताभरणमण्डितः ॥१२७॥
रक्तपुष्पावृतो योगी रक्तगन्धानुलेपनः।
रक्तास्तरोपविष्टस्तु लाक्षारुणगृहे स्थितः ॥१२८॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यस्त्रिपुरीकृतविग्रहः।
मनःसंकल्परक्तो वा साधकः स्थिरमानसः ॥१२९॥

पूजा के आरम्भ में साधक का जो कर्त्तव्य है, उसे कहा गया—साधक की देह कुङ्कुमारुण हो, रक्त वस्त्र से शोभित हो, उसके मुख में ताम्बूल हो। वह धूप की सौरभ से सुगन्धित हो। कर्पूरचूर्ण से अंग लिप्त हों। रक्ताभरणमण्डित हो, रक्तपुष्पावृत हो, योगी हो, रक्तवर्ण के चन्दन (लाल चन्दन) आदि गन्धद्रव्य द्वारा लिप्त हो। लाल वर्ण के आसन पर बैठा हो। आलता के समान लाल गृह में अवस्थित हो। शृङ्गार वेष से सम्पन्न हो, न्यासादि द्वारा देवी-देहभूत हो। उक्त प्रकार के रक्त द्रव्य के अभाव में मानसिक संकल्प द्वारा उक्त प्रकार के रक्तवर्ण से समाविष्ट हो जाय तथा एकाग्रचित्त हो।।१२६-१२९।।

कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गः—कर्पूरचूर्ण द्वारा अनुलिप्त अंग हो जिसका। योगी—शिवानन्द के अनुसार—नित्यसमावेशयुक्त। **रक्तपुष्पावृतः**—इस पद का गूढ़ अर्थ विद्यानन्द के मत से है—स्त्री का जो प्रथम रज हो, कुण्डगोलादि-मिश्रित गोरोचनाभावित, कुङ्कुमादि पङ्कमिश्रित द्रव्य द्वारा सर्वाङ्ग को अनुलिप्त करना होगा। यह गूढ़ विषय गुरु से जानना चाहिये। **सर्वशृङ्गारवेषाढ्यः**—शिवानन्द के अनुसार तिलक, अंजन, कस्तूरी इत्यादि द्वारा उज्ज्वल अवयव। विद्यानन्द के मत से भावरसस्थितिप्रेक्षणादिलक्षण से युक्त जो है, वह शृङ्गार है। वेष का अर्थ है—स्त्रीरूपधारित्व। अतः अर्थ होता है—शृङ्गारसूचक प्रेक्षणादि लक्षणयुक्त स्त्रीरूपसम्पन्न। **त्रिपुरीकृतविग्रहः**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं—न्यासादि द्वारा देवीस्वरूप होना। **मनःसङ्कल्परक्तः**—विवृत रक्तवर्ण द्रव्यों का अभाव होने पर मानसिक संकल्प द्वारा उक्त द्रव्यों की व्यवस्था (मन ही मन)। **स्थिरमानसः**—शिवानन्द का भाष्य है—अचंचल मन होकर। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—एकाग्र चित्त।।१२६-१२९।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

सार्धत्रिभिरर्चकस्य गुणविधिमाह—**कुङ्कुमारुणेति।** अत्र पूजामखे प्रायशः सर्वं वस्तुजातमरुणाधिकरणपूर्वपक्षनिर्णयवदिति पिण्डार्थः। रत्नाभरणं रत्नसंयुक्ताङ्गदादि। योगी नित्यसमावेशयुक्तः। सर्वशृङ्गारवेषाढ्यः तिलकाञ्जनमृगमदात्युज्ज्वलावयवविशेषः। स्थिरमानसः अचञ्चलमनाः। अबहिर्मुख इत्यर्थः। उक्तं च—

चपलः सर्वजन्तूनां द्वेष्यो भवति भारत। इति।।१२६-१२९।।

※ अर्थरत्नावली ※

कुङ्कुमारुणदेहस्त्वित्यारभ्य खेचर्या शक्तिचक्रं तु क्षमस्वेति विसर्जयेदित्यन्तेषु श्लोकेषु विषमपदव्याख्या लिख्यते। कर्पूरक्षोद इति कर्पूरचूर्णम्। रक्तपुष्पावृत इति प्रथमार्तवम्। तद्युक्तं कुण्डगोलोन्मिश्रितं गोरोचनाभावितं कुङ्कुमादिपङ्कमिश्रितम्। (तेन) सर्वाङ्गमनुलिप्येति भावः। **सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्य इति।** शृङ्गारो भावरसस्थितिप्रेक्षणादिलक्षणः। वेषः स्त्रीरूपधारित्वम्। **त्रिपुरीकृतविग्रह इति।** न्यासादिना देवीवपुर्भूत्वेति भावः। स्थिरमानस इति चित्तैकाग्र्यं कृत्वेति।।१२६-१२९।।

※ सेतुबन्धः ※

अथ पूजारम्भ आवश्यकानि साधके कतिचिद्विशेषणानि विधत्ते—वस्त्रादीत्यादिपदेन रक्तकुसुमस्य स्त्रीवेषस्य वा परिग्रहः। यत्तु रक्तपुष्पावृत इत्युत्तरत्र विशेषणं तस्य प्राथ(पाञ्च)मिककुण्डगोलोत्थपरतया साम्प्रदायिकैर्व्याख्यानान्न पौनरुक्त्यम्। अत्र तुरीयचरणेनाऽऽत्मपूजाध्वनिः। स च चरणो व्याकुलाक्षरः। तद्वाचनसंकेतस्तूत्तरतन्त्र उद्घाटयिष्यतेऽस्माभिः। क्षोदश्चूर्णः। त्रिपुरीकृतो न्यासादिना विग्रहो देहो येन सः। ईदृशपदार्थालाभे त्वाह—**मनःसंकल्परक्त इति।** पूर्वोक्तविशेषणानां भावनामात्रं कुर्यादित्यर्थः। ततश्च क्लृप्ताकव्यः(ल्पः) संकल्पाकल्पो वा' इति कल्पसूत्रे वाशब्दो व्यवस्थितविकल्पपरः। **स्थिरमानस इति।** भूयादिति शेषः। पुनः साधकपदं विशेषणविधिषूद्देश्यसमर्पणार्थम्।।१२६-१२९।।

भूप्रदेशे समे शुद्धे गोमयेनोपलेपिते।
पुष्पप्रकरसंकीर्णे धूपामोदसुगन्धिते ॥१३०॥
सिन्दूररजसा देवि कुङ्कुमेनाथवा पुनः।
आलिखेत्प्रथमं चक्रं समरेखं मनोहरम् ॥१३१॥
समत्रिकोणशक्त्यग्रं समास्त्रं चातिसुन्दरम्।

हे देवि! गोमयलिप्त, शुद्ध, पुष्पाञ्जलियुक्त, धूप-गन्ध से सुगन्धित समभूमि पर सिन्दूर अथवा कुंकुम द्वारा प्रथमतः समरेख, समत्रिकोण, शक्त्यग्र, समास्त्र, मनोहर, अतीव सुन्दर चक्र अंकन करना होगा।।१३०-१३१।।

भूप्रदेशे—शिवानन्द अर्थ करते हैं भूस्थल पर। इनके अनुसार प्रदेश शब्द स्थलवाची

है। **समे**—शिवानन्द के अनुसार नीचा-ऊँचा जो न हो। **शुद्धे**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—यजनार्ह जो भूमि हो। भास्करराय का अर्थ है—शुद्ध अर्थात् जो अंगार, तुष, केश, अस्थि तथा कीटादि से रहित हो। **पुष्पप्रकरसङ्कीर्णे**—भास्करराय के मतानुसार पुष्पाञ्जलि (पुष्पप्रकर) से युक्त (संकीर्ण)। अतः पुष्पाञ्जलि से युक्त अर्थात् पुष्पाञ्जलि देनी होगी। **सिन्दूररजसा देवि कुङ्कुमेनाथवा पुनः**—भास्करराय अर्थ करते हैं कि उत्तरतन्त्र में यहाँ गोरोचनादि मिलाने का विधान है। वह न मिले तब सिन्दूर तथा कुङ्कुम द्वारा किया जा सकता है। **प्रथमं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—न्यास से पूर्व। भास्करराय का अर्थ है—पात्रस्थापन के पूर्व। तब भी इन्होंने विकल्प के तौर पर शिवानन्द के अर्थ का भी उल्लेख किया है। **समरेखं**—शिवानन्द के अनुसार चक्ररचनाकारी की अभिलाषा के अनुसार रेखा छोटी या बड़ी हो सकती है; किन्तु समान आकार की हो। **समत्रिकोणशक्त्यग्रं**—भास्करराय के अनुसार यहाँ त्रिकोण का तात्पर्य है—चार वह्नित्रिकोण तथा शक्ति अर्थात् पाँच शक्तित्रिकोण। उनके आगे समरेखा हो। **अतिसुन्दरम्**—भास्करराय का अर्थ है कि सन्धि, मर्म इत्यादि यथोक्त लक्षण-लक्षित।।१३०-१३१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पूजाचक्रविन्यासस्थलस्य गुणविधिमाह—**भूप्रदेश इति**। अत्र प्रदेशशब्दः स्थलवाची। यथाह भगवान् व्यासमुनिः—

प्रदेशेष्वपि राष्ट्राणां कृतं युगमवर्तत। (म० भा० १.१०८.५) इति।

समे निम्नोन्नतविवर्जिते। शुद्धे यजनार्हे। चक्रराजविन्यासद्रव्यमाह—**सिन्दूरेति**। पूजाचक्रविन्यासे गुणविधिमाह—**आलिखेदिति**। प्रथमन्यासक्रियायाः पूर्वमेव समरेखं सर्वत्र तत्तत्प्रमाणान्वितम्। मनोहरं चित्तप्रियम्। समत्रिकोणशक्त्यग्रम्। त्रिकोणानां शक्तीनां चाग्राणि यथा समानि भवन्ति तथेति। समाश्रं यथाश्रयः समा भवन्ति तथेति। अतिसुन्दरम् अतिस्पृहणीयम्। अथवा प्रथमं चक्रं मध्यत्र्यश्रम्। समरेखं कर्त्रभिलाषेण समत्रिरेखम्। समत्रिकोणशक्त्यग्रं शक्तेरग्राणि त्रीणि यथा समत्रिकोणानि स्युः। समाश्रं सर्वानन्दमयस्थानाद् बहिर्यथाश्राः समा भवन्ति।।१३०-१३१।।

* अर्थरत्नावली *

त्रिकोणमिति वह्नीनामभिधानम्।।१३०-१३१।।

* सेतुबन्धः *

समे समीकृते। तत्करणप्रकारस्तु कुण्डोद्योतादिषु द्रष्टव्यः। अत्र सम इति पदेन भूप्रस्तार एवाभिमतो गम्यते। ज्ञानार्णवेऽप्युक्तम्—

भूप्रदेशे समे शुद्धे सिन्दूररजसाऽपि वा।
कुङ्कुमस्य रजोभिर्वा भूमौ चक्रं समालिखेत्।। इति।

अत्रासम इति पदच्छेदमाहुर्नव्याः। तदुत्तरतन्त्रे निरसिष्यते। शुद्धे पिपीलिकाद्यशुचिसञ्चाररहिते।

अङ्गारतुषकेशास्थिकृमिहीना भवेच्छुचिः।
भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणादपि ।।

इत्यादि प्रयोगसारयाज्ञवल्क्याद्युक्तेः। गोमयेन न तु माहिषेण। पुष्पप्रकरः पुष्पाञ्जलिः। तेन सङ्कीर्णे युक्ते। कल्पसूत्रोक्तमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं दत्त्वेति यावत्। उत्तरतन्त्रे गोरोचनादिमेलनं वक्ष्यति। तदलाभे सिन्दूरकुङ्कुमयोर्निरपेक्षकरणत्वम्। प्रथमं पात्रासादनतः पूर्वम्। अत एव वक्ष्यति—'श्रीचक्रस्याऽऽत्मनश्चैव मध्ये त्वर्घ्यं प्रतिष्ठयेत्' (८/१०७) इति। न्यासात्पूर्वमिति वा। कल्पसूत्रानुगुण्यात्। पात्रासादनपूर्वतायाः पाठादेव लाभात्। समान्यृजुब्रह्मसूत्रानतिक्रान्तानि त्रिकोणानां चतुर्वह्नीनां पञ्चशक्तीनां चाग्राणि यस्मिंस्तत्तथा। समान्यन्यूनानधिकानि अस्त्राणि त्रिचत्वारिंशत्संख्यानि यत्र तत्। अतिसुन्दरं सन्धिमर्मलक्षणैर्यथोक्तैर्लक्षितम्।।१३०-१३१।।

सामान्यार्घ्यविधिः

हेमादिपात्रे साधारे स्थापयेदर्घ्यमम्बुना ।।१३२।।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघुकस्तूरिकायुतम् ।
भावयेद्वह्निसूर्येन्दुभूतानि परमेश्वरि ।।१३३।।
जपेच्च दशवारं तत्तर्पयेत्तेन योगिनीः ।

आधार के ऊपर स्थापित स्वर्ण आदि के पात्र में जल भरकर अर्घ्य-स्थापन करना होगा और इस अर्घ्य में गोरोचन, कर्पूर, केसर, अगरु तथा कस्तूरी डालना होगा। हे परमेश्वरि! वह्नि, सूर्य तथा इन्द्र से उद्भूत की आधारादि में भावना करनी होगी। तदनन्तर जलस्पर्श करके मूल विद्या का दश बार जप करना होगा तथा इस सामान्यार्घ्य जल (उक्त पात्र) से योगिनीगण का तर्पण करना होगा।।१३२-१३३।।

हेमादिपात्रे—भास्करराय कुलार्णव तन्त्र का प्रमाण उद्धृत करके यह प्रदर्शित करते हैं कि हेमादि पात्र का तात्पर्य है—रौप्य; शिला इत्यादि से निर्मित पात्र भी प्रयुक्त हो सकता है। **आधारे**—सुवर्णादि-निर्मित आधार के ऊपर पात्र-स्थापन विहित है। **अम्बुना**—भास्करराय का तात्पर्य है कि मद्य नहीं है अर्थात् यहाँ मद्य के लिये अम्बुना प्रयुक्त नहीं है। **रोचना**—गोरोचन। **चन्द्रः**—कर्पूर। **काश्मीर**—केसर। **लघुः**—अगुरु। **रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघुकस्तूरिकारयुतम्**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है कि उक्त पाँच गन्धद्रव्य को घिसकर अर्घ्यजल में मिलाये। **वह्निसूर्येन्दुभूतानि**—भास्करराय इसकी व्याख्या करते हैं कि आधार में वह्नि से उत्पन्न धूम्रार्चि आदि दश वह्निकला की भावना करे। सूर्य से उत्पन्न तपिनी आदि १२ सौर कला की भावना पात्र में करे और इन्दु से उत्पन्न अमृता आदि १६ चन्द्रकला की भावना जल में करे। **तत्**—मूलविद्या। **तेन**—

उसके द्वारा—सामान्यार्घ्य जल द्वारा। **योगिनी**—भास्करराय अर्थ करते हैं—त्रिपुरसुन्दरी के षडङ्ग देवता। उन्होंने 'योगिनी' शब्द का डाकिनी आदि धातुदेवता अर्थ भी लिया है।।१३२-१३३।।

* सेतुबन्धः *

सामान्यार्घ्यं विदधाति—**हेमादीति**। आदिना रूप्यादिपरिग्रहः। तानि च कुलार्णवे—

स्वर्णरूप्यशिलाकूर्मकपालालाबुमृण्मयम् ।
नारिकेलं शङ्खमुक्ताशुक्तिकाचसमुद्भवम्।।
पुण्यवृक्षकृतं रम्यं पात्रं कुर्याद्विचक्षणः।
अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं भिन्नं छिद्रं विवर्जयेत्।।
ताम्रकांस्यादिभिर्लोहैः पात्रं नैव तु कारयेत्।। इति।

अत्र कपालं महाशङ्खम्। 'महाशङ्खं विशेषेण भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्' इति संहितैकवाक्यत्वात्। मुक्ताशुक्तिशब्देन मुक्ताफलाजनकशुक्तिव्यावृत्तिः। पुण्यवृक्षपदेनाश्वत्थपलाशादिकतिपयवृक्षेतरेषां स्नुहीविभीतकादीनां व्यावृत्तिः। अतिसूक्ष्मपदेन चतुरङ्गुलोत्सेधात्तावद्विस्ताराच्च न्यूनमुच्यते। 'वस्वङ्गुलविहीनं तु न पात्रं कारयेद् बुधः' इति तन्त्रान्तरे निषेधदर्शनात्। उत्सेधविस्तारौ चतुश्चतुरङ्गुलावेवं वस्वङ्गुलतेति साम्प्रदायिकैस्तद्व्याख्यानात्। चक्रे तर्पणपूजनार्थं हस्तव्यापारो यावता प्रतिबध्यते तदतिस्थूलम्। तदाकारस्तु विशेषार्घ्यातिरिक्त ऐच्छिकः। विशेषे तु भगाकारतेति भूतभैरवतन्त्रे दृश्यते। यद्यपि—

सुवर्णरौप्यपात्राणि सर्वसिद्धिकराणि च।
शान्तिके च शिलापात्रं स्तम्भने चैव मृण्मयम्।।
नारिकेलं तु वश्यादावभिचारे तु कूर्मजम्।
शङ्खं ज्ञानप्रदं मुक्ताशुक्तिर्विद्याप्रदायिनी।।
कपालालाबुपात्राणि योगसिद्धिकराणि च।
पुण्यवृक्षजपात्राणि सर्वपापहराणि च।।

इतिवचनैर्द्वादशविधानामपि पात्राणां काम्यत्वं प्रतीयते, तथाऽपि खादिरवदुभयार्थत्वं संयोगपृथक्त्वाविशेषाद्वक्तव्यम्। तथा च स्मर्यते—'उक्तेष्वेतेषु देवेशि पात्रमेकं प्रकल्पयेत्' इति। साधारे,

आधारं त्रिपदं प्राहुः षट्पदं वा चतुष्पदम्।
अथवा वर्तुलाकारं कुर्याद्देवि मनोहरम्।।

इत्युक्तलक्षणलक्षिताधारसहिते। अत्र त्रिपदादिपक्षत्रये क्रमेण त्रिषट्चतुष्कोणताऽऽवश्यकी। वर्तुलपक्षे पादाभाव इति सम्प्रदायः। वर्तुलपक्षेऽपि त्रिचतुःषट्पदानां विकल्प इत्यप्याहुः। तच्चाऽऽधारं सुवर्णरूप्यताम्रादिमयमिति ज्ञानार्णवे। तत्प्रमाणं तु यावद्विशेषदर्शनमैच्छिकमेव। पात्र-

प्रमाणमेव तत्प्रमाणमित्यपि केचित्। अम्बुना न तु कारणेन। तस्यैव निरपेक्षकरणताप्रतीतेः। यत्त्वादिमबिन्दुमिश्रणं तन्त्रान्तरे स्मर्यते तत्संस्कारमात्रं मैत्रावरुणं पयसा श्रीणातीत्यादिवत्। अतो न नैरपेक्ष्यभङ्गः। एतेन—'शङ्खं तत्र तु संस्थाप्य जलपूर्णं सहेतुकम्' इति संहितावचनं व्याख्यातम्। रोचना गोरोचनम्। चन्द्रः कर्पूरम्। काश्मीरं केसरम्। लघुरगुरुः। रोचनादिपञ्चकं घृष्ट्वा जले मिश्रयेदित्यर्थः। वह्निसूर्येन्दुभ्यो भूतानि तदुत्थान्किरणानिति यावत्। धूम्रार्चिराद्या दश वह्निकला आधारे, तपिन्याद्या द्वादश सूर्यकलाः पात्रे, अमृताद्याः षोडश चन्द्रकला अम्बुनि विभावयेदित्यर्थः। मनोरमायां तु आधारपात्रजलानि वह्निसूर्यसोमत्वेन, रोचनादिपञ्चकं पृथिव्यादिपञ्चभूतात्मकत्वेन भावयेदिति व्याख्यातम्। रोचनादिपीतवर्णाद्यानुगुण्यादिदमेव युक्तम्। तदित्यव्ययं मूलविद्यां परामृशति। जलं स्पृष्ट्वा तां दशवारं जपेदित्यर्थः। विद्यातृतीयखण्डमात्रपरं तत्पदमिति तु मनोरमायाम्। योगिनीः, त्रिपुरसुन्दर्याः षडङ्गदेवताः। तेन सामान्यार्घ्यजलेन तस्मिन्नेव तर्पयेदिति तु तत्संस्कारः।

शुद्धोदकेन संपूर्य पूजयेत्कारणान्वितम्।
षडङ्गं पूजयेत्तत्र सामान्यार्घ्यमिदं प्रिये।।

इति ज्ञानार्णवात्। योगिनीपदं डाकिन्यादिधातुदेवतापरं वा। उत्तरतन्त्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात्। देवीपरिवारभूतनिखिलशक्तिपरमिति तु मनोरमायाम्। एवं सामान्यार्घ्ये सिद्धे तद्विनियोगोऽष्टमे पटले (श्लो. १०३) 'सामान्यार्घ्येण देवेशि मार्त(र्ता)ण्डं परिपूजयेत्' इत्यादिर्वक्ष्यते। यत्तु तत्रैव (श्लो. १०७) 'श्रीचक्रस्याऽऽत्मनश्चैव मध्ये त्वर्घ्यं प्रतिष्ठयेत्' इत्यादिनाऽर्घ्यसाधनमुच्यते तद्विशेषार्घ्यस्य, तस्य द्रव्यैककरणकत्वात्। अत एव तत्र (श्लो, ११०) 'विधृते तु पुनर्द्रव्ये षोडशेन्दुकला यजेत्' इति द्रव्यधारणस्य सिद्धवत्कृत्यानुवादः संगच्छते। यदपि तदन्ते वचम् (श्लो. ११२) 'तथैवार्घ्यं विशेषेण साधयेत्साधकोत्तमः' इति तदात्मपात्रगुरुपात्रान्यतरविधानपरम्। यथैव सामान्यार्घ्यं तथैवेदं साधयेत्। विशेषेणेति तु विशेष इति तदर्थात्। अत एव तदुत्तरमेव (श्लो. ११३) 'गुरुपादालिमापूज्य' इत्यादिनाऽऽत्मपूजाविधानं संगच्छते। अत एव च ज्ञानार्णवे—'आत्मानं तु समभ्यर्च्य भूतान्संत्रासयेत्ततः' इति वचनेनाऽऽत्मपूजाविधानादेवाऽऽत्मपात्रासादनस्याऽऽक्षेपः। अन्यथा विशेषार्घ्यान्व्येणैवाऽऽत्मपूजने प्रधानदेव्यै निवेदनात्पूर्वमुच्छिष्टकरणदोषापत्तेरित्याहुः शंकरानन्दनाथादयः। एतेन यद् अमृतानन्दैर्व्याख्यातं 'श्रीचक्रस्याऽऽत्मनश्चैव' इत्यादिना सामान्यार्घ्यस्यैव विधिः, 'विधृते तु पुनर्द्रव्ये' इत्यारभ्य 'तथैवार्घ्यं विशेषेण' इत्यभिव्याप्य विशेषार्घ्यस्य विधिरिति तदनादेयम्। सामान्यार्घ्येतिकर्तव्यतायां सूर्यकलापूजोत्तरांशस्य लोपापत्त्या परमुखनिरीक्षणापत्तेः। अर्घ्यद्वयमध्ये पूर्वस्य पूर्वांशमात्रमुत्तरस्योत्तरांशमात्रं द्वयमपि मिलित्वा पूर्णेतिकर्तव्यता कीर्तितेति वर्णनस्य ग्रन्थसन्दर्भविरुद्धत्वाच्च। पूर्वोत्तरचतुःशत्योरैकतन्त्र्यस्य भवतामपि सम्मतत्वेनैकस्मिंस्तन्त्रे द्विःसामान्यार्घ्यविधानस्य वैयर्थ्यापत्तेश्चेति न किञ्चिदेतत्। एवं प्रकृतचतुःशत्यामम्बुपदस्योत्तरचतुःशत्यां द्रव्यपदस्य च स्वारस्यमवलम्ब्यायं ग्रन्थो योजितः। यदि पुनरित्थमालोच्यते संहितार्णवकल्पसूत्रादिषु

सामान्यार्घ्ये शङ्खस्यैव विधानाद्धेमादिविकल्पस्य विशेषार्घ्यादावेव विधानदर्शनात्प्रकृतश्लोकेऽपि तर्पयेत्तेन योगिनीरित्यनेन परदेवतादितर्पणकरणत्वप्रतीतेश्च लिङ्गादयं ग्रन्थोऽपि विशेषार्घ्यपर एवेति तदाऽम्बुनेति सहार्थे तृतीया। आष्टमिकग्रन्थे द्रव्येण विशेषार्घ्यविधि: प्रकृतग्रन्थे तत्रैव जलमिश्रणविधिरिति विवेक:। तत्परिमाणं तु दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—'भागत्रयं विशेषस्य भागमात्रं जलं क्षिपेत्' इति। सामान्यार्घ्यस्थापनं तु मार्त(र्ता)ण्डपूजायां तस्य करणत्वेन विधानादेवाऽऽक्षिप्यत इति द्रष्टव्यम्। अम्बुन एव करणत्वमिति तु मनोरमाशय:। 'मुख्यालाभे प्रतिनिधिविधिरेष' इति तु ललितार्चनचन्द्रिकाकार:।।१३२-१३३।।

ध्यात्वा पुरत्रयं देवि बीजत्रयसमन्वितम् ।।१३४।।
सर्वाद्यविद्यया देवि करशुद्धिं तु कारयेत्।

हे देवि! बीजत्रय-समन्वित पुरत्रय का ध्यान करे तथा सर्वादि विद्या द्वारा करशुद्धि करे।।१३४।।

पुरत्रय—भास्करराय अर्थ करते हैं—सूर्य-सोम-अनलरूप श्रीचक्र। **बीजत्रयसमन्वितम्**—विद्यानन्द के अनुसार वाग्भव, कामराज तथा शक्ति नामक बीजत्रय से युक्त। तात्पर्य है—एक-एक चक्र को एक-एक बीज से युक्त करे। **सर्वाद्यविद्यया**—भास्करराय कहते हैं कि यहाँ सर्वाद्यविद्या का तात्पर्य है—पूर्वोक्त अष्टविद्या में से प्रथमा करशुद्धिकरी विद्या। उसके द्वारा करशुद्धिकरी विद्या है—अं आं सौ: (श्लोक १०५-१०६ देखें)। **करशुद्धिं**—श्रीविद्या में करशुद्धि को मध्यमा से प्रारम्भ करते हैं। जैसे—अं मध्यमाभ्यां नम:। आं अनामिकाभ्यां नम:। सौ: कनिष्ठिकाभ्यां नम:। अं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। आं तर्जनीभ्यां नम:। सौ: करतलकरपृष्ठाभ्यां नम:। (देखें—बृहत् तन्त्रसारवसुमती टीका)।।१३४।।

❈ ऋजुविमर्शिनी ❈

ध्यात्वेत्यादिभिश्चतुर्भिर्बीजत्रयान्वितसोमादित्र्यात्मकचक्रध्यानपूर्वकन्यासविधानमाह। ध्यात्वेत्यनेन प्रायत्यार्थं प्राणनिग्रहोऽपि विवक्षित:। तदुक्तं मानवे शास्त्रे—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला:।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषा: प्राणस्य निग्रहात्।। इति। (६.७१)

पुरत्रयम्। चक्रात्मकमिति शेष:। सर्वाद्यविद्यया 'वाग्भवं प्रथमम्' (१.९९) इति सूत्रोक्तया। अनया 'न्यस्याङ्गान्यपि चाङ्गुलीषु करयो: स्थित्या' (त्रि० सा० २.३) इति भट्टनागोक्तनीत्या मध्यमादितालान्तिमं करशुद्धिरुक्ता।।१३४।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

ध्यात्वा पुरत्रयं देवि बीजत्रयसमन्वितमिति। देवीचक्रं पुरत्रयं सोमसूर्याग्न्यात्मकं कृत्वा बीजत्रयसमन्वितं वाग्भवकामराजशक्तिबीजाख्यं बीजत्रयम्, प्रतिचक्रमेकैकसमन्वितं यथा भवति तथा ध्यात्वेति भाव:। सर्वाद्यविद्ययेति करशुद्धिविद्ययेति भाव:।

* सेतुबन्धः *

पुरत्रयं सूर्यसोमानलत्रयरूपं श्रीचक्रं विद्याबीजत्रययुक्तं ध्यायेदित्यर्थ इति । पुरत्रयमित्यस्य त्रिपुरमित्यर्थो बीजत्रयेत्यस्य करशुद्धिन्यासेऽन्वयोऽपि सुवचः। वस्तुतस्तु तन्त्रराजे पूर्वोक्तश्लोक-द्वयोत्तरमेतदर्धसमानार्थकः श्लोकः पठ्यते—

आधारे हृदये रन्ध्रे विद्याखण्डत्रयं स्मरेत्।
लोहितं तत्प्रभावेधाल्लोहितं च निजं वपुः।। इति।

तस्यार्थो मनोरमायाम् उक्तः—आधारस्थप्रथमकूटवह्नितेजसा खचितं हृदयगतं तद्द्वितीयकूटसूर्यतेजःप्रसरं तेनानुषक्तं ब्रह्मरन्ध्रगततृतीयखण्डचन्द्रतेजःप्रसरं चेत्यविभक्ताकारमिलितरूपमन्तर्बहिश्च तेजस्त्रयं प्राणायामं कुर्वन्भावयेदिति। आद्यविद्याशब्देन पूर्वं बालाविद्याया एव परामर्शः कृतः सोऽत्र मा प्रसाङ्क्षीत्यत आह—**सर्वाद्येति**। सर्वासु पूर्वोक्तास्वष्टविधविद्यास्वादिभूतया करशुद्धिकर्याख्यया विद्यया करशुद्धिं कारयेत्कुर्यात्। एतया निषादस्थपतिं याजयेदित्यत्रेवाऽऽचार्याभिप्रायेण णिजन्तकीर्तनम्। तत्प्रकारश्च कल्पसूत्रे—'श्रीकण्ठानन्ततार्तीयैर्मध्यमादितलपर्यन्तं कृतकरशुद्धिः' इत्युक्तः। बीजत्रयं दण्डकलितन्यायेन द्विरावर्त्य 'मध्यमाभ्यां नमः' इत्यादि जातित्रयोत्तरमङ्गुष्ठादिद्वयं पठित्वा ततः 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' इति क्रमेण पल्लवषट्कं बीजषट्कान्ते संयोज्य करशुद्धिं कुर्यादित्यर्थः। सोऽयं करशुद्धिन्यास इत्युच्यते। यत्तु पद्धतिकारैः शिखाद्यस्त्रान्तमप्येतैरेव बीजैर्न्यासो लिख्यते तत्र मूलं त एव जानते। करशुद्ध्यादिन्यासानां क्रमः कालश्च उत्तरतन्त्रे वक्ष्यते।।१३४।।

तत आत्मासनं दद्याच्चक्रासनमथेश्वरि ।।१३५।।
सर्वमन्त्रासनं देवि साध्यसिद्धासनं तथा ।

हे ईश्वरि, हे देवि! तदनन्तर आत्मासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्यसिद्धासन प्रदान करे।।१३५।।

आत्मासन—पूर्व विवृत्त श्लोक १११ में आत्मासन विद्या अंकित है। भास्करराय ने परशुराम कल्पसूत्रोक्त इस आत्मासन-प्रदानमन्त्र का उद्धार किया है—ह्रीं क्लीं सौः देव्यात्मासनाय नमः। **चक्रासनं**—श्लोक ११२ में चक्रासन विद्या उक्त है। भास्करराय ने इसका मन्त्रोद्धार किया है—हैं ह्क्लीः ह्सौः श्रीचक्रासनाय नमः। **सर्वमन्त्रासनं**—पूर्व विवृत्त श्लोक ११३ में सर्वासन विद्या वर्णित है। 'ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः' यह भास्कर राय ने सर्वासन-मन्त्रोद्धार किया है। **साध्यसिद्धासनं**—श्लोकसंख्या ११४-११५ में यह विद्या व्यक्त है। भास्करराय ने साध्यसिद्धासन प्रदान का यह मन्त्रोद्धार किया है—ह्रीं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः। टीकाकारों के मत से आत्मासनादि प्रदान करने का अर्थ है—श्रीचक्र में उक्त आसन चतुष्टय का न्यास अथवा भावना करना।।१३५।।

* सेतुबन्धः *

आत्मासनादिपदानि तृतीयादिषष्ठान्तविद्यानां नामधेयानि। तासां विनियोगस्तु द्वेधोपलक्ष्यते।

तत्र कल्पसूत्रे तावदुक्तम्—'मायाकामशक्तीरुच्चार्य देव्यात्मासनाय नम इति स्वस्याऽऽसनं दत्त्वा शिवयुग्बालामुच्चार्य श्रीचक्रासनाय नमः, शिवभृगुयुग्बालामुच्चार्य सर्वमन्त्रासनाय नमः, भुवनामदनौ क्ले(ब्ले)मुच्चार्य साध्यसिद्धासनाय नम इति चक्रमन्त्रदेवतासनं त्रिभिर्मन्त्रैश्चक्रे कृत्वा' इति। संहितायां तु—

करशुद्धिविधिं कृत्वा चतुरासनदेवताः।
पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोर्मूलाधारे च विन्यसेत्।।

इत्युक्तम्। ज्ञानार्णवे चानयोः प्रकारयोः समुच्चयो दृश्यते। मूले त्वात्मासनस्य ददातिना विधानादवशिष्टासनत्रयस्य च 'ततो रक्षां प्रकुर्वीत, इत्युत्तरश्लोकस्थकरोतिना विधानेन च कल्पसूत्रैकवाक्यतायामेव स्वारसिकं तात्पर्यमुन्नीयते।।१३५।।

ततो रक्षां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तकुलविद्यया ।।१३६।।
षडङ्गन्यासयोगेन नमस्कारादियुक्तया ।

तदनन्तर पूर्वोक्त कुलविद्या द्वारा नमः आदि से युक्त षडङ्ग न्यास द्वारा आत्मरक्षा करे।।१३६।।

पूर्वोक्तकुलविद्यया—पूर्वोक्त कुलविद्या से। पूर्वकथित श्लोक १०७-११० में कुलविद्या व्यक्त है। विद्या है—'ऐं क्लीं सौः'। **षडङ्गन्यासयोगेन**—भास्करराय की व्याख्या है कि हृदय-शिरः-शिखा-कवच-नेत्रद्वय तथा अस्त्र—यह षडङ्ग है। इसे न्यासयोगेन अर्थात् न्यासदशा में इनके इस रूप योग द्वारा। तात्पर्य है कि चतुर्थी विभक्तियुक्त हृदयादि पद को बीज के पश्चात् योग करे। **नमस्कारादियुक्ता**—नमः आदि से युक्त करे। नमः आदि अर्थात् नमः-स्वाहा-वषट्-हूं-वौषट् तथा फट् से युक्त जो है, उसके द्वारा। षडङ्गन्यास द्वारा आत्मरक्षा की इस प्रक्रिया का निर्देश दिया है भास्करराय ने—ऐं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, सौः शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुं, क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः अस्त्राय फट्। इस प्रकार मन्त्र में यथानिर्दिष्ट मुद्रा प्रदर्शन करके हृदयादि न्यास करे।।१३६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

ततो रक्षामिति। तत आसनचतुष्टयकल्पनानन्तरम्। रक्षां देहरक्षाम्। पूर्वोक्तकुलविद्यया 'ए-ओमध्यगतम्' (१.१००) इति सूत्रोक्तया। षडङ्गन्यासयोगेन हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रास्त्रयोगेन। नमस्कारादियुक्तया नति-हुति-वषड्-हुं-वौषट्-फट्पदयुक्तया। तदुक्तमभियुक्तैः—

हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सहचतुर्थीषु।
नत्या हुत्या च वषड्-हुं-वौषट्-फट्पदैः षडङ्गविधिः।। इति।
(प्र० सा० ६.६)

किञ्च, अर्थतः सर्वज्ञतादीनि षडङ्गानि। तदुक्तम्—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।। इति।
(वा० पु० १२.३३)

* अर्थरत्नावली *

नमस्कारादियुक्तयेति। प्रत्यङ्गमन्त्रं देवतानामसम्बोधनान्ते नमस्कारपदं प्रयोजनीयमिति भावः।।१३६।।

* सेतुबन्धः *

ततश्चतुरासनन्यासानन्तरं पूर्वोक्तया कुलविद्यया बालाविद्यया त्र्यक्षर्या षडङ्गानां हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रत्रयास्त्राणां न्यासयोगेन न्यासदशायां यादृशो योगस्तेन चतुर्थ्यन्तहृदयादिपदानि बीजन्ते प्रयुज्येति यावत्। तदन्ते नमस्कारः। नमःशब्द आदिर्येषां तैर्नमःस्वाहावषट्हुंवौषट्शब्दैर्जातिपदवाच्यत्वेन प्रसिद्धैर्युक्तया तया रक्षां कुर्वीतेत्यर्थः। षडङ्गयोगेनैव बीजत्रयस्य द्विरावृत्तिराक्षिप्यते। ततश्च—'ऐं हृदयाय नमः। क्लीं शिरसे स्वाहा। सौः शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुम्। क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। सौः अस्त्राय फट् इति षड्भिर्मन्त्रैर्हृदयादिषु तत्तन्मुद्रया न्यसेदिति फलितार्थः। तथा च चतुरासनन्यासान्ते कल्पसूत्रम्—'बालाद्विरावृत्त्या त्रिद्व्येकदशत्रिद्विसंख्याङ्गुलिविन्यासैः क्लृप्तषडङ्गः' इति। दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि—

कनिष्ठाङ्गुष्ठरहितैस्त्रिभिस्तु हृदि विन्यसेत्।
मध्यमानामिकाभ्यां तु न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित्।।
शिखाऽङ्गुष्ठेन विन्यस्या दशभिः कवचं न्यसेत्।
हृदुक्तैर्नेत्रविन्यासं विन्यसेत् परमेश्वरि।।
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु ततोऽस्त्रं विन्यसेत्प्रिये।
आत्मरक्षाकरीं विद्यां द्विरुच्चार्य न्यसेद्बुधः।। इति। ए

एतेन—'कुमार्या त्रिपुरेशान्या षडङ्गानि च पूर्ववत्' इति ज्ञानार्णवे पूर्वपदेन यद्यपि करन्यासो हृदयादिन्यासश्चेति द्विविधोऽपि षडङ्गन्यासः परामृष्टुं शक्यते। बालाप्रकरणे द्विविधस्याप्याम्नानात्। पञ्चकामन्यासान्ते—

एतान्विन्यस्य देवेशि करन्यासमतः परम्।
मूलविद्याद्विरावृत्त्या सर्वाङ्गुलितलेषु च।।

षडङ्गक्रमयोगेणेत्युक्तेः। तथा नवयोनिन्यासान्तेऽपि—

षडङ्गमाचरेद्देवि द्विरावृत्त्या क्रमेण च।
त्रिद्व्येकदशकत्रिद्विसंख्यया शैलसम्भवे।।

अङ्गुलीनामित्युक्तेश्च। तथाऽपि तन्त्रान्तरसंवादाय हृदयादिषडङ्गान्येव परामृश्यन्ते। अत एव प्रकृततन्त्रेऽपि षडङ्गपदं हृदयादिपरमेव। नमस्कारादीत्यादिपदस्वारस्याच्च। केचित् तु नम-

स्कारनियुक्तयेति मूलं पठन्तः प्रत्यङ्गमन्त्रं देवतानामसम्बोधनान्ते नमःपदं प्रयोज्यमिति व्याचक्षते। अन्ये तु—नमस्कारादीत्येव पठन्तोऽपि—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।।

इति वचनात् 'सर्वज्ञताशक्तिधाम्ने' इत्यादिपदान्यपि योजनीयानीत्याहुः। परे तु—बालां सम्पूर्णामुक्त्वा 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि मां रक्ष रक्ष' इत्येकमेव मन्त्रं जातियुक्तं हृदयादिषु योजयन्ति। तदेतत्त्रयमपि तन्त्रान्तरसंवाद एव विश्वसितुं योग्यम्। अन्यथा परस्परवैमत्यादेव पराहतं वेदितव्यम्। यत्तु करशुद्धिन्यासान्ते कल्पसूत्रम्—'कुमारीमुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरिपदमात्मानं रक्ष रक्षेति हृदयेऽञ्जलिं कृ(द)त्वा' इति, न तत्र षडङ्गचर्चाऽपीति पूर्वोक्त एवेह न्यासो विवक्षित इति। अत्र नव्याः ज्ञानार्णवतन्त्रे हि बालायामेव निखिलाङ्गोपदेशात्सैव प्रकृतिः। तदनन्तराम्नातास्त्रिपुरभैरव्यादिश्रीविद्यान्तास्तद्विकृतयः। ततश्च चोदकेन प्रातःकृत्यादिनिखिलाङ्गवत्षडङ्गन्यासस्यापि तत एव प्राप्तिः। प्रकृतौ च बालाबीजानां द्विरावृत्तावपि विकृतावूहप्रापकन्यायैः कूटद्विरावृत्तिरेव न्याय्या। यत्तु प्राञ्चः—न्यायेन प्राप्तस्योहस्य बाधनार्थं कुमार्या त्रिपुरेशान्या षडङ्गानि च पूर्ववदिति वचनं मन्यन्ते, तन्न। प्रकृतितः प्राकृतन्यासकाण्डमध्यस्थत्वेन षडङ्गन्यासप्राप्तावपि प्राकृतन्यासोत्तरभाविवैकृतन्यासान्तर्गतचतुरासनन्यासोत्तरं तत्प्राप्तौ प्रमाणाभावेन तन्मात्रपरत्वेन वचनोपपत्तावूहबाधनेऽपि तस्य व्यापार इति कल्पनायोगादिति वदन्ति। तदसत्। षडङ्गानि च पूर्ववदित्यंशेनापि भवदभीष्टसिद्धौ कुमार्या त्रिपुरेशान्या, इत्यंशस्योहबाधकत्वमन्तरेण सार्थक्यायोग इत्येव प्राचामाशयात्। संहितासूत्रादिविरोधस्य स्पष्टत्वाच्च।।१३६।।

शिरोललाटभ्रूमध्यकण्ठहृन्नाभिगोचरे ।।१३७।।
आधारे व्यूहकं यावन्न्यासमष्टभिराचरेत्।

वशिनी आदि के अष्ट बीजमन्त्रों से शिर-ललाट-भ्रूमध्य-कण्ठ-हृदय-नाभि-गोचर एवं मूलाधार से पादाग्रपर्यन्त अथवा पदतल तक या पदद्वय के गुल्फ-पर्यन्त न्यास करे।।१३७।।

गोचरे—स्वाधिष्ठान में। **आधारे**—मूलाधार में। **व्यूहकं यावत्**—भास्करराय के अनुसार इसका सम्प्रदाय के आधार पर अर्थ है—मूलाधार से पादाग्र-पर्यन्त। शिवानन्द अर्थ करते हैं—पदतल-पर्यन्त। **अष्टाभिः**—वशिन्यादि आठ द्वारा। यथा—वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, सर्वेश्वरी तथा कौलिनी। सबका बीज इस प्रकार है—वशिनी—ब् लूं। कामेश्वरी—क् ल् ह्रीं। मोदिनी—न् व् लीं। विमला—य् लूं। अरुणा—न् व् लीं। जायिनी—ह् स् ल व् यूं। सर्वेश्वरी—झ् म् र् यूं। कौलिनी—क्ष् म्रीं।।१३७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शिरोललाटेति। गोचरे स्वाधिष्ठाने। आधारे मूलाधारे। व्यूहकं यावद् यावद् व्यूहकम्,

पादतलावधीत्यर्थः। अष्टभिः वशिन्यादिभिः। एतेषां करशुद्ध्यादिन्यासप्रकारः सुभगोदये द्रष्टव्यः।।१३७।।

⁂ अर्थरत्नावली ⁂

व्यूहकमिति। पादद्वयगुल्फनाम।।१३७।।

⁂ सेतुबन्धः ⁂

वशिन्यादिन्यासमाह। अत्र गोचरशब्देन स्वाधिष्ठानं चक्रमुच्यते। प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः। आधारे मूलाधारे। व्यूहकं यावदित्यस्याऽऽधारात्पादाग्रान्तमित्यर्थमाहुः साम्प्रदायिकाः। अष्टभिर्वशिन्यादिवाग्देवतामन्त्रैरिति यावत्। सूत्रे रक्षाषडङ्गन्यासोत्तरं वशिन्याद्यष्टन्यासस्यैव विधानाच्छीर्षादिस्थानैक्यदर्शनाच्च प्रकृतश्लोकेऽपि स एवेति निश्चीयते। उत्तरतन्त्रे तु द्विवारं करशुद्ध्यादिन्यासचतुष्टयं कर्तव्यत्वेन विधाय द्वितीयवारकरणदशायां रक्षाषडङ्गवाग्देवतान्यासयोर्मध्ये श्रीकण्ठादिन्यास आम्नायत इति विशेषः। नव्यास्तु—गोचरपदस्य लिङ्गार्थकत्वं प्राचीनैरुक्तं प्रमाणाभावपराहतमभिप्रेत्य मूलाधारे सप्तमीं वाग्देवतामष्टमीं तु पादमूलादिपादाग्रान्तं न्यसेदित्याहुः। तन्न। गोचरशब्दस्य जलसञ्चारस्थानपरत्वेनोपस्थपरत्वसम्भवात्। मणिपूरोत्तरमुपस्थितस्य स्वाधिष्ठानस्य त्यागायोगाच्च। संहितार्णववामकेश्वरतन्त्रादिष्वैककण्ठ्येन पठितस्य गोचरपदस्य कल्पसूत्रोपबृंहणवशेन लिङ्गपरतया सार्थक्ये सम्भवति वैयर्थ्यायोगाच्च। तथा च सूत्रम्—'यादिचतुष्कं झ्म्र् युमुच्चार्य सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम इति लिङ्गे' इति। व्यूहकं यावदिति तु न स्थानान्तरपरम्, अपि तु शिरोललाटाद्युक्तस्थानसमूहपरमेव। शीर्षादिललाटान्तं ललाटादिभ्रूमध्यान्तं भ्रूमध्यादिकण्ठान्तमित्यादिरीत्याऽऽधारादिप्रपदान्तमित्येवमुत्तरोत्तराङ्गावधिकत्वबोधनार्थमित्यपि सुव्याख्यम्। सूत्रे त्वेतन्न दृश्यते। अयं च न्यासो वशिन्यादीनां मानसपूजां कृत्वा कार्य इति नव्याः। ज्ञानार्णवे न्यासप्रकरणे वशिन्यादिमन्त्रोद्धारश्लोकेषु—वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देवि सुव्रते' इत्यादेः स्मरणादिति तदाकूतम्। तदसत्। तेषां वचनानां मन्त्रोद्धार एव तात्पर्येण पूजाविधावपि तात्पर्यकल्पने वाक्यभेदात्। मन्त्राणां पूजाकरणत्वस्य सप्तमावरणार्चनविधावुक्तस्यानुवादमात्रत्वेन पूजयेदित्यादेरुपपत्तेः।

टवर्गान्ते वायुबीजं भूमिसंस्थं महेश्वरि।
वामकर्णेन्दुबिन्द्वाढ्यं विमला वागधीश्वरी।।

इति विमलामन्त्रोद्धारश्लोके पूजानाम्नानेन तत्पूजानापत्तेश्च। तन्त्रान्तरे क्वापि न्यासदशायां तत्पूजानुक्तेश्च। पूजाया मानसत्वांशे साधकानुपन्यासाच्चेति न किञ्चिदेतत्।।१३७।।

त्रिपुरसुन्दर्याः सगुणध्यानम्

ततः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ।।१३८।।
जपाकुसुमसंकाशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ।।१३९।।

स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।
कालालिकुलसंकाशकुरलालकसंकुलाम् ॥१४०॥
प्रत्यग्रारुणसंकाशवदनाम्भोजमण्डलाम् ।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ॥१४१॥
पिनाकधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम् ।
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ॥१४२॥
स्फुरन्मयूखसंघातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ॥१४३॥
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रविस्पष्टनासिकाम् ।
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ॥१४४॥
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।
दाडिमीबीजवज्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥१४५॥
रत्नबीजजगद्भासिजिह्वामलसभाषिणीम् ।
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् । ।१४६॥
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालललितैर्भुजैः ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ॥१४७॥
कराम्बुजनखज्योत्स्नावितानितनभस्थलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ॥१४८॥
त्रिवलीवलसंयुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ।
लावण्यसरिदावर्ताकारनाभिविभूषिताम् ॥१४९॥
अनर्घ्यरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ॥१५०॥
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ।
माणिक्यमुकुटाकारजानुद्वयविराजिताम् ॥१५१॥
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ।
मूढगुल्फपदद्वन्द्वां प्रपदाजितकच्छपाम् ॥१५२॥
तनुदीर्घाङ्गुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतांशुशतसंकाशःकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥१५३॥
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥१५४॥
रक्तपुष्पनिविष्टां तां रक्ताभरणभूषिताम् ।

चतुर्भुजां त्रिनयनां पञ्चबाणधनुर्धराम् ।।१५५।।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलापूरिताननाम् ।
करण्डवाहिनेन्द्रेण दत्तताम्बूलपत्रिकाम् ।।१५६।।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।१५७।।
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ।।१५८।।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।।१५९।।
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम् ।

तदनन्तर देवी का ध्यान करना होगा। देवी बालार्क-किरणा, जवाकुसुमसंकाशा, दाड़िमीकुसुमोपमा, पद्मरागप्रतीकाशा, कुङ्कुमोदकसन्निभा हैं। उनके मुकुट का माणिक्य दमक रहा है। कटि प्रदेश किंकिणी-जालमण्डित है। कृष्ण भ्रमरकुलतुल्य उनके कुञ्चित केश हैं। सद्यः देदीप्यमान सूर्य के समान देवी का मुखपद्ममण्डल है। उनके कुटिल ललाट में कोमल पट्टिका के समान अष्टमी का चन्द्र विराजमान है। उनकी भ्रूलता पिनाक धनुष के समान आकृति वाली है। वे परमेश्वरी हैं। आनन्दमुदित अतिचंचल लीला से आन्दोलित उनके नेत्र हैं। प्रकाशमान किरणजाल से उनका स्वर्णकुण्डल दीप्त है। उनके शोभन गण्डमण्डल का विस्तार चन्द्र के अमृतमण्डल को पराजित करता है। विश्वकर्मा के आदिनिर्माण के सूत्र के समान उनकी ऋजु नासिका है। उनके ओठ ताम्र के समान प्रवाल तरु के समान विम्ववत् रक्तवर्ण हैं। वे हैं अमृतोपमा। उनके स्मित मुस्कान का माधुर्य माधुर्यरससागर को पराजित करता है। अनाज के बीज के समान उनकी दन्तपंक्ति (की चमक) हीरक के समान है। उनका जिह्वा रत्नबीज-सी जगत्-प्रकाशकारी है। वे धीरभाषिणी हैं। वे अनुपम गुणयुक्त चिबुकस्थल-शोभिता हैं। महादेवी की कम्बुग्रीवा मृणाल के समान है। दीर्घ कोमल है उनकी भुजलता। उनके सुकुमार करपद्म रक्तोत्पल-दलाकृति हैं। उनके करपद्म के नख की ज्योत्स्ना नभ स्थल में चन्द्रातप की रचना करती है। देवी के समुन्नत पयोधर के ऊपर मुक्ताहार लता विराजित है। वे त्रिवलीवलय-संयुक्त मध्यदेश-शोभिता हैं। लावण्यसरित के आवर्त्तन के आकार में उनकी नाभि शोभान्वित है। उनके नितम्ब अमूल्य रत्नघटित काञ्चीयुक्त हैं। उनका नितम्वबिम्ब (हाथी) द्विरद हैं। उसकी रोमराजि उत्तम अंकुश है। इनके ऊरु कदम्ब के समान ललित तथा स्तम्भ के समान सुकुमार हैं। उनके जानुद्वय मणिमाणिक्य मुकुटाकार हैं। ऐसे वे विराजिता हैं। उनके जंघाद्वय का लावण्य केले के वृक्ष के समान है। उनके पदद्वय हैं—गूढ़ गुल्फयुक्त।

उनके पादाग्र कूर्मजयी हैं। उनकी दीर्घ पतली उँगलियों में उज्ज्वल नखचन्द्र विराजित है। देवी का हास्य शत चन्द्रों के कान्तिप्रवाह-तुल्य है। सिन्दूर-जवा-अनार को पराजित करने वाला है—उनके देह का लौहित्य वर्ण। उनका परिधान है—लाल वस्त्र। ऊपरी करद्वय में पाश-अंकुश विराजित है। वे रक्तपुष्प-निविष्टा हैं। रक्ताभरणभूषिता चतुर्भुजा, त्रिनयना तथा पञ्चवाण-धनुषधारिणी हैं। कर्पूरखण्ड-मिश्रित ताम्बूलपूर्ण उनका मुख है। करण्डवाही इन्द्र उनको पान का पत्ता प्रदान करते हैं। प्रभूत कस्तूरी-कुङ्कुम द्वारा उनकी देह अरुण है। वे सर्व शृङ्गारवेषाढ्या, सर्वालंकार-भूषिता हैं। ब्रह्मा-विष्णु के शिरोरत्न उनके चरणों पर घिसते हैं। वे जगत् के आह्लाद का उत्पादन करने वाली, जगत् रंजनकारिणी, जगदाकर्षणकारिणी, जगत्कारणरूपिणी हैं। सर्वमन्त्रमयी देवी नित्या सर्वसौभाग्यसुन्दरी, सर्वलक्ष्मीमयी, परमानन्दनन्दिता हैं।।१३८-१५९।।

पद्मनिभां—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—आह्लाद देने वाली प्रभा अथवा जिनकी आल्हाददायी प्रभा है। शिवानन्द के मत से पद्मनिभा शब्द से संकोच-विकासात्मक धर्मद्वय सूचित होता है। **वालार्ककिरणाम्**—शिवानन्द के मत से बालार्ककिरण के रक्तवर्णत्व की प्रकाशमानता तथा सुसेव्यता लक्षित होती है। **जपाकुसुमसङ्काशां**—शिवानन्द के मत से जवाकुसुम के रक्तवर्णत्व की बहुलता लक्षित होती है। **दाडिमीकुसुमोपमाम्**—शिवानन्द का मत है कि दाड़िम (अनार) पुष्प के रक्तवर्ण की प्रकाशमानता लक्षित होती है। **पद्मरागप्रतीकाशां**—शिवानन्द के अनुसार इसमें रक्तवर्ण तथा प्रभा दोनों अपृथक् रूप से लक्षित हैं। **कुङ्कुमोदकसन्निभाम्**—शिवानन्द के मत से रक्तवर्णत्व का यह विभिन्न दिक् सूचित होता है। **कालालिकुलसङ्काशकुरलालकसङ्कुलाम्**—कालालिकुल अर्थात् काले भ्रमर। उसका संकाश अर्थात् उसके समान। कुरल अर्थात् अलकें, उसके द्वारा व्याप्त। **प्रत्यग्रारुणः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—प्रथमोन्मेष। इसका अर्थ है—प्रथमोन्मेषित सूर्य। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—उदीयमान सूर्य। **किञ्चिदर्धेन्दुः**—भास्करराय के अनुसार अष्टमी का चन्द्र। **पिनाकधनुः**—शिवधनुष। **विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रविस्पष्टनासिकाम्**—भास्करराय के अनुसार विश्वकर्मा द्वारा निर्माण में जो सूत्र व्यवहृत हुआ है, उसके समान ऋजु नासिका जिनकी है। इन्होंने इसका अन्य अर्थ भी लिखा है। अर्थात् विश्व ही जो कर्म है (कार्य), उसके आदि निर्माण में, उसके निर्माण में जो सूत्र अर्थात् सूचक वाक्य (वेद) श्वासरूप से जिस नासिका से प्रकट है, ऐसी नासिका जिसकी है। श्रुति में भी है—'यस्य विश्वसितं वेदाः' अर्थात् जिसके निःश्वास हैं वेदा। **दाड़िमीबीजवज्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम्**—वज्र = हीरा। वज्राभ अर्थात् हीरे के समान शुभ्र तथा दृढ़। अथवा वज्र = कुलिश। अर्थात् कुलिश के समान दृढ़। अर्थात् अनार के बीज के समान जिनकी दन्तपंक्ति वज्रवत् दृढ़ है। **कम्बुग्रीवां**—कम्बु अर्थात्

शंख। जिनकी ग्रीवा त्रिरेखायुक्त है। **मृणाललतितैर्भुजै:**—विद्यानन्द कहते हैं—पद्मनाल के समान कोमल दीर्घ भुजलता द्वारा। **त्रिवलीवलयायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम्**—उर्मिमत्ता द्वारा। उसके द्वारा युक्त कटिभाग। उससे जो शोभित हैं। **प्रपदाजितकच्छपाम्**—भास्करराय व्याख्या करते हैं—पादाग्र द्वारा जिन्होंने समस्त कूर्म पर विजय पाया अर्थात् कच्छपजयी हैं, जिनके पादाग्र। **पाशाङ्कुशकरोद्यतां**—भास्करराय अर्थ करते हैं—उर्ध्व के वाम तथा दक्षिण करों में (हाथ में) पाश तथा अंकुश हैं जिनके। **पञ्चबाणधनुर्धराम्**—अध: (नीचे के) दक्षिण तथा वाम हाथों में जो पञ्च बाण तथा धनुष धारण करते हैं, उनको। भास्करराय की व्याख्यानुसार कादिमत में पञ्चबाण हैं—कमल-कुमुद-रक्त कल्हार-इन्दीवर तथा सहकाररूपी पञ्चपुष्प। **सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं पत्रलतादि कपोलालंका से शृंगार-सम्पन्ना जो है।।१३८-१५९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तत इत्यादिसार्धैकोनविंशत्या ध्यानमाह। पद्मनिभामिति सङ्कोचविकासात्मकं धर्मद्वयं लक्ष्यते। बालार्ककिरणारुणामिति रक्तवर्णत्वे प्रकाशात्मता लक्ष्यते सुसेव्यता च। जपाकुसुमसङ्काशामिति रक्तवर्णत्वे बहुलता लक्ष्यते। दाडिमीकुसुमोपमामिति रक्तवर्णत्वे प्रकाशात्मता लक्ष्यते। पद्मरागप्रतीकाशामिति रक्तवर्णत्वे वर्णप्रभयोरपृथक्ता लक्ष्यते। कुङ्कुमोदकसन्निभामिति रक्तवर्णत्वे स्निग्धता लक्ष्यते। प्रत्यग्रशब्देन प्रथमोन्मेषो लक्ष्यते। चिबुकमित्यधरमुखफलकमुच्यते। कम्बु: शङ्ख:। आवर्त: पयसां भ्रम:। काञ्ची रशनादाम। अङ्कुश: सृणि:। शीतांशुलौहित्येतिभागाभ्यां जगन्मातुरग्नीषोमात्मता लक्ष्यते। महामृगमद: कस्तूरिका।।१३८-१५९।।

* अर्थरत्नावली *

पद्मनिभाम् आह्लाददायिप्रभाम्। **बालार्ककिरणारुणामिति।** अनुग्रहसेव्यशोभामित्यर्थ:। **जपाकुसुमसंकाशामिति।** देव्यङ्गगतारुणिमोदाहरणमिति भाव:। **दाडिमीकुसुमोपमामिति।** सान्द्रप्रभामिति भाव:। **पद्मराग इति।** अत्युज्ज्वलकान्तिमित्यर्थ:। **कुङ्कुमोदक इति।** अच्छप्रभामिति भाव:। प्रत्यग्रशब्देन ईषद्विकासोऽभिमत:। **आदिनिर्माणमिति।** प्रथमसृष्टिमिति भाव:। **कम्बुग्रीवामिति।** कम्बु: शङ्ख:, तद्वत्त्रिरेखायुक्तसमग्रीवामिति भाव:। मृणाल इति पद्मनालम्। तद्वत्कोमलदीर्घभुजलतामित्यर्थ:। मृगमद इति कस्तूरिका। शृङ्गार इति पत्रलतादिकपोलालङ्कार इति भाव:।।१३८-१५९।।

* सेतुबन्ध: *

इत उत्तरमावश्यकानां षोढान्यासादीनामुत्तरार्धे वक्ष्यमाणत्वात्तानपहाय तत्र वक्ष्यमाणं सगुणध्यानमाह—तत इत्यादिभिर्द्वाविंशत्या। तत्र श्रुतौ 'सर्वलक्ष्मीमयीम्' (१.१६०) इत्यस्याग्रे सर्वलक्षणसम्पन्नामिति यद्विशेषणं तदादौ विवृणोति। पद्मनिभां संकोचविकासात्मकरूपद्वयवतीम्। बालार्ककिरणाद्यै: पञ्चभिरुपमानैरेतल्लभ्यते—यद्विलक्षणरक्तिमाभिन्नप्रकाशात्मकस्निग्धबहुललावण्यं देव्या इति। कालैर्नीलैरलिकुलतुल्यै: कुरलै: सङ्कुचिताग्रैरलकै: संकुलां व्याप्ताम्।

प्रत्यग्रारुण उद्यत्सूर्यः। किञ्चिदर्धेन्दुरष्टमीचन्द्रो न तु द्वितीयादिस्थः। पिनाकाख्यं धनुः शैवम्। विश्वकर्मकृत आदिनिर्माणे यत्सूत्रं तन्तुस्तद्वद्विस्पष्टा, ऋज्वी नासा यस्यास्ताम्। गृहादिनिर्माणे प्रथमत ऋजुब्रह्मसूत्रनिक्षेपस्य दर्शनात्। यद्वा विश्वमेव कर्म कार्यं तस्याऽऽदिनिर्माणे यानि सूत्राणि सूचकवाक्यानि वेदास्ते श्वासरूपेण विस्पष्टा यस्यां तादृशी नासा यस्यास्ताम्। यस्य निःश्वसितं वेदा इति श्रुतेः। वेदानादौ निर्माय ततस्तैरेव सृष्टिरुत्पादितेत्यपि सिद्धान्ताच्च। ताम्रं नेपालदेशोत्थम्। तस्यैवोत्तमत्वात्। ओष्ठावच्छेदेनामृतोपमाम्। स्मितमाधुर्येण मन्दहासलक्ष्मीधौरेयेण। दाडिमीबीजमेव यदि वज्रं हीरकाख्यं रत्नं स्यात्तदा तत्तुल्या दन्ताः स्युः। यद्वा वज्रं कुलिशं दार्ढ्यार्थमेषोपमा। 'अपि सञ्चालिता दन्ता जायन्ते वज्रसन्निभा' इति वैद्यके प्रयोगदर्शनात्। भुजैर्लक्षिताम्। इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। वितानमुल्लोचाख्यं वस्त्रमस्य सञ्जातं वितानितम्। त्रिवलीनां बलेनैव समायुक्तो यो मध्यदेशः कटिभागस्तेन सुशोभिताम्। एतेन मध्यस्य सौक्ष्म्यं त्रिवलीनां कनकपट्टिकारूपत्वं च ध्वन्यम्। आवर्तोऽम्भसां भ्रमः। नितम्बस्य बिम्बं मण्डलमेव स्थूलत्वाद्द्विरदस्तस्य रोमराजिरेव वरोऽङ्कुशो यस्यास्ताम्। माणिक्यमयं मुकुटं टोपिका। प्रपदेन पादाग्रेणाऽऽसमन्ताज्जितः कच्छपः कूर्मो यया। पाशाङ्कुशाभ्यां लसन्तौ करावूर्ध्वस्थितौ वामदक्षौ यस्याः। पञ्च बाणान्धनुश्च दक्षवामाभ्यामधःकराभ्यां धारयतीति तथा। तदुक्तं संहितायाम्—

कमलाकारसम्पन्नाः पञ्च बाणा मनोहराः।
मधुलिड्गुणसम्पन्नमैक्षवं हि शरासनम्।।
प्रवालवल्लीघटितः पाशः क्षौमगुणान्वितः।
चन्द्ररेखासमः स्वच्छः सृणिराकर्षणक्षमः।।
दक्षिणाधःकरे बाणान्वामाधस्तु शरासनम्।
वामोर्ध्वे पाशमारक्तं दक्षोर्ध्वे तु सृणिं परम्।। इति।

पञ्च बाणास्तु कादिमते—

कमलं कैरवं रक्तं कह्लारेन्दीवरे तथा।
सहकारकमित्युक्तं पुष्पपञ्चकमीश्वरि।। इति।

तेन कमलान्येवाऽऽकारा इति संहितावाक्ये विग्रहः। अङ्कुशस्तु सौवर्ण इति गुरुमुखागमः। स्पष्टमन्यत्। ईदृशीं नित्यां महानित्यां त्रिपुरसुन्दरीनाम्नीं स्मृत्वेत्युत्तरेणान्वयः।

महात्रिपुरमुद्रां तु स्मृत्वाऽऽवाहनरूपया ।।१६०।।
विद्ययाऽऽवाह्य सुभगे नमस्कारादियुक्तया ।
पूर्वोक्तया साधकेन्द्रो महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।१६१।।
चक्रमध्ये तु सञ्चिन्त्य ततः पूजां समारभेत् ।

हे सुभगे! महात्रिपुर मुद्रा का स्मरण करके साधकश्रेष्ठ नमस्कारादि युक्ता पूर्वोक्त

(श्लोक ११२ में विवृत) आवाहनरूपा विद्या द्वारा (ह्स्रैं ह्कलरीं ह् स् स्रौः) महात्रिपुर सुन्दरी का आवाहन करे तथा चक्र में उनकी भावना करके तव पूजन आरम्भ करे।

महात्रिपुरमुद्रां—भास्कराचार्य के मत से त्रिखण्डा मुद्रा। **महात्रिपुरमुद्रां तु स्मृत्वा**—व्याख्या में विद्यानन्द कहते हैं—इसका मूल भाव है कि देवी के आवाहन काल में अन्तर्याग के पश्चात् मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त नव आधारों में परमशक्ति विभ्रमरूपा नव आन्तर मुद्रा का स्मरण करना होगा। **आवाहनरूपया विद्यया आवाह्य सुभगे नमस्कारादियुक्तया**—भास्करराय कहते हैं कि किसी-किसी के मत से इसका अर्थ है कि आवाहन विद्या के पश्चात् 'नमः इहागच्छ आगच्छ' वाक्य की योजना करे। अन्य लोगों का मत है कि आवाहन विद्या के अनन्तर 'सुभगे नमः' इस पञ्चाक्षर का योग करके देवी का आवाहन करना होगा। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है कि आवाहन विद्या के अनन्तर 'त्रिपुरसुन्दरि!' कहकर नमः कहे। **सुभगे**—विद्यानन्द के मत से 'सुन्दरी' इसका अर्थ है। **चक्रमध्ये**—शिवानन्द व्याख्या करते हैं—सर्वानन्दमय स्थान में अर्थात् सर्वानन्दमय चक्र में अर्थात् बिन्दुस्थान में। **सञ्चिन्त्य**—शिवानन्द का अर्थ है कि महाविभूतियुक्ता की वह्निसकलीकरणादि भाव द्वारा अभेद भावना करे। **पूजा**—भास्करराय के मत से यहाँ पूजा शब्द से पञ्च अथवा दश अथवा षोडश अथवा चतुःषष्टि उपचार की पूजा सूचित है। भास्करराय ने इस श्लोक का अर्थ किया है कि नमः से अन्त होने वाली आवाहन विद्या द्वारा आन्तर तेज को त्रिखण्डा मुद्राबद्ध अंजलि में लाये। पुष्प द्वारा बिन्दु में निक्षेप करके ध्यानश्लोकों में निर्दिष्ट मूर्त्ति का चिन्तन करके पूजा करे।।१६०-१६१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

महात्रिपुरेतिद्वयेनावाहनपूजारम्भौ विधीयेते। महात्रिपुरसुन्दरीमुद्रां त्रिशिखाख्यां वक्ष्यमाणलक्षणाम्। नमस्कारान्तया अन्ते नमस्कारवत्या। तया पूर्वोक्तया 'हंसबीजसमारूढाम्' (१.१०९) इत्यत्र। चक्रमध्ये सर्वानन्दमयाभिधेये स्थाने। सञ्चिन्त्य बहिः सकलीकरणादिना भावेन महाविभूतियुक्तामपि सम्यगभेदेन चिन्तयित्वेत्यर्थः।।१६०-१६१।।

* अर्थरत्नावली *

महात्रिपुरमुद्रां तु स्मृत्वेति। देव्यावाहनवेलायामन्तर्यागानन्तरमान्तरमुद्रानवकमाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तनवाधारेषु परशक्तिविभ्रमरूपमनुस्मृत्यानन्तरमावाहयेदिति भावः। **सुभगे नमस्कारनियुक्तयेति।** सुभगे इति सुन्दरि। नम इति नमस्कारपदम्। कोऽभिप्रायः? आवाहनविद्यानन्तरं त्रिपुरसुन्दरीति सम्बोध्य तदन्ते नमःपदं वदेदिति भावः।।१६०-१६१।।

* सेतुबन्धः *

महात्रिपुरमुद्रां त्रिखण्डाख्यां मुद्रां बद्ध्वेति शेषः। पूर्वोक्तावाहनविद्ययाऽन्ते नमस्कारादेर्नम इहाऽऽगच्छेति वाक्यस्य योजनं कृत्वा चक्रस्य मध्ये बिन्दुस्थाने देवीमावाह्य बिन्दुस्थां पुनरपि

ध्यात्वा पूजामारभेतेति यथाश्रुतं केचिद् व्याचक्षते। अन्ये तु—महात्रिपुरमुद्रां संक्षोभिण्यादियोन्यन्तमुद्रानवकं मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तस्थाननवके स्मृत्वाऽऽवाहनविद्याया अन्ते सुभगे नम इति पञ्चाक्षरीं संयोज्य देवीमावाह्य पूजयेदित्यर्थ इत्याहुः। नव्यास्तु—'आवाह्य चक्रमध्ये तु विद्यया हि त्रिखण्डया' इति। ज्ञानार्णवे चक्रमध्य इति पदेन पुष्पसञ्चयगर्भिताञ्जलिनिर्मितत्रिखण्डामुद्रामध्यखण्डात्मकत्रिकोणचक्रमध्यमुच्यते। तेन पुष्पेष्वाहूय तत्र मूर्तिं प्रकल्प्य तां पीठे पुष्पाञ्जलिदानेन निविष्टां सञ्चिन्त्य पूजयेदिति वदन्ति। युक्तं चैतत्। आवाहनस्य परिच्छिद्यावेक्षणरूपत्वेन परिच्छेदकमूर्तिसापेक्षत्वात्। मूर्तिकल्पनस्य च मूर्तिविद्याकरणकत्वस्य मूर्तिविद्याम्नानान्यथानुपपत्त्याऽऽवश्यकतया हृदन्तःस्थितचैतन्यमहसो बहिर्निःसारणेन मन्त्रेण मूर्तिं परिच्छिन्नतामापाद्य पीठे निवेशनस्यैवाऽऽवाहनपदार्थत्वात्। अवदानादिप्रदानान्तस्य बह्ववयवकस्याप्येकपदार्थत्वदर्शनात्। ततश्च पूर्वैः पुरातनैर्गुरुभिरुक्तया वक्ष्यमाणमूर्तिविद्यया चक्रमध्येऽञ्जलिमध्यस्थत्रिकोणचक्रे सञ्चिन्त्य मूर्तिं प्रकल्प्याऽऽवाहनविद्यया बिन्दावावाह्य पूजयेदित्यन्वयः। पाठक्रमस्यार्थक्रमेण बाधादिति व्याख्येयम्। तेन कल्पसूत्रैकवाक्यताऽपि सम्पद्यते। वस्तुतस्तु सर्वतो व्याप्ताया अपि परशिवदीप्तेः स्वबुद्ध्यनुसारेणैकदेशमात्रग्रहणस्यापि परिच्छिन्नतापादनरूपत्वेनाऽऽवाहनपदवाच्यत्वसम्भवेन न मूर्तिकल्पनमावाहनपदार्थस्यावयवः। ततश्च त्रिखण्डायामान्तरं तेजो नमोन्तयाऽऽवाहनविद्ययाऽऽनीय पुष्पद्वारा बिन्दौ निक्षिप्य तत्र ध्यानश्लोकोक्तरूपां मूर्तिं सञ्चिन्त्य पूजयेदित्येवाक्लिष्टोऽर्थः। मूर्तिविद्यायास्त्वेतत्तन्त्ररीत्या न सञ्चिन्तनाङ्गत्वम्। अत एव तस्याः पूर्वमनुद्धारः संगच्छते। उत्तरतन्त्रे तदुद्धारस्तु न्यासे विनियोगार्थः। न च उत्तरतन्त्रे तामुद्धृत्य, 'मूर्तिविद्या च सा देवि सप्तमी परिकीर्तिता' (७/४) इति संज्ञाकरणं मूर्तिकल्पने विनियोगज्ञापनैकफलकं वक्तव्यमिति वाच्यम्। 'आधारे विन्यसेन्मूर्तिम्' (७/७) इत्यादिप्रदेशेषु व्यवहारार्थत्वेन संज्ञायाः साफल्येनान्यथासिद्धेः। तस्माद् अर्थरत्नावलीकृदुक्तो नमस्कारेण युक्तयेति पाठ एव स्वीकार्यः। इह पूजाशब्देन पञ्च वा दश वा षोडश वा चतुःषष्टिर्वोपचाराः समुदिता अभिधीयन्ते। तेन शक्तिभेदेन व्यवस्थितो विकल्पः। ध्यानावाहनादिकतिपयपदार्थान्तर्भावानन्तर्भावाभ्यां तन्त्रभेदेन षोडशादिसंख्याया बहुरूपत्वेऽपि सञ्चिन्त्याऽऽवाह्येतिपदाभ्यां ध्यानावाहनयोः पूजातः पृथङ्निर्देशादेव ज्ञापकात् तन्त्रराजादिषु गणितः पाद्यार्घ्यादिक्रम एवेहाऽऽदर्तव्यः। ज्ञापकान्तरं चेह पटलान्ते वक्ष्यामः।।१६०-१६१।।

शिवाग्निबिन्दवो देवि दिनकृद्वह्निबिन्दवः।।१६२।।
युगपत्क्रमरूपेण योजनीया महेश्वरि।
मायार्धेन्दुकलायुक्तं बीजयुग्मं यदुत्थितम्।।१६३।।
मायालक्ष्मीमयं तेन यावत्पूज्यास्तु मातरः।

हे देवी महेश्वरि! ह् र् ई बिन्दु तथा अर्द्धचन्द्र एवं श् र् ई बिन्दु तथा अर्द्धचन्द्र—इस क्रम से अक्षरों का योग करके जो बीजद्वय उत्थित होगा, उससे मायाबीज ह्रीं तथा लक्ष्मीबीज श्रीं—इन बीजद्वय द्वारा शक्तिदेवताओं की पूजा करनी होगी।।१६२-१६३।।

शिव—ह्। **अग्नि**—र्। **बिन्दु**—०। **दिनकृत्**—श्। **वह्नि**—र्। **अर्द्धेन्दुकला**—अर्द्धचन्द्रकला। **मायामयं बीजं**—ह्रीं। **लक्ष्मीमयं बीजं**—श्रीं। **उत्थितम्**—उद्धारकृत। **मातरः**—शक्तियाँ। **यावत्**—शिवानन्द के अनुसार साकल्य से। 'मायालक्ष्मीमयं' इस श्लोकार्द्ध की व्याख्या में भास्करराय कहते हैं कि इस बीजद्वय के विनियोग (ह्र्ई तथा श्र्ई) केवल शक्तिपूजा में निर्दिष्ट होने के कारण पुरुष देवता की पूजा में अथवा स्त्री देवता के न्यास में उनका विनियोग नहीं होता। शक्तिपूजा में जहाँ विशेष मन्त्रान्तर विहित है, जैसे वशिनी आदि (शक्तिपूजा में भी जहाँ विशेष रूप से अन्य मन्त्र कहे गये हैं), वहाँ पर इन बीजद्वय का व्यवहार न करे।।१६२-१६३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शिवाग्नीतिद्वयेन पूज्यदेवतानामादौ प्रयोज्यं बीजद्वयमुद्धरति। शिवाग्निबिन्दवो हकाररेफानुस्वाराः। दिनकृद्वह्निबिन्दवः शकाररेफानुस्वाराः। माया ईकारः। बीजयुग्मं बीजद्वयम्। उत्थितं निष्पन्नम्। मायालक्ष्मीमयम्। मायामयं लक्ष्मीमयं भुवनेश्वरीबीजं श्रीबीजं च। तेन बीजद्वयेन। **यावत् पूज्यास्तु मातर इति।** यावत् साकल्येन। मातरः शक्तयः।।१६२-१६३।।

* अर्थरत्नावली *

शिवाग्निबिन्दव इति। शिवो हकारः। अग्नी रेफः। दिनकृत् शकारः। वह्निरिति रेफः। बिन्दुरनुस्वारः। (पूर्ववत्?)। **युगपत् क्रमरूपेणेति।** उद्धृतान्यक्षराणि यथायोगमेकदा संयोजयेत्। ह्र्ं श्र्ं इति। **मायार्धेन्दुसमायुक्तमिति।** माया ईकारः। अर्धेन्दुः कला। एतदुद्धृतबीजयुगलस्य शिरोदेशे कृते ह्रीँ श्रीँ इति भवतीति भावः। **मायालक्ष्मीमयमिति।** उद्धृतमेतद् बीजयुग्मं भुवनेश्वरीलक्ष्मीबीजमित्यर्थः।।१६२-१६३।।

* सेतुबन्धः *

शिवो हकारः। अग्निर्वह्निश्च रेफः। दिनकृच्छब्देन शकारः। शकाराधिकारे 'दिनकृच्छयनं शास्ता सुभगा विस्फुलिङ्गिनी' इति कोशात्। माया तुर्यस्वरः। स शिवाग्न्योर्दिनकृद्वह्न्योश्च परतो देयस्ततो बिन्द्वर्धेन्दुकलाः। ईदृशक्रमेणोत्पन्नं यद्बीजयुग्मं मायालक्ष्मीनामकं ह्रीं श्रीमित्याकारकं तेन सर्वा मातरः पूज्याः। यावदिति साकल्यार्थकमव्ययम्। इदं च बीजद्वयं तारद्वयमिति तान्त्रिकैर्व्यवह्रियते। अस्या द्वितार्याः शक्तिपूजामात्रे विनियोगात्पुंदेवतापूजायां स्त्रीदेवत्यन्यासादौ वा न विनियोगः। शक्तिपूजायामपि यत्र विशिष्य मन्त्रान्तरविधिर्यथा वशिन्यादीनां कामेश्वर्यादीनां च पूजायां तत्रापि न तारद्वयप्रवृत्तिः। अनाकाङ्क्षितत्वादेव। विशेषविहितेन सामान्यस्य बाधाच्च। अत एव कामाकर्षिण्यादौ स्वराणां विधानेन तारद्वयबाधे प्राप्ते पुनर्विधानं समुच्चयार्थमुपपद्यत इति तु न्यायसिद्धोऽर्थः। तन्त्रान्तरे पद्धतिकारास्तु सर्वत्र द्वितारं विनियुञ्जते। कल्पसूत्रे तु—'सर्वेषां मन्त्राणामादौ त्रितारीसंयोगः। त्रितारी वाङ्मायाकमलाः' इत्युक्तम्। तत्रापि यागमन्दिरप्रवेशोत्तरमेवास्य पाठस्ततः प्राक्कृत्यमन्त्रेषु न तद्योग आवश्यक इति मन्तव्यम्।।१६२-१६३।।

पूजनीयाया देवताया मन्त्रशेषः

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च सुन्दरी पुरवासिनी ॥१६४॥
श्रीर्मालिनी च सिद्धाऽम्बा महात्रिपुरसुन्दरी ।
प्रकटाश्च तथा गुप्तास्तथा गुप्ततराः पराः ॥१६५॥
नवधा चक्रयोगिन्यो नामभिस्ताः समर्चयेत् ।

त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा तथा महात्रिपुरसुन्दरी—ये हैं नवचक्रेश्वरी तथा प्रकटा, गुप्ता, गुप्ततरा, सम्प्रदाया, कुलकौला, निगर्भा, रहस्या, अतिरहस्या तथा परापर रहस्या—ये ९ चक्रयोगिनी। इनके नाम से पूजा करे—

चक्र-चक्रेश्वरी तथा चक्रयोगिनी की तालिका

चक्र	चक्रेश्वरी	चक्रयोगिनी
त्रैलोक्यमोहन	त्रिपुरा	प्रकटा
सर्वाशापरिपूरक	त्रिपुरेशी	गुप्ता
सर्वसंक्षोभक	त्रिपुरसुन्दरी	गुप्ततरा
सर्वसौभाग्यदायक	त्रिपुरवासिनी	सम्प्रदाया
सर्वार्थसाधक	त्रिपुराश्री	कुलकौला
सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी	निगर्भा
सर्वरोगहर	त्रिपुरसिद्धा	रहस्या
सर्वसिद्धिप्रद	त्रिपुराम्बा	अतिरहस्या
सर्वानन्दमय	महात्रिपुरसुन्दरी	परापररहस्या

प्रकटा—भास्करराय के मतानुसार प्रकटा इत्यादि उन-उन चक्र के आवरण-देवताओं का अणिमा सिद्धि इत्यादि योगिनियों के समष्टि रूप का नाम है। **परा**—भास्करराय के अनुसार इस पद से सूचित होता है कि सम्प्रदाया-कुल-कौला-निगर्भा-अतिरहस्या-परापररहस्या योगिनी हैं। कुल तन्त्रों में अतिरहस्या के स्थान पर परापररहस्या तथा परापररहस्या के स्थान पर परापरातिरहस्या नाम मिलता है। **नामभिस्ताः समर्चयेत्**—ताः का अर्थ है—पूर्वोक्त चक्रेश्वरी तथा चक्रयोगिनी। इनके नाम के द्वारा पूजा करनी होगी अर्थात् पूजामन्त्र में इनका नाम रहेगा। भास्करराय के मत से पूजामन्त्र यह है—'ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रेश्वरीपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं प्रकटायोगिनीपादुकां पूजयामि'—यह है त्रैलोक्य मोहन चक्र हेतु। इसी प्रकार अन्य स्थान पर भी समझना चाहिये[1]।।१६४-१६५।।

---

[1] पूजामन्त्र के सम्बन्ध में सम्प्रदायभेद से भेद परिलक्षित होता है। भास्करराय के ही शिष्य

ॐ सेतुबन्धः ॐ

पूजनीया देवता मन्त्रशेषं चाऽऽह। त्रिपुरादीनि नव पदानि त्रैलोक्यमोहनादिचक्रेश्वरीणां नामधेयानि। त्रिपुरेशीत्यत्र त्रिपुरेति भिन्नं पदम्। तदिदमीशीत्यादिषु सप्तसु पदेषु विशेषणत्वेनान्वितं समस्यते। तेन पूर्वनिपातः पुंवद्भावश्च। श्रीपदेन सह समासे तु न पुवंद्भावः। प्रियादिगणे तस्य पाठाङ्गीकारात्। पुरवासिनीपदे विशेषणत्वेनान्वितमपि न समस्यते। त्रिशब्दः पुरा पूर्वभागे यस्याः सा त्रिपुरेति तदर्थात्। तेन त्रिपुरवासिनीति नामधेयं सिध्यति। तेनायमर्थः सम्पन्नः—त्रिपुरा-१, त्रिपुरेशी-२, त्रिपुरसुन्दरी-३, त्रिपुरवासिनी-४, त्रिपुराश्रीः-५, त्रिपुरमालिनी-६, त्रिपुरसिद्धा-७, त्रिपुराम्बा-८, महात्रिपुर-सुन्दरीति नव चक्रेश्वरीणां नामानि। प्रकटा इत्यादिकं तु तत्तच्चक्रस्थितावरणदेवतानामणिमासिद्ध्यादियोगिनीनां समष्टिरूपं नाम। परा इति पदेन सम्प्रदायाः कुलकौला निगर्भा रहस्या अतिरहस्याः परापररहस्या इति षण्णां नाम्नां संग्रहः। तन्त्रान्तरेऽष्टमनवमावरणदेवतानां परापररहस्याः परापरातिरहस्या इति नामद्वयं स्मर्यते। तेन विकल्पः। चक्रयोगिन्य इत्यत्र समूहवाचकचक्रपदेनैतद्ध्वनितम्—योगिनीसमष्टिवाचकप्रकटादिपदोत्तरमेव योगिनीपदस्य प्रयोगो नैकैकव्यक्तिवाचकाणिमादिपदोत्तरमिति। ताश्चक्रेश्वरीश्चक्रयोगिनीश्च। नामभिरिति त्रिपुरादिनामभिः प्रकटादिनामभिरणिमादिनामभिश्चेत्यर्थः। ततश्चाऽऽदौ तारद्वयं ततस्तत्तन्नाम तदन्ते सप्ताक्षरीति मन्त्रकल्पनाप्रकारः। त्रिपुरादिपदोत्तरं चक्रेश्वरीपदं प्रकटादिपदोत्तरं योगिनीपदमणिमादिपदोत्तरं सिद्धिपदं कामाकर्षिण्यादिपदोत्तरं कलापदं च प्रयोक्तव्यमित्यादिकं तु सम्प्रदायसिद्धं ज्ञापकसिद्धं चेत्यपि तत्र तत्र व्यक्तीभविष्यति।।१६४-१६५।।

चतुरश्रप्रथमरेखायां पूज्याः शक्तयः

अणिमां पश्चिमद्वारे लघिमामपि चोत्तरे ।।१६६।।
पूर्वद्वारे तु महिमामीशित्वाख्यां तु दक्षिणे ।
वशित्वाख्यां तु वायव्ये प्राकाम्यामीशदेशके ।।१६७।।
भुक्तिसिद्धिं तथाऽऽग्नेय्यामिच्छासिद्धिं तु नैर्ऋते ।
अधस्तात्प्राप्तिसिद्धिं तु सर्वकामां तथोर्ध्वतः ।।१६८।।
एवमेता महादेव्यो देवि सर्वार्थसिद्धिदाः ।

अणिमा सिद्धि पश्चिम द्वार में, लघिमा सिद्धि उत्तर द्वार में, महिमा सिद्धि पूर्व द्वार में, ईशित्व सिद्धि दक्षिण द्वार में, वायुकोण में वशित्वसिद्धि, ईशानकोण में प्राकाम्यसिद्धि, अग्निकोण में भुक्तिसिद्धि, नैर्ऋत्य कोण में इच्छासिद्धि, अधोदिक् में प्राप्तिसिद्धि तथा ऊर्ध्वदिक में सर्वकाम्पसिद्धि पूज्या हैं। हे देवि! ये सब सर्वार्थसाधिनी हैं।।१६६-१६८।।

उमानन्द ने इन त्रिपुराचक्रेश्वरी का मन्त्र (नित्योत्सव ग्रन्थ में) दिया है—ऐं ह्रीं श्रीं अं आं, सौ, त्रिपुराचक्रेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (यौवनोल्लासः—तृतीयश्रीक्रमः, प्रथमावरणपूजा, नित्योत्सवः)

अणिमादि दश सिद्धियाँ चतुरस्र (भूपुर) की प्रथम रेखा में पूज्या हैं। भास्करराय इस श्लोक की व्याख्या में कहते हैं कि अणिमादि प्रथम चार सिद्धि (अणिमा-लघिमा-महिमा तथा ईशित्व) यथाक्रमेण पश्चिम, उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण में पूज्या हैं। वशित्व वायुकोण में, प्राकाम्य ईशानकोण में, भुक्ति अग्निकोण में तथा इच्छा नैर्ऋत्य कोण में पूज्या हैं। प्राप्ति सिद्धि अधोदिक् में पूज्या है। मूल में 'अधस्ताद्' पद व्यवहृत है। भास्करराय इसका अर्थ कहते हैं कि नैर्ऋत्य कोण तथा पश्चिम दिक् के मध्य में तथा मूल में जिस ऊर्ध्वतः पद को व्यवहृत किया गया है, उसके सम्बन्ध में कहते हैं कि ईशान तथा पूर्व के मध्य में। यहाँ लोकप्रसिद्ध दिक् निर्णय को स्वीकार करके पश्चिमादि दिक्निर्णय गुरुमुखागत आम्नायानुसार इस प्रकार से किया गया है। पूजक यदि पश्चिमाभिमुखी है, तब देवी के पीछे होगा पश्चिम तथा सामने होगा पूर्व। यदि पूजक पूर्वाभिमुखी है, तब देवी के सम्मुख होगा पश्चिम तथा पीछे होगा पूर्व। अन्य दिक् की ओर अभिमुखी पूजा में अर्थात् यदि पूजक अन्य दिक् की ओर मुख करके पूजा कर रहा है, तब पूर्वाभिमुखीन पूजा के समान दिक् व्यवस्था होगी। पश्चिमाभिमुखी पूजा में देवी के पृष्ठ भाग में अणिमा सिद्धि, वाम भाग में लघिमा सिद्धि, सम्मुख महिमा सिद्धि, दक्षिण भाग में ईशित्व सिद्धि होगी। अणिमा तथा लघिमा के मध्यकोण में वशित्व सिद्धि, लघिमा सिद्धि तथा महिमा सिद्धि के कोण में (मध्य कोण में) प्राकाम्य सिद्धि, महिमा सिद्धि तथा ईशित्व सिद्धि के मध्यकोण में मुक्तिसिद्धि, ईशित्व सिद्धि तथा अणिमा सिद्धि के मध्यकोण में इच्छासिद्धि की पूजा होगी। पूजक के पूर्वाभिमुखी होने पर देवी के सम्मुख अणिमा की, दक्षिण में लघिमा की, दोनों के मध्य में वशित्व की, इसी क्रम से इनकी पूजा होगी। इस दिग् व्यवस्था के सम्बन्ध में मतभेद भी है। भास्करराय की सेतुबन्ध टीका में यह द्रष्टव्य है।।१६६-१६८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

षट्त्रिंशद्भिः पूजामाह—अणिमां पश्चिमद्वार इत्यापटलान्तम्। तत्र त्रैलोक्यमोहनाभिधेये चतुरश्रे पूज्याः शक्तीराह—**अणिमामित्यादि।** मन्त्रबीजरूपपूजाप्रकारौ सुभगोदये द्रष्टव्यौ।

* अर्थरत्नावली *

अत्र पश्चिमपूर्वमिति सर्वत्र यथाक्रममेव। यदा पश्चिमाभिमुखः पूजकस्तदा देवीपृष्ठतः पश्चिमं तत्पुरतः पूर्वम्, यदा तु पूर्वाभिमुखस्तदा देवीपुरतः पश्चिमं तत्पृष्ठतः पूर्वम्। इतरदिङ्मुखपक्षे पूर्वाभिमुखपूजावदेव दिग्व्यवस्थेति गुरुमुखाम्नायः।।१६६-१६८।।

* सेतुबन्धः *

अथ प्रकटादियोगिनीनां विशिष्य नामधेयानि मन्त्रघटनार्थमुद्दिशन्नखिलोपसंहारेण स्वात्मावशेषविभावनां प्रत्यनुगुणत्वात् 'प्रथमं चक्रं त्रैलोक्यमोहनं भवति' इत्यादि श्रुतिगतप्रथमादि-

पदानुगुणत्वात् संहारक्रमेणाऽऽवरणपूजाया मुख्यत्वं च ध्वनयन्नाह। चतुरश्रप्रथमरेखायामणिमादयो दश सिद्धयः पूज्याः। तास्वणिमादिचतुष्टयमाद्यं पश्चिमादिदक्षिणान्तदिक्षु, वशित्वादिकमन्त्यं चतुष्टयं तु वाय्वादिनिर्ऋत्यन्तविदिक्षु। अवशिष्टद्वयमधरोर्ध्वयोर्दिशोरिति विवेकः। अत्र देवतान्तरपूजायां सिद्धं पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्राचीति नियममेव क्लृप्तत्वादिहापि केचिदाद्रियन्ते। अन्ये तु लोकसिद्धामेव प्राचीमाश्रयन्तो वदन्ति—यदा पश्चिमाभिमुखः पूजकस्तदा देवीपृष्टतः पश्चिमं तत्पुरतः पूर्वम्, यदा तु पूर्वाभिमुखस्तदा देवीपुरतः पश्चिमं तत्पृष्ठतः पूर्वम्, इतरदिङ्मुखपक्षे पूर्वाभिमुखपूजावदेव दिग्व्यवस्थेति गुरुमुखाम्नायः। ततश्च पश्चिमाभिमुखपूजायां देव्याः पृष्ठभागेऽणिमासिद्धिर्देव्या वामभागे लघिमासिद्धिरित्यादि। तयोर्मध्यकोणे वशित्वा। लघिमामहिमयोर्मध्ये प्राकाम्येत्यादिरीत्या पूजनमितरदिगभिमुखपूजायां तु देव्याः पुरतोऽणिमा, दक्षिणभागे लघिमा, तयोर्मध्ये वशित्वेत्यादिक्रमेण पूजनमिति। तदुभयं तन्त्रान्तरादर्शनप्रयुक्तस्य निजदोषस्य श्रीदेशिकचरणेष्वारोपमात्रम्। तथा च ज्ञानार्णवे स्मर्यते—

उत्तराशामुखो देवि यदा चक्रं समुद्धरेत्।
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव निगद्यते।।
ईशानकोणं देवेशि तदाऽऽग्नेयं न संशयः।
पश्चिमाभिमुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत्।।
पश्चिमाशा तदा ज्ञेया पूर्वाशैव न संशयः।
वायुकोणं तदाऽऽग्नेयमीशानं राक्षसं भवेत्।।
दक्षिणाभिमुखो मन्त्री यदा चक्रं समुद्धरेत्।
पूर्वाशैव तदा दक्षा रक्षःकोणं तु वह्निदिक्।। इति।

कुलार्णवेऽपि—

यदाशाभिमुखो मन्त्री त्रिपुरां परिपूजयेत्।
देवीपश्चात्तदा प्राची प्रतीची त्रिपुरापुरः।। इति।

तेन नित्यकाम्योभयरूपपूर्वाभिमुख्येन वा द्वितीयपटले वक्ष्यमाणेन कामनाभेदप्रयुक्तदिगन्तराभिमुख्येन वा क्रियमाणायां सर्वस्यामपि त्रिपुरसुन्दरीपूजायां 'पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्रतीची' इति नियमः पर्यवसन्नः। ततश्च देव्याः पुरतोऽणिमासिद्धिः। देवीदक्षिणभागे लघिमा। अनयोर्मध्यकोणे वशित्वेत्याद्याकारक एकरूप एव नियमो ज्ञेयः। अधस्तात्, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये। ऊर्ध्वतः, ईशानपूर्वयोर्मध्ये। तदुक्तं तत्त्वविमर्शिन्याम्—

इन्द्रेशानदिशोर्मध्ये स्थानमूर्ध्वस्य कीर्तितम्।
निर्ऋत्यम्बुपयोर्मध्ये स्थानमन्यस्य कीर्तितम्।। इति।

ततश्च पश्चिमनिर्ऋत्योर्मध्ये प्राप्तिसिद्धिं सम्पूज्येन्द्रेशानयोर्मध्ये सर्वकामां सिद्धिं पूजयेदिति पर्यवस्यति। ये तु पद्धतिकारा अनयोः सिद्ध्योः स्थानव्युत्क्रममिच्छन्ति तेषां मूलदेव्यादिकन्यासे मुद्रान्यासविधायकं वाक्यं भ्रममूलम्।

पुरः सव्ये च वंशे च वामे चैवान्तरालके।
ऊर्ध्वाधो दश मुद्राश्च································ ।। (८/८४)

इति विधावूर्ध्वदिशः प्रथमं कीर्तनात्। पूर्वदक्षपश्चिमोत्तरेष्वन्तरालचतुष्के चोर्ध्वमधश्च दश मुद्रा न्यसेदिति तदर्थात्। न चैतावता विकल्प इति भ्रमितव्यम्। वचनबलान्मुद्रान्यास एव तादृशक्रमस्याङ्गीकारेऽपि पूजायां तदाश्रयणे मानाभावात्। ऊर्ध्वाधोदिशोः क्रमव्युत्क्रमयोर्व्यवस्थितविकल्पस्य प्रपञ्चसारादौ दृष्टत्वाच्च। तस्मादिह तन्त्रे भूगृहतृतीयरेखायां कण्ठरवेण पूजानाम्नानेऽपि न्यासज्ञापितायां तत्पूजायां सिद्धिषु क्लृप्त एव क्रमो युक्तः। अस्तु वा धर्मिग्राहकमानेनैव दिशोः क्रमस्य सिद्धत्वान्मुद्रापूजायामपि न्यासक्रम एव। सिद्धिपूजायां त्वधोदिश्येव प्राप्तिसिद्धिरिति। अत्राणिमादिशब्दत्रयं डाबन्तं नेमन्नन्तम्। सिद्धिपदेन सह समासेऽपि न पुंवद्भावः सम्प्रदायात्। ईशित्वावशित्वाशब्दावपि प्राकाम्याशब्दवट्टाबन्तावेवेत्यप्याहुः। भुक्तिसिद्धिं तथाऽऽग्नेय्यामित्यादिज्ञापकात्सिद्ध्यन्ता इति कल्पसूत्राच्च सिद्धिशब्दो मन्त्रावयव एव।।१६६-१६८।।

चतुरश्रद्वितीयरेखायां पूज्या मातृकाः

ब्रह्माणीं पश्चिमद्वारे माहेशीमपि चोत्तरे ।।१६९।।
पूर्वद्वारे तु कौमारीं दक्षिणे वैष्णवीमपि।
वाराहीमपि वायव्ये तथैन्द्रीमैशदेशके ।।१७०।।
चामुण्डामपि चाऽऽग्नेये महालक्ष्मीं च नैर्ऋते।
मातृरष्टौ महेशानि पूजयेत्सर्वकामदाः ।।१७१।।

हे महेशानि! पश्चिमद्वार में ब्रह्माणी, उत्तर में माहेशी, पूर्व द्वार में कौमारी, दक्षिण द्वार में वैष्णवी, वायुकोण में वाराही, ईशानकोण में ऐन्द्री, अग्निकोण में चामुण्डा तथा नैर्ऋत्य कोण में महालक्ष्मी की—इस प्रकार सर्वकामप्रदा अष्टमातृका की पूजा करनी होगी। अष्टमातृका की पूजा भूपुर (चतुरस्र) की द्वितीय रेखा पर होगी।।१६९-१७१।।

पूजयेत्—इसकी व्याख्या करते हुये भास्करराय कहते हैं कि यहाँ पूजा का तात्पर्यार्थ है—सम्प्रदायानुसार पुष्प तथा बिन्दुप्रक्षेप।।१६९-१७१।।

* सेतुबन्धः *

चतुरश्रद्वितीयरेखायां पूजनीया अष्टौ मातृरुद्दिशति। पूर्ववदेव दिग्भेदेन द्वे चतुष्के पूज्ये। ऊर्ध्वाधोदेवते तु न स्तः। तथा च मूलदेव्यादिन्यासप्रकरणे वक्ष्यति—

·····················ऊर्ध्वाधोवर्जितं पुनः।
ब्रह्माण्याद्यष्टकं दक्षजङ्घायां ताश्च पूर्ववत्।। इति।

(८.८४-८५)

अत्र पूजनं नाम सम्प्रदायात्पुष्पादेर्विन्दोश्च प्रक्षेपः। तत्र पुष्पादेः सकृत्प्रक्षेपस्त्रिभि-

स्त्रिभिर्बिन्दुभिरेकैकं तर्पणमित्येव बहुवचनं त्रिधा यजेदिति ज्ञानार्णवे वहुवचनत्रिधाशव्दद्वये 'तर्पणानि मुखे देव्यास्त्रिवारं मूलविद्यया' इति स्वतन्त्रतन्त्रवचनमप्युपष्टम्भकं सम्भवति। सोऽयमुभयप्रक्षेपः पूजनतर्पणोभयात्मक इति तन्मन्त्रे द्वयोरप्युल्लेखः। 'ह्रीं श्रीं ब्रह्माणीपादुकां पूजयामि तर्पयामि' इत्यादयो मन्त्रा भवन्ति। कर्मकारकवाचकस्य पदस्य तन्त्रेण क्रियाद्वयेनान्वयोपपत्तेः। अत एव स्मार्तकर्मसु—'गौरीमावाहयामि स्थापयामि पूजयामि नमः' इत्यादीन् मन्त्रान् कल्पयन्ति शिष्टाः। नव्यास्तु—'ब्रह्माणीपादुकां पूजयामि ब्रह्माणीपादुकां तर्पयामि'ति प्रयोगमाहुः। तत्पक्षे किमेतौ द्वौ मन्त्रावुत सर्वोऽयमेको मन्त्र इति विचार्यम्। आद्ये मानाभावः। द्वितार्याः प्रत्येकं योजनापत्तिश्च। दक्षिणहस्तस्यान्यत्र व्यापृततादशायामेव वामहस्तस्य प्राप्तत्वादिह मन्त्रभेदेन पूजातर्पणयोः कालभेदे सिद्धे तर्पणेऽपि दक्षिणेत(र)स्या(प्राप्तिः। न च तर्पणे तत्त्वमुद्राया) एव करणत्वेन विधानाद्वामहस्तप्रसक्तिरिति वाच्यम्।

तर्पणं पूर्ववद्द्यात्त्रिवारं तत्त्वमुद्रया।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु तत्त्वमुद्रेयमीरिता।। इति।

तन्त्रान्तरे वचनदर्शनेन तदप्रसक्तेः।

न चाङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति।
तर्पयेत्परमेशानीं…………………………।।

इति स्वतन्त्रतन्त्रवचनेन तस्योपसंहार इति वाच्यम्। अस्य पूजनतर्पणयौगपद्ये न्यायप्राप्तस्य वामहस्तस्यानुवादकत्वेनोपपत्तेरुपसंहारकत्वायोगात्। अत एव 'सव्यैः पाणिभिस्तृणानि निरस्यन्ति' इति छन्दोगानां सूत्रे बहिष्पवमानीयप्रसर्पणेऽध्वर्य्वाद्यन्वारम्भणे दक्षिणपाणीनां व्यापृतत्वादेव सव्यप्राप्तेः सव्यैरित्यनुवादमात्रम्। तेन तात्कालिकप्रवृत्तहोमोऽपि सव्यपाणिनैवेति सामवेदिकानां सिद्धान्तः संगच्छते। अपि च तर्पयामीत्येतदाकाङ्क्षयैव कल्प्यमानो द्वितीयान्तपदस्य प्रक्षेपो हि ब्रह्माणीमित्याकारकस्यैवाऽऽपद्येत, न पादुकापदगर्भितो मानाभावात्। पादुकां पूजयामीति वोच्चरेदिति संहितावचनेन क्रियामात्रस्यैव तर्पणमन्त्रे लाभात्। अन्त्ये सकृदुच्चरितस्यैवोभयाकाङ्क्षापूरकत्वेन तदावृत्तौ मानाभावः। वस्तुतस्तु—उक्तसंहितावाक्ये होमसमभिव्याहारात्पुरश्चरणाङ्गतर्पण एव तर्पयामीतिपदप्रक्षेपः। अस्य तु तर्पणस्य पूजयतिनैव निर्देशस्य जातत्वान्न पुनस्तद्वाचकपदापेक्षा। अत एव पूजयेदित्येव विधिवाक्यानि दृश्यन्ते न पुनस्तर्पयेच्चेति। यत्तु नव्याः—'पुष्पं समर्पयेद्देवि मुद्रया ज्ञानसंज्ञया' इति वचनस्य 'अनया पुष्पपूजा स्यात्तथा तर्पणपूजनम्' इत्यनेनोपसंहारात्पुष्पपूजायां तर्पणसाहित्यलाभ इत्याहुस्तत्र पुष्पतर्पणपूजनयोर्द्वयोरपि मूलविद्याकरणकत्वमात्रविधानात्कथमुपसंहार इति विचार्यम्। अस्तु सम्प्रदायादेव साहित्यप्राप्तिस्तथाऽपि साहित्यस्यैककालिकत्वरूपतया समानकालिकाङ्गत्वबोधने तद्वाक्यस्य पर्यवसानात्प्रधानभूतपुष्पपूजाबोधकपूजयामिपदस्यैव प्रयोगो न तर्पयामीत्यस्य। अत एव नव्यैरेव केवलतर्पणमधिकृत्योक्तम्—विद्यमानेऽपि पुष्पाक्षतसाहित्ये तर्पणोपसर्जनत्वेन तर्पणैकप्रयोजन-

कत्वेन स्वतन्त्रपूजात्वाभावान्न तर्पयामीति प्रयोगे पूजयामिपदसाहित्यमिति। किञ्च तर्पणमर्यादयेदं पूजावयवत्वात्पूजयतिनैव निर्देष्टुं शक्यम्। तथा च कल्पसूत्रम्—'सर्वचक्रदेवतार्चनानि वामकराङ्गुष्ठानामिकासन्दष्टद्वितीयशकलगृहीतश्रीपात्रप्रथमबिन्दुसहपतितैर्दक्षिणकराक्षतपुष्पक्षेपैः कुर्यात्' इति। न चास्य श्यामाप्रकरणे पाठान्न ललितापरत्वम्। एतदुत्तरत्र ललिताजापी नेक्षुदण्डं भक्षयेदित्यादिना ललितोपास्त्यङ्गानां कतिपयानां विधास्यमानतया ललिताप्रकरणस्योत्तरत्राप्यनुवृत्तेः। न च तथाऽप्यवान्तरप्रकरणेन तद्बाध इति वाच्यम्। असंकुचितसर्वपदश्रुत्यनुगृहीतवाक्येन तस्यापि बाधसम्भवात्। किञ्च तथा तर्पणपूजनमित्युक्तवाक्येऽपि तर्पणस्यापि पूजारूपत्वेन कीर्तनात्पूजयामिपदप्रयोगेणैवोभयलाभो ध्वनितः। अन्यथा 'पुष्पैः पूजयामि बिन्दुभिस्तर्पयामी'ति भवन्मते प्रयोग आपद्येत। तृप्तिकरणार्थकतर्पणपदस्य बिन्दुपरत्वसम्भवात्। मुख्यद्रव्यप्रतिनिध्युभयसाधारण्येन संस्कारादिविधीनां समानविध्यसिद्ध्यै कारणादिपदपरित्यागेन तर्पणपदप्रयोग इति सुवचत्वात्। अत एव तर्पणैः पूजयामीत्येव वा प्रयोगः स्यादिति यत्किञ्चिदेतत्। तस्माद्बंधपदानुग्रहाय ब्रह्माणीपादुकां पूजयामीत्येतावन्मात्रमेवोक्त्वा पुष्पं बिन्दुं च यथासम्प्रदायं प्रक्षिपेदिति युक्तम्। यदि पुनरित्थमालोच्यते—अत्युपहरमेवेदं ज्ञात्वा चक्रं समर्चयेदित्यधिकृत्य स्वाहा होम इत्यस्य पाठादर्चनाङ्गहोमस्यापि नैवेद्यमध्ये विधानात्तत्रायपाठोऽप्यर्चनाङ्गतर्पणस्यैवोपस्थापक इति तदाऽपि यत्र तर्पयेत्तेन योगिनीभि(रि)त्यादिना तर्पयतिधातुनैव तर्पणविधानं तत्रैव वा तर्पणाख्यस्वतन्त्रोपचार एव वाऽस्य विधिः प्रसरः। न च सम्प्रदायादिहापि तत्प्रसरः। पूजयतेः पुष्पप्रक्षेपमात्रवाचकत्वनिरासपूर्वकं बिन्दुप्रक्षेपसमुच्चयार्थकत्वबोधनेनान्यथासिद्धेऽ(द्ध)स्य सम्प्रदायस्य तदग(ङ्ग)मन्त्र(न्त्रे)पदान्तरप्रक्षेपबोधनेऽपि व्यापारकल्पने मानाभावात्। अत एव कल्पसूत्रे प्रकृते प्रकृतिभूतमहागणपत्यावरण एतावानेव मन्त्र उद्धृतः। यदाह—सर्वत्र देवतानामसु श्रीपूर्वं पादुकामुच्चार्य पूजयामीत्यष्टाक्षरं योजयेदिति। श्रीपूर्वपादुकोत्तरं पूजयामीति योजने यदष्टाक्षरं वाक्यं निष्पद्यते तद्देवतानामसु योजयेदित्यर्थः। एतेनोच्चार्येत्यन्तेन चतुरक्षर्या विधानात्तदुत्तरं पुनर्विधीयमानमष्टाक्षरं तर्पयामिपदसहितमेव सम्पद्यत इति शङ्का परास्ता। अत एव कल्पसूत्रे रश्मिमालाखण्डे ललिताङ्गपादुकामन्त्रोद्धारसूत्रावयवः स्वगुरुनामतोऽष्टाक्षरीत्युपपद्यते। अष्टाक्षरपदस्य पूजयामि तर्पयामीत्याकारकत्वेनेह परिभाषितत्वपक्षे पादुकामन्त्रे श्रीपादुकां पूजयामीत्यस्य ग्रहणानापत्तेः। तेन नामस्वित्यस्योच्चार्येत्यनेनान्वय इत्युत्प्रेक्षणमपि पादुकामन्त्रविरोधादेव परास्तमित्यलं विस्तरेण। परं तु ब्रह्माण्यादिपदोत्तरं मातृपदस्य प्रक्षेपो यथासम्प्रदायं निर्णयः। इति प्रथमावरणम्।

तन्त्रान्तरे मुद्राणामिहैव पूजनस्य कथनेऽपि प्रकृततन्त्रे तत्र त्रेधाविकल्पस्याष्टमे पटले वक्ष्यमाणत्वेन तया रीत्या सिद्धिमातृगणाभ्यामेवाऽऽवरणसमाप्तेः सुवचत्वात्। एतेन श्रुतौ प्रथमं चक्रं प्रकृत्य साणिमाद्यष्टकं भवति समात्रष्टकं भवति, सप्रकटं भवतीति गणद्वयस्यैव कीर्तनमुपपद्यते। ननु रेखाद्वयात्मकभूपुरपक्ष एवैतत्समञ्जसम्। एकरेखापक्षे तु सिद्धिमातृमुद्रागणानामेकस्यामेव रेखायामनन्यगतिकत्वात्पुनः पुनः पूजनं समञ्जसमेव। रेखात्रयगणत्रयपक्षे यथा-

संख्यन्यायेन निर्णयो युक्तः। रेखात्रयं गणद्वयमिति भवत्पक्षे तु गणद्वयपूजायाः स्थाननिर्णयानापत्तिः। यथासंख्यन्यायाभावात्। अन्यतमरेखाद्वयग्रहण आदिमध्ये मध्यान्त्य आद्यन्त्ये वा रेखे ग्राह्ये इत्यत्र विनिगमनाविरहः। चक्रन्यासे निर्णीतत्वादादिमध्ययोर्ग्रहणे तूपस्थित्वाविशेषान्मुद्रागणस्यापि तृतीयरेखायां पूजनापत्तिरिति चेत्, न, रेखात्रयमध्यवीथीद्वये सिद्धि(मातृ)गणयोः पूजने दोषाभावात्। यथासंख्यन्यायानुगुण्यात्। अत एवोक्तं सौभाग्यरत्नाकरे पूर्णाभिषेकप्रकरणे चतुरस्त्ररेखात्रयान्तरालगतवीथीद्वयस्थेषु सिद्धिदशकस्थानेषु ब्राह्म्याद्यष्टकस्थानेष्वित्यादि। न चैवं सति षोडशाष्टदलपद्मयोर्दलद्वयमध्यावकाशानामपि षोडशाष्टसंख्याकत्वाविशेषाद्वक्ष्यमाणदेवतापूजने स्थान सन्देहापत्तिरिति वाच्यम्। अत एव ज्ञापकाद्दलद्वयमध्येऽवकाशो न कार्य इति कल्पनात्। एतेन 'योऽस्मिन्यन्त्रे महेशानि केसराणि प्रकल्पयेत्' इत्यादिना भूतभैरवतन्त्रोक्तो निषेधोऽप्युपपद्यते। यदि पुनर्मूले सिद्धिगणे मातृगणे च द्वयोर्द्वयोरेव द्वारयोरनुवादात् तन्त्रराजसम्मतं द्विरेखमेव भूपुरं प्रकृततन्त्रकृतामिष्टमित्येवोच्यते तदा तन्त्रराजोक्तरीत्यैव रेखाद्वये गणद्वयं पूजयेत्। तयोश्च मध्य एकैको गण एवैतत्तन्त्ररीत्या प्रत्येकमावरणमित्यपि वक्ष्याम इत्यवधेयम्।।१६९-१७१।।

षोडशदले पूज्या देवताः

कामाकर्षणरूपां च बुद्ध्याकर्षणरूपिणीम्।
अहंकाराकर्षिणीं च शब्दाकर्षणरूपिणीम्॥१७२॥
स्पर्शाकर्षणरूपां च रूपाकर्षणरूपिणीम्।
रसाकर्षणरूपां च गन्धाकर्षणरूपिणीम्॥१७३॥
चित्ताकर्षणरूपां च धैर्याकर्षणरूपिणीम्।
स्मृत्याकर्षणरूपां च नामाकर्षणरूपिणीम्॥१७४॥
बीजाकर्षणरूपां च तथाऽऽत्माकर्षिणीं पराम्।
अमृताकर्षिणीं देवीं शरीराकर्षिणीं तथा॥१७५॥
षोडशारे महादेवि वामावर्तेन पूजयेत्।
मायालक्ष्मीकलाभिस्तु कलाषोडशकं त्विदम्॥१७६॥

हे महादेवि! कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहंकाराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्राकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, परा आत्माकर्षिणी, देवी अमृताकर्षिणी तथा शरीराकर्षिणीरूपा इन १६ नित्या की (कला की) षोडशार में 'ह्रीं श्रीं' एवं षोडश स्वर वर्ण द्वारा रचित मन्त्र से पूजा करनी होगी।।१७२-१७६।।

कामाकर्षणरूपां च बुद्ध्याकर्षणरूपिणीम्—भास्करराय कहते हैं कि रूपारूपिणी आदि शब्द श्लोक को पूरा करने हेतु व्यवहृत हैं। ये सब नामावयव नहीं है। नाम है—कामाकर्षिणी, बुध्याकर्षिणी आदि। **षोडशारे**—षोडशदल कमल में। सर्वाशापरिपूरक

चक्र। **वामावर्त्तेन**—विद्यानन्द अर्थ करते है—अप्रदक्षिणक्रमेण। अर्थात् षोडशदल के मध्य में देवी के अग्रदल से आरम्भ करके अप्रदक्षिण क्रम से। **मायालक्ष्मीकलाभिः**—माया ह्रीं। लक्ष्मी श्रीं। शिवानन्द तथा विद्यानन्द दोनों कला शब्द का अर्थ करते हैं—१६ स्वरवर्ण। **कलाषोडशकं**—भास्करराय कहते हैं कि कला अर्थात् इन सब देवियों का नाम। सम्प्रदायानुसार प्रत्येक नाम के अन्त में नित्या एवं तदनन्तर कला शब्द का योग करे। षोडशक पद की द्योतना है प्रत्येक देवी के मन्त्र में यथाक्रमेण एक-एक स्वरवर्ण युक्त होगा। भास्करराय के मत से इसका मन्त्र होगा—'ह्रीं श्रीं कामाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामि।' अन्य मन्त्र भी ऐसे ही होंगे। विद्यानन्द पूर्वोक्त 'कला' पद के पश्चात् 'देवी' पद एवं 'पादुका' पद के पूर्व 'श्री' पद का योग करते हैं। इस प्रकार से यह मन्त्र होगा—'ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणीनित्याकलादेवीश्रीपादुकां पूजयामि'। अन्य मन्त्र भी इसी तरह होंगे।।१७२-१७६।।

विशेष—१६ नित्याओं की अन्य तालिका भी है; जैसे—कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महानित्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, महानित्या, नीलपताकिनी, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी, विचित्रा तथा श्रीविद्या यह तालिका श्रीतत्त्वचिन्तामणि ग्रन्थ के पञ्चदशः प्रकाशानुसार है।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वाशापरिपूरकाभिधेये षोडशारे पूज्याः शक्तीराह—**कामाकर्षणेत्यादि पञ्चभिः। मायालक्ष्मीकलाभिरिति**। माया भुवनेश्वरीबीजम्। लक्ष्मी श्रीबीजम्। कला अकाराद्याः षोडश स्वराः। उच्चारक्रमः सुभगोदये लिखितः।।१७२-१७६।।

* अर्थरत्नावली *

षोडशारे····वाममार्गेणेति। अप्रदक्षिणतया। कोऽर्थः ? षोडशारे पूर्वदलादारभ्य वामावर्तेन पूजयेदित्यर्थः। **मायालक्ष्मीकलाभिरिति**। मायाबीजलक्ष्मीबीजषोडशस्वरैरित्यर्थः। कलाषोडशकं त्विदमिति। प्रतिदैवतं कलेतिपदं सम्बन्धनीयमिति भावः। नित्यापदमपि सर्वत्र योजनीयमिति मुखागमः। तद्यथा—ह्रीँ श्रीँ अँ कामाकर्षिणीनित्याकलादेवीश्रीपादुकां पूजयामीति। एवं क्रमेण सर्वत्र पूजयेदिति यावत्।।१७२-१७६।।

* सेतुबन्धः *

अथ षोडशदले पूजनीया देवता उद्दिशति। अत्र रूपा रूपिणीत्यादयः शब्दाः श्लोकपूरणार्था नाम्नोऽनर्थकत्वद्योतनार्था वा न पुनर्नामावयवाः। कामाकर्षिणीत्येतावन्मात्रमेव नामधेयम्। वामावर्तेनेति अप्रादक्षिण्येनेत्यर्थः। देव्यग्रदलमारभ्येति तु तन्त्रान्तरसिद्धोऽर्थः। चतुर्दशारप्रकरणे पश्चिमादेवेति वक्ष्यमाणमप्यत्र ज्ञापकम्। अत एव पूर्वदलमारभ्येति व्याख्याऽप्यसाध्वी। सम्प्रदायादिविरोधात्। वाममार्गेणेति क्वचित्पाठः। तत्पक्षेऽप्ययमेवार्थः। ये तु अर्थरत्नावलीकृत ईदृशा-

तत्र तत्रानुवादात्सुन्दरीपूजनं वाममार्गेणैव प्रशस्तं न दक्षिणमार्गेणेत्याहुस्ते मानाभावादुपेक्ष्या:। 'सव्यापसव्यमार्गस्था' 'दक्षिणादक्षिणाराध्या' इति ललितासहस्रनामविरोधाच्च। 'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्वा जायते' इत्यादि श्रुत्या नित्यस्य ऋणापाकरणस्य वाममार्गे विरहेण निन्दिततया मुक्तौ विलम्बेन च शिष्टानां तत्र निष्कम्पप्रवृत्त्ययोगाच्च। यदपि वीरद्रव्यकरणकं पूजनमेव वामो मार्ग इति व्यवहरन्ति तदपि तन्त्रानालोकनजनितभ्रमविलसितं दक्षिणमार्गार्चनेऽपि कारणादेरेव करणत्वात्। व्रीहियवयोरिव वैकल्पिकद्रव्यान्तरविधानाभावात्। गुडोदादीनां प्रतिनिधित्वेन मुख्यालाभ एव तत्राधिकारात्। 'शक्त: प्रथमकल्पस्य नानुकल्पं समाचरेत्' इति निषेधबलेन प्रथमाधिकारिण इतरानुष्ठानायोगात्। कस्तर्हि वामो मार्ग इति चेत्। सौभाग्यभास्करेऽस्माभिर्निर्णीत एवेति गृहाण। **मायालक्ष्मीकलाभिरिति**। मायालक्ष्म्यौ पूर्वोक्तं तारद्वयम्। तस्य पुन: कीर्तनं कलाभिर्मा बाधीत्येतदर्थम्। कलात: पूर्वोच्चारणलाभार्थं च। कलाशब्द इह षोडशसंख्याकस्वरपर इति वृद्धा:। **कलाषोडशकमिति**। कलेत्येतासां देवीनां नाम। तच्च सम्प्रदायान्नित्यापदपूर्वकम्। षोडशपदं यथासंख्यन्यायेनैकैकस्यां देव्यामेकैकमक्षरं क्रमेण योजयेदितिद्योतनार्थम्। तथा च 'ह्रीं श्रीं अं कामाकर्षिणीनित्याकलापादुकां पूजयामी'त्याद्याकारका मन्त्रा भवन्ति। केचित् तु कलापदोत्तरं देवीपदमपि योजयन्ति। तत्रामृताकर्षिणीं देवीमिति मूलस्थं देवीपदं ज्ञापकमित्यपि सुवचम्।।१७२-१७६।।

अष्टदले पूज्या देवता:

अनङ्गकुसुमां पूर्वे दक्षिणेऽनङ्गमेखलाम्।
पश्चिमेऽनङ्गमदनामुत्तरे मदनातुराम्।।१७७।।
अनङ्गरेखामाग्नेये नैर्ऋतेऽनङ्गवेगिनीम्।
अनङ्गाङ्कुशां वायव्य ईशानेऽनङ्गमालिनीम्।।१७८।।
अष्टपत्रे महापद्मवेष्टिते वै प्रपूजयेत्।

पूर्व में अनंगकुसुमा, दक्षिण में अनंगमेखला, पश्चिम में अनंगमदना, उत्तर में अनंगमदनातुरा, अग्निकोण में अनंगरेखा, नैर्ऋत्यकोण में अनंगवेगिनी, वायुकोण में अनङ्गाङ्कुशा तथा ईशान कोण में अनङ्गमालिनी—इस प्रकार महापद्म, वेष्टित अष्टदल कमल के अष्टदल में इन देवियों का पूजन करे।।१७७-१७८।।

पूर्वे—पूर्वादि दिङ्निर्णय जैसे १६६-१६८ संख्यक श्लोकों में हैं, उसी तरह करना होगा। **अष्टपत्रे**—अष्टदल पद्म के अष्टपत्र। यह है—सर्वसंक्षोभक चक्र। **महापद्मवेष्ठिते**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—षोडश दल पद्म के अन्तर्गत। आलोच्य पद 'अष्टपत्रे' पद का विशेषण होने से सप्तम्यन्त हो गया। भास्करराय के मत से पूजामन्त्र है—'ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमापादुकां पूजयामि'। अन्य मन्त्र भी ऐसे ही होंगे।।१७७-१७८।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

सर्वसंक्षोभणाभिधेयेऽष्टारे पूज्याः शक्तीराह—**अनङ्गकुसुमामित्यादि**।।१७७-१७८।।

※ अर्थरत्नावली ※

अनङ्गकुसुमां पूर्व इति। अत्रापि पूर्व(ादि)दिग्(वि)भागः पूर्ववदेव।।१७७-१७८।।

※ सेतुबन्धः ※

अथाष्टदले पूजनीया देवता उपदिशति। महापद्मवेष्टिते षोडशदलपद्मान्तर्गतेऽष्टपत्रे। 'ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमापादुकां पूजयामी'त्यादयो मन्त्राः। इति तृतीयावरणम्।।१७७-१७८।।

चतुर्दशारचक्रे पूज्या देवताः

सर्वसंक्षोभिणीं शक्तिं सर्वविद्राविणीं तथा ।।१७९।।
सर्वाकर्षणशक्तिं च सर्वाह्लादनकारिणीम् ।
सर्वसंमोहिनीं शक्तिं सर्वस्तम्भनकारिणीम् ।।१८०।।
सर्वजम्भनशक्तिं च तथा सर्ववशङ्करीम् ।
सर्वरञ्जनशक्तिं च सर्वोन्मादनरूपिणीम् ।।१८१।।
सर्वार्थसाधनीं शक्तिं सर्वसम्पत्तिपूरिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं शक्तिं सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीम् ।।१८२।।
वामावर्तक्रमेणैव पश्चिमादेव दक्षिणम् ।
गृहीत्वा पूजयेदेता देवीस्त्रिभुवनेश्वरीः ।।१८३।।

सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादकारिणी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तम्भनकारिणी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वरञ्जनी, सर्वोन्मादरूपिणी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी तथा सर्वद्वन्द्वक्षयकरी—ये चतुर्दश शक्तियाँ हैं। इन भुवनेश्वरी देवियों के पश्चिम से दक्षिण में वामावर्त्त क्रम से पूजा करनी होगी। ये देवियाँ चर्तुशार चक्र में पूजनीया हैं। इस चक्र का नाम है—सर्वसौभाग्यदायक चक्र।।१७९-१८३।।

पश्चिमादेव दक्षिणे—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—पश्चिम कोण से आरम्भ करके दक्षिण दिक् का अवलम्बन करे। अर्थात् पूजक पश्चिमाभिमुखी होकर पूजा करने पर देवी के पृष्ठदेश से आरम्भ करके देवी के दक्षिण दिक् को ग्रहण करे। पूजक जब पूर्वाभिमुख होकर पूजा करे, तब देवी के सम्मुख दिक् से प्रारम्भ करके दक्षिण दिक् ग्रहण करके पूजा करे।

भास्करराय इस मत को भ्रान्त कहते हैं। उसके मत से पूजा तथा पूजक का मध्यवर्त्ती होगा पश्चिम। इस प्रकार पश्चिम से होने पर सर्वत्र ही एकरूप नियम पश्चिम निर्दिष्ट होगा। विद्यानन्द कहते हैं 'सर्वसंक्षोभिणी शक्ति' में। यहाँ इस शक्ति शब्द का प्रयोग करने से

सभी मन्त्र 'शक्तिपादुकां पूजयामि' ऐसे होंगे। मन्त्र होगा—'ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिणीशक्तिपादुकां पूजयामि'। अन्यान्य मन्त्र भी ऐसे ही होंगे।।१७९-१८३।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

सर्वसौभाग्याभिधेये चतुर्दशारे पूज्याः शक्तीराह—**सर्वसंक्षोभिणी शक्तिरित्यादि**।

❋ अर्थरत्नावली ❋

वामावर्तेत्यादि दक्षिणं गृहीत्वेत्यन्तस्यायमर्थः—चतुर्दशारे वामावर्तेन पश्चिमकोणादारभ्य दक्षिणमवलम्ब्य पूजयेदित्यर्थः। अयमर्थः—पश्चिमाभिमुखपूजायां देवीपृष्ठादारभ्य देवीदक्षिणं गृहीत्वा पूजयेत्। पूर्वाभिमुखपूजायां देवीपुरत आरभ्य देवीदक्षिणं गृहीत्वा पूजयेदिति यावत्। **सर्वसंक्षोभिणी शक्तिरिति**। शक्तिशब्दप्रयोगाच्छक्तिपादुकां पूजयामीति सर्वत्र।।१७९-१८३।।

❋ सेतुबन्धः ❋

अथ चतुर्दशारचक्रे पूजनीया देवता आह। पश्चिमादेव्यग्रमारभ्य। ल्यब्लोपे पञ्चमी। दक्षिणं गृहीत्वा स्वदाक्षिणपूर्वादिक्रमेण, अप्रादक्षिण्येनेति तु पर्यवसितोऽर्थः। ये तु पश्चिमाभिमुखपूजायां देवीपृष्ठादारभ्य देवीदक्षिणं गृहीत्वा पूजयेत्। पूर्वाभिमुखपूजायां देवीपुरत आरभ्य दक्षिणं गृहीत्वा पूजयेदिति व्याचक्षते। तेषां महान्प्रमादः। इह 'पूज्यपूजकयोर्मध्यं प्रतीची' इति नियमस्य पूर्वमुक्तत्वेन सर्वत्रैकरूप्यसम्भवात्।।१७९-१८३।।

बहिर्दशारचक्रे पूज्या देवताः

सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा।
सर्वप्रियङ्करी चापि सर्वमङ्गलकारिणी ।।१८४।।
सर्वकामप्रदा देवी सर्वसौभाग्यदायिनी।
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी ।।१८५।।
सर्वाङ्गसुन्दरी देवी सर्वदुःखविमोचिनी।
तथैव देवदेवेशि पुनरेवाऽऽद्यविद्यया ।।१८६।।
द्वितीयावरणे देवि देवीदशकमर्चयेत्।

हे देवि! सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमङ्गलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वसौभाग्यदायिनी, सर्वमृत्युप्रशमनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वाङ्गसुन्दरी तथा सर्वदुःखविमोचिनी—इन १० देवियों की पुनः उसी प्रकार से बहिर्दशार में आद्य विद्या द्वारा पूजा करनी होगी।।१८३-१८५।।

तथैव—उसी प्रकार अर्थात् वामावर्त्त क्रमेण, पश्चिम से प्रारम्भ करके दक्षिण दिशा पकड़े। **आद्यविद्यया**—भास्करराय के मत से आद्यविद्या अर्थात् 'ह्रीं श्रीं' द्वारा। **द्वितीयावरणे**—भास्करराय के मत से संहारक्रम में बहिर्दशार के द्वितीयावरण में।

वहिर्दशार का नाम है—सर्वार्थसाधक चक्र। भास्करराय के निर्दिष्ट मतानुसार मन्त्र (पूजामन्त्र) है—'ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदे देवीपादुकां पूजयामि'। अन्यमन्त्र भी ऐसे ही होंगे।।१८४-१८६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वार्थसाधकाभिधेये द्वितीयदशारे पूज्याः शक्तीराह—**सर्वसिद्धिप्रदेत्यादि।** आद्यविद्यया लक्ष्मीविद्यया।।१८४-१८६।।

* अर्थरत्नावली *

तथैवेत्यारभ्य आद्यविद्ययेत्यन्तस्यायमर्थः—पश्चिमादारभ्य प्रदक्षिणतया दक्षिणं गृहीत्वा पूर्ववत् प्रथमदशारे मायालक्ष्मीबीजाभ्यां पूजयेदिति।।१८४-१८६।।

* सेतुबन्धः *

अथ बहिर्दशारचक्रे पूजनीया देवता उपदिशति। अत्र सर्वसिद्धिप्रदेत्यादिभिः प्रथमान्तैः पदैर्गणयित्वा, इत्याकारकं यद्देवीदशकं तदर्चयेदित्यन्वयः। तथैव वामावर्तेनैव। आद्यविद्यया मन्त्रान्तरावयवत्वेनाऽऽदिभाग एव निविशमानया द्वितार्या न तु करशुद्धिकर्या बालया वेत्यर्थ इति भ्रमितव्यम्। तत्प्रकरणस्य विच्छिन्नत्वेन तदनुपस्थितेः। पुनरस्याः कथनं तु तन्त्रान्तरोक्तैर्वासनावसरे ज्ञापयिष्यमाणैर्णकारादिवर्णरूपैर्मन्त्रैर्द्वितारी मा बाधीत्येतदर्थम्। तेनास्मादेव ज्ञापकात्सर्वत्र तन्त्रान्तरोक्तमातृकायोग आवश्यक इति ध्वनितम्। **द्वितीयावरण इति।** 'एवं सिध्यति देवेशि सर्वचक्रं मनोहरम्' (१.७७) इतिपूर्वोक्तश्लोके सर्वचक्रपदेन मन्वस्रादिबिन्द्वन्तचक्रसमूहस्यैव परामृष्टत्वात्तत्र संहारक्रमेण बहिर्दशारस्यैव द्वितीयत्वादित्थमुक्तिः। एतेनोत्तरचक्रस्यान्तर्दशारस्य तृतीयत्वेन करिष्यमाणो निर्देशोऽपि व्याख्यातः। नन्वनया रीत्या बहिरन्तर्दशारयोर्द्वितीयतृतीयचक्रत्वोपपत्तावपि द्वितीयतृतीयावरणत्वं नोपपद्यत इति चेत्। अत्र मौनतुल्यमेव व्याचक्षते प्राञ्चः। वयं तु ब्रूमः—नवावरणमर्चनमिदमिति तु तन्त्रेषु घण्टाघोषः। तानि चाऽऽवरणानि पुरादिबिन्द्वन्तचक्रस्थदेवतारूपाणीति बहवः। तदनुपपन्नम्। बिन्दुदेवतायाः प्रधानत्वेन स्वस्य स्वावरणत्वायोगात्। न चैवं सति तस्या नवमयोगिनीत्वं बिन्दोर्नवमचक्रत्वं च कथमिति शङ्क्यम्। योगिनीत्वावरणदेवतात्वचक्राधिष्ठातृत्वानां समनियतत्वे मानाभावात्। अत एव षडङ्गयुवतिदेवता एव प्रथमावरणमिति ज्ञानार्णवानुयायिनो नव्याः। एतत्तन्त्रे तु भूपुरे रेखाद्वयदेवतागणयुगलस्य पार्थक्येन गणनया बिन्दुचक्रानन्तर्भावेनैव नवावरणसंख्योपपद्यते। वृत्तत्रये केरलसम्प्रदाये कासाञ्चिद्देवतानां पृथक्पूजनदर्शनात्तदभिप्रायेण नवाऽऽवरणानीत्यपि केचित्। आयुधदेवतानां पार्थक्येनाऽऽवरणत्वकल्पनया वा सूपपादम्। ऋजुविमर्शिन्याम् 'आयुधावरणपूजामाह' इत्यवतारिकावाक्ये प्रयोगदर्शनात्। अनयाऽपि रीत्याऽऽवरणेषु प्रथमत्वादेरनियतत्वद्योतनार्थं मन्वस्रस्यैव प्राथम्ये बहिर्दशारादेर्द्वितीयत्वाद्युपपत्तिरित्याशयेन द्वितीयावरण इत्युक्तिः। यद्वा चतुर्थपटलान्ते संक्षेपार्चनप्रकारस्य मन्वस्रादिबिन्द्वन्तार्चनपक्षस्यापि कथनेन तदभिप्रायेणेयमुक्तिः। तेनाऽऽवरणपूजासमर्पणमन्त्रे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम्।।

इत्यत्रामुकपदस्थाने तत्तदावरणसंख्यापदस्य प्रथमद्वितीयादिरूपस्य निवेशनीयतया भूपुरादिगणनया चतुर्थस्यापि मन्वस्रस्य संक्षेपार्चने प्रथमत्वात्प्रथमादिशब्दा एवोहनीयत्वेन ध्वनिता इति द्रष्टव्यम्।।१८४-१८६।।

अन्तर्दशारचक्रे पूज्या देवताः

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यप्रदा तथा।।१८७।।
सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा।।१८८।।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी।
पुनरेव महेशानि सर्वेप्सितफलप्रदा।।१८९।।
दशैव देवताः ख्याताः स्वनामसदृशोदयाः।
एवमेता महादेव्यो देवि सर्वार्थसिद्धिदाः।।१९०।।
पूर्वोक्तेन विधानेन तृतीयावरणेऽर्चयेत्।

सर्वज्ञा, सर्वशक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी तथा सर्वेप्सितफलप्रदा—ये दश देवता अपने-अपने नाम के समान उद्योगकारिणी हैं। हे देवि! ये महादेवीगण सर्वार्थसिद्धिप्रदा हैं। पूर्वोक्त अन्तर्दशार में इनकी पूजा होती है।।१८७-१९०।।

स्वनामसदृशोदयाः—भास्करराय के अनुसार स्वनाम अर्थात् अपना नाम, उसके समान उदय अर्थात् जिनका उद्योग है। जैसे सर्वज्ञा नाम के सदृश उद्योग है—सर्वज्ञानवत्ता, ऐसी उद्योगशालिनी। **पूर्वोक्तेन विधानेन**—पश्चिम से आरम्भ कर वामावर्त्त क्रमेण दक्षिण दिक् पकड़े। **तृतीयावरणे**—चतुर्दशार का प्रथम आवरण पकड़कर संहार क्रम में तृतीयावरण है—अन्तर्दशार चक्र। इसका नाम है—सर्वरक्षाचक्र। भास्करराय निर्दिष्ट क्रम से पूजाक्रम—'ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादेवीपादुकां पूजयामि'। अन्य मन्त्र भी ऐसे ही होंगे।।१८७-१९०।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

सर्वरक्षाकराभिधेये प्रथमदशारे पूज्याः शक्तीराह—**सर्वज्ञेत्यादि**। तृतीयावरणे चतुर्दशारद्वितीयदशारापेक्षया।।१८७-१९०।।

※ अर्थरत्नावली ※

पूर्वोक्तेनेति। तृतीयावरणे द्वितीयदशारेऽपि पश्चिमादारभ्येत्यादि ज्ञातव्यमित्याशयः।

* सेतुबन्धः *

अथान्तर्दशारदेवता आह। स्वमात्मीयं यन्नाम तत्सदृश उदय उद्योगो यासां ताः स्वनामसदृशोदयाः। इदं च पूर्वोक्तरावरणदेवतासु सर्वासु यथायोग्यमन्वेति। नाम्नो यादृशार्थप्रतिपादकत्वं तादृशार्थविषयकोद्योगशालिन्य इति यावत्। पूर्वोक्तेन वामावर्तद्वितारीयोगादिरूपेण विधानेन प्रकारेण। तृतीयावरणे, अणिमादितो गणनया विस्तृतार्चने सप्तमेऽपि चतुर्दशारादिसंक्षिप्तार्चने तृतीयात्मके।।१८७-१९०।।

अष्टाश्रे पूज्या देवताः

मध्यचक्रे महेशानि शृणु पूजां यथाक्रमम्।।१९१।।
वशिनीमपि कामेशीं मोदिनीं विमलामपि।
अरुणां जयिनीं चापि सर्वेशीं कौलिनीमपि।।१९२।।
एकैकं देवतानाम प्रोक्तबीजसमन्वितम्।
अधस्ताद्देवदेवेशि वामावर्तेन पूजयेत्।।१९३।।
यावद्दक्षिणमार्गं तु रक्तपुष्पैर्महेश्वरि।

हे महेशानि! मध्य चक्र की पूजा कहता हूँ, श्रवण करो। वशिनी, कामेशी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेशी तथा कौलिनी देवताओं के नाम के पूर्व पूर्वोक्त बीज का योग करके मन्त्राक्षर करे। हे देवदेवेशि! उस मन्त्र से रक्तपुष्प द्वारा देवी के सामने से आरम्भ करके वामावर्त्तक्रम से दक्षिण-पर्यन्त इनकी पूजा करनी होगी।।१९१-११९३।।

मध्यचक्रे—अष्टकोण चक्र। यह है—सर्वरोगहर चक्र। **एकैकं देवतानाम**—वशिनी आदि एक-एक देवता का नाम। **प्रोक्तबीजसमन्वितम्**—पूर्वोक्त बीज से समन्वित। श्लोक ८७ से १०२ पर्यन्त ये बीज विवृत हैं। वशिनी आदि प्रत्येक का बीज स्वतन्त्र है। **अधस्तात्**—शिवानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि इसका अर्थ है—वशिनी आदि नाम पूर्वोक्त बीज के बाद रहेगा। जैसे प्रथम वर्ग के सब वर्ण, तदनन्तर बीज, तदनन्तर देवता का नाम। प्रत्येक देवता के लिये यही होगा। जैसे वशिनी का पूजामन्त्र होगा—'ह्लीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनीवाग्देवतापादुकां पूजयामि'। विद्यानन्द अधस्तात् पद की व्याख्या में कहते हैं कि इसका अर्थ है—देवी के सामने से वामावर्त्त क्रमेण दक्षिण-पर्यन्त पूजा करे।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वरोगहराभिधेये आद्याष्टारे पूज्याः शक्तीराह—**मध्यचक्रे महेशानीति**। मध्यचक्रे अष्टकोणे। देवतानां वशिन्यादीनां नाम। प्रोक्तबीजसमन्वितम् 'उद्धरेत् प्रथमम्' (१.८९) इत्युक्तबीजाष्टकसमन्वितम्। अधस्तादित्यस्यायमर्थः—एकैकं वशिन्यादीनां नाम यथाऽधस्ताद्भवति, तथा पूर्वोक्तबीजसंयुतमिति। अयमत्र क्रमः—प्रथमं वर्गः, तदनन्तरं बीजम्, तदनु देवतानामेति। एवं सुभगोदयेऽस्माभिः परामृष्टम्।।१९१-१९३।।

※ अर्थरत्नावली ※

मध्यचक्र इति नवयोनिचक्र इत्यर्थ:। अधस्तादित्यत्र देवीपुरत आरभ्य। वामावर्तेन दक्षिणान्तं पूजयेत्। अत्र पूर्वादिकल्पना नास्तीति भाव:।।१९१-१९३।।

※ सेतुबन्ध: ※

अथाष्टास्रदेवतापूजामाह। चक्रोद्धारदशायां हि 'शक्त्या शक्तिं विनिर्भिद्य भूयो वह्निपुरेण ते। सम्पुटीकृत्य' (१.३१) इत्यनेन नवयोनिचक्रमादावुद्धृत्य तत्परितस्तत्तत्परितश्चान्यानि चक्राण्युद्धृतानि। अत: सर्वमध्यस्थत्वादष्टकोणमेव मध्यचक्र इत्यनेन कथ्यते। तत्र वशिन्यादिका: शक्ती: पूजयेदिति यत्तां पूजां शृण्वित्यन्वय:। प्रतिज्ञान्तरं च तत्तन्मन्त्रोद्धारस्य बहुग्रन्थान्तरितत्वेन तत्स्मारणाय सावधानीकर्तुम्। अधस्तात्पूर्वग्रन्थे प्रोक्तानि यानि बीजानि तै: समन्वितमित्यर्थ:। एकैकं देवतानाम स्वस्वाधस्ताद्भागे स्वस्वबीजसमन्वितमिति रीत्येहैवाधस्तात्पदं योजयन्ति केचित्। परे तु परत्रैव योजयन्तोऽधस्ताद्देवीपुरत आरभ्य वामावर्तेन दक्षिणान्तं पूजयेत्। अत्र पूर्वादिदिक्कल्पना नास्तीति भाव इति व्याचक्षते। रक्तपुष्पैरिति त्वनुवादमात्रमिति प्राचाम् आशय:। वाग्देवतापूजायां रक्तपुष्पावश्यकताद्योतनायेयमुक्तिरिति तु युक्तम्।।१९१-१९३।।

अष्टकोण-त्रिकोणमध्ये आयुधपूजा

पश्चिमोत्तरपूर्वाशादक्षिणाशाक्रमेण तु ।।१९४।।
चक्रमध्ये चतुष्के तु क्रमेण परिपूजयेत् ।
कामबाणान्महेशानि धनुस्तत्पाशमेव च ।।१९५।।
जम्भमोहवशस्तम्भपदै: सहितमङ्कुशम् ।

हे महेशानि! अष्टकोण तथा त्रिकोण चक्र के मध्यवर्त्ती स्थल में पश्चिम, उत्तर, पूर्व तथा दक्षिण—इन दिक्चतुष्टय में कामबाण, कामधेनु, कामपाश तथा काम अंकुश- रूप आयुधचतुष्क के यथाक्रम से बाण के साथ जम्भ, धनुष के साथ मोह, पाश के साथ वश तथा अंकुश के साथ स्तम्भ का योग करे।।१९४-१९५।।

चक्रमध्ये—भास्करराय के मत से अष्टकोण चक्र तथा त्रिकोण चक्र के मध्य में। **कामबाणान्**—कामेश्वर के बाणसमूह। भास्करराय ने 'कामश्च कामी च इति कामौ, तयो: बाणान्' काम बाण का इस तरह से समास करके व्याख्या करने से कहा है कि कामेश्वर का बाण एवं कामेश्वरी का बाण—यह दोनों निर्दिष्ट होता है। धनु इत्यादि आयुध के साथ भी काम शब्द युक्त होता है। इस प्रकार संक्षेप में यही व्याख्या होगी। अर्थात् कामेश्वर के धनु तथा कामेश्वरी का धनु यही होगा। **धनुस्तत् पाशमेव च**—भास्कराचार्य के मत से यहाँ चकार के प्रयोग द्वारा कामेश्वरी के आयुध की पूजा सूचित है। 'कामबाणान् महेशानि' से आरम्भ करके 'सहितमङ्कुशम्' तथा जो छ: श्लोकों की रचना हुई है, उसमें आयुध-पूजन का मन्त्र संकलित है। इस सम्बन्ध में भास्करराय प्रथमत: परशुरामकल्पसूत्रोक्त

आयुध-पूजन के मन्त्रों का उल्लेख करते हैं। वह इस प्रकार है—ह्लीं श्रीं यां रां लां वां सां सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरीवाणेभ्यो नमः सर्वजम्भनबाणशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्लीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः सर्वजम्भनबाणशक्तिपादुकां पूजयामि। परशुरामकल्पसूत्र के वृत्तिकार रामेश्वर-कथित रीति के अनुसार अन्य मन्त्र इस प्रकार है—ह्लीं श्रीं थं धं सर्वसम्मोहनाय धनुषे नमः सर्वसम्मोहनधनुःशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्लीं श्रीं ह्लीं आं सर्ववशीकरणाय पाशाय नमः सर्ववशीकरणपाशशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्लीं श्रीं क्रों सर्वस्तम्भनाय अङ्कुशाय नमः अङ्कुशशक्तिपादुकां पूजयामि। थं शक्ति-धनुर्बीज है। धं शिव-धनुर्बीज है। ह्लीं शक्ति-पाशबीज है। आं शिव-पाश-बीज है। क्रों दोनों का अंकुशबीज है। (द्रष्टव्य—परशुराम कल्पसूत्र, रामेश्वरकृत वृत्ति)। भास्करराय के मतानुसार धनुरादि आयुध का पूजामन्त्र भी द्विविध है। जैसे—ह्लीं श्रीं थं सर्वसम्मोहनाय कामेश्वरीधनुषे नमः सर्वसम्मोहनधनुःशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्लीं श्रीं धं सर्वसम्मोहनाय कामेश्वरधनुषे नमः सर्वसम्मोहनधनुःशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्लीं श्रीं ह्लीं सर्ववशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः सर्ववशीकरणपादुकां पूजयामि, ह्लीं श्रीं आं सर्ववशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः सर्ववशीकरणपाशशक्तिपादुकां पूजयामि। ह्लीं श्रीं क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वरी अङ्कुशाय नमः सर्वस्तम्भन अङ्कुशशक्तिपादुकां पूजयामि, ह्लीं श्रीं क्रों सर्वस्तम्भनाय कामेश्वर अङ्कुशाय नमः, सर्वस्तम्भन अङ्कुशशक्तिपादुकां पूजयामि। उक्त मन्त्र में 'वाणशक्तिपादुकां, धनुःशक्तिपादुकां' इत्यादि स्थल पर कोई-कोई 'वाणशक्तिश्रीपादुकां, धनुःशक्तिश्रीपादुकां' इत्यादि का प्रयोग करते हैं। इस सम्बन्ध में टीकाकार रामेश्वर का मन्तव्य है कि किसी-किसी के मतानुसार जहाँ देवता का नाम है, केवल वहीं पर 'श्रीपादुकां पूजयामि' इस अष्टाक्षरी को युक्त करते हैं। यह ठीक नहीं है। शास्त्र में जहाँ 'देवतानामसु' यह निर्देश है, वहाँ उसका अर्थ होगा—देवतानाम से घटित मन्त्र में। इस व्याख्यानुसार देवता के आयुध मन्त्र में भी अष्टाक्षरी विहित ही है। किम्बहुना, इन सब मतभेद के स्थान पर अपने-अपने गुरु तथा सम्प्रदाय का अनुसरण करना ही उचित है।।१९४-१९५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

आयुधावरणपूजामा:ह—पश्चिमोत्तरेत्यादि सहितमङ्कुशमित्यन्तेन। अयमर्थः—महायोनिसर्वानन्दमयस्थानगतमहादेवतायाः षडङ्गावरणाद् बाह्यदेशे पश्चिमोत्तरपौरस्त्यदक्षिणाशाचतुष्टये जम्भमोहवशस्तम्भपदचतुष्टयोपेतं बाणधनुःपाशाङ्कुशाख्यमायुधचतुष्टयं सुभगोदयोक्तक्रमेण पूजयेदिति।।१९४-१९५।।

* अर्थरत्नावली *

पश्चिमोत्तरपूर्वेत्यादि। अष्टकोणत्रिकोणमध्यचतुष्के पश्चिमादिदक्षिणान्तं पूजयेत्। अत्रापि यथादिक्क्रममेव। जम्भमोहेत्यादिनैतदभिप्रेतम्—जम्भपदं बाणेषु, मोहपदं धनुषि, वशपदं पाशे, स्तम्भपदमङ्कुशे योजयेदित्यर्थः।।१९४-१९५।।

❋ सेतुबन्धः ❋

अथाष्टकोणत्रिकोणमध्यवीथ्यां चतुर्दिक्ष्वायुधपूजामुपदिशति। पश्चिमोत्तरपूर्वेषु प्रत्येकमाशापदस्यान्वयः। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात्। चक्रयोर्मध्यं चक्रमध्यम्। उपस्थितत्वात्पूर्वोत्तरयोरष्टकोणत्रिकोणयोर्मध्यावकाश इत्यर्थः। कामस्य कामेश्वरस्य बाणान्। तत्पाशं कामेशपाशम्। तत्रायपाठाद्धनुरङ्कुशं च कामेश्वरसम्बन्ध्येवेह परामृश्यते। परं तु चकारात्कामेश्वर्या अप्यायुधानीह पूज्यानि। उत्तरतन्त्रे आयुधान्युपक्रम्य 'त्वदीयाश्च मदीयाश्च पुंस्त्रीवश्यविधायिनः' (८.१६८) इत्युक्तेर्वासनाप्रकरणे—'आश्रयाश्रयिभेदेन अष्टधाभिन्नहेतिमत्' (६.५४) इत्युक्तेश्च।

कामयोर्बाणांस्तयोः पाशमित्येव वा विग्रहः। कामश्च कामी चेति विग्रहे पुमान्स्त्रियेत्येकशेषः। मन्त्रानुद्धरति—**जम्भेति**। जम्भादिभिश्चतुर्भिः पदैः सहितं यथा तथा पूजयेत्। साहित्यं च मन्त्रद्वारकमेव। तत्प्रकारो यथा कल्पसूत्रे—'बाणबीजान्युच्चार्य सर्वजम्भने(जृम्भणे)भ्यो बाणेभ्यो (नमः) धं (थं) सर्व(सं)मोहनाय धनुषे (आं) ह्रीं सर्ववशीकरणाय पाशाय क्रों सर्वस्तम्भनायाङ्कुशाय नम इति महात्र्यस्रबाह्यचतुर्दिक्षु बाणाद्यायुधपूजा' इति। उत्तरतन्त्रे—

त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जार्णान्ताः सुरेश्वरि।
द्वितीयस्वरसंयुक्ता एते बाणास्त्वदीयकाः।। (८.१६९)

इति शक्तिबाणबीजानामुद्धारादेकदेशज्ञापकात्सर्वायुधेषु तत्तद्बीजयोग आवश्यक इति ध्वन्यते। तत्र पद्धतिकाराः तावच्छिवशक्त्यायुधबीजानि समुच्चित्याऽऽदावुच्चार्य सर्वजम्भनेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नम इत्यादिरीत्या मन्त्रान्कल्पयन्तस्तन्त्रेणाऽऽयुधयोः पूजां लिखन्ति। तत्र कामेश्वरपदयोः पुमान्स्त्रियेत्येकशेषो दुर्वारः। युक्तं तु प्रतिप्रधानं गुणावृत्तेर्देवताभेदान्मन्त्रभेदेन पृथक्पूजनम्। अत एव कल्पसूत्रे धनुरादिपदेष्वेकवचनानि संगच्छन्ते। ततश्च 'ह्रीं श्रीं यां रां लां वां सां सर्वजम्भने(जृम्भणे)भ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः, ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्वजम्भने(जृम्भणे)भ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः' इत्याद्याकारका मन्त्रा भवन्ति। इदं च कल्पसूत्रानुगुण्येनोक्तम्। वस्तुतस्तु (स्वतन्त्रानुसारेण आदौ द्वितारी ततो दशबाणबीजान्युच्चार्य 'सर्वजृम्भण)बाणशक्ति(श्री)पादुकां पूजयामि' इत्याद्यन्त्याकारका एव। उत्तरतन्त्रे—

आयुधा अपि रक्ताभाः स्वायुधोज्ज्वलमस्तकाः।
वरदाभयहस्ताश्च पूज्या ध्यातृफलप्रदाः।। (८.१६७-१६८)

इत्यत्र स्त्रीत्वेन निर्देशात्। द्वितारयोगोऽपि शक्तिदेवत्यत्वादेवाऽऽवश्यकः सम्पद्यते। अथवा, एतत्पक्षे कल्पसूत्रोक्तमन्त्रेण सहास्य विकल्पापत्तिः। स चायुक्तः। कल्पस्य तन्त्रमूलकत्वेनैव प्रामाण्यात्। आम्नायानुपक्रम्यैव तस्य प्रवृत्तेः। मूलिमूलयोश्च विरोधे समबलत्वाभावेन विकल्पायोगात्। न च कल्पस्यापि तन्त्रत्वेनैव प्रामाण्यम्। कल्पसूत्राधिकरणविरोधात्। न च मूलित्वात्कल्पस्य मूलविरोधेऽननुष्ठानम्। मूलमन्त्रस्य कल्प्यत्वेन मूलिमन्त्रस्य क्लृप्तत्वेन वैषम्यात्। अत एव न राणकोक्तप्रवर्ग्यविधिनिषेधन्यायेन समबलत्वम्। अनुष्ठेयपदार्थस्य स्मारकाकाङ्क्षायां क्लृप्तस्यैव झटित्यन्वये सति कल्पनामूलोच्छेदेन कल्प्यस्याऽऽत्मलाभाभावात्। तस्मात्क्लृप्तः कल्पसूत्रमन्त्र

एव प्रयोज्यः। न च वाणमन्त्रे वहुवचनस्य बाणदशकपरत्वसम्भवेऽपि पाशादिमन्त्रेष्वेकवचनस्य कथं पाशद्वये प्रवृत्तिः। पाशाधिकरणन्यायेन लक्षणया द्वित्वबोधसम्भवात्। आवृत्तिरेव वा मन्त्रस्यास्तु। प्रतिप्रधानन्यायात्। सम्प्रतिपन्नदेवताकत्वात्तन्त्रेण वा द्वयोः पूजा। देवताशरीरे पाशत्वमात्रस्यैव निवेशात्। कामेश्वरादिसम्बन्धस्य तत्रानिवेशादित्यादि न्यायविद्भिरूह्यम्।

त्रिकोणे पूज्याः शक्तयः

सर्वमध्ये त्रिकोणे च पूजयेन्मूलविद्यया ॥१९६॥
केवलाक्षरभेदेन समस्तव्यस्तयेश्वरि ।
कामेश्वरीमग्रकोणे वज्रेशीं दक्षिणे तथा ॥१९७॥
भगमालां तथा वामे मध्ये त्रिपुरसुन्दरीम् ।

हे ईश्वरि! बिन्दुचक्र में समस्त मूलविद्या द्वारा महात्रिपुरसुन्दरी की और त्रिकोण चक्र में व्यस्त मूलविद्या द्वारा कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भगमालिनी की पूजा करनी होगी। त्रिकोण के अग्रभाग में कामेश्वरी, दक्षिण में वज्रेश्वरी, वामकोण में भगमालिनी तथा बिन्दु में महात्रिपुरसुन्दरी की (इस क्रम से) पूजा करे।।१९६-१९७।।

सर्वमध्ये—बिन्दुचक्र में। इसका नाम है—सर्वानन्दमय चक्र। **त्रिकोणे**—त्रिकोण चक्र में। इसका नाम है—सर्वसिद्धिप्रद चक्र। **मूलविद्यया**—पञ्चदशी श्री विद्या द्वारा। **समस्तया मूलविद्यया**—भास्करराय 'समस्त' शब्द का अर्थ करते हैं—पञ्चदशी श्रीविद्या। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—'बीजत्रयोपेतया' अर्थात् बीजत्रय-समन्विता द्वारा। कोई-कोई 'समस्त' शब्द का अर्थ करते हैं—तुरीय कूट अर्थात् चतुर्थ कूट। इसका यहाँ अर्थ होगा—चतुर्थ कूटोपेता पञ्चदशी श्रीविद्या द्वारा अर्थात् चतुष्कूटा श्रीविद्या द्वारा। **व्यस्तया मूलविद्यया**—त्रिकूटोपेता मूल विद्या का त्रिकूट पृथक्-पृथक् करे अर्थात् एक-एक कूट के द्वारा कामेश्वरी आदि एक-एक देवी की पूजा करनी होगी। **दक्षिणे** अर्थात् देवी के दक्षिण। **मध्ये**—बिन्दु चक्र में।।१९६-१९७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सर्वमध्य इत्यादिपद्यद्वयस्यायमर्थः—सर्वसिद्धिप्रदसर्वानन्दाभिधेययोः कोणत्रयसर्वमध्यस्थानयोः प्रत्येकं पृथग् वाग्भवादिबीजत्रयोच्चारणपूर्वकं कामेश्वर्यादित्रिकं समस्तविद्योच्चारणपूर्वकं मध्ये महात्रिपुरसुन्दरीं (च) पूजयेदिति। नवचक्राभिधानानि श्रीमतोत्तरे कथितानि—

त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापूरकं तथा।
सर्वसंक्षोभणं देवि सर्वसौभाग्यदायकम्।।
सर्वार्थसाधकं चक्रं सर्वरक्षाकरं तथा।
सर्वरोगहरं देवि सर्वसिद्धिप्रदं तथा।।
सर्वानन्दमयं चापि नवमं सुरसुन्दरि।

❊ अर्थरत्नावली ❊

समस्तव्यस्तयेति। त्रिकोणाग्रदक्षवामकोणेषु व्यस्तमूलविद्यैकैकबीजेन पूजयेत्। समस्तया बीजत्रयोपेतया विद्यया मध्ये पूजयेदित्यर्थः। अत्र दक्षिणं देवीदक्षिणम्। अथवा समस्तव्यस्तयेत्यस्यार्थान्तरमतिरहस्यमपि कथयामः—व्यस्तया त्रिभिर्बीजैरिति यथापूर्वम्। समस्तयेत्यत्र तुरीयं बीजमभिमतम्। कलान्ते पादुकामिति षोडशारे, चतुर्दशारे शक्त्यन्ते पादुकामिति, दशद्वन्द्वे देव्यन्ते पादुकामिति, अष्टारे वाग्देवतान्ते पादुकामिति विशेषः। अन्यत् सर्व सुगमम्।

❊ सेतुबन्धः ❊

अथोत्तरचक्रयोः पूजनमाह। सर्वमध्ये बिन्दौ। केवलं समस्तयाऽक्षरभेदेन व्यस्तया मूलविद्यया कामेश्यादिदेवताचतुष्टयं पूजयेदित्यन्वयः। एवं पूजां विधाय क्रमं पाठेनाऽऽह—**कामेश्वरीमिति।** तथा च कल्पसूत्रम्—त्रिकोणे वाक्कामशक्तिसमस्तपूर्वाः कामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिनीमहादेव्यो बिन्दौ चतुर्थीति। मूलेऽक्षरशब्देन वाग्भवादिकूटत्रयमुच्यते। समस्तशब्देन पञ्चदशी। तुरीयकूटमेव समस्तपदेनोच्यत इत्यतिरहस्यमिति केचित्।।१९६-१९७।।

एवं पूजाविधानं तु कृत्वाऽऽदौ साधकोत्तमः ॥१९८॥
धूपदीपौ च नैवेद्यतर्पणादि निवेदयेत्।

साधकोत्तम प्रथमतः पूजा-विधान करे। तत्पश्चात् इस प्रकार से आवरण पूजा करके पुनः धूप-गन्ध-नैवेद्यादि तर्पण द्रव्य निवेदित करे।।१९८।।

धूपगन्धादिनैवेद्यतर्पणानि—शिवानन्द ने तर्पण का अर्थ किया है—'तर्पणं तृप्तिनयनं दैवतस्यामृतेन तु' अर्थात् अमृत द्वारा देवता की तृप्ति के लिये तर्पण। साधारणतः तर्पण का अन्यतम अर्थ है—पितृगण का तृप्तिसाधन। तन्त्र में देवता का तृप्तिसाधन अर्थ में 'तर्पण' शब्द का अनेक व्यवहार देखा जाता है। तृप्ति-साधन द्रव्य का अर्पण भी तर्पण है। किसी के मत से विविधसंख्यक उपचारं द्योतना के लिये यहाँ 'तर्पण' शब्द व्यवहृत है। इसकी व्याख्या में शिवानन्द कहते हैं कि इसके द्वारा (प्रथम द्रव्य द्वारा) अर्थात् मद्य के द्वारा देवी चक्र की पूजा सूचित है; अन्यथा यहाँ पाशपूजा शास्त्रसम्मत न होती। इनका मत है जो ऐसा नहीं करता, वह कुलद्रोही है। उसे योगिनीगण का शाप लगता है। यह प्रथमद्रव्य बहुविध है—मधुजात, पिष्टजात, गुड़ोद्भव आदि। इस प्रकार के समस्त स्वादु परम आनन्दजनक द्रव्य निवेदित करना पड़ता है। विद्यानन्द के अनुसार कुलाचार क्रम में यह चक्र-पूजा विहित है। तभी प्रथम द्रव्य-ग्रहण (मद्य) के द्वारा द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम द्रव्य (पञ्चमकार) अर्थात् द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम मकार का भी अवश्यम्भावित्व सूचित होता है। इस मत को सभी स्वीकार नहीं करते। भास्करराय कहते हैं कि जो कहते हैं कि केवल वाममार्ग से ही त्रिपुरसुन्दरी का पूजन हो सकता है, दक्षिण मार्ग से नहीं हो सकता, प्रमाणाभाव से यह अभिमत उपेक्षणीय है।।१९८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवं पूजाविधानमिति। पूजा विश्वस्य वेद्यस्य चिद्भूमिविश्रान्तिः। आदिशब्देन दीपो लक्ष्यते।

देहप्रमातृताशान्तिर्येन सिद्ध्यति तं भजे।
विश्वेन्धनं निजं धूपं ज्ञानपावकसम्भवम्।।
संविन्मार्गगतो योऽयं प्रयत्नस्त्वात्मसंश्रयः।
तमेव संश्रये गन्धमानन्दोदयकारणम्।।
यस्मिन् सर्वमिदं भाति यः सर्वत्रावभासते।
कल्पयामि प्रकाशं तं दीपं पूजाविधौ निजे।।
विश्वं शिवादिभूम्यन्तं चमत्काररसाश्रयम्।
महीयसे महाभोक्त्रे महेशाय निवेदये।।

इति भट्टगङ्गाधरस्तोत्रे धूप(गन्ध)दीपनैवेद्योपनिषत्। अत्र क्रियमाणलौकिकधूपादीनां वासना कथिता। गन्धादिष्वभियुक्तोक्तिः—

चन्दनागुरुकर्पूरपङ्कं गन्ध इहोच्यते।
सगुग्गुल्वगुरूशीरसिताज्यमधुचन्दनैः ।।
साराङ्गारे विनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः प्रधूपयेत्।
गोसर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया।।
दीपितं सुरभिं शुद्धं दीपमुच्चैः प्रदीपयेत्।
सुसितेन सुशुद्धेन पायसेन सुसर्पिषा।।
सितोपदंशकदलीदध्याद्यैश्च निवेदयेत्। इति।

(प्र० सा० ६.४८, ५४-५६)

तर्पणानि। तर्पणम्—'तर्पणं तृप्तिनयनं दैवतस्यामृतेन तु' इति स्थित्या द्रष्टव्यम्। उक्तं च श्रीलक्षणसारे—

अनेन हेतुना सर्वपापविध्वंसकारिणा।
समस्ताज्ञासिद्धिदेहदायिना तर्पयेज्जगत्।। इति।

* अर्थरत्नावली *

तर्पणानीति। तर्पणमिति प्रथमद्रव्येणैव देवीचक्रस्य पूजनम्। अन्यथा पाशपूजा नात्र सम्मता। यदि तथा करोति तदा कुलद्रोही भवति, योगिनीनां शाप आपतेच्च। तत्प्रथमं द्रव्यं बहुविधं सम्पाद्य निवेदनीयम्। तदुक्तं श्रीसिद्धनाथपादैः—

तर्पणं बहुधा दद्यान्मधुपिष्टगुडोद्भवम्।
पुष्पमूलफलोत्थं वा स्वाद्यमानन्दनं परम्।। इति।

इह प्रथमद्रव्यस्योपादानाद् द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमानामप्यवश्यम्भावित्वं सूचितम्। किं

बहुना, कुलाचारक्रमेणैव एतच्चक्रं प्रपूजयेत्। परसहजकुलान्त्यजानां मध्ये षोडशाष्टचतुरैकक्रमेण योगिनीरामन्त्र्य उपोषितास्ता: शुचीभूता: समानीय स्वर्णवस्त्रस्रक्चन्दनधूपदीपभक्ष्यभोज्यलेह्य-चोष्यचर्वणद्रव्यपात्रासनदक्षिणादिसहितं समन्त्रकं नीराजनादिसकलोपचारै: परितोषयेत्। एतत्कुलाचारम्।।१९८।।

*** सेतुबन्ध: ***

प्रधानदेवताया: षोडशोपचारैस्तन्त्रभेदेनोपचारेषु षोडशादिसंख्यानां तर्पणानन्तर्भावेनापि परिपूर्तिदर्शनात्तदन्तर्भावेनैव तन्त्रराजकल्पसूत्राद्युक्त उपचारक्रम इह स्वीकार्य इतिद्योतनाय तर्पणग्रहणम्। पूजोत्तरमेवं रीत्याऽऽवरणानि संपूज्य पुनर्धूपादिकं दद्यात्। आदिपदेन बलिजपादिपरामर्श:। धूपादीनां वासनास्तर्पणद्रव्यनिष्कर्षश्च प्राचां टीकासु द्रष्टव्य:।।१९८।।

मुद्राविरचनम्

संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशा: ।।१९९।।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्त्वनुक्रमात्।
विरच्य साधकेन्द्रस्तु ध्यानं कुर्यात्समाहित: ।।२००।।

संक्षोभिणी, द्राविणी अथवा विद्राविणी, आकर्षणी, वश्या अथवा आवेशकारिणी, उन्मादिनी, महाङ्कुशा, खेचरी, बीज तथा योनि नामक नवमुद्रा की यथाक्रमेण रचना करके साधकश्रेष्ठ समाहित होकर ध्यान करे।।१९९-२००।।

विरच्य—रचना करे, अर्थात् प्रदर्शन करे। भास्करराय कहते हैं कि मुद्रा-प्रदर्शन में भी मतभेद है। एक का मत है कि नवचक्र के प्रत्येक चक्र में आवरण-पूजान्त में एक-एक मुद्रा का प्रदर्शन करना होगा। इसके लिये अपने मत के समर्थन में उन्होंने मूल श्लोक में उक्त 'अनुक्रमात्' पद का उल्लेख किया। संहार क्रम में भूपुर से आरम्भ करके एक-एक चक्र में संक्षोभकारिणी आदि एक-एक मुद्रा का प्रदर्शन करना होगा।

अन्य पक्ष के मतानुसार ध्यान के पूर्व ही नव मुद्रा का प्रदर्शन करना होगा। दस मुद्रा में से त्रिखण्डा मुद्रा व्यवहृत होती है आवाहन कर्म में; अत: उसे छोड़कर नौ मुद्रा विवृत है। इसे ये लोग अपने पक्ष के समर्थन में युक्तिरूपेण प्रयोग करते हैं; तथापि यह उक्ति दुर्बल है; क्योंकि खेचरी मुद्रा का विनियोग होता है विसर्जन में। इस प्रकार इस युक्ति को यदि मान लिया जाय, तब अष्टमुद्रा का ही प्रदर्शन करना होगा। साथ ही योनिमुद्रा का विनियोग होता है प्रणाम में। तब तो प्रदर्शनीय मुद्रा हो जाती है—सात। इसलिये यह मत समीचीन नहीं है। भास्कर राय के मत से प्रथम पक्ष का मत ही समीचीन है।

ध्यानं कुर्यात्—ध्यान करे। भास्करराय का अर्थ है कि कामकला का ध्यान करना होगा।।१९९-२००।।

* अर्थरत्नावली *

संक्षोभेत्यादिना दशमुद्रासु मध्ये त्रिखण्डा आवाहनार्थं विनियुक्ता। शिष्टा नवमुद्राः सन्ति। तास्त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयान्तेषु नवचक्रेषु प्रतिचक्रं पूज्याः। ता एकैकमेकैकं चक्रस्य प्रदर्शनीया इत्यर्थः। तदुक्तम्—

सर्वानन्दमयं चादौ सर्वसिद्धिप्रदं परम्।
सर्वरक्षाकरं चान्यत् सर्वरोगहरं तथा।।
सर्वार्थसाधको योऽसौ सर्वसौभाग्यदायकः।
सर्वसंक्षोभणं चान्यत् सर्वाशापरिपूरकम्।
त्रैलोक्यमोहनश्चान्यो नवमश्चक्रनायकः।। इति।
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्धकला भवेत्।।
नासाद्रीपाङ्गजातं च मुखं बिन्दोः समुत्थितम्।
स्तनबिन्दुद्वयं बाहुर्योनिहार्धात् पदद्वयम्।।
एवं कामकलारूपं देवतामयमात्मनः।
वपुर्विचिन्त्य शिवयोरायुधन्यासमाचरेत्।।

* सेतुबन्धः *

नवमुद्रासु प्रत्यावरणान्तमेकैकां मुद्रां विरचयेदित्यर्थ इति केचित्। इहैव नवापि प्रदर्शयेदित्यर्थ इत्यन्ये। प्रथमपक्षेऽनुक्रमादितिपदमर्थसाधकम्, द्वितीयपक्षे धूपादिविधेः पूर्वमस्य पाठाभावः साधक इति तयोर्भावः। ये तु दशानां मुद्राणां मध्ये त्रिखण्डाया आवाहने विनियुक्तत्वान्नवैवेह प्रदर्श्या इति हेतुं वर्णयन्ति तेषां खेचर्या विसर्जने विनियोगादष्टानामेव प्रदर्शनीयतापत्तिः। योनिमुद्रायाः प्रणामे विनियोगात्सप्तानामेव वा। ध्यानं कुर्यात्कामकलां विभावयेत्।।१९९-२००।।

कामकलाध्यानम्

बिन्दुं संकल्प्य वक्त्रं तु तदधस्थं कुचद्वयम्।
तदधः सपरार्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्।।२०१।।
एवं कामकलारूपमक्षरं यत्समुत्थितम्।
कामादिविषमोक्षाणामालयं परमेश्वरि।।२०२।।
तदेव तत्त्वप्रवरं निजदेहं विचिन्तयेत्।

हे परमेश्वरि! ऊर्ध्वस्थ बिन्दु की मुखरूप कल्पना करनी होगी। उसके निम्न बिन्दुद्वय को स्तनयुगल एवं उसके नीचे सपरार्द्ध की योनिरूप भावना करे। इस प्रकार से जो अक्षर कामकलारूपेण समुत्थित हो, वह कामादि विषमोक्ष का आलय। निजदेह की यही भावना तत्त्वप्रवर को करनी होगी।।२०१-२०२।।

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं इत्यादि—इसकी व्याख्या में विद्यानन्द कहते हैं कि कामकलाभूत चतुर्थ स्वर (ई) के चार अवयव हैं—तीन बिन्दु तथा मात्रा। यहाँ कहना आवश्यक है कि यह ईकार प्रचलित देवनागरी लिपि का ईकार नहीं है, यह है—ब्राह्मी लिपि का ईकार। प्रथमतः बिन्दु द्वारा मुख की, बिन्दुद्वय द्वारा स्तनद्वय की तथा मात्रा द्वारा अर्थात् हकार के अर्ध की अर्धाङ्गता द्वारा योनि की कल्पना निदृष्ट है। भास्करराय कहते हैं कि ग्रन्थान्तर में श्रीविद्या में जो कामकला नामक मुख्य रहस्य अक्षर का उल्लेख किया गया है, उसके तीन अवयव है। ऊर्ध्व के एक बिन्दु का नाम है—काम। उसके नीचे अग्निषोमात्मक दो बिन्दु दूसरा अवयव है। उसके नीचे हकारार्धरूप तृतीय अवयव है। इस तृतीय अवयव का नाम 'कला' है। आदि में काम (प्रथमबिन्दु) और अन्त में कला (तृतीय बिन्दु)। प्रत्याहार न्यायानुसार तभी इसे कामकला कहा गया है।

सपरार्धं—भास्करराय के मत से इसका तात्पर्य है—सकार के पश्चात् हकार। विद्यानन्द इस सपरार्ध का अर्थ बताते हैं—हकार के आधे का आधा। कहते हैं कि स्वरवर्ण-वियुक्त हकार का अर्ध ग्रहण करने पर उसका वाचक होगा अर्धार्ध। **अधोमुखम्**—भास्करराय कहते हैं कि सम्प्रदायानुसार अधोमुख शब्द का अर्थ है—योनि। **अक्षरं**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं कि ग्रन्थाम्भ के अष्टम श्लोक में विवृत कामकलाररूप अक्षर। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—नाशरहित, व्यापक, ब्रह्म। **समुत्थित**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—नित्याषोडशिकार्णव के मंथन से उद्भूत। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—देवी-शरीररूप में परिणत। **कामादिविषमोक्षाणामालयं**—शिवानन्द के अनुसार कामः = कामबीज अथवा कामकूट। आदिः = वाग्भव बीज या वाग्भव कूट और विषमोक्ष अर्थात् शक्तिबीज अथवा शक्ति कूट। यही है त्रिबीज अथवा त्रिकूट का आलय। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं कि 'काम आदिर्येषां तानि कामार्थधर्मरूपाणि त्रीणि विषाणि च मोक्षोऽमृतं च तेषामालयं जनकम्'। अर्थात् काम जिसका आदि। तब अर्थ होता है—काम-अर्थ-धर्मरूप तीन विष और चतुर्थ मोक्ष है—अमृत। उसका आलय अर्थात् उत्पादक। अर्थ है—यथाविहित ध्यान करने से कामकला चतुर्विध पुरुषार्थ का साधक है। **तत्त्वप्रवरं**—शिवानन्द के अनुसार ३६ तत्त्वों का जो कारण है। भास्करराय अर्थ करते हैं कि अक्षर कामकला ही तत्त्वों में प्रवर तथा श्रेष्ठ है। तात्पर्यार्थ है कि पारमार्थिक तत्त्व ३६ तत्त्वों से अतीत है।।२०१-२०२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

इत्थं वरिवस्यां विधाय वक्ष्यमाणलक्षणन्यायेन मुद्रानवकं विरच्य पुनर्वरिवसितां महापूजात्मिकां तां कामकलां ध्यायेदित्याह—**बिन्दुं सङ्कल्प्येति। सपरार्धम्।** ऊर्ध्वबिन्दुसमीपवर्तिनी अनच्कहकारार्धकला मात्रेति सम्प्रदायः। अधोमुखं योनिम्। अयमर्थः—समात्रस्य बिन्दुत्रयात्मन-

श्चतुर्थस्वरस्योर्ध्वबिन्दुना वक्त्रम्, तदधः स्थितेन बिन्दुद्वयेन स्तनद्वयं च विमृश्य तदधः सपरार्धं तद्योनिं चिन्तयेदिति।

एवमिति। कामकलारूपं कामकलात्मकम्। समुत्थितं 'बिन्दुं सङ्कल्प्य' (१.१८५) इत्यादिना समुद्भावितम्। कामार्थधर्ममोक्षाणामालयमित्यस्याभिप्रायः—स्वात्मतया भावितं कामकलात्मकमीकाराक्षरमेव पुरुषार्थचतुष्टयस्य स्थानम्, न तु विद्याजपचक्राराधनादीनि। कामादिविषमोक्षाणामिति पाठे कामः कामबीजम्, आदिर्वाग्भवम्, विषमोक्षः शक्तिबीजमिति।

तदेवेति। तत् कामकलारूपमक्षरम्। तत्त्वप्रवरं षट्त्रिंशत्तत्त्वानां कारणम्। निजदेहं विचिन्तयेदित्यस्यायमभिप्रायः—षट्त्रिंशत्तत्त्वमयमिमं कार्यात्मकं कार्यकारणयोरभेदेन चिन्तयेदिति। तदुक्तं श्रीत्रिकसारशास्त्रे—

शिवानन्दरसापूर्णं षट्त्रिंशत्तत्त्वनिर्भरम्।
देहं दिवानिशं पश्यन्नर्चयन् स्याच्छिवात्मकः।।
विश्वात्मदेहविश्रान्तितृप्तस्तल्लिङ्गनिष्ठितः।
बाह्यं लिङ्गव्रजक्षेत्रचर्यादि नहि वाञ्छति।। इति।।
(तन्त्रा० १५.२८५-२८७)

※ **अर्थरत्नावली** ※

बिन्दुं सङ्कल्प्येत्यादि। इदानीं दर्शनसर्वस्वभूतकामकलाध्यानं बाह्याभ्यन्तररूपेण दर्शयति। चतुर्थस्वरस्य कामकलाभूतस्य चत्वारोऽवयवाः सन्ति। बिन्दुत्रयं मात्रा च। तत्र प्रथमबिन्दुना देवीमुखं कल्पयेत्, बिन्दुद्वयेन स्तनद्वयम्, मात्रया हार्धार्धाङ्गतया वराङ्गं योनिम्। एवं कलाचतुष्टयेन परिकल्पितमहाकामकलाभूतां स्वेच्छाविग्रहां महात्रिपुरसुन्दरीमात्मानं ध्यात्वा श्रीमूलविद्यामभ्यसेदिति सकलोपास्तिभावनायां कामकलाविनियोगो दर्शितः। **तदधस्तात् कुचद्वयमिति।** प्रथमबिन्दोरधस्ताद् द्वयं स्थितम्। बिन्दुद्वयमित्यर्थात् सिद्धम्। तदधः स्थितं बिन्दुद्वयाधः स्थितं मात्रारूपम्। तत्कीदृशमिति? सपरार्धम्। सकारस्य परं हकारस्तस्यार्धं तस्याप्यर्धम्। कोऽर्थः? अनच्कस्य हकारस्यार्धं गृहीतमिति कृत्वा तद्वाचकस्यार्धार्धं भवति। ततः सपरार्धशब्देन हार्धार्धमेव परममात्रारूपमत्र गृहीतम्। तच्च ईकारहकारयोरेकरूपमिति ईकारचतुर्थभागस्य सपरार्धत्वमुक्तम्। अथवा ईकारहकारयोर्द्वयोरपि कलासाम्यात् कामकलारूपत्वमस्तीति भक्त्योक्त्या सपरार्धत्वमुक्तम्। **तदधोमुखं चिन्तयेत्।** अधोमुखमिति सुन्दरीणां मदनमन्दिरमभिधीयते। तेन तदिह लक्षितम्। यदिहानुक्तं तद्गुरुमुखाज्ज्ञात्वा कार्यमिति।

एवं कामकलारूपमिति। यदिह ग्रन्थारम्भे 'तामीकाराक्षर' (१.८) इत्यादिना सूचितं कामकलारूपमक्षरं तदे(व?वं) रूपमिति। एवं महिमायुक्तमिदं देवेन देव्यै दर्शितमिति भावः। **अक्षरं यत्समुत्थितमिति।** श्रीवामकेश्वरशास्त्रार्णवमथनवेलायामिति यत्नपरम्परया लभ्यमपि भाग्यवशाल्लब्धमिति भावः। **कामादिविषमोक्षाणामालयमिति।** तदिदमक्षरम् उद्धृतमभ्यस्तं कामकलाक्षरं कामालयम्। काममिति सौन्दर्यादिलक्षणं तत्साधकाय साधयति। **विषमोक्षः।**

विषं संसारो जननमरणादिलक्षणः, तस्मादेनं साधकं मोचयतीति विषमोक्षालयमुच्यते। अथवा विमर्शानन्दलक्षणपराहंभावस्थितिर्मोक्षः। त(म)स्मै साधकाय साधयतीति मोक्षालयम्। तस्य तदपेक्षायुक्तस्य तद्विघ्नरूपतया कालाग्न्यादिशिवान्ततत्त्वभूमिषु यो महाभोगः स एवास्य विषमुच्यते। विघ्नरूपेणागतं विषरूपं तदपि साधकाय प्रयच्छतीति विषालयमुच्यते। अथवा विषं जलम्, विषममृतमिति विषशब्दस्यामृतपर्यायत्वमस्ति। तदालयममृतालयमिति भावः। परमामृतसमुद्रे प्रकाशानन्दसामरस्यलोलीभूते एनं साधकं प्लावयतीति यावत्। कालादिविषमोक्षाणामालयमिति पाठान्तरम्। तत्रैवं योजना—कालमोक्षालयं विषमोक्षालयं चेत्येवमादि द्रष्टव्यम्।

तदेव तत्त्वप्रवरं निजदेहं विचिन्तयेदिति। इह वामकेश्वरदर्शने तदेव कामकलाक्षररूपमेव तत्त्वप्रवरमवश्यमेव ज्ञातव्यतयाऽवगन्तव्यम्। तत्किमिति? कामः पञ्चकारणरूपपरबिन्दुस्वभावः शिव एव परमानन्दलक्षणो नान्यः। स कामः, कमनीयत्वात्। कमनीयता लावण्यं भद्रता। तेनोपलक्षितं परमसुखमेव कमनीयम्। नान्यस्य तदस्ति, अनित्यतादिदोषदुष्टत्वात्। तदुक्तम्—

कामरूपो ह्यहं देवि ह्यनङ्गो रूपवर्जितः।
क्षोभयामि प्रजाः सर्वा नित्यं वै क्लेदयामि च।। इति।

तथा तस्यैव निर्विशेषसुखस्य शिवशक्तिसामरस्यस्वभावत्वाद् इतरकामवत् कामत्वमुच्यते। तदुक्तं श्रीमतोत्तरे—

भैरवोऽहं कुलोऽहं वै बिन्दुस्त्वं नादकुण्डली।
उभयोः सङ्गमो योऽयं परानन्दस्वभावकः।। इति।

तथा आरण्यकेऽपि सामरस्यसुखोदाहरणत्वेन लौकिककामसुखमुदाहृतम्—'तद्यथा प्रियया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्' (बृ. उ. ४.३.२१) इति। तथा श्रीविष्णुपुराणेऽपि सामरस्यसुखोदाहरणत्वेन स्त्रीसुखमेवोदाहृतम्—'कुमारीस्त्रीसुखं यथा' इति। किं बहुना बिन्दुद्वन्द्वाद्वैधीभावजं परमसुखमेव लौकिकसुखलवमखिलमिति। तदिह परमसुखमेव नैर्मल्यतया सुखमिति सिद्धम्। कामो बिन्दुः शिवसमरसतया स्थितः। कला तद्विवर्तभूतबिन्दुद्वयं शिवशक्तिरूपं चन्द्रसूर्यात्मप्रकाशविमर्शरूपं परमबिन्दुप्रापकम्। तदधस्तात् स्थितापि सपरार्धस्वरूपिणी कुण्डलिनी चिद्दण्डरूपिणी। (सा?) तदिच्छया यदृच्छया पशोरस्य मलावृतस्य पाशं विश्लेषयन्ती निजपदं स्मारयन्ती समरसभावेन स्थितं परमानन्दबिन्दुभावं नयति सा कला। एवं कामकलारूपमिदमक्षरं परमकामप्रापकमिति तदेव तत्त्वप्रवरमित्युक्तं निःशेषादिगुरुणा परमशिवेनेति भावः। इत्थं निष्कलोपासनायामपि कामकलाविनियोगः।।२०१-२०२।।

* सेतुबन्धः *

विभावनप्रकारमेवाऽऽह—**बिन्दुमिति।** शास्त्रारम्भे श्रीविद्यायां यन्मुख्यं रहस्यमक्षरं कामकलाख्यमुक्तं तत्र त्रयोऽवयवाः। ऊर्ध्वं कामाख्यो बिन्दुरेकः। तदधोऽग्नीषोमात्मकबिन्दुद्वितयरूपोऽन्यः। तदधो हकारार्धरूपः कलाख्यस्तृतीयः। तदिदं प्रत्याहारन्यायेन कामकलेत्युच्यते।

शरीरेऽपि त्रय एवावयवाः। शीर्षादिघटिकान्तः कण्ठादिस्तनान्तो हृदयादिसीवन्यन्तश्च। केशपाणिपादं तु तत्तच्छाखा इत्युक्तम्। ततश्च यथाक्रममक्षरावयवान्देव्यवयवत्वेन परिणतान्विभाव्य देव्यक्षरयोरभेदं विचिन्तयेत्। वक्त्राद्येकैकावयवोक्तिस्तु तत्तत्समस्तावयवोपलक्षणम्। बिन्दुतदधस्थतदधःशब्दैरक्षरावयवत्रयपरामर्शः। सकारात्पुरो हकारस्तदर्ध सपरार्धम्। अधोमुखशब्दो योनिपर इति सम्प्रदायः। देव्याः स्वस्य चाभेदं भावयेदित्याह—**एवमिति**। अक्षरं नाशरहितं व्यापकं ब्रह्म। एवं समुत्थितं देवीशरीरतया परिणतम्। नित्याषोडशिकार्णवमथनादुद्धृतमित्यर्थ इत्यन्ये। काम आदिर्येषां तानि कामार्थधर्मरूपाणि त्रीणि विषाणि च मोक्षोऽमृतं च तेषामालयं जनकम्। एवं ध्यातं सच्चतुर्विधपुरुषार्थप्रदमित्यर्थः। तत्र चतुर्थस्यामृतत्वप्रसिद्ध्यैव तद्विरुद्धस्य त्रिवर्गस्य विषत्वं प्रसिद्धमेव। तस्येह कीर्तनं तु तेषां लघुफलरूपत्वान्मुमुक्षुभिस्तानि फलानि नोद्देष्टव्यानीति ध्वनयितुम्। त्रिवर्गेष्वपि कामस्य प्रथमतः कीर्तनं तु तेष्वपि तस्यातिलघुफलत्वद्योतनार्थम्। तदिदं स्पष्टमुक्तं श्रीमदाचार्यभगवत्पादैः—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम्॥ इति।

ईदृशं यदक्षरं तदेव तत्त्वेषु सपदार्थेषु प्रवरं श्रेष्ठं पारमार्थिकसत्यं षट्त्रिंशत्तत्त्वातीतमिति यावत्। निजं स्वकीयं देहं स्वरूपमपि तदभिन्नं चिन्तयेदित्यर्थः। विषशब्दोऽमृतपरः, विषजलामृतपदानां पर्यायत्वात्। तच्च मोक्षस्य विशेषणमिति प्राञ्चो व्याचक्षते। रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे। कामः कामकूटम्। आदिर्वाग्भवकूटम्। विषमोक्षः शक्तिकूटमिति तु ततोऽपि प्राञ्चः। शक्तिकूटमात्रस्य साधने गरुडतुल्यो विषहरो भवतीत्यस्य चतुर्थे पटले वक्ष्यमाणत्वादिति तदाशयः॥२०१-२०२॥

विसर्जनम्

ध्यात्वा चक्रेण सहितां ततस्त्रिपुरसुन्दरीम्॥२०३॥
स्वमुद्रया शक्तिचक्रं खेचर्याद्याश्च योजयेत्।
खेचर्या शक्तिचक्रं तु क्षमस्वेति विसर्जयेत्॥२०४॥

इति श्रीनित्याषोडशिकार्णवस्य प्रथमः पटलः

●

तदनन्तर श्रीचक्र के द्वारा समन्वित त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना होगा। इस बार श्रीचक्रस्थ अणिमादि शक्तिकदम्ब तथा खेचरी आदि मुद्रा की स्वमुद्रा द्वारा योजना करनी होगी। अतः 'क्षमस्व' इस प्रार्थनामन्त्र से शक्तिचक्र खेचरी मुद्रा-प्रदर्शन करके विसर्जन करना होगा॥२०३-२०४॥

ध्यात्वा—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं कि समूह आलम्बनात्मक ज्ञान–विषयता

प्राप्त करे। **चक्रेण सहितां**—शिवानन्द के मत से इसका तात्पर्य है कि बहिराराधित शक्तिचक्रसमन्विता। भास्करराय चक्रेण संहितां का अर्थ करते हैं—सम्पूर्ण श्रीचक्र द्वारा समन्विता। **ततः**—तदनन्तर अर्थात् कामकला तथा साधक की अभेद-भावना के पश्चात्। **स्वमुद्रया**—इसकी कई व्याख्या है। भास्करराय कहते हैं—प्राचीन लोग कहते हैं 'स्वां मुदमानन्दं राति विषयीकरोतीति स्वमुद्रा स्वसंवित् खेचर्याद्या नव मुद्रा आणिमादिशक्तिचक्रं च स्वस्वसंविदा योजयेत्, शुष्कचैतन्यमात्ररूपं भावयेदिति व्याचक्षते। 'स्वीयमुदं अर्थ है—आनन्द, राति अर्थात् विषयीकरण करता है। स्वमुद्रा अर्थात् स्वसंवित्। खेचरी आदि नव मुद्रा तथा अणिमादि शक्तिचक्र अपनी स्वसंविद् द्वारा युक्त करे अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र रूप से भावना करे।

अन्य लोग कहते हैं कि 'स्वमुद्रया' पद की तृतीया विभक्ति सहार्थ में है। उनके मत से प्रत्येक आवरण में एक-एक मुद्रा की पूजा सूचित करने के लिये स्वमुद्रा के साथ उन-उन आवरण के शक्तिचक्र और खेचरी आदि उन-उन मुद्रा को युक्त करना होगा, अर्थात् एकीकरण करना होगा। 'स्वमुद्रया' पद द्वारा उसे समझाया गया है। शिवानन्द स्वमुद्रया पद का अर्थ करते हैं—कामकलात्मा-भावित कारणरूप महाशक्तिरूपा स्वभूता जो मुद्रा है, उसके साथ। विद्यानन्द के मत से 'स्वमुद्रया' पद का तात्पर्य है—पूजाकाल में मुद्राशक्ति देवीगण। चक्र का अर्थ है—समूह की पूजा होगी चतुरस्रस्थ ब्राह्मी आदि देवियों की पूजा के पश्चात्। **शक्तिचक्र**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—अणिमा से प्रारम्भ करके महादेवी-पर्यन्त आराधित शक्तिचक्र। भास्करराय अर्थ करते हैं अणिमादि शक्तिकदम्ब।

खेचर्याद्याः—खेचरी आदि पूजा। भास्करराय प्राचीन लोगों के मतानुसार इसका अर्थ करते हैं—खेचरी आदि ९ मुद्रा। किसी-किसी टीकाकार के अनुसार 'आदि' शब्द द्वारा बीजमुद्रा तथा योनिमुद्रा का तात्पर्य है; क्योंकि संहारक्रम में मुद्रा की अवस्थिति के अनुसार खेचरी मुद्रा के अनन्तर है—बीजमुद्रा तथा योनिमुद्रा। इस सम्बन्ध में इनका कथन है कि खेचरी मुद्रा तथा बीजमुद्रा से प्रणाम करके योनिमुद्रा से भी प्रणाम करना होगा—यह है इसका अर्थ; किन्तु जिस श्लोकार्ध में 'खेचर्याद्याः' पद का उल्लेख है, वहाँ यह अर्थ संगत प्रतीत नहीं होता। खेचरी को आदि कहने का अन्य कारण अवश्य है। इस सम्बन्ध में विद्यानन्द की व्याख्या उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि आकाश में अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी-उपलक्षित पराम्बर में जो कुण्डलिनी रूपेण विचरण करती हैं, वे हैं—खेचरी। खेचरी देवी का नाम है। इनकी जो मुद्रा है, वह पूजाकाल में पूजारूपेण प्रदर्शित है। यह भाव है। प्रतीत होता है कि विद्यानन्द का मन्तव्य यह है कि देवी के साथ खेचरी नाम-समता के कारण खेचरी मुद्रा का प्रथमोल्लेख किया गया है तथा उसके द्वारा पूज्या सभी मुद्रायें सूचित हैं। **योजयेत्**—पूर्वोक्त प्राचीन लोगों के एक पक्ष के मतानुसार इसका

अर्थ है—शक्ति चक्र तथा खेचरी आदि मुद्रा की शुद्ध चैतन्यमात्र रूप भावना करनी होगी। अन्य पक्ष का मत है कि इसका अर्थ है कि शक्तिचक्र तथा खेचरी आदि मुद्रा के साथ प्रति आवरण में पूज्या मुद्रा का एकीकरण करना होगा। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि मुद्रा-रचना करे, उससे परम कारण महाशक्तिरूपा संवित् स्वरूपपरमार्थां स्वभूता मुद्रा के साथ एकीकरण करना होगा। **खेचर्या**—शिवानन्द के अनुसार संहार मुद्रा द्वारा विसर्जन के समय इस मुद्रा (खेचरी मुद्रा) का प्रदर्शन विहित है। **शक्तिचक्रं**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—देवीचक्र। **क्षमस्व**—क्षमा करो। इस क्षमा-प्रार्थना का हेतु बतलाते हुये टीकाकारों ने कहा है कि त्रिपुरसुन्दरी को स्वानुभूत संवित् स्वभाव अकृत्रिमाहंपरामर्शमय जो रूप है, उसका पूजाकाल में पूजामण्डल में वह्निस्थ श्रीचक्र में इदन्तारूपेण उपस्थित कराना। यह एक प्रमाद है। उपासक तथा देवी के मध्य में क्षणकाल के लिये भी भेदभावना प्रमाद है। अथच, पूजाकाल में इस भेदभावना को करना ही पड़ जाता है। तभी पूजान्त में क्षमा माँगते हैं। परशुरामकल्पसूत्र के ५.२७ संख्यक सूत्र की वृत्ति में रामेश्वर इस क्षमा प्रार्थना के मन्त्र को इस प्रकार लिखते हैं—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यद्यदाचरितं शिवे। तव कृत्यमिति ज्ञात्वा क्षमस्व परमेश्वरि।।

विसर्जयेत्—विसर्जन करे। इस विसर्जन का अर्थ पूजा के लिये बहिराहृत देवी का पुनः उनके स्वस्थान में प्रतिनयन है। इसका तात्पर्य यह है कि पूजार्थ जिस देवी को साधक के हृत्कमल से बाहर लाया गया था (साधक द्वारा), उसे हृत्कमल में स्थापन करना होगा।

श्री नित्याषोडशिकार्णव का प्रथम पटल समाप्त

* ऋजुविमर्शिनी *

ध्यात्वेति। ततः पश्चात् कामकलाध्यानानन्तरम्। **चक्रेण सहितामित्यादि।** बहिराराधित-शक्तिचक्रोपेतां त्रिपुरसुन्दरीं ध्यात्वेत्यर्थः। अत्र ध्यात्वेत्यनेन लिङ्गेन स्तुतिनमस्कारादिकमपि सूचितम्। पूजान्ते बलिविधानमिति नोक्तम्। 'हुते तु देशिकः पश्चान्मण्डले बलिमारभेत्' (प्र. सा. ६.१०६), 'वसुभ्यो रुद्रेभ्यो दिनपरिवृढेभ्योऽपि च बलिं सभूतेभ्यो दद्यात्' (त्रि. सा. ८.५०) इत्याद्यभियुक्तोक्तस्थित्या,

अर्घान्नसलिलं पात्रं सहेतुं दत्तपुष्पकम्।
समन्त्रं नेत्रपात्रेण त्रिधा शान्तिबलिं भजेत्।।
मुक्तकेनालिवर्णेन सर्वविघ्नविनाशिना।
सर्वसिद्धिप्रदेनैव ध्यात्वा भू(त्वा?ता)दिवेष्टितम्।।

इति लक्षणसारोक्तदिशा चात्रापि शान्तिबलिरुक्तो मन्तव्य इति सम्प्रदायः। तत्प्रकारः सुभगोदये द्रष्टव्यः। केचिदुच्छास्त्रसम्प्रदायमिह पूजायां मन्त्रविशेषान् बहून् कर्माणि च बहूनि

यथामति कल्पयन्ति। न ते स्वीकर्तव्याः। प्रकृतमनुसरामः। पुनः किमित्याह—**स्वमुद्रया शक्तिचक्रं खेचर्याद्याश्च योजयेदिति।** स्वमुद्रया कामकलात्मना भावितकारणरूपमहाशक्तिरूपया स्वभूतया मुद्रया सहेत्यर्थः। शक्तिचक्रम् आराधितमणिमादिमहादेव्यन्तं शक्तिचक्रम्। विरचिताश्च मुद्राः परमकारणमहाशक्तिरूपया संवित्स्वरूपपरमार्थया स्वभूतया मुद्रया सह योजयेद् एकीकुर्यादिति। **खेचर्या शक्तिचक्रं तु क्षमस्वेति विसर्जयेदिति।** खेचर्या संहारमुद्रया। क्षमस्वेत्यस्यायं भावः—स्वानुभूतसंवित्स्वभावमकृत्रिमाहंपरामर्शमयं भवद्रूपं बहिरिदन्तयोल्लास्य चक्रे,

> निजनिजेषु पदेषु पतन्त्विमाः करणवृत्तय उल्लसिता मम।
> क्षणमपीश मनागपि मैव भूत् त्वदविभेदरसक्षतिसाहसम्।। (श. स्तो. ८.५)

इति श्रीरहस्यगुरूक्तनीत्या भेदेन क्षणपरिभावितमस्मत्प्रमादं क्षमस्वेति बहुधा प्ररोच्य खेचर्या संहारमुद्रया महाप्रकाशवपुषि चिन्मये स्वात्मनि विसर्जयेत् तन्मयं भावयेदिति शिवम्।।१८८।।

एवम् ऋजुविमर्शिन्यां नित्याषोडशिकार्णवे।
शिवानन्दपरामृष्टः प्रथमः पटलो गतः।।

* अर्थरत्नावली *

स्वमुद्रया शक्तिचक्रमित्यादि। स्वस्य मुद्रा स्वमुद्रा (इति भावः। कोऽर्थः?) मुद्रा शक्तिदेवीनां चक्रं समूहं पूजाकाले चतुरश्रस्थब्राह्म्यादिदेवीनामनन्तरं पूजनीयमित्यनेन दर्शितम्। इदानीं कास्ता इत्याह—**खेचर्याद्याः**। मुद्रा इत्यर्थः। खे आकाशे सुषुम्णोपलक्षिते पराम्बरे कुण्डलिनीरूपेण चरतीति कृत्वा खेचरीति देव्या नाम। तस्याः खेचर्या या मुद्रास्ताः पूजाकाले पूज्यत्वेन दर्शिता इति भावः। खेचर्या मुद्रया देवीचक्रं प्रणम्य विसर्जयेदित्यपि दर्शयति। तत्र खेचर्या खेचरीमुद्रया पूजितः शक्तिचक्रं प्रणम्य क्षमस्वेति प्ररोच्य प्रपूजितं देवीचक्रं विसर्जयेदिति भावः।।१८८।।

इति श्रीविद्यानन्दविरचिते चतुःशतीटिप्पणेऽर्थरत्नावलीनाम्नि पूजापटलः प्रथमः समाप्तः

* सेतुबन्धः *

ततः कामकलादेवीसाधकानामभेदभावनोत्तरं चक्रेण सम्पूर्णेन श्रीचक्रेण सहितां त्रिपुरसुन्दरीं ध्यात्वा समूहालम्बनात्मकमानसज्ञानविषयतां प्रापय्य तत्र स्थितं शक्तिचक्रमणिमादिशक्तिकदम्बं स्वमुद्रया योजयेत्। यतस्ता निसृतास्तत्रैव ता मुद्रयेदाच्छादयेद्विलापयेदित्यर्थः। अणिमादीनां महादेवीमयूखरूपतया तासां करचरणादिरूपाणि किरणाकारतया परिणमय्य तेजोमात्ररूपाणि विभाव्य तानि तेजांसि त्रिपुरसुन्दर्या देहे प्रविष्टानि विभावयेदिति यावत्। अत्र सुभगार्चारत्नादिपद्धतिकाराः खेचरीबीजमुद्राभ्यां प्रणमेदिति लिखन्ति। तदिदमाह—**खेचर्याद्याश्च योजयेदिति।** आद्यशब्देन बीजयोनिमुद्रे गृह्येते। उक्तमुद्राक्रमेण तयोरेवोपस्थितेः। तेन खेचरीबीजाभ्यां प्रणम्य योनिमुद्रयाऽपि प्रणमेदित्यर्थः। प्राञ्चस्तु—स्वां मुदमानन्दं राति विषयीकरोतीति स्वमुद्रा स्वसंवित्। खेचर्याद्या नव मुद्रा अणिमादिशक्तिचक्रं च स्वस्वसंविदा योजयेत्, शुद्धचैतन्यमात्ररूपं भावयेदिति व्या-

चक्षते। अन्ये तु स्वमुद्रयेति सहार्थे तृतीया। प्रत्यावरणमेकैकस्या एव मुद्रायाः पूजनद्योतनाय स्वस्वमुद्रया सहितं तत्तदावरणशक्तिचक्रं खेचर्याद्यास्तत्तन्मुद्राश्च योजयेत्, एकीकुर्यादित्यर्थ इत्याहुः। पक्षद्वयेऽपि खेचर्या आद्यत्वेन निर्देशे खेचर्यादियोजनस्य पार्थक्येन निर्देशे च बीजं चिन्त्यम्। ततस्त्रिपुरसुन्दर्यैक्यमापितं तिसृभिर्मुद्राभिः प्रणतं च शक्तिचक्रं क्षमस्वेति मन्त्रेण खेचरीमुद्रया च विसर्जयेत्। खे परमे व्योम्नि चरतीति खेचरीपदार्थवशात्तच्छक्तिचक्रं कवलितवतीं देवीं चिदाकाशरूपां विभाव्य स्वात्मनि योजयेदिति सिध्यति। तथा च कल्पसूत्रम्—'खेचरीं बद्ध्वा क्षम-स्वेति विसृज्य तामात्मनि योजयेदिति शिवम्' इति। तन्त्रान्तरेष्वेतदग्रेऽपि पूजाविस्तारस्य दर्शनेऽप्येतत्तन्त्रज्ञानार्णवकल्पसूत्रादिरीत्याऽत्रैव पूजासमाप्तिर्मन्तव्या। तेन तेषामङ्गानां कृताकृतता ध्वनिता। यानि तु हविष्प्रतिपत्त्यादिरूपाणि कतिपयकर्माण्यपेक्षितानि तानि तु उत्तरतन्त्रे मूल एव व्यक्तीभविष्यन्तीति सर्वं शिवम्।।२०३-२०४।।

इति श्रीभास्करोन्नीते नित्याषोडशिकाम्बुधेः ।
व्याख्याने सेतुबन्धाख्ये विश्रामः प्रथमोऽभवत् ।।१।।

◆

अथ द्वितीयो विश्रामः

(मन्त्रयोगनिरूपणम्)

चक्र(मन्त्र)साधनम्

श्रीश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगं यथाविधि।
यत्रानेन विधानेन साधकेन प्रपूज्यते ॥१॥
देशे वा नगरे ग्रामे तत्र क्षोभः प्रजायते।

भैरव कहते हैं—हे देवि! यथाविधि मन्त्रयोग कहता हूँ; सुनो। इस विधान के अनुसार साधक को पूजा करनी होगी। देश-नगर-ग्राम में जहाँ भी पूजा हो, वहाँ क्षोभ उत्पन्न होगा।।१।।

मन्त्रयोगं—शिवानन्द के अनुसार मन्त्र के प्रयोग। विद्यानन्द भी इसका अर्थ करते हैं—विनियोग। भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ है—चक्रसाधन। **यत्र**—शिवानन्द के अनुसार ग्राम-नगर-देश के साथ इसका सम्बन्ध है। **अनेन विधानेन**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—वशीकरणादि प्रयोग में वक्ष्यमाण क्रमानुसार। भास्करराय के मत से 'अनेन' अर्थात् पूर्व में कहे गये और 'विधान' अर्थात् प्रकार से अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से। **साधकेन**—भास्करराय यहाँ इसका अर्थ करते हैं चक्रसिद्धि के इच्छुक व्यक्ति। **क्षोभः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि मान्मथ विकार अर्थात् कामविकार। भास्करराय के अनुसार—विघ्न। **प्रपूज्यते**—भास्करराय के अनुसार इस पद के प्रयोग से पूजा ही चक्रसाधन का स्वरूप है, यह ज्ञात होता है। **देशे वा नगरे ग्रामे**—विद्यानन्द कहते हैं कि इस उक्ति का अभिप्राय यह है कि ग्राम-नगर-पत्तनादि स्थान में जहाँ अभिरुचि है, वहाँ पूजाङ्गभूत द्रव्यादि प्राप्त होता हो। जहाँ राजा, चोर, दुर्भिक्षजनित विपत्ति नहीं है, वहाँ जप-होम-पूजा-मन्त्रपुरश्चरणादि करना उचित है। इन सबके अनुष्ठानार्थ पशुशास्त्रों में वर्णित नदीतीर, पर्वतशीर्ष, तीर्थादि स्थान के अन्वेषण का प्रयोजन नहीं है।

भास्करराय इस व्याख्या को अग्राह्य करते हैं। इनके मत से इस श्लोक अंश की व्याख्या होगी—'पूजावस्तुमात्र से ही ग्रामीण स्त्रीगण को मन:क्षोभ हो जाता है। तज्जनित कटाक्षपातादि द्वारा साधक के चित्तविभ्रम के कारण हेतुभय होता है अर्थात् पूजा में विघ्न होता है। साधक धैर्य के साथ यदि उसे अग्राह्य करे तब नगरवासिनी द्वारा विघ्न संघटित

होता है। उसकी भी अहवेलना करने पर उसी देशवासिनी दूरस्था नारियों द्वारा विघ्न होता है।।१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवमध्यर्धाष्टोत्तराशीत्यधिकशतसंख्योपेतसूत्रं प्रथमं पटलं विवृत्य सार्धनवाधिकसप्ततिसूत्रसम्मितं वहुविधवश्यादिप्रयोगशरीरं द्वितीयं पटलं विवृणुमः। **ईश्वर उवाच। शृणु देवीत्यादि।** मन्त्रयोगं मन्त्रानुवन्धिनं प्रयोगम्। यथाविधि अन्यत्राप्यस्माभिर्यथोक्तं तथा, न त्वन्यमतानुगुण्येनेति। यत्रेति देशनगरग्रामैः सम्बद्ध्यते। अनेन वश्यादिषु प्रयोगेषु वक्ष्यमाणक्रमेण। तत्र देशादौ। क्षोभो मान्मथो विकारः।।१।।

* अर्थरत्नावली *

अथ द्वितीये पटले विषमपदेषु व्याख्या लिख्यते। **मन्त्रयोगमिति।** योगो विनियोगः, प्रयोग इति यावत्। देशे वा नगर इत्यादिनैतदभिप्रेतम्—ग्रामनगरपट्टनादिषु प्रदेशेषु यत्र यत्राभिरुचिः, यत्र यत्र पूजाङ्गभूतद्रव्याणि च सम्भवन्ति, यत्र च राजचौरदुर्भिक्षादिविपदो न सन्ति, तत्र तत्र जपहोमपूजामन्त्रपुरश्चरणादि कार्यम्; न तु पशुशास्त्रोक्तनदीतीरपर्वताग्रादितीर्थान्वेषणमनुष्ठानाय कार्यमिति भावः।।१।।

* सेतुबन्धः *

श्रीगुरुपादुकाभ्यां नमः। एवं प्रथमपटलेन चतुरधिकद्विशतश्लोकेन सुन्दर्युपासकानामाह्निकं वर्णितम्। एतेषां च मुमुक्षुत्वेन 'नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम्' इति वचनेन काम्यकर्मानादर एवाऽऽवश्यकः। प्रारब्धवशतो जातायामपि कामनायां मनसस्ततः परावर्तनमेव युक्तम्।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

इति भगवद्वचनात्। अथापि वहुशः काम्यपदार्थेभ्यः पुनः पुनः प्रत्याह्रियमाणं मनः कदाचिद्विक्षेपवशात्स्वाधीनतां जह्यादपि। अतः प्रत्याहारपरम्परायामपि कतिपयकामितार्थप्रदानेन बालस्येव समाधानमप्यावश्यकम्। अत एवोक्तं गीतासु—'शनैः शनैरुपरमेत्' इति। ज्ञानवासिष्ठेऽपि—

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
स्वं मनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर।।
अशुभाच्चालितं याति शुभं तस्मादपीतरत्।
जन्तोश्चित्तं तु शिशुवत्तस्मात्तच्चालयेद्बलात्।।
समतासान्त्वनेनाऽऽशु न द्रागतिशनैः शनैः।
पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेच्चित्तबालकम्।। इति।

अत्रातिशनैरित्यनेन शिशूपमया च मध्ये मध्ये कदाचिच्चित्ताभिलषितं पूरयताऽपि प्रत्याहर्तव्यमिति ध्वनितम्। तस्मात्केनाप्युपायेन 'मनः कृष्णे निवेशयेत्' इति वचनात्तु-

निषिद्धमप्यनुज्ञायत इति भक्तितन्त्रविदां सिद्धान्तः। उत्तरत्र सिषाधयिषितपरतत्त्वात्मसात्करणेनोपायदशायां जातस्यापराधजातस्य सर्वस्यापि महाभाष्योक्तकूपखानकन्यायेन परिहर्तुं शक्यत्वादिति तदाशयः। तस्माज्ज्ञानीयभूमिकासु कतिपयभूमिकारूपस्य मुमुक्षोरपि कदाचित्काम्यकर्माणि प्रसज्यन्त एवेति कतिचित्तानि वर्णयितुमुत्तरो ग्रन्थसन्दर्भः। तानि च चतुर्विधानि। साधनचातुर्विध्यात्। श्रीचक्रं करशुद्ध्यादिमन्त्राः प्रधानबीजत्रयं तत्समष्टिरूपा मूलाविद्या चेति चत्वार्येव हि साधनानि पूर्वं निरूपितानि। तेषु—

करशुद्ध्यादिविद्यानामेकैकं परमेश्वरि।
रुद्रयामलतन्त्रे तु कर्म प्रोक्तं मया पुरा।।

इति चतुर्थपटले (श्लो. ६१) वक्ष्यमाणत्वादस्मिंस्तन्ते न तन्निरूपणम्। इतरेषु तु चक्रस्यार्चनद्वारा फलजनकत्वमन्ययोः शबदरूपत्वाज्जपद्वारेति विशेषः। चक्रस्य मन्त्राणां च काम्यकर्मसु विनियोगस्तत्तत्सिद्धिमन्तरा न संघटते। तादृशविनियोगयोग्यताया एव सिद्धिपदार्थत्वात्। तदापादकानां च कर्मणां चक्रसाधनं बीजसाधनं मन्त्रसाधनमिति क्रमेण नामधेयानि त्रीण्यपि पुरश्चरणपदेनोच्यन्ते। यत्तु वायुसंहितायाम्—

साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।
पुरतश्चर्यमाणत्वाद्विनियोगाद्धि कर्मणाम्।।
पुरतो विनियोगस्य चरणाद्वा तथोदितम्।

इति वचनं तत्र मन्त्रपदं यन्त्रस्याप्युपलक्षणम्। तदुक्तनिर्वचनस्योभयसाधारण्यात्। विश्वालयकतन्त्रे च कथितस्य नवग्रहयन्त्रस्य सपादलक्षवारं चम्पकलेखन्या विलिख्य विलिख्य पूजनं यन्त्रपुरश्चरणं भवतीत्यर्थस्य तत्रैव प्रसिद्धत्वात्। 'सपादलक्षमेतस्य पुरश्चरणमुच्यते' इत्यादि शिवताण्डवादावप्ययमर्थः प्रसिद्धः। एतेन—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रमार्गेण योजनम्।
सिद्धमन्त्रस्य संप्रोक्तो विनियोगो विचक्षणैः।।

इति मन्त्रतन्त्रप्रकाशोक्तविनियोगलक्षणे मन्त्रपदं व्याख्यातम्। अत एव काम्यकर्मफलसिद्धिजनकक्रियात्वं पुरश्चरणलक्षणमुक्तं सौभाग्यरत्नाकरे। तच्च चक्रसाधनेऽप्यविशिष्टम्। अत्र लक्षणे काम्यपदनिवेशान्नित्यनैमित्तिककर्मविनियोगयोग्यतापादके गुरुमुखान्मन्त्रग्रहणे नातिव्याप्तिः। ततश्च काम्यमनिच्छतो मुमुक्षोर्गुरूपदेशमात्रेण नित्यनैमित्तिकयोरधिकारात्पुश्चरणमनावश्यकमेव। तदिदं द्योतयितुमेव मूले चक्रमन्त्रोद्धारमात्रोत्तरमेवाऽऽह्निकवर्णनं काम्यकर्मारम्भ एव पुरश्चरणवर्णनम्। यत्तु वैशम्पायनेनोक्तम्—

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः।
किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः।।
रहस्यानां हि मन्त्राणां यदि न स्यात्पुरस्क्रिया।
वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।

इत्यादि। तत्रापि फलादिशब्दाः काम्यधर्मानधिकारितावच्छेदकत्वात्। तत्र चक्रसाधनाख्यं पुरश्चरणं तावल्लयक्षत्रयात्मकविद्याजपाङ्गकं चक्रपूजनम्। तथा हि—ज्ञानार्णवे त्रयोदशपटलान्तं श्रीचक्रपूजेतिकर्तव्यतामुक्त्वा चतुर्दशपटलारम्भे चक्रसाधनबीजसाधनमन्त्रसाधनानि ब्रूहीति देवीप्रश्ने तेषु प्रथमं 'वक्तुं शृणु सर्वाङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्' इति प्रतिज्ञाय—

अनेन विधिना यस्तु श्रीचक्रक्रममुत्तमम्।
पूजयेत्तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः।।

इतिश्लोकेन पूर्वोक्तविधिना चक्रराजस्य क्रमपूजनमेव पुनर्विधाय वक्ष्यमाणवश्यकर्मादिफलान्येव सकलं वशीकुर्यादिति सामान्येन फलत्वेन कीर्तितानि। तदुत्तरञ्च 'अक्षमालां समाश्रित्य' इत्यादिना मालाभेदानुक्त्वा विद्याजपस्य प्रथमद्वितीयतृतीयलक्षसंख्याः क्रमेण विधाय तत्तत्संख्याकजपसिद्धौ मानुषीदेवाङ्गनानागकन्याकृतचित्तक्षोभरूपान् विघ्नानप्युक्त्वा—

एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः स्वस्थमानसः।
संक्षोभयति भूर्लोकस्वर्लोकतलवासिनः।।
पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमयाः प्रिये।

इत्युपसंहृतम्। अत्र चराचरमयपदेन सर्वाणि फलानि संगृहीतानि चराचरातिरिक्तस्य तृतीयस्याभावात्। तेनैतदविरोधेनोपक्रमस्थस्य सकलं वशीकुर्यादिति वाक्यस्य सर्वाणि फलानि स्वात्मसात्कुर्यादित्यर्थः, सन्दिग्धेषु वाकयशेषादिति न्यायेन सिद्धः। तानि च फलानि वक्ष्यमाणकाम्यकर्मजन्यफलान्येव सकलपदेनानूद्यन्ते न तदितराणि। एकस्मै वा अन्ये यज्ञक्रतवः कामायाऽऽह्रियन्ते 'सर्वेभ्यः कामेभ्यो ज्योतिष्टोम' इति वाक्ये सर्वकामपदेन सर्वज्ञत्वाकाशगमनादिफलानामनभिधानसिद्धान्तात्। इयांस्तु विशेषः—तत्र वाक्यशेषेण सर्वक्रतुफलसान्निध्यमत्र तु पाठत एवेति। इदं तु कर्म पुरश्चरणात्मकमेव। तदुक्तं सौभागयरत्नाकरे—एतदुत्तरं वक्ष्यमाणानां कर्मणां काम्यप्रयोगत्वात्काम्यप्रयोगस्य विद्यासिद्धेरपेक्षितत्वाद्विद्यासिद्धेः पुरश्चरणमूलकत्वात्पुरश्चरणमनुक्त्वा काम्यप्रयोगकथनानौचित्यादक्षमालाभेदनिरूपणादक्षमालायाः पुरश्चरणप्रकरण एव वक्तव्यत्वाद्विघ्नबाहुल्यकथनादेवंविधविघ्नानां सिद्धिप्रतिबन्धकतया पुरश्चरणकाल एवानिष्टत्वात्काम्यकर्मसु तूक्तविघ्नानामेव फलत्वेनाभिधानाद् 'व्रतस्थः स्वस्थमानसः' इति नियममनःस्थैर्ययोः पुरश्चरणकाल एवात्यन्तमावश्यकत्वेनात्रैव कथनस्यौचित्यादित्यादि। सुन्दरीमहोदयेऽपि—व्रतस्थ इत्यनेन चायं पुरश्चरणजप इति सूच्यते। अनन्तरं च तदङ्गभूतदेशहोमाद्यनभिधायैव, यत्काम्यप्रयोगाभिधानं तत्तेषां पुरश्चरणानन्तरमेव कर्तव्यताद्योतनार्थमित्युक्तम्। ततश्चास्य कर्मणः पुरश्चरणरूपत्वेन काम्यकर्मविनियोगयोग्यतापादकत्वसामर्थ्येनैव फलाकाङ्क्षायाः शान्तेः सकलं वशीकुर्यादित्यस्य सकलकाम्यकर्मक्षमो भवतीत्येवार्थः पर्यवस्यति। ततश्च क्रमपूजनेन तादृशयोग्यतां भावयेदिति प्राथमिकविधेरर्थः। एव फलसंयोगेन क्रमपूजाया एवं प्राधान्येन सांग्रहणीवत्प्राकरणिकत्वे सिद्धे तत्प्रकरणपठितेषु—

समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं सदा शुचिः।
योषितो द्रावयन्त्येव मनस्तस्य सुनिश्चितम्।।

इत्यादिविधिषु फलाश्रवणात्फलवदफलन्यायेनाऽऽमनहोमानामिव लक्षत्रयजपस्याङ्गत्वम्। एवं च प्रत्यहं चक्रराजार्चनपूर्वकं कयाचित्संख्यया जपं कुर्वन्निरन्तरमैकरूप्येण लक्षत्रयसमाप्तिपर्याप्तदिवसानभिव्याप्यार्चनानुष्ठानं चक्रसाधनपदेनोच्यत इति सिद्धम्। एतदुत्तरं चोच्चावचानि काम्यपूजनानि कथयित्वा तदन्ते पटलसमाप्तिपर्यन्तं प्रायश्चित्तात्मकानि पुष्पविशेषकरणकपूजनान्युक्त्वा, पञ्चदशे पटले रत्ननिर्मितपुष्पपूजाविशेषान्फलविशेषार्थमुक्त्वा, षोडशे पटले क्रमप्राप्तं त्रिबीजसाधनं तत्साध्यकाम्यकर्माणि चोक्त्वा, सप्तदशे पटले मन्त्रसाधनमुक्तम्। तत्स्वरूपं चार्चनाङ्गको नवलक्षसंख्याको विद्याजपः।

चक्रं समर्चयेद्देवि सकलं नियतव्रतः।
बाह्यमध्यगतं वाऽपि मध्यं वा चक्रमर्चयेत्।।
उपचारैः समाराध्य सहस्रं प्रजपेद् बुधः।
तदग्रे संस्थितो मन्त्री ततोऽनन्तफलं लभेत्।।
ध्यात्वाऽथवा चक्रराजं मनःपूजासमन्वितः।
जपारम्भं सुधीः कुर्यान्महापातकहा भवेत्।।

इत्युपक्रम्य मानसोपांश्वादिजपभेदे फलभेदमुक्त्वा नवलक्षजपं विधाय—

नवलक्षप्रमाणं हि जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता हर्ता साक्षान्न संशयः।।
सर्ववन्द्यः सदा सुस्थः सर्वसौभाग्यवान्भवेत्।

इत्युक्त्वा देशहोमादेरभिधानात्। अत्रार्चनस्य जपारम्भमात्राङ्गत्वम् 'एवं गणपतिमिष्ट्वा ……………ललितोपास्तिमारभेत' इति कल्पसूत्रवाक्य इव स्पष्टं प्रतीयते। अत एवाल्पारम्भः क्षेमकर इति न्यायेन 'सहस्रं प्रजपेत्' इत्युक्तिः, नवचक्राणां संहारचक्रस्यैव वा स्थितिचक्रस्यैव वा बाह्यपूजाया मानसपूजायाश्च विकल्पः संगच्छते। ततश्च प्रथमदिवस एव क्षेत्रपरिग्रहादिरूपं पूर्वं पूर्वाङ्गजातं सम्पाद्य पश्चादुक्तान्यतमरीत्या चक्रार्चनमवकाशानुसारेणाऽऽरच्य समस्रमात्रां विद्यां जप्त्वा द्वितीयदिनमारभ्याऽऽमध्याह्नं त्रिचतुराद्यन्यतमनियतसंख्यया नवलक्षसमाप्तिपर्यन्तं तत्पर्याप्तदिवसेषु पूजनं विनैव जपं कृत्वा होमादिकं कुर्यात्। तदिदं मन्त्रसाधनमर्चनाङ्गके भवति। चक्रसाधने तु जपस्य प्राधान्याभावादेव तदङ्गहोमाद्यभावात्तत्प्रकरणे तदकथनं संगच्छते। मन्त्रसाधने जपारम्भ एवार्चनविधानाल्लिङ्गादेतद्विपरीते चक्रसाधनेऽर्चनस्य प्रात्यहिकत्वं लभ्यते। 'अनेन विधिना यस्तु' इतिवचनेन नित्यार्चनस्यैव सेतिकर्तव्यताकस्य परामर्शान्नित्यार्चनस्य प्रात्यहिकत्वात्तल्लाभः। अस्तु वा मन्त्रसाधनेऽप्यर्चनस्य प्रात्यहिकत्वम्। परं तु मध्यचक्रादिभेदेन विकल्पितत्वम्। चक्रसाधने तु सकलचक्रपूजैव कार्या न संक्षिप्तेत्येव विशेषः। अत एव मूले सकलचक्रार्चनमात्रमेकमुक्त्वा तद्भेदाननभिधायैव चक्रसाधनवर्णनम्, अर्चनभेदानां तु चतुर्थपटलान्ते कथनं संगच्छते। तस्माच्चक्रसाधनमन्त्रसाधनयोरर्चनजपयोरङ्गाङ्गिभाववैपरीत्याद्धोमादिसदसद्भावाच्च वैलक्षण्यमिति ज्ञानार्णवस्वरसतः सिद्धम्। प्रकृततन्त्रमप्यस्मिन्नर्थे

एव स्वरसमिति स्पष्टीभविष्यति। यदि परं संहितादितन्त्रान्तरेषु लक्षत्रयजपाङ्गत्वेनापि होमादिविधानमस्तीत्यालोच्यते तदा वाचनिकं होमस्याङ्गत्वं स्वीक्रियताम्। मन्त्रसाधने होमस्य साक्षात्प्रधानाङ्गत्वेऽपि चक्रसाधने तस्याङ्गाङ्गत्वं वचनबलाद्दै मृधाङ्गप्रयाजादीनामिव भविष्यति। संहितायां चक्रसाधनप्रकरणाद्बहिर्लक्षत्रयजपविधानात्प्रकरणान्तरन्यायेन तस्य कर्मान्तरत्वं वा सुवचमिति सिद्धम्। प्राचीनास्त्वित्थं मन्यन्ते—चक्रसाधनाख्यं कर्मैव नास्ति। पुरश्चरणमिति संज्ञा तु परिशेषान्मन्त्रसाधनस्यैव। यत्तु ज्ञानार्णवे चक्रसाधनकथनप्रतिज्ञानं तत्र चक्रसाधनमितिपदं लक्षत्रयजपोतरवक्ष्यमाणकाम्यपूजानामेव वाचकम्। प्रतिज्ञाव्यवहितोत्तरं कथ्यमानो जपस्तु मन्त्रसाधनमेव। स च सप्तदशे पटले वक्तुं युक्तोऽपि स्वतन्त्रत्वादिहैव कथित:। अत एव सौभाग्यरत्नाकरे चक्रसाधनप्रकरणाल्लक्षत्रयजपमुत्कृष्य नवलक्षजपकथनप्रकरणे संख्यांशे विकल्पेनास्य निवेश: कृत:। सुन्दरीमहोदयाकृता तु तदुत्कर्षमसहमानेन लक्षत्रयजपस्य मन्त्रसाधनत्वमङ्गीकृत्यैव काम्यपूजाधिकारसिद्ध्यर्थमिहैव कथनमित्युक्तम्। परं तु तत्पक्षे वैकल्पिकनवलक्षजपस्याप्यत्रैव कथनापत्तिरिति चोद्ये काम्यपूजास्वेतावन्मात्रेणाप्यधिकार इति ध्वननाय तदकथनमित्युत्तरमित्यादि। तदिदं ज्ञानार्णववामकेश्वरतन्त्रस्वारसिकार्थविरुद्धकल्पनमिति स्पष्टमेव। नन्वेवं सति भवन्मते दक्षिणामूर्तिसंहितास्वरसविरोध:। तत्र हि एकोनत्रिंशे पटले 'शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीविद्यामन्त्रसाधनम्' इति प्रतिज्ञाय रत्नपुष्पपूजाम्, 'पूजयेद्रत्नखचितैश्चम्पकै: स्वर्णजै: प्रिये' इत्यादिना संक्षिप्योक्त्वा मन्त्रसाधनाङ्गदेशं मालाश्चाभिधाय लक्षत्रयजपं तद्दशांशहोमादिकं चोक्त्वा पश्चात्, 'अथवा नवलक्षं तु जपेद्विद्यां समाहित:' इत्यादिना नवलक्षजपतद्दशांशहोमादिविधिं विस्तरेण पटलसमाप्तिपर्यन्तमुक्त्वा तदुत्तरपटले—

अथात: संप्रवक्ष्यामि चक्रराजस्य साधनम्।
एवं संसिद्धविद्याया विनियोगक्रमं शृणु।।

इति प्रतिज्ञाय काम्यपूजा: कथयित्वा तदन्त एव संक्षिप्य त्रिबीजसाधनमुक्त्वा पटल: समापित:। अत्र च लक्षत्रयजपस्य मन्त्रसाधनत्वं काम्यपूजानामेव चक्रसाधनत्वमिति स्पष्टं प्रतीयत इति चेत्। सत्यम्। तन्त्रकर्तु: स्वतन्त्रेच्छत्वेन पर्यनुयोगानर्हत्वमेवेह समाधानं कथमन्यथा रत्नपूजाया मन्त्रसाधनप्रकरणे कथनं काम्यपूजाप्राये बीजसाधनकथनं नवलक्षत्रिलक्षजपयोरैच्छिकविकल्पायोगेन शक्ताशक्तभेदेन व्यवस्थायामावश्यक्यां सत्यामादौ नवलक्षजपस्य पश्चात्त्रिलक्षजपस्य कथने युक्तेऽपि वैपरीत्येन तत्कथनं च सन्दर्भशुद्धिमुरीकुर्यात्। ईदृशैकतन्त्रावलम्बनेन सन्दर्भशुद्धिमतोर्द्वयोरन्यथा करणमयुक्तं च। लक्षत्रयजपश्च चक्रसाधनात्मकात् तस्मात्कर्मान्तरमिति तूक्तमेव। यस्तु चक्रराजसाधनप्रतिज्ञाश्लोकस्तत्र पूर्वार्धोत्तरं तत्कथनप्रकारस्त्रुटित: सर्वज्ञत्वान्मनसैव वोपस्थापित:। अत एवोत्तरार्धे चक्रसाधनकथनोपसंहारचिह्नम्—'एवं संसिद्धचक्रस्य विनियोगक्रमं शृणु' इति। संसिद्धचक्रस्येति वक्तव्ये विद्याया इत्युक्तिस्तु विद्याचक्रदेवीनामभेदाभिप्रायेण बहुशो व्यवहारदर्शनादविरुद्धैव। अथवा पूर्वोक्तलक्षत्रयमात्रस्यात्रत्यैवंपदेनोत्कृष्य परामर्श इति तन्त्रान्तराविरोधाय व्याख्येयम्। यद्वा माऽस्तु संहितातन्त्रस्यैवं

व्याख्या। नहि सर्वेषां तन्त्राणामविरोधेनैकवाक्यता केनापि सुकरा। ज्ञानार्णववामकेश्वरतन्त्रयोस्तु पूर्ववर्णितोऽर्थो युक्तियुक्त एवेति। ननु त्रिलक्षजपस्य चक्रसाधनाङ्गत्वे तदुत्तरसाध्यकाम्यार्चनानामिव नवलक्षजपरूपमन्त्रसाधनोत्तरं काम्यजपानामाम्नानं कुतस्तन्त्रेषु न दृश्यत इत चेत्। दृश्यत एव सौभाग्यरत्नाकरमते पञ्चचत्वारिंशल्लक्षजपरूपं काम्यम्। अस्मन्मते तु ज्ञानार्णवे सप्तदशपटल एव होमेतिकर्तव्यताकथनोत्तरम्—'नित्यहोमं पुरा कृत्वा काम्यहोममथाऽऽचरेत्' इत्यादिनोच्चावचद्रव्यकरणकहोमानामुच्चावचफलार्थतया विधानदर्शनात्तान्येव मन्त्रसाधनोत्तरक्रियामाणकाम्यकर्मणि जपरूपमेव काम्यमपेक्षितमिति निर्वन्धे मानाभावात्। नवलक्षजपविधानोत्तरं तदुपर्युक्तदेशान्विधाय यत्पुनः स्मर्यते—

तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपकः।
ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी।।

इति तत्काम्यजपविधानपरमिति सुवचत्वाद्वा। यत्तु सौभाग्यरत्नाकरेणोक्तम् अत्यलक्षशब्दश्चक्रसाधनप्रकरणोक्तलक्षत्रयस्मारकः, दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यत्वादिति, तन्न। अव्यवहितपूर्वोक्तनवलक्षस्मारकत्वं विहायातिदूरस्य स्मारकत्वोक्तेरतिसाहसत्वात्। संख्यानिर्देशाभावेनैकवचनान्यथाभावस्य पक्षद्वयेऽप्यविशेषात्। यद्यपि तन्मते पूर्वग्रन्थो न नवलक्षजपपरः, किन्तु पञ्चचत्वारिंशल्लक्षकाम्यजपपरः। स च नात्र परामृष्टुं शक्यते। पुनःस्मारणे प्रयोजनाभावात्। दूरस्थस्मारणस्य त्वनुपदवक्ष्यमाणहोमादिसम्बन्धलाभः प्रयोजनमिति भवति दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यत्वमिति। तथाऽपि श्रीक्रमसंहितायाम्—'लक्षमेकमिमां जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत्' इत्यादिनैकलक्षजपस्यैव पुरश्चरणत्वमुक्तमिति भवद्भिरेव पूर्वमभिहितत्वात्तदेकवाक्यत्वाच्चैकवचनभङ्गमन्तरेणैवैकलक्षजप एवात्र पुरश्चर्यात्वेनोक्त इति भवन्मतरीत्या सुवचमिति न किञ्चिदेतत्। सुन्दरीमहोदयमते तु पूर्वग्रन्थो नवलक्षजपपर एव। परं तु न स जपो विद्यासिद्धिफलकः, किन्तु शिवसारूप्यफलकः। चतुर्दशपटलोक्तलक्षत्रयजप एवेह पुनः सिंहावलोकनन्यायेनोच्यते। तस्य फलं विद्यासिद्धिः। एकलक्षजपपुरश्चरणस्यैव सतो 'योषितो द्रावयन्त्येव मनस्तस्य सुनिश्चलम्' इत्यादिना विघ्ने सति द्वितीयलक्षतातृतीयलक्षतापर्यन्तत्वविधानान्न लक्षमित्येकवचनान्ततानुपपत्तिः। अग्रे च 'किंशुकैर्हवनं कुर्याद्दशांशेन वरानने' इत्यादिना विधीयमाना निष्कामसकामहोमास्तु उभयविधपुरश्चरणाङ्गभूता ज्ञेयाः। एवं च त्रिलक्षं विद्यासिद्ध्यै पुरश्चरणं कृत्वाऽनन्तरं नवलक्षपुरश्चरणं कार्यमिति सिद्धं पुरश्चरणद्वयम्। एवं च दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यताऽपि लभ्यत इति, तदपि श्रीक्रमसंहितैकवाक्यत्वायैकलक्षजपस्यैव विधानसम्भवादयुक्तमेव। यत्तु एकलक्षस्यैव ततो विघ्ने सत्युत्तरलक्षपर्यन्तत्वविधाना मिति, तन्न। तथा सति विघ्नाभावे सत्येकलक्षस्यैव द्विलक्षस्यैव वा पुरश्चर्यात्वापत्तेः। तथा च त्वदभिलषितैकवाक्यत्वभङ्गस्तदवस्थः। किं च नवलक्षत्रिलक्षयोर्विकल्पो हि दक्षिणामूर्तेरभिमतः। त्वया च समुच्चयः कथित इति कीदृशमेकवाक्यत्वमिति विचारयतां काम्यजपान्तरपरत्वेन लक्षजपविधिव्याख्याने तु न कोऽपि दोषः। न चास्मिन्पक्षे नवलक्षजपाङ्गहोमादिकथनोत्तरमस्य

कथनापत्तिरिति वाच्यम्। तथात्वे तद्दशांशहोमादिप्राप्त्यर्थं नवलक्षविकृतित्वस्वीकारापत्तिः। इष्टापत्तौ तु होमाश्रितगुणकामानामाष्टमिकन्यायेन प्राप्तिर्न स्यात्। अतो जपद्वयस्य समानविध्यलाभायेहैव तत्कथनस्याऽऽवश्यकत्वादित्यादिकं न्यायविद्भिरूह्यमित्यलं विस्तरेण।

प्रथमपटले च चक्रोद्धारस्य पूर्वं वर्णितत्वात्तत्पूजायाश्चाव्यवहितपूर्वमुपस्थितत्वाच्चक्रपूजा एव कतिचित्काम्याः प्रथमं विवक्षुस्तदधिकारसिद्धये चक्रसाधनं प्रथममुपदिशति सप्तभिः श्लोकैः—मन्त्रयोगं चक्रसन्नाहम्। मन्त्रचक्रयोरभेदाभिप्रायेणैवमुक्तिः। 'योगः सन्नहनोपायध्यानसंगतियुक्तिषु' इति अमरः। चक्रसाधनमिति यावत्। अनेन पूर्वोक्तेन, विधानेन प्रकारेण, साधकेन चक्रसिद्धीच्छुना। यत्र प्रपूज्यते तत्र क्षोभो विघ्नो जायते। प्रपूज्यत इत्यनेनाऽऽपूजनमेव चक्रसाधनस्वरूपमिति दर्शितम्। इदं च मन्त्रसाधनमेवेति प्राचीनपक्षे मन्त्रयोगशब्दो यथास्थितः। प्रपूज्यत इत्यस्य प्रजप्यत इत्यर्थो वर्णनीयः। पूजारम्भमात्रेण ग्रामीणानां स्त्रीणां मनःक्षोभात् तत्कटाक्षपातादिभिः साधकस्य चित्तव्यामोहाद्धेतुभङ्गो भवति। ततो धैर्येण तदगणने नागरीभिर्विघ्नः। तस्याप्यवहेलने तद्देशवर्तिनीभिर्दूरस्थाभिरेतत्समीपमायाताभिर्विघ्नो भवतीत्यर्थः। प्राञ्चस्तु—देशादिग्रहणेन स्वेच्छया यत्र कुत्रापि पुरश्चरणार्थमवस्थातव्यमिति ध्वन्यते। तेन च पशुशास्त्रोक्तायाः पर्वताग्रनदीतीरतीर्थायतनाद्यावश्यकताया बाध इति व्याचक्षते। तन्न। 'यत्र वा कुत्रचिद्देशे लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्' इत्यादिनाऽस्मिन्नेव तन्त्रेऽन्यत्र च देशनियमविधानस्य बहुलमुपलम्भात् ॥१॥

ज्वलत्कामाग्निसन्तापप्रतापोत्तप्तमानसाः ॥२॥
पिपीलिकास्थिन्यायेन दूरादायान्ति योषितः।
मन्त्रसम्मूढहृदयाः स्फुरज्जघनमण्डलाः ॥३॥
तद्दर्शनान्महादेवि जायन्ते सर्वयोषितः।

हे महादेवि! ज्वलन्त कामाग्नि के तापप्रताप से उत्तप्तमानसा नारियाँ पिपीलिकास्थिन्यायेन दूर से साधक के पास चली आती हैं एवं साधक का दर्शन करके मन्त्रसम्मूढ़हृदया सभी नारियाँ अनावृत जघनमण्डला हो जाती हैं॥२-३॥

पिपीलिकास्थिन्यायेन—अस्थि के अन्दर मज्जा रहती है। मृत देह की अस्थियों में स्थित मज्जा की लालच में चीटियाँ दूर से ही आकर्षित होकर आ जाती हैं। यही है—पिपीलिकास्थि न्याय। इसी प्रकार अनेक नियमों द्वारा रक्षित मन्त्रानुष्ठान व्रत में रत जो साधक हैं, उनके पास नारीगण दूर से आ जाती हैं। शिवानन्द ने इसकी अन्य व्याख्या की है। जैसे—मिट्टी के भीतर गर्त्त में यदि चीटियाँ हैं और अत्यन्त ऊँचे वृक्ष की डाल पर पका बेल लगा है, तब चीटियाँ वहाँ भी जाकर उस बेल के कठिन आवरण को भेद कर उस बेल में घुस जाती हैं, उसी प्रकार अनेक दूरस्थित नारीगण भी विविध नियमों से रक्षित साधक के पास पहुँच जाती हैं। **मन्त्रसम्मूढ़हृदया**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि मन्त्रप्रयोग से कर्त्तव्य विस्मृत हो गया हो, ऐसी हृदय वाली॥२-३॥

※ ऋजुविमर्शिनी ※

पिपीलिकास्थिन्यायेनेत्यस्यायमर्थः—पिपीलिका यथा महीविवरशायिन्यो बिल्वादिमहावृक्षाग्रलम्बमानफलास्थिसञ्चयमतीत्य तदन्तर्गतं सारं प्रविशन्ति तथा योषितो दूरात् साधकमिति। दूरः कृच्छ्रप्राप्तपर्यन्तः। अत्राभियुक्तवचनम्—

देव्योऽपि विविशुस्तत्र व्योम व्योमात्म(के?कं) जगत्।
ब्रह्मा(ण्डे?ण्डा)ऽन्तर्यथा पक्वं मृदुबिल्वं पिपीलिकाः।। इति।

मन्त्रसम्मूढहृदया मन्त्रप्रयोगविस्मृतप्रस्तुतकर्तव्यहृदयाः। स्फुरज्जघनमण्डलाः। तद्दर्शनादिति सम्बन्धः।।२-३।।

※ अर्थरत्नावली ※

पिपीलिकास्थिन्यायेनेत्यस्यायं भावः—यथा पिपीलिका अस्थिकवचरक्षितमपि तदन्तर्गतं मज्जारूपं ग्रहीतुं प्राप्नुवन्ति केनाप्युपायेन, तथा योषितोऽपि मन्त्रानुष्ठाननिरतं साधकमनेकनियमरक्षितमपि विघ्नहेतुभूताः प्राप्नुवन्तीति भावः।।२-३।।

※ सेतुबन्धः ※

क्षोभप्रकारमेवाऽऽह। त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाख्या हि धातवः पूर्वपूर्वस्यान्तस्तिष्ठन्ति। एवमतिगुप्ततयाऽवस्थितोऽपि मृतशरीरस्थो मज्जधातुः पिपीलिकाभिरस्थ्नामन्तराक्रम्य भुज्यत एव। सोऽयं पिपीलिकास्थिन्यायः। अनया रीत्या साधको गिरिगुहान्तरवस्थितोऽपि योषिद्भिराक्रम्य मोहयित्वा भुज्यत इत्यर्थः। स्पष्टमन्यत् ।।२-३।।

जप्ते लक्षैकमात्रे तु क्षुभ्यन्ते भूतलाङ्गनाः ।।४।।
यदि न क्षुभ्यतीत्थं हि साधकस्य मनो मनाक् ।
संक्षुभ्यन्ति ततः सर्वाः पाताले नागकन्यकाः ।।५।।

साधक के एक लक्षमात्र जप करने से भूतलवासिनी सब नारी कामविकार से ग्रस्त हो जाती हैं। यदि इससे भी साधक का मन तनिक भी विकारग्रस्त न हो, तब पातालवासिनी नागकन्यायें विकारग्रस्त हो जाती हैं।।४-५।।

इस श्लोक की व्याख्या में टीकाकारों ने जो कहा है, उसका सार यह है कि साधक यदि मूल विद्या का एक लाख जप करता है, तब उसके फल से पृथ्वी की समस्त नारियाँ विकारग्रस्त हो जाती हैं। भास्करराय के अनुसार तब वे कटाक्षादि नाना हाव-भाव से साधक की साधना में विघ्न उपस्थित करती हैं। यदि इससे भी साधक का मन विकारग्रस्त नहीं होता एवं साधक दो लक्ष जप करता है तब पाताल की समस्त नागकन्यायें विकारग्रस्त हो जाती हैं (शिवानन्द ने मात्र एक लक्ष जप से नागकन्याओं को विकारग्रस्त होना माना है)। भास्करराय कहते हैं कि तब वे साधक की पूजा में विघ्न करना चाहती है। मूल में एक लाख जप का ही विवरण है; परन्तु भास्करराय ने युक्ति द्वारा प्रमाणित करना चाहा है कि तब दो लाख जप आकांक्षित है।।४-५।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

पाताले नागकन्यका इति। साधकेन लक्षजपे कृते नागकन्यकाः साधकसमीपमागत्य मन्त्रबलेन संक्षुभ्यन्त इत्यर्थः।।४-५।।

*** अर्थरत्नावली ***

संक्षोभ इति कामविकारः। तमुत्पादयतीति भावः।।४-५।।

*** सेतुबन्धः ***

पूर्वोक्ता हि पूजा नित्यं कार्या।

> कौलाचारसुसंयुक्तैर्वीरैस्तु सह पूजयेत्।
> नित्यम् ....।।(८/१९९-२००)

इति उत्तरतन्त्रे वचनात्। एवं च चक्रसाधनाख्यपूजायास्तदभेदे तद्विकृतिरूपकर्मान्तरत्वे वा प्रात्यहिकतायास्तदङ्गजपस्य च तत एव प्राप्तिः। ततश्चोक्तरीत्याऽर्चने क्रियमाणे यद्येकलक्षविद्याजपपर्याप्तकालपर्यन्तमर्चनमविघ्नं स्यात् तदा भूमण्डलवासिन्यः सर्वा अपि योषितः क्षोभयन्ति। लक्षैकमात्र इत्यत्र पूर्वकालैकेति समासेऽपि बाहुलकः पूर्वनिपाताभावः। एकमात्रशब्देनैव वा लक्षशब्दस्य समासः। तथाऽपि साधक ईषदप्यक्षुब्धो यदि द्वितीयलक्षसमाप्तिपर्यन्तमर्चयेदिति शेषः, तदा नागकन्या भुवमागत्य विघ्नमाचरन्ति। अत्र जपस्यार्चनाङ्गत्वेन प्राप्तिद्योतनायैव जप्त इति सिद्धवन्निर्देशः। द्वितीयलक्षजपस्य कण्ठरवेणाकथनेऽप्युत्तरत्रैवं लक्षत्रयं जप्त्वेत्युपसंहाराल्लिङ्गाद् द्वितीयतृतीयलक्षपदादेरध्याहारः। स्पष्टं च ज्ञानार्णवे—

> तदा द्वितीयलक्षं तु प्रजपेत्साधकोत्तमः।
> तृतीयलक्षे संप्राप्ते भ्रामयन्ति सुराङ्गनाः।।

इत्यादि। एतेन लक्षैकमात्र इति मात्रपदस्वारस्याद्द्वितीयतृतीयलक्षयोरनुपादानाच्चैकलक्षात्मकमेवेदं कर्म। तत्रैव लोकत्रयाङ्गनाकृता विघ्नाः क्रमेण भवन्ति। एवं लक्षत्रयमिति कर्मान्तरमिति व्याख्या नोपादेया। 'एका दीक्षा तिस्रो दीक्षा, एकं वृणीते द्वौ वृणीते' इत्यादाविव सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदायोगात्। तन्त्रान्तरविसंवादाच्च। यदपि व्याख्यानमिमानि त्रीणि कर्माण्येकद्वित्रिलक्षरूपाणीति तदप्यत एव नाऽऽदर्तव्यम्। एवं सति यत् सौभाग्यरत्नाकरेणोक्तं वामकेश्वरतन्त्र एकलक्षात्मकमपि पुरश्चरणमुक्तमस्तीति वदन्तीति, तद्यद्येतद्व्याख्याभिप्रायेण तदा तदपि चिन्त्यमेव। पञ्चमपटले वक्ष्यमाणयुक्त्यभिप्रायेण चेद्युक्तमेव।।४-५।।

> **तासामपि यदा नासौ क्षोभं याति मनागपि।**
> **ततः स्वर्गनिवासिन्यो विद्रवन्ति सुराङ्गनाः ।।६।।**
> **एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः साधकोत्तमः।**
> **संक्षोभयति देवेशि त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।७।।**

हे देवेशि! उनके द्वारा भी यदि साधक क्षुब्ध नहीं होता तब स्वर्ग की देवाङ्गनायें

कामविकारग्रस्त हो जाती हैं। इस प्रकार व्रतधारी साधकोत्तम के तीन लाख जप करने पर वह सचराचर त्रैलोक्य को क्षुब्ध कर देता है।।६-७।।

तासामपि—भास्करराय इस पद का अर्थ करते हैं—नागकन्याओं के भी। अन्य टीकाकारों में से कोई-कोई तासामपि के साथ 'दर्शनेन' पद का योग करके अर्थ करते हैं कि उनके दर्शन द्वारा अर्थात् नागकन्याओं के दर्शन द्वारा। **व्रतस्थः**—विद्यानन्द के मत से अर्थ है—ब्रह्मचर्यादि नियमरत। भास्करराय इस पद का अर्थ करते हैं—बलवत्तर विघ्नसमूह के बीच भी अस्खलित ब्रह्मचर्यवान।।६-७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तासामपीति। दर्शन इति शेषः। असौ साधकः। व्रतस्थः स्त्र्यादिहीनः।।६-७।।

* अर्थरत्नावली *

व्रतस्थ इति ब्रह्मचर्यादिनियमयुक्त इत्यर्थः।।६-७।।

* सेतुबन्धः *

तासामपि नागकन्याभिरपि। सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। दर्शनेनेति शेष इत्यन्ये। ततस्तृतीयलक्षजपारम्भोत्तरम्। एवमुक्तरीत्या लक्षत्रयं जप्त्वा लक्षत्रयजपसमाप्तिपर्यन्तं क्रमपूजां कृत्वा। व्रतस्थो बलवत्तरविघ्नसमूहेऽप्यस्खलितब्रह्मचर्यः। अत एव साधकोत्तमश्चक्रसाधनकर्मठेष्वग्रगण्यः संक्षोभयति स्वायत्तीकुरुते। मनोरमायां तु 'त्रैलोक्यक्षोभणक्षमान्' इतिपदम् 'आशेषभुवनप्रथाकरान्' इति व्याख्यातम्।।६-७।।

एवं सिद्धचक्रस्य काम्यार्चनाद्यात्मकांस्त्रिचत्वारिंशत्प्रयोगानाह—लिखित्वेत्यादिना पटलसमाप्तिपर्यन्तम्। तत्र कामनीयफलषाड्विध्यात्तत्साधनानि कर्माण्यपि षड्भवन्ति। शान्तिवश्यस्तम्भनविद्वेषणोच्चाटनमारणभेदात्। तत्र शान्तिरुपद्रवनिवृत्तिः। वश्यं राजादीनां स्वायत्तीकरणम्। स्तम्भनं प्रवृत्तिनिरोधः। विद्वेषणं स्नेहभङ्गः। उच्चाटनं स्थानान्तरप्रापणम्। प्रसिद्धमन्यत्। परे तु रक्षाशान्तिजयलाभनिग्रहनिधनभेदात् षाड्विध्यमाहुः। प्रसज्ज्यमानोपद्रवप्रागभावपरिपालनं रक्षा। प्रसक्तोपद्रवध्वंसः शान्तिः। रणद्यूतादिविजयो जयः। वाणिज्यादिभिरिष्टप्राप्तिर्लभः। व्याध्युत्पादनं निग्रहः। शेषं प्रसिद्धम्। अत्र स्तम्भनस्य रक्षायां वश्याकर्षयोर्जये विद्वेषोच्चाटनयोर्निग्रहेऽन्तर्भावमिच्छन्ति। यद्यपि कामनानन्त्यात्तत्साधनानन्त्येन षट्संख्यातिक्रमेऽपि न तार्किकाणामिव क्वापि हानिस्तथाऽपि षट्स्वेव कर्मसु प्रातिस्विकमङ्गविशेषाणां तन्त्रान्तरे विधानात्तत्तत्कर्मान्तर्भावे तत्तदङ्गप्राप्तिः फलम्। तानि चाङ्गानि सौभाग्यरत्नाकरे त्रयोविंशे तरङ्गे द्रष्टव्यानि।।६-७।।

वश्यप्रयोगाः

लिखित्वा विपुलं चक्रं तन्मध्ये प्रतिमां यदा।
नाम्न लिखति संयुक्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत्ततः।।८।।

शतयोजनमात्रस्था त्वदृष्टाऽपि च या भवेत्।
भयलज्जाविनिर्मुक्ता साऽप्यायाति विमोहिता ।।९।।

विपुल चक्र बनाकर उसके बीच नामयुक्त साध्या की प्रतिकृति बनाये; तदनन्तर उसकी दह्यमाना रूप से भावना करनी होगी। ऐसा करने पर शतयोजनदूरस्था अदृष्टा साध्या भी विमोहित होकर भय-लज्जा छोड़कर आती है।।८-९।।

विपुलचक्रं—विद्यानन्द के मत से सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक श्रीचक्र। भास्करराय के मत से बिन्दुरहित श्रीचक्र बनाये; क्योंकि इसी बिन्दुस्थान में ही वशीकरण हेतु साध्या का चित्र बनाना होगा। **प्रतिमां**—प्रतिकृति। वशीकरण कर्म जिसके लिये करना है (साध्या) उसकी प्रतिकृति। **नाम्ना संयुक्तां**—इसके साथ प्रतिमा का सम्बन्ध है अर्थात् अर्थ है—नामयुक्त प्रतिकृति (चित्र)।

विद्यानन्द इस व्यापार की व्याख्या करते हैं कि प्रतिकृति के हृदय देश में मूल विद्या लिखे। उस मूल विद्या के हकार के मध्य में षष्ठी विभक्तियुक्त साधक का नाम, तदनन्तर हकार तथा रकार के मध्य द्वितीया विभक्तियुक्त साध्या का नामाक्षर और उसके साथ 'आकर्षय-आकर्षय' लिखना होगा। भास्करराय अन्य प्रकार का अर्थ लिखते हैं। उनके मत से 'नाम्ना संयुक्तां' का अर्थ है—नाम के साथ। वे 'नामसंहिता' तथा 'ज्वलन्तीं' इन दो पदों का एक साथ अर्थ करते हैं अर्थात् 'महाबीजविदर्भितनामसहितां'। महाबीज अर्थात् कामराज बीज अथवा कामराजकूट। अत: अर्थ होगा—साध्या के नाम को कामराज बीज के साथ विदर्भित करना होगा। विदर्भन अर्थात् मन्त्रवर्णद्वन्द्व के मध्य साध्यानामाक्षर-लेखन। जैसे साध्या का नाम है—लक्ष्मी। कामराजकूट षड्क्षर है। उसके द्वितीय तथा तृतीय अक्षर के मध्य 'ल' अक्षर। अब कामराज कूट के चतुर्थ तथा पञ्चम अक्षर के बीच लिखना होगा—'क्ष्मी'। जहाँ साध्या के नाम का अक्षर मन्त्राक्षरों से अधिक होगा, वहाँ मन्त्र की पुनरावृत्ति करके सब नामाक्षरों का विदर्भन करना होगा।

ज्वलन्तीं—शिवानन्द के अनुसार मन्त्रपावक शिखा द्वारा दह्यमाना। **विमोहिता**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—आविष्टा।

* ऋजुविमर्शिनी *

तन्मध्ये चक्रस्य मध्ये। प्रतिमां साध्यस्य नाम्ना संयुक्तामिति सम्बद्ध्यते। ज्वलन्तीं मन्त्र-पावकशिखया। विमोहिता आविष्टा।८-९।।

* अर्थरत्नावली *

लिखित्वा विपुलं चक्रमित्यस्य सृष्टिस्थितिसंहारात्मकं चक्रं लिखित्वेति भाव:। तन्मध्ये प्रतिमां लिखेदित्यस्य तस्य महाचक्रस्य मध्ये साध्याकृतिं लिखेत्। **नाम्ना लिखति संयुक्ता-**

मिति। तस्याः प्रतिकृतेः। हृदयदेशे मूलविद्यां लिखित्वा तस्या हकारमध्ये साधकसंज्ञां षष्ठ्यन्तामालिख्य तदधो रेफहकारमध्ये द्वितीयान्तं साध्यनामाक्षरमाकर्षयाकर्षयेति च कर्म लिखेत्। अनुक्तेष्वाकर्षणेष्वयमेव विधिः। **ज्वलन्तीमिति।** तां साध्याकृतिं तद्योन्यन्तरालोत्थितमन्त्रपावकशिखया दह्यमानां चिन्तयेत् ।।८-९।।

❊ सेतुबन्धः ❊

तत्र वश्यप्रयोगमाह द्वाभ्याम्। बिन्दुस्थाने वशकर्मभूतायाः प्रतिकृतेर्लेखनाय बिन्दुविरहितं विपुलं श्रीचक्रं लिखेत्। तत्र लेखनकरणद्रव्याकाङ्क्षायां वश्ये सिन्दूरादिरक्तद्रव्येण लेख्यमिति सामान्यविधिना वा, 'सिन्दूररजसा देवि कुङ्कुमेनाथवा पुनः' इति प्रकृतौ विहितस्य चोदकाद्वा, 'कृत्वा सिन्दूररजसा चक्रं तत्र विचिन्तयेत्' (१.१३१) इति दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्। अस्मिन्नेव कर्मणि सिन्दूरविधानाच्छाखान्तराधिकरणन्यायेन कर्मैक्ये सति गुणोपसंहाराद्वा सिन्दूरादेरेव प्राप्तिः सम्भवतीत्याशयेन मूले तदनुक्तिः। यत्तु 'गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत्' इति ज्ञानार्णवेऽस्यैव कर्मणः प्रकरणे वचनं तद्यद्यपि स्तम्भनकर्मण एवानुगुणं पीतद्रव्यत्वात् तथाऽपि वाचनिकत्वात् तदपि वैकल्पिकं लेखनद्रव्यम्। अत एव ज्ञापकाद्वश्यादिषट्कर्मभेदेन नियतानामङ्गानां तन्त्रान्तरेषु प्रकरणान्तरे कथितानामिह न प्राप्तिरित्यपि सुवचम्। एतेन षट्कर्मभूतकाम्यचक्रार्चनविशेषाणां चक्रसाधनान्तराधिकारककाम्यचक्रार्चनानां च त्रयोविंशद्द्वात्रिंशतरङ्गयोर्भेदेन लेखनं सौभाग्यरत्नाकरे संगच्छते। नाम्ना संयुक्तामिति प्रतिमाविशेषणम्। नाम्नश्च कामराजकूटेन विदर्भणमावश्यकम्। 'ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम्' इति तन्त्रान्तरात्। 'महाबीजशब्देन कामराजबीजमुच्यते' इति श्रीविद्यानन्दनाथो व्याचख्यौ। विदर्भप्रकारस्तु शारदातिलके—

मन्त्रार्णद्वन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत्।
विदर्भ एष विज्ञेयः························।। इति।

तद्यथा षडक्षरस्य कूटस्य द्वितीयतृतीयाक्षरयोर्मध्ये लक्ष्मीति साध्यनाम्नः प्रथमाक्षरं चतुर्थपञ्चमाक्षरयोर्मध्ये साध्यद्वितीयाक्षरं लेख्यमिति। साध्यनामाक्षराधिक्ये तु प्रतिप्रधानमिति न्यायेन मन्त्रं पुनः पुनरावर्त्य साध्यनामाक्षराणि सर्वाणि विदर्भयेत्। मन्त्रविदर्भणस्य नामसंस्काररूपत्वात्। अर्थरत्नावलीकारास्तु—प्रतिमाया हृद्देशे मूलविद्यां लिखित्वा तस्या हृल्लेखाया हकारमध्ये साधकनाम षष्ठ्यन्तं विलिख्य तदधो रेफहकारयोर्मध्ये साध्यनाम द्वितीयान्तमाकर्षयेति क्रियापदं च लिखेदिति व्याचक्षते। तत्र मूलं त एव जानते। यन्त्रसामान्यविधितस्ततोऽप्यधिकानां लेखनीयाक्षराणां लाभात्। तदुक्तम्—

जीवः प्राणो जीवमन्त्रात्ममन्त्रौ शक्तिर्नेत्रे श्रोत्रयुग्मं च जिह्वा।
साध्यः कर्ता कर्म तत्तत्क्रिया च द्वे गायत्र्यौ मन्त्रयन्त्रप्रभेदात्।।
प्राणक्षेपो यन्त्रहृद्भूतबीजं रक्षावर्णो मातृकाभूतवर्णाः।।
इत्यङ्गानां विंशतिर्लेखनीया यन्त्रे यन्त्रे सम्प्रदायानुसारात्।। इति।

अन्यो: श्लोकयोरर्थस्तु तृचभास्करे सविस्तरं वर्णितोऽस्माभिः। एतस्यापि यन्त्रत्वाद्विंशतिलेखनस्येष्टत्वे तु नित्यार्चनेऽपि चक्रराजे तल्लेखनापत्तिर्दुरुद्धरा। तत्रापीष्टापत्तौ सम्प्रदाय एव शरणमिति दिक्। ज्वलन्तीं कामाग्नि दह्यमानां विचिन्तयेत्। मन्त्रपावकशिखाविमोहितामित्येके। सा च शिखा तयोन्यन्तरालोदिता चिन्त्येत्यपि केचित्। तत्सर्वं तन्त्रान्तरसंवाद एव विश्रम्भणीयम्। शतयोजनेति शतशब्दोऽनेकपरः। 'योजनानां सहस्रं ते' इति तन्त्रान्तरात्। स्पष्टमन्यत्। न चास्मिन्प्रयोगे चिन्तयेदितिविधिवशाच्चिन्तनमात्रमेव फलसम्बन्धात्प्रधानं नार्चनमश्रवणादिति वाच्यम्। चक्रलेखनोक्त्यैव तदर्चनलाभात्। यथा तावत्सौर्यादिवाक्येषु निर्वपतिश्रवणं वायव्यादिवाक्येष्वालभतिश्रवणं च यजतेर्लक्षकं दर्शदैक्षप्रकृतिकत्वे लिङ्गं च तथेह चक्रपदमात्रेण तदर्चनस्य नित्यार्चनप्रकृतिकत्वस्य च लाभ इति सम्प्रदायात्। एवमुत्तरत्रापि। एते च सर्वे प्रयोगाः सप्तदिनावधिका इति केचित्। सकृदेव वा यावत्फलोदयमावृत्तिर्वेति तु युक्तम्। क्वचित्प्रयोगे सप्ताहाद्दासवत्किङ्करो भवेदित्युक्तमस्तीति चेत्। किं तावता षण्मासान्ध्यानयोगेनेत्यप्युक्तमस्त्येवेति।।८-९।।

मन्त्राणां विविधप्रयोगाः

तन्मध्यगोऽथवा भूत्वा मन्त्री सञ्चिन्तयेद्यदा।
सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम् ।।१०।।
ततः सञ्जायते देवि सर्वसौभाग्यसुन्दरः।
वल्लभः सर्वलोकस्य साधकः परमेश्वरि ।।११।।

हे देवि! अथवा तन्मध्यग होकर मन्त्री जब स्वयं की सम्पूर्ण रूप से अरुण तथा साध्य की भी अरुणीकृतरूपेण चिन्तना करता है, वह साधक सर्वसौभाग्यसुन्दर तथा सर्वलोकवल्लभ हो जाता है।।१०-११।।

तन्मध्यगः—चक्रमध्यगत, चक्रमध्य-स्थित। विद्यानन्द इस पद का अर्थ करते हैं कि इसका तात्पर्य महाचक्र के मध्य महाकामकलारूप आत्मविग्रह का ध्यान करना होगा। **मन्त्री**—साधक। **अरुणं**—भास्करराय अर्थ करते हैं सहस्र उदीयमान सूर्यवत्। **साध्यं**—भास्करराय के अनुसार वशीकरण किया कर्मभूत। **अरुणीकृतं**—भास्करराय का कहना है कि साधक के अपने तेज से परिव्याप्त। **सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतम्**—विद्यानन्द इस अंश की व्याख्या करते हैं कि विद्युल्लता के समान उज्ज्वल अपनी शक्ति को अर्थात् कुलकुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से वहन्नाड़ीपथ से बाहर लाकर साध्य की नासिकाविवरपथ से उसके मूलाधार में प्रवेश करके उसकी कुलकुण्डलिनी शक्ति के साथ ऐक्य भावना करने से अर्थात् एकीकृत करने से तथा उसे साध्य के हृदय कमल में ले जाने पर कुण्डलिनी शक्ति द्वारा कवलित प्राण-मन के साथ मूर्त्त उस साध्य जीव को अपने आसनस्थ करके साधक के ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रार में जो चिच्चन्द्रमण्डल रहता है, उससे

निःसृत प्रवालाकार, मस्तक से नादान्त-पर्यन्त व्याप्त अमृतधारा द्वारा, चक्राग्नि ज्वाला-प्रज्ज्वलित मात्र स्वयं को तथा स्वीयासनभूत साध्य को जिससे अरुणित किया जा सके, उस प्रकार से प्लावित करना होगा। **वल्लभः**—शिवानन्द के मत से वल्लभ का अर्थ है जिसका क्षणमात्र के लिये भी परित्याग न किया जाय।।१०-११।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

तन्मध्यगः चक्रस्य मध्यगतः। ततः स जायत इत्यत्र तच्छब्दः साधकं परामृशति। वल्लभः क्षणमपि परिहर्तुमशक्यः।।१०-११।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

तन्मध्यगोऽथवा भूत्वेति। तस्य महाचक्रस्य मध्ये महाकामकलारूपमात्मविग्रहं ध्यायेत्। **सर्वमात्मानमरुणं साध्यमप्यरुणीकृतमिति।** आधारादात्मनः शक्तिं विद्युल्लताभासुरां प्रवहणनाड्या बहिर्निस्सार्य साध्यनासाविवरेण तन्मूलाधारमावेश्य तच्छक्त्यैक्यभावनया तद्धृदयकमलं नीत्वा प्राणमनस्सहितं सविग्रहं तस्यात्मानं तया कवलीकृतमाकृष्य स्वस्यासनतां नीत्वा चक्रजातवेदसो ज्वालाप्रज्वालितगात्रं स्वकीयब्रह्मरन्ध्रसहस्रदलकमलचिच्चन्द्रमण्डलद्रुतविद्रुमाकारया सुधाधारया मस्तकादिपादान्तव्याप्तया तथाऽरुणितमात्मानं स्वस्यासनभूतं तम् अरुणितं यथा भवति तथाऽऽप्लावयेदित्यर्थः।।१०-११।।

❊ सेतुबन्धः ❊

प्रयोगान्तरमाह द्वाभ्याम्। अथेति प्रयोगान्तरारम्भे, वेति विकल्पे। तन्मध्यगः, चक्रमध्ये स्थितः। अरुणमुद्यत्सूर्यसहस्रतुल्यम्। साध्यं वशक्रियाकर्मभूतम्। अरुणीकृतं स्वतेजसो व्याप्त्येति च्विप्रत्ययलभ्योऽर्थः। तन्त्रान्तरेऽपि—

उद्यत्सूर्यसहस्राभमात्मानमरुणप्रभम् ।
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत्परमेश्वरि।। इति।

अर्थरत्नावलीकारास्तु—स्वीयां कुण्डलिनीं वहन्नाड्या बहिरानीय साध्यनासिकाद्वारा प्रवेश्य तत्कुण्डलिन्यैकीकृत्य तया कवलीकृतं साध्यजीवं स्वासनतां नीत्वा स्वब्रह्मरन्ध्रेन्दुमण्डलादारक्तामेव सुधाधारां निःसार्य तया सर्वमात्मानं साध्यसहितमाप्लावयेदिति वर्णयन्ति। तदर्णवसंहितयोर्न दृश्यते। साध्यवशीकारांशे पूर्वप्रयोगेण सहास्य विकल्पः। सौन्दर्यादिकमप्यस्य फलम्।।१०-११।।

सर्वरक्तोपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रया युतम् ।
यस्य नाम्नैव संयुक्तं स भवेद्दासवद्वशी ।।१२।।

रक्तवर्ण सर्व उपचारों से मुद्रासहयोग से पूजा करनी होगी। मन्त्र से जिसका नाम युक्त होता है, वह दासवत् वशीभूत हो जाता है।।१२।।

मुद्रया युतम्—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—योनिमुद्रा बन्ध विधान करे। **नाम्नैव संयुक्तं**—भास्कराचार्य के मत से अर्थ है—मन्त्र को नामविदर्भित करना। यह कैसे किया जाता है, इसे पहले बता दिया गया है। **दासवत्**—शिवानन्द इसकी दो व्याख्या करते हैं। पहली व्याख्या है कि जो प्रभु का कर्म करने में स्वयं को निःशेष कर दे, वह है दास। द्वितीय है—प्रभु जिसे यथेप्सित देते हैं, वह है दास। **वशी**—शिवानन्द अर्थ बताते हैं—सर्वसह।।१२।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

मुद्रया युतं 'गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रबन्धयेत्' इत्याम्नातनीत्या योनिमुद्राबन्धं विधायेत्यर्थः। य उपक्षपयिता कर्मणः स दासः। अथवा दीयते यस्मै स्वामिना सर्व यथाऽभिलषितमिति दासः। वशी सर्वसहः।।१२।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

सर्वरक्तोपचारैस्तु पूजयेन्मुद्रया युतमिति। योनिमुद्रया संयुतमित्यर्थः। यस्य नाम्नैव **संयुक्तमिति।** तत्र वशीकरणप्रयोगे साध्यसाधकनामलेखनमाकर्षणवदेव। कर्मलेखने तु विशेषः। वशीकुरु वशीकुर्वित्येवं वशीकरणप्रयोगे। उत्तरत्राप्ययमेव विधिः। यत्र विशेषस्तत्र ब्रूमः।।१२।।

❋ सेतुबन्धः ❋

मुद्राशब्दो यद्यपि नानार्थस्तथाऽपि प्रकृते गुरुमुखैकवेद्यं यद्योनिमुद्राबन्धनाख्यं मन्त्रदोषनिरासाय यत्साम्प्रदायिकैरनुष्ठीयते तदेवेह ग्राह्यम्। 'मुद्रासन्नद्धविग्रहः' इति तन्त्रान्तरे स्वशरीरे मुद्रया सन्नाहविधानाल्लिङ्गात्। व्याख्यातं च तथैव ऋजुविमर्शिन्यां नाम्नैव संयुक्तं विदर्भितं यथा तथा। तत्प्रकारश्च पूर्वमुक्तः। 'यस्य नाम विदर्भितम्' इति ज्ञानार्णवादियमेव व्याख्योचिता। ये तु साध्यसाधकयोर्नामद्वयं वशीकुर्विति क्रियापदं च लेख्यमिति व्याचक्षते तेषां मूलं मृग्यम् ।।१२।।

अदृष्टायास्तु संयोज्य नाम चक्रस्य मध्यगम् ।
विरच्य योनिमुद्रां च तामाकर्षयति क्षणात् ।।१३।।
यक्षिणीं वाऽथ गन्धर्वीं किन्नरीं वा सुरेश्वरीम् ।
सिद्धकन्यां नागकन्यां यक्षकन्यां च खेचरीम् ।।१४।।
विद्याधरीमप्सरसमृषिकन्यामथोर्वशीम् ।
मदनोद्भवविक्षोभस्फुरज्जघनमण्डलाम् ।।१५।।
महाकामकलाध्यानात् क्षोभयेत्सर्वयोषितः।

जो साध्या दृष्टि से बहिर्भूत है, उसका भी नाम चक्र में संयोजन करके योनिमुद्रा रचना करने पर साधक अविलम्ब उसका आकर्षण कर पाता है। यक्षिणी, गन्धर्वी, किन्नरी, सुरेश्वरी, सिद्धकन्या, नागकन्या, यक्षकन्या, खेचरी, विद्याधरी, अप्सरा, ऋषिकन्या तथा उर्वशी—इनमें से किसी का भी आकर्षण कर सकता है। कामसंजात विक्षोभ से इनमें

प्रत्येक का जघनमण्डल उद्‌घाटित हो जाता है। साधक महाकामकला के ध्यान द्वारा सभी अंगनाओं को क्षुब्ध कर देता है।।१३-१५।।

अदृष्टायाः—जो दृष्टि के बाहर है, जिसकी बात ही सुनी गयी है। शिवानन्द के मत से यक्षिणी से खेचरी-पर्यन्त अदृष्टा की तालिका में हैं। इस तालिका में उन्होंने विद्याधरी, अप्सरा, ऋषिकन्या तथा उर्वशी को क्यों छोड़ दिया है, यह नहीं कहा गया। **संयोज्य नाम**—इस सम्बन्ध में भास्करराय कहते हैं कि जो नाम व्यवहारयोग्य है, चक्र में उसका प्रातिपदिकमात्र लिखना होगा। उसे मन्त्र में साथ विदर्भित नहीं करना होगा। **यक्षिणीं**—भास्करराय के मत से यक्षिणी यक्ष जाति से भिन्न जाति की होती है। इसलिये बाद में 'यक्षकन्यां' पद के व्यवहार से पुनरुक्ति दोष नहीं होगा। **उर्वशीम्**—भास्करराय के अनुसार यह अप्सरा है। पहले 'अप्सरस्' का प्रयोग है, अतः उर्वशी उसमें अन्तर्भुक्त हो गयी।।१३-१५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

दृष्टस्त्रीसमाकृष्टिर्मन्त्रान्तरेणापि सिद्ध्यति, एतन्मन्त्रप्रभावेणादृष्टस्त्रीसमाकृष्टिरपि सिद्ध्यतीत्याह—**अदृष्टाया इति**। अदृष्टायाः श्रुतायाः। क्षणाद् अभिसन्ध्यव्यवधानेन, होमादिक्रिया(वर्जित?वर्ज)मित्यर्थः। अदृष्टाया इत्येतद्विवृणोति—यक्षिणीमित्यादि खेचरीमित्यन्तम्। महाकाम-कलां ध्यायन् महाकामकलारूपमात्मानं ध्यात्वेत्यर्थः।

न ध्यानं मुखहस्तादिकल्पनाकल्पितं बहिः।
ध्यानं शाक्तमहावेशस्तन्महः सामरस्यता।।

इति ध्यानोपनिषत्।।१३-१५।।

* अर्थरत्नावली *

अदृष्टायास्त्वित्यादि। अत्रापि नामलेखनं पूर्ववत्। **योनिमुद्रामिति**। योनिमुद्रया युतं पूजयेदित्यर्थः। सर्वे प्रयोगाः सप्तदिनावधिकाः। यक्षिणीं चाथ गन्धर्वीमित्यादि क्षोभयेत् सर्वयोषित इत्यन्तेन महाकामकलासकलीकृतदेवीरूपस्वात्मध्यानेनैव सर्वासामाकृष्टिर्द्योतिता परमशिवेन।।१३-१५।।

* सेतुबन्धः *

प्रयोगान्तरमाह त्रिभिः। अदृष्टाया यक्षिण्याद्यन्यतमरूपाया यन्नाम व्यवहारयोग्यं तच्चक्रस्य मध्यगं यथा तथा संयोज्य चक्रमध्ये तद्वाचकप्रातिपदिकमात्रं विलिख्य न तु मन्त्रेण सह विदर्भात्मक इह संयोगः। अदृश्यस्त्रीनामवर्णांश्चक्रमध्ये विलिख्य त्विति संहितोक्तेः। एतावानेव च पूर्वप्रयोगादस्य विशेषः। योनिमुद्राविरचने तु तन्त्रान्तरे विशेषो न श्रूयते। ये तु मन्त्रदोषनिरासे कथितं योनिमुद्राबन्धनमपि प्रोक्तसंक्षोभिण्यादिदशकान्तर्गतमेवेति मन्यन्ते ते त्वसाम्प्रदायिका इत्युक्तं श्रीहर्षदीक्षितैः। तस्मादिह सम्प्रदाय एव यावद्विशेषदर्शनं शरणम्। यक्षिणी

यक्षतो भिन्नैव जातिः। अतो न यक्षकन्यापदेन पौनरुक्त्यम्। अप्सरसमित्यनेनैव सिद्धेऽप्युर्वशीग्रहणं गोबलीवर्दन्यायेन। इदं च यक्षिणीमित्यादिश्लोकद्वयस्थं पदजातं तामित्येकवचनान्तरस्य विशेषणम्। केचित् तु—वक्ष्यमाणप्रयोगस्थस्य सर्वयोषित इत्यस्य विशेषणं मन्यमाना इमं प्रयोगं मानुषीमात्रविषयं मन्यन्ते, तत् तन्त्रान्तरविरुद्धम् ।

श्लोकार्धेनैव प्रयोगान्तरमाह—यदेव कामकलाध्यानं क्रत्वर्थत्वेन पूर्वं विहितं तदेव कामनोद्देशेन क्रियमाणं काम्यमपि भवति। ततश्च संयोगपृथक्त्वन्यायेनोभयार्थमिदं ध्यानम्। सर्वयोषितो लोकत्रयस्थाङ्गनाः।

महाकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते।
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः।।

इति ज्ञानार्णवात्। अत्र तुशब्दबलात्प्रथमप्रयोगादेतस्य भिन्नता सूचिता, तेन प्रकृततन्त्रेऽध्युष्टश्लोकैरेक एव प्रयोग इति भ्रमो गलहस्तितः।।१३-१५।।

रोचनाकुङ्कुमाभ्यां वा सप्तभागं तु चन्दनम् ।।१६।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तिलकं धारयेद् बुधः ।
ततो यमीक्षते वक्ति स्पृशते चिन्तयेच्च यम् ।।१७।।
अर्थेन च शरीरेण स वशं याति दासवत् ।

समान-समान भाग गोरोचन, कुङ्कुम तथा दोनों के मिलित बराबर भाग के समान चन्दन मिलाये। १०८ वार मन्त्र-जप करे, तिलक लगाये (उस कुङ्कुमादि का तिलक लगाये)। इसे धारण करके जिसकी ओर देख लेगा, जिससे वार्त्ता कर लेगा, जिसे स्पर्श कर लेगा, जिसका चिन्तन कर लेगा, वह व्यक्ति अर्थ से, शरीर से दासवत् होकर उस तिलकधारी के वश में हो जायेगा।।१६-१७।।

यम्—भास्करराय के मत से 'यम्' पद पुंल्लिङ्ग होने पर भी यहाँ कोई विशेष लिंग कथन ईप्सित नहीं है। **अर्थेन**—भास्करराय के अनुसार यहाँ सहार्थ में तृतीय विभक्ति है। अतः अर्थेन का अर्थ है—अर्थ के साथ।।१६-१७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

समभागं रोचनाकुङ्कुमयोः प्रकृतत्वात् ताभ्यां समानभागम्। चिन्तयत्ययमित्यत्रेदंशब्दः साधकविषयः।।१६-१७।।

* अर्थरत्नावली *

रोचनाकुङ्कुमाभ्यामित्यादि तिलकं कारयेदित्यन्तेन ग्रन्थेन तिलकेनापि वश्यसाधनमभिमतम्। रोचनाकुङ्कुमाभ्यां तु समभागं च चन्दनमिति रोचनाकुङ्कुमयोर्भागद्वयम्। समभागं चन्दनमेकमेव योजयेत्।।१६-१७।।

* सेतुबन्धः *

अथार्चनमन्तरेणैव कतिचित् प्रयोगान् वक्तुमारभते। रोचना गोरोचनं कुङ्कुमं केसरम्। अनयोरन्योन्यं भागसाम्यं समं स्यादश्रुतत्वादिति न्यायात्। चन्दनं तु मिलिताभ्यामेताभ्यां समभागम्।

रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम्।
अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत्समम्।।

इति तन्त्रान्तरात्। ये तु रोचनाकुङ्कुमयोर्भागद्वयं चन्दनभागमेकमेव योजयेदिति व्याचक्षते, ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः। अर्थेनेति सहार्थे तृतीया ।।१६-१७।।

तथा पुष्पं फलं गन्धं पानं वस्त्रं महेश्वरि ।।१८।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्याः सम्प्रेष्यते स्त्रियाः ।
सद्य आकृष्यते सा तु विमूढहृदया सती ।।१९।।
हठाकृष्टिरियं भद्रे न क्वचित्प्रतिहन्यते ।

हे महेश्वरि! साधक १०८ बार मन्त्र-जप करके पुष्प-फल-गन्ध-पानीय-वस्त्र जिस अंगना (स्त्री) के लिये भेजता है, वह विमूढ़हृदया होकर तत्क्षण आकृष्टा हो जाती है। हे भद्रे! यह है—बलप्रयोगमूलक आकर्षण। इसका कभी भी प्रतिरोध नहीं हो सकता।।१८-१९।।

पुष्पं—भास्कर के मत से यह पुष्प पद पत्रादि का उपलक्षण है। इसके द्वारा पत्रादि भी सूचित होता है। इसी प्रकार फलं पद अन्न-ताम्बूलादि का भी उपलक्षण है। गन्ध शब्द कर्पूरादि का उपलक्षण है। पान पद दधि-दुग्धादि का उपलक्षण है तथा वस्त्रं पद भूषणादि का उपलक्षण है। **यस्याः**—भास्करराय कहते हैं कि यहाँ स्त्रीलिंग का पद व्यवहृत होने पर भी कोई विशेष लिंग-कथन अभीप्सित नहीं है। **विमूढ़हृदया**—शिवानन्द इस पद का अर्थ करते हैं—विवेकशून्य हृदया। **हठाकृष्टिः**—हठ अर्थात् बलप्रयोग और आकृष्टि अर्थात् आकर्षण अर्थात् जोर से आकर्षण करना। इस पद का तात्पर्य भास्करराय कहते हैं कि साध्य व्यक्ति परमन्त्रस्तम्भनकारी क्रिया-कर्म करे तब उसके द्वारा साधक का प्रयोग प्रतिहत होता है; किन्तु यहाँ किसी भी बलवान प्रयोग द्वारा इस विद्या के साधक का प्रयोग प्रतिहत नहीं होगा।

शिवानन्द इस पद का अर्थ इस प्रकार करते हैं—मन्त्रपावकमहाज्वालाकवलीकृतत्वाद् गलेपातिकाकर्षमित्यर्थः। अर्थात् मन्त्र पावक की महाज्वाला को कवलीकृत होने के लिये (मृत्यु को प्रभु पकड़कर आकर्षित करता है) आकर्षण।।१८-१९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

विमूढहृदया विवेकशून्यहृदया। हठाकृष्टिः मन्त्रपावकमहाज्वालाकवलीकृतत्वाद् गलेपातिकाकर्षमित्यर्थः।।१८-१९।।

* अर्थरत्नावली *

तथा पुष्पं फलं गन्धमित्यादि न क्वचित् प्रतिहन्यत इत्यन्तस्य स्पष्टार्थः।

* सेतुबन्धः *

पुष्पमिति पत्रादेरुपलक्षणम्। फलमन्नताम्बूलादेः। गन्धं कर्पूरादेः। पानं दधिदुग्धादेः। वस्त्रं भूषणादेः। यस्या इत्यत्र लिङ्गमविवक्षितम्। एवं पूर्वप्रयोगेऽपि यमीक्षत इत्यत्र। **हठाकृष्टिरिति।** यदि साध्येन परमन्त्रस्तम्भनाः प्रयोगा अनुष्ठीयन्ते तदा तत्सिद्धिप्राबल्यात्साधकप्रयोगस्य प्रतिहतिः स्यादेव। अयं तु प्रयोगो वलवताऽपि न प्रतिहन्यत इत्यर्थः। भद्र इति सम्बुद्धिः सप्तमी वा।।१८-१९।।

विदर्भविधिः

लिखेद्रोचनयैकान्ते प्रतिमामवनीतले ।।२०।।
सुरूपां चारुशृङ्गारवेषाभरणभूषिताम् ।
तद्भालगलहृन्नाभिजन्ममण्डलयोजिताम् ।।२१।।
जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भिताम् ।
सर्वाङ्गसन्धिसंलीनमालिख्य मदनाक्षरम् ।।२२।।
तदाशाभिमुखो भूत्वा त्रिपुरीकृविग्रहः ।
बद्ध्वा तु क्षोभिणीमुद्रां विद्यामष्टशतं जपेत् ।।२३।।
नियोज्य दहनागारे चन्द्रसूर्यकलालये ।

एकान्त भूमितल में गोरोचन से चारु शृङ्गार भूषण-मण्डिता सुरूपा साध्या की प्रतिकृति अंकित करे। तदनन्तर ललाट, गला, हृदय, नाभि तथा योनि-पर्यन्त उसके जन्मनाम के साथ श्रीविद्या अंकुश बीज विदर्भित करके लिखना होगा। इसके अनन्तर उस प्रतिकृति के सर्वांग में जितने सन्धिस्थल हैं, उनमें मदनाक्षर लिखना होगा। इस बार साधक साध्य की ओर मुख करे तथा स्वयं को महात्रिपुरसुन्दरी का विग्रह मानकर भावना करे और क्षोभिणी मुद्रा का प्रदर्शन करके चन्द्र-सूर्य कलालयभूत दहनागार में साध्या की योजना करके मूल विद्या का ८०० जप करे।।२०-२३।।

एकान्ते—विजन स्थान। शिवानन्द के मत से—पशुजन की दृष्टि से वर्जित स्थान। **अवनीतले**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—गोमयलिप्त भूमितल में। **जन्ममण्डल**—योनि। **जन्मनाम**—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—माता-पिता ने जातक का जो नाम रक्खा है। **महाविद्या**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—मूलविद्या। यहाँ है—श्रीविद्या। **अङ्कुशः**—'क्रों' बीज मन्त्र। **जन्मनाममहाविद्याम-ङ्कुशान्तर्विदर्भिताम्**—जन्मनाम के साथ अङ्कुशान्त श्रीविद्याविदर्भिता को। भास्करराय के मत से पहले 'क्रों' तदनन्तर जन्म नाम का पहला अक्षर, तदनन्तर विद्या का प्रथम तथा दूसरा अक्षर। पुनः

'क्रों', तदनन्तर जन्मनाम का द्वितीय अक्षर, तत्पश्चात् विद्या का तृतीय एवं चतुर्थ अक्षर—इस रीति से विदर्भित होगा। लेकिन इस विषय में मतभेद भी है। विद्यानन्द कहते हैं कि पहले 'क्रों' तत्पश्चात् जन्मनाम का प्रथमाक्षर, तदनन्तर विद्या का प्रथम तथा द्वितीय अक्षर। पुनः 'क्रों' तदनन्तर मूल विद्या के दो अक्षर—तत्पश्चात् साध्या के जन्मनाम का द्वितीय अक्षर। ऐसे विदर्भित करे। **मदनाक्षरम्**—शिवानन्द तथा विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—कामबीज। भास्करराय के मत से मदनाक्षर अर्थात् द्वितीय कूट अर्थात् श्रीविद्या का कामराज कूट। कामबीज को लोग 'क्लीं' बीज मानते हैं, किन्तु भास्करराय यहाँ उसे ग्रहणयोग्य नहीं मानते। **तदाशाभिमुखः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—जिस दिशा में साध्या रहती है, उस दिशा की ओर मुख करके। **त्रिपुरीकृतविग्रहः**—शिवानन्द के अनुसार—त्रिपुरा भट्टारिकारूपेण अपनी देह की भावना। यथाविहित न्यास आदि के द्वारा स्वयं की त्रिपुरसुन्दरी भावना से अपनी देह को त्रिपुरसुन्दरी का विग्रह करना। **दहनागारे**—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—चन्द्र-सूर्य-अग्नि चक्रात्मक श्रीचक्र। विद्यानन्द दहनागार का दो अर्थ करते हैं; यथा—प्रथम साधक का मूलाधार एवं द्वितीय है—चन्द्रसूर्यकलालययुक्त चक्र। भास्करराय अर्थ करते हैं—मदनमन्दिर। **चन्द्रसूर्यकलालये**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं चन्द्र-सूर्य कलावृत। मदनागार पद का विशेषण कहने से इस पद में सप्तमी विभक्ति है। **नियोज्य**—विद्यानन्द के मत से यह योजना साध्या की योजना है। भास्करराय के मतानुसार यह मुद्रा की योजना है।

'बद्ध्वा तु क्षोभिणीमुद्रां.........चन्द्रसूर्यकलालये' इन दो श्लोकार्द्धों की भास्करराय की व्याख्या है कि चन्द्र-सूर्य कलावृत मदनमन्दिर में क्षोभिणी मुद्रा तथा उसके बीज की योजना करके श्रीविद्या का ८०० बार जप करे।।२०-२३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

लिखेदित्यादि। एकान्ते पशुजनदृष्टिविवर्जिते। प्रतिमां साध्यायाः। तद्भालेत्यत्र तच्छब्दः प्रतिमां गृह्णाति। भालशब्देनाज्ञास्थानं लक्ष्यते। जन्मशब्देन गुह्यस्थानम्। मण्डलशब्देन मूलाधारम्। जन्मनाम पितृभ्यां दत्तम्। महाविद्या मूलविद्या। अङ्कुशः क्रोङ्कारः। विदर्भिताम्। विदर्भो द्व्यन्तरीकृत इति समयः। मदनाक्षरं कामबीजम्। तदाशाभिमुखः। साध्या यत्र वर्तते तद्दिङ्मुख इत्यर्थः। त्रिपुरीकृतविग्रहो मन्त्रन्यस्तशरीरः। त्रिपुराभट्टारिकात्मना भावितात्मविग्रह इत्यर्थः। इदमेव मुख्यं समाधानम्। इदन्तोपासनं काल्पनिकम्। तदुक्तं गीतानिष्यन्दे—

उत्सृज्यात्मसमाधानं ये ध्यायन्त्यन्यदेवताः।
भिक्षन्ते भूरिवित्तास्ते भिक्षित्वाऽपि बुभुक्षिताः।। इति।

क्षोभिणी मुद्रा वक्ष्यमाणा। **नियोज्येति।** दहनागारे अग्न्यागारे। चन्द्रसूर्यप्रभाकुले चन्द्रसूर्ययोः प्रभाभिर्व्याप्ते। अयमर्थः—चन्द्रसूर्यदहनत्रिभङ्गिनि महति चक्र इति।।२०-२३।।

※ अर्थरत्नावली ※

लिखेदित्यारभ्य योजनानां शतादपीत्यन्तस्यायमर्थः—एकान्ते निर्जने स्थले। लिखित्वा प्रतिमां तस्या ललाटगलहृदयनाभियोनिषु जन्मनाममहाविद्यामङ्कुशान्तर्विदर्भितां लिखेत्। मातापितृभ्यां दत्तं जन्मनाम। महाविद्या मूलविद्या। अङ्कुशः क्रोङ्कारः। आदावङ्कुशं ततो मूलविद्याक्षरद्वयं ततो जन्मनामाद्यमक्षरं साध्यायाः। अङ्कुशं पुनर्मूलविद्याक्षरद्वयं ततो जन्मनामद्वितीयाक्षरम्। एवं क्रमेण साध्यनाम मूलविद्यार्णपरिसमाप्तिर्यावत् तावत् पुनः पुनर्लिखेत्। पुनरप्यङ्कुशं दद्यात्। तदुक्तम्—'विदर्भो द्व्यन्तरः प्रोक्तः' इति। मदनाक्षरं कामबीजम्। तदाशाभिमुखः साध्यदिङ्मुख इत्यर्थः। संयोज्य दहनागार इति मूलाधारे तां साध्यां नियोजयेदित्यर्थः। अथवा दहनागार इति चन्द्रसूर्यकलालयभूतं चक्रमेव।।२०-२३।।

※ सेतुबन्धः ※

अथ सार्धैरेकादशभिः श्लोकैरेकं प्रयोगमुपदिशति। गोमयेन रहःस्थाने भूमिमुपलिप्य तत्र गोरोचनेन साध्यस्त्रीप्रतिमां शृङ्गाररसानुगुणैर्वेषेणाऽऽभरणैश्च युक्तां सम्यग्विलिख्य तस्या भालमारभ्य योनिपर्यन्तं तदीयजन्मनामसहितां श्रीविद्यां क्रोमित्यङ्कुशबीजविदर्भितां कृत्वा लिखेत्। अङ्कुशबीजं जन्मनामाद्याक्षरं विद्याक्षरद्वयं पुनरङ्कुशं जन्मनामद्वितीयाक्षरं विद्यातृतीयचतुर्थाक्षरे इतयादिरीत्या लिखेत्। ततस्तत्प्रतिमाया देहे यावन्ति सन्धिस्थानानि तावत्सु स्थलेषु पुनः पुनर्द्वितीयकूटमेव विलिख्य तद्बीजं दाडिमीपुष्पाभं तत्तत्सन्धिषु लीनं विभाव्य साध्यस्त्री यस्यां दिशि तिष्ठति तदाभिमुख्येन देवताभावापादकान् न्यासान्कृत्वा वक्ष्यमाणलक्षणां क्षोभिणीमुद्रां (बद्ध्वा) तद्बीजं (चन्द्रसूर्यकलालये दहनागारे नियोज्य विद्यामष्टशतं जपेदिति स)मुदायार्थः। अत्र गोमयलेपः संहितोक्तः—'लिप्तगोमयभूमौ तु लिखेद्रोचनया ततः' इति। जन्ममण्डलशब्दो योनिपरः। केचित् तु—भालपदमाज्ञाचक्रोपलक्षकम्, (जन्म)मण्डलपदं मूलाधारपरम् इति वदन्तः षट्चक्रेषु विद्यां लिखेदित्याहुः। तदयथाक्षरम्। ये त्वङ्कुशोत्तरं विद्याक्षरद्वयं ततो जन्मनामाक्षरमिति व्याचक्षते, तेषां पाठक्रमपरित्यागे मूलं चिन्त्यम्। दाडिमीपुष्पप्रभत्वं तु अर्णवोक्तम्—लीनं दाडिमपुष्पाभे चिन्तयेद्देहसन्धिषु इति। मदनाक्षरपदस्य क्लींबीजपरत्वेन व्याख्यानमनादेयम्। 'सर्वाङ्गसन्धिसंलीनं कामकूटं समालिखेत्' इति संहिताविरोधात्। एवम्—

क्षोभिणीबीजमुद्राभ्यां विद्यामष्टशतं जपेत्।
योजयेत्तां कामगेहे चन्द्रसूर्यकलावृते।।

इतिवचनान्मूलस्थो दहनागारशब्दो मदनमन्दिरपरः। तत्र योजनं तु मुद्राया एव योग्यताबलात्। केचित् तु—दहनागारशब्देन साधकस्य मूलाधारमुच्यते, तत्र योजनं साध्याया इत्याहुः। परे तु चन्द्रसूर्यकलायुक्ताग्निमण्डलं श्रीचक्रमेवेत्याहुः। तदुभयमपि संहिताविरुद्धम्।।२०-२३।।

आकर्षणप्रयोगाः

ततो विचलितापाङ्गामनङ्गशरपीडिताम् ।।२४।।
दूरकृतस्वचारित्रभयलज्जानयाङ्कुशाम् ।

आकृष्टहृदयां नष्टधैर्यामुड्डीनजीविताम् ॥२५॥
वप्रप्रासादनिगडनदीयन्त्रसुरक्षिताम् ।
प्रोच्चलन्मदकल्लोलप्रस्फुरज्जघनस्थलीम् ॥२६॥
शक्तिचक्रोच्चलच्छक्तिवलनामवलीकृताम् ।
नवानुरागसन्धानवेपमानहृदम्बुजाम् ॥२७॥
मनोधिकमहामन्त्रपवनापहृतांशुकाम् ।
विमूढामिव विक्षुब्धामिव श्रान्तामिव द्रुताम् ॥२८॥
लिखितामिव निःसंज्ञामिव प्रमथितामिव ।
गलितामिव संभ्रान्तामिवोड्डामरितामिव ॥२९॥
विहस्तामिव संकीर्णामिवाऽऽकुलितमानसाम् ।
निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिव ॥३०॥
भ्रमन्महानिलोद्धूतयन्त्राकारां नभस्थले ।
भ्रमन्तीमानयेन्नारीं योजनानां शतैरपि ॥३१॥

विचलितापाङ्गी, अनङ्गशवपीड़िता, आत्मीय, चारित्र, भय, लज्जा, नीति—ये सब अंकुश द्वारा अथवा जिसके द्वारा दूरीभूत गये हैं, ऐसी आकृष्टहृदया, धैर्यहीना, उड्डीन-जीविता, वप्र-प्रासाद-निगड़-परिखा से सुरक्षिता, मदमय महातरंग द्वारा कम्पमान जघनस्थल जिनका है ऐसी, शक्तिचक्र से उद्गत शक्ति के वलन द्वारा कवलीकृता प्रथम अनुराग के संयोग से जिनका हृदयकमल कम्पायमान है ऐसी, मन से भी अधिक वेगवान मन्त्रवायु द्वारा जिनका अंशुक अपहृत हो गया है ऐसी, विमूढ़ा, विक्षुब्धा, शान्ता, द्रवीभूता, चित्रार्पिता, मूर्च्छिता, विलोड़िता, विगलिता, अतिभीता, भूताविष्टा, व्याकुला, संकीर्णा, आकुलितमानसा, निलीना, मृतप्राया, अन्यरूपप्राप्ता—ऐसा जिसके मन में होता है, मन्त्रवायु से उद्धूत पात्र के समान जो कांप रही है, ऐसी जो सब नारियाँ हैं, जो मन्त्रवायु से ताड़ित होकर नभस्थल में निरालम्ब घूम रही हैं, शत-शत योजन दूर रहने पर भी साधक उनका आकर्षण करके ले आता है। (अर्थात् सभी प्रकार की नारियाँ साधक के आकर्षण से आ जाती हैं)।।२४-३१।।

विचलितापाङ्गाम्—कामविकार से जिनका अपाङ्ग अस्थिर है। **स्वः**—भास्कर राय के अनुसार आत्मीय व्यक्ति। **चारित्रं**—भास्करराय के अनुसार आचार। **नयः**—नीति। **उड्डीनजीविताम्**—शिवानन्द के अनुसार गतप्राय प्राण। **वप्रः**—प्राकार। **प्रासाद**—हर्म्य। **निगडः**—द्वारनिरोधक। **नदीयन्त्रं**—परिखा। प्रोच्चलन्मदकल्लोलप्रस्फुरज्जघनस्थलीम्—भास्करराय के अनुसार मदमय कल्लोल अर्थात् महातरङ्ग, उसके द्वारा प्रस्फुरन्ती अर्थात् कम्पमान जघनस्थल है जिसका, ऐसी स्त्री। **शक्तिचक्रोच्चलत्**—

भास्करराय इसका अर्थ कहते हैं—साधक की उपास्य देवी का परिवार, उससे उच्चलत् अर्थात् उद्गता, निर्गता। **वलना**—व्याप्ति, वेष्टन। **कवलीकृताम्**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—स्वायत्तीकृत। **विमूढाम्**—शिवानन्द अर्थ करते है—आविलमानसा। **श्रान्तां**—इसका शिवानन्द अर्थ करते हैं—स्वरूप अप्रत्यभिज्ञात कहने से दीर्घकाल तक अवसाद-प्राप्ता। **द्रुतां**—अर्थात् द्रवीभूता। **लिखितां**—शिवानन्द 'लिखिता' शब्द का अर्थ करते हैं—चित्रस्थिता। **प्रमथितां**—शिवानन्द का अर्थ है—विलोलिता। **उड्डामरितां**—भास्करराय मत से इसका अर्थ है—भूताविष्टा। **विहस्तां**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—व्याकुला और शिवानन्द का अर्थ है—परवशा। **सङ्कीर्णां**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—विशीर्णावयवा-प्रतिपत्तिरहिता। **आकुलितमानसां**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—प्रस्तुत विस्मृतमानसा। **निलीनां**—शिवानन्द कहते हैं कि इसका अर्थ है—अनुद्योगा। **निश्चेष्टां**—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—मृतप्राया। **अन्यत्वं गतां**—शिवानन्द के अनुसार द्रष्टा गण यह सोचते हैं कि यह वह नहीं है, यह अन्य है। **मन्त्रानिलोद्भूतपत्राकारां**—शिवानन्द इसकी व्याख्या करते हैं—'मन्त्र एवानिलो मन्त्रानिलः, तेनोद्धूतस्य उत्कम्पितस्य पत्रस्य पर्णस्याकार इव या कम्पते ताम्' मन्त्र ही अनिल अर्थात् मन्त्रानिल है, उसके द्वारा उद्धूत उत्कम्पित पत्र अर्थात् पर्णाकार जो कम्पिता है, वह। **नभस्तले**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि यहाँ इस पद का अन्तर्निहित भाव है—मन्त्र पवन द्वारा प्रकम्पिता निरालम्बना होकर भ्राम्यमाणा।।२४-३१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

विचलितापाङ्गीं कामविकारेण। **प्रोज्ज्वलदिति।** प्रोज्ज्वलताऽतिप्रज्वलितेन, प्रकर्षेणोज्ज्वलतो (वा) मदनस्य महोन्मेषेण प्रकृष्ट-स्फुरज्जघनस्थलीम्। **शक्तिचक्रेति।** शक्तीनां चक्रं शक्तिचक्रम्, तस्मादुच्चलितानां रश्मीनां वलना वेष्टनम्, तेन कवलीकृतां ग्रासीकृताम्। **दूरीकृतेति।** चारित्रभयलज्जानया एव, अङ्कुशः अपथप्रवृत्तिनिरोधकः, स दूरीकृतः परित्यक्तो यया तामिति। आकृष्टहृदयां मन्त्रप्रभावरज्जुभिः। नष्टधैर्यां मन्त्रप्रभावाहतगर्वत्वात्। उड्डीनजीवितां गतप्रायप्राणाम्। **वप्रप्रासादेति।** शिलेष्टकामृत्संचितावरणं वप्रम्। प्रासादो भूभुजां स्थानम्। निगडं बन्धनम्। यन्त्रं भूगृहम्। तैः सुरक्षिताम्। नवानुरागः प्रथमरागः, तस्य सन्धानेन कम्पमानहृदयाम्बुजाम्। अत्राभियुक्तवचनम्—न तथा सुखयत्येषा चेतस्त्रिभुवनेशिता।

यथा परस्परानन्दी स्नेहः प्रथमरक्तयोः।। इति।

मनोऽधिकेति। मनसो योऽधिको वेगः, मनोजव इति यावत्। स महामन्त्रपवनस्तेनापहृतांशुकाम्। विमूढाम् अनभिव्यक्तात्मस्वभावाम्। विक्षुब्धाम् आविलमानसाम्। श्रान्ताम् अप्रत्यभिज्ञातस्वरूपत्वाच्चिरं खिन्नाम्। द्रुतां द्रवीभूताम्। लिखितां चित्रस्थिताम्। निस्संज्ञां मूर्छां गताम्। प्रमथितां विलोलिताम्। विहस्तां परवशाम्। संकीर्णां प्रतिपत्तिरहितां विकीर्णावयवाम्। आकुलित-

मानसां प्रस्तुतविस्मृतमानसाम्। **निलीनामिव निश्चेष्टामिवान्यत्वं गतामिवेति।** निलीनाम् अनुद्योगाम्। निश्चेष्टां मृतप्रायाम्। अन्यत्वं गता, नेयं सा, अन्यैवेयमिति द्रष्टृभिश्चिन्त्यमानाम्। **भ्रमन्निति।** भ्रमन् परिभ्रमन्, मन्त्र एवानिलो मन्त्रानिलः, तेनोद्धूतस्य उत्कम्पितस्य पत्रस्य पर्णस्याकार इव या कम्पते ताम्। अत्र नभस्तल इत्यस्यायं भावः—मन्त्रपवनप्रकम्पितां निरालम्बनां भ्रमन्तीमिति। आनयेत्, साधक इति शेषः। योजनानां शतादपीत्यस्मिन्नर्थे मन्त्रोऽयमाथर्वणः—यदि वसति योजनशते नदीनां वा गतान्तरः' इति।।२४-३१।।

*** अर्थरत्नावली ***

शक्तिचक्रोच्चलच्छक्तिवलनाकवलीकृतामिति मूलाधारस्थदेवीमहाचक्रादुच्चलच्छक्तिवागुराकवलीकृतामित्यर्थः। उड्डीनजीविताम् उद्भ्रान्तजीवितामिति यावत्।।२४-३१।।

*** सेतुबन्धः ***

अथाऽऽकृष्यमाणां साध्यां वर्णयति। विचलितावपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ यस्यास्ताम्। स्वे, आत्मीया जनाः। चारित्रमाचारः। नयो नीतिः। दूरीकृता आत्मीयादिनयान्ताः पञ्चाङ्कुशा यया ताम्। उड्डीनं जीवितं देहभानं यस्यास्ताम्। वप्रः प्राकारः। प्रासादो भूभुजां गृहम्। निगडः शृङ्खलादण्डो द्वारनिरोधकः। नदीयन्त्रमन्तर्गर्तितनदीका परिखा। एतैः सुरक्षितामपि प्रोच्चलद्भिर्मदमयैः कल्लोलैर्महातरङ्गैः प्रस्फुरन्ती जघनस्थली यस्यास्ताम्। शक्तिचक्रात्साधकोपास्यदेवीपरिवारादुच्चलन्त्याः शक्तेश्चक्रान्तर्गतान्यतमाया वलनया व्याप्त्या कवलीकृतां स्वायत्तीकृताम्, शक्तिचक्रं तदीयमूलाधारम्, तस्मादुच्चलन्त्याः शक्तेः कुण्डलिन्या इति केचित्। मनसोऽप्यधिकवेगेन मन्त्रवायुनाऽपहृतमाकृष्टमंशुकं यस्यास्ताम्। विमूढामिवेत्यादयश्चतुर्दशेवकाराश्चतुर्दशधोत्प्रेक्षार्थाः।

मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः।।

इत्यालङ्कारिकवचनेन तस्योत्प्रेक्षाव्यञ्जकत्वात्। उड्डामरितां भूताविष्टाम्, विहस्तां व्याकुलाम्। 'विहस्तव्याकुलौ समौ' इति अमरः। अन्यत्वं गतामिव, अन्यादृशीमिव। स्पष्टमन्यत्।।२४-३१।।

रक्षाकरप्रयोगौ

अथवा मातृकां सर्वां लिखित्वा चक्रबाह्यतः।
धारयेद्बाहुमूले यः सोऽवध्यः सर्वजन्तुषु ।।३२।।

चक्र के बाह्य देश में समस्त मातृकावर्ण लिखकर बाहुमूल में जो धारण करता है, वह सर्व जन्तुओं के लिये अवध्य हो जाता है।।३२।।

इसका अर्थ टीकाकार यह करते हैं कि भूर्जपत्रादि में चन्दनादि द्वारा भूपुर के बाहर उसका वेष्टन करके अकारादि क्षकारन्त मातृकावर्ण लिखकर उसका कवच जो यथाशास्त्र धारण करता है, वह व्याघ्र आदि सब दुष्ट जन्तुओं से अवध्य हो जाता है।।३२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अथवेति निपातसमुदायोऽथशब्दार्थः प्रयोगान्तरारम्भे। अयमर्थः—चक्रस्य बाह्यदेशे चक्रोपश्लिष्टमकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् विन्यस्य प्रोक्तक्रममाबध्य प्रोक्तस्थाने प्रोक्तफलसिद्ध्यै धारयेदिति।।३२।।

* अर्थरत्नावली *

अथवेत्यादि सर्वजन्तुष्वित्यन्तस्यायमर्थः—भूर्जपत्रे चन्दनागुरुकर्पूरपङ्केन श्रीचक्रं लिखित्वा तस्य मध्ये त्रिकोणमध्ये लिखितमूलविद्याहकारमध्येऽमुकं रक्ष रक्षेति साधकनाम लिखित्वा चक्रचतुरश्रबाह्यतः परिवेषक्रमेण मातृकां लिखित्वा सितसूत्रेण वेष्टयित्वा गुटिकां कृत्वा पञ्चगव्यपञ्चामृतस्नापनान्ते प्राणान् प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य मूलविद्यामष्टोत्तरशतादि स्पृशन् यथाशक्ति जपित्वा शुभेऽहनि धारयेत्।

अत्र प्राणप्रतिष्ठाप्रकारो लिख्यते—दीर्घषट्स्वरभेदितेन मायाबीजेन कराङ्गन्यासं कृत्वा पाशाङ्कुशाभयवरोद्यतकरां रक्तालङ्कारवसनां प्राणदूतीपरिवृतां रक्तां शक्तिमात्मानं ध्यात्वा मूलाधारान्मूलशक्तिमुत्थाप्य प्रवहणनाड्या निस्सार्य साध्यवामनाड्या तस्य भ्रूमध्यं भित्वा सुषुम्नापथेन हृत्कमलं प्रवेशयित्वा तद्गताष्टपत्रकर्णिकायां निषण्णान् भ्रमराकृतीन् साध्यप्राणान् शक्तितन्तुप्रविद्धान् स्वप्राणदूतीभिराकृष्याकृष्य गुलिकायां संस्थाप्य प्राणप्रतिष्ठामनुं जपित्वा स्वात्मशक्तिं स्वात्मनि समाहरेत्। प्राणदूत्यो यथा—

मृता वैवस्वता चैव जीवहा प्राणहा तथा।
आकृष्या ग्रथना चैव प्रमादा विस्फुलिङ्गिनी।।
क्षेत्रज्ञप्रतिहारी च प्राणदूत्यो नव स्मृताः।

(प्र० सा० ३५.१२)

आँ ह्रीँ क्रोँ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सं हं सः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः। पुनरपि पाशादि हंसान्तम् अमुष्य जीव इह स्थितः। पुनः पाशादि हंसान्तम् अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि। पुनः पाशादि हंसान्तम् अमुष्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा मयि जीव इह स्थितो मयि सर्वेन्द्रियाणि मयि वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहायान्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः। अथवा स्त्रीसाध्य आत्मानं कामेश्वरं ध्यात्वैवं कुर्यात्। पुंसाध्ये कामेश्वरीं ध्यात्वैवं कुर्यादिति। आकृष्ट्यादिषट्कर्मसु भ्रमरप्रयोगपूर्वकं साध्यप्राणान् प्रतिष्ठाप्य स्पृशन् अष्टोत्तरशतादिक्रमेण यथाशक्ति जपेत्। स्वपरार्थरक्षासु सर्वत्र गुटिकां स्पृशन् भ्रमरप्रयोगं विना तत्तद्देवता सन्निधानार्थं तत्तद्देवतानामपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं यथाशक्ति जपेत्। नवनीतघृतादिष्वात्मोपभोग्यवस्तुष्वाकर्षणवशीकरणविविधप्रयोगेषु भ्रमरप्रयोगपूर्वकं साध्यप्राणान् प्रतिष्ठाप्य सहस्रादिक्रमेण स्पृशन् प्राणप्रतिष्ठामन्त्रं जपित्वा प्रयुञ्ज्यात्। ततोऽभीष्टसिद्धिर्भवति।।३२।।

*** सेतुबन्धः ***

अथ द्वौ रक्षाकरप्रयोगावाह। भूर्जादिपत्रे चक्रं विलिख्य मातृकाभिर्बहिरावेष्ट्य सम्पूज्य यो धारयेत्स व्याघ्रादिदुष्टजन्तुष्ववध्यो भवति। उक्तं च ज्ञानार्णवे—

मातृका विलिखेच्चक्रबाह्यतः सकलाः प्रिये।
भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽथ ताम्रके।।
सोऽवध्यः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः। इति।

संहितायामपि—

अथवा मातृकाश्चक्रबाह्ये संवेष्ट्य मन्त्रवित्।
तच्चक्रं पूजयेत्सम्यक्……………………।।

इत्यादि ।।३२।।

तथैव हि महेशानि स्वसंज्ञाक्रमयोगतः ।
चन्दनागुरुकर्पूरैरजरामरतां व्रजेत् ।।३३।।

हे महेशानि! पूर्व में कहे गये के अनुसार चन्दन, अगुरु, कर्पूरादि मिश्रित करके उसके द्वारा भूर्जपत्रादि में श्रीचक्र अंकन करके उसके बहिर्देश में मातृकावर्ण स्वनामक्रमयोग से लिखकर जो साधक धारण करता है, वह अजर-अमर हो जाता है।।३३।।

स्वसंज्ञाक्रमयोगतः—व्याख्या में विद्यानन्द का कथन है कि पहले कहे गये विधान से चक्र लिखकर चक्र के बाहर मातृका वर्ण लिखते समय उसके प्रत्येक अक्षर को साधक के नामाक्षरान्तरित करके लिखना होगा। विद्यानन्द का कथन है कि साधक के नामाक्षर-मन्त्राक्षर क्रमयोग से लिखना होगा।।३३।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

तथैव पूर्ववत्। समातृकावर्णं चक्रं विलिख्य स्वसंज्ञाक्रमयोगतः स्वस्य साधकस्य संज्ञाक्षर-मन्त्राक्षरक्रमयोगत इत्यर्थः।।३३।।

*** अर्थरत्नावली ***

तथैवेत्यारभ्य अमरतां लभेदित्यन्तस्यायमर्थः—स्वसंज्ञाक्रमयोगत इति पूर्ववच्चक्रं लिखित्वा चक्रबाह्यतो मातृकालेखनसमये प्रत्यक्षरं साधकनामाद्यक्षरान्तरितं लिखेदिति विशेषः।।३३।।

*** सेतुबन्धः ***

अथ निकायिन्यायेन पूर्वपूर्वविकारानुत्तरोत्तरान् प्रयोगान् कतिचिदाह। तथैव पूर्वप्रयोगवदेव। स्वनामयोजनं चन्दनाद्यैरेव लेखनमिति तु विशेषः। संहितायां तु कस्तूरीकेसरयोरपि मेलनमुक्तम्। अत्र नामलेखनादीतिकर्तव्यताविस्तरो ग्रन्थविस्तरैकप्रयोजनकोऽर्थरत्नावल्यां द्रष्टव्यः।।३३।।

अन्यवश्यप्रयोगाः

एवं देवि विधानेन रोचनागुरुकुङ्कुमैः ।
लिखितं चक्रयोगेन(ण) यस्मिन्कस्मिन्नपि स्थितम् ।।३४।।

साध्यनाम स्वनाम्ना तु चक्रस्यान्तर्विदर्भितम् ।
करोति सकलाँल्लोकानचिरात्पादवर्तिनः ॥३५॥

हे देवि! इस प्रकार विधान से गोरोचन, अगुरु, कुंकुम से भोजपत्र, स्वर्णपत्र इत्यादि आधार पर लिखित श्रीचक्र को अपने नाम के द्वारा साध्यनाम से विदर्भित करके जो साधक लिखेगा, सभी लोग उसके चरणों में अवनत हो जायेंगे।।३४-३५।।

साध्यनाम स्वनाम्ना तु चक्रस्यान्तर्विदर्भितम्—इस अंश की व्याख्या में विद्यानन्द कहते हैं कि मूल विद्या के हकार तथा रकार के मध्य में साध्य तथा साधक के विदर्भित नाम को लिखे। उसमें कर्म भी लिखना होगा। इसमें विशेषत्व यह है कि साधक नाम के दो अक्षर एवं साध्यनाम का एक अक्षर, इस प्रकार से विदर्भित होगा और मातृका अक्षर वेष्टन होगा साधकनाम के आद्य अक्षर योग से। यही है विदर्भ-विधि।।३४-३५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

चक्रयोगेन चक्रविन्यासयोगेन। **यस्मिन् कस्मिन्निति।** देश इति पूर्यम्। चक्रस्यान्तर्विदर्भितमित्यस्यायमर्थः। चक्रस्य मध्ये सकामराजबीजे साध्यसाधकनामाक्षराणां यथायोगं विदर्भेण स्थितमिदं चक्रमिति। लोकान् जनान्। पादवर्तिनः पादस्थानीयान्।।३४-३५।।

* अर्थरत्नावली *

एवं देवीत्यारभ्य पादवर्तिन इत्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—एवमिति पूर्ववच्चक्रलेखनमुक्तं सूचितम्। अत्रायं विशेषः—मूलविद्याहकाररेफयोर्मध्ये साध्यसाधकयोर्विदर्भितं नाम लिखित्वा तत्रैव कर्म लिखेत्। तत्रापि साधकस्य नामाक्षरद्वयं साध्यना(म?म्नः) एकैकमिति विशेषः। वश्यकर्मणः प्रस्तुतत्वाल्लेखनद्रव्यविशेषोऽप्युक्तः। मातृकाक्षरवेष्टनं साधकनामाद्यक्षरयोगेन। (एव? एवं) विदर्भविधिः। साध्यसाधकनामविलेखने सर्वत्रायमेव विधिः।।३४-३५।।

* सेतुबन्धः *

पुनर्वश्यप्रयोगानेवाऽऽह। पूर्वोक्तरीत्या मातृकावेष्टितं चक्रं रोचनाद्यैर्विलिख्य तन्मध्ये स्वनाम्ना विदर्भितं साध्यनाम विलिख्य पूजयेत्। सर्वे जनाः पादसमीपवर्तिनो भवन्ति। चक्रयोगेन(ण) लेखनोपायेन भूर्जाद्याधारनियमो देहे धारणं च कृताकृतमित्याहयस्मिन्निति।।३४-३५।।

मध्यं गतेन बीजेन महाकामकलात्मना ।
एकमेकमवष्टभ्य साध्यनामाक्षरं प्रिये ॥३६॥
बहिरप्यखिलैरेव वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ।
हेममध्यगतं कृत्वा धारयेद्वामके भुजे ॥३७॥
शिखायामथवा वस्त्रे धारयेद्यत्र तत्र वा ।
करोति दासभूतं हि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३८॥

संमोहयति राजानं वाजिनं दुष्टकुञ्जरम्।
चोरं केसरिणं सर्वं परचक्रं महाग्रहम् ।।३९।।
शत्रून्वज्राशनिं शस्त्रं वेतालं राक्षसं तथा।
भूतप्रेतपिशाचांश्च धारिता चक्ररूपिणी ।।४०।।

हे प्रिये! चक्रमध्यत्रिकोण के मध्य महाकामकलात्मक बीज द्वारा साध्य नाम का एक-एक अक्षर ग्रथित करे। उसे बाहर से समस्त मातृकाक्षरों द्वारा वेष्टित करना होगा। तत्पश्चात् उस चक्र को स्वर्ण के पत्र में मोड़कर वाम बाहु में धारण करना होगा अथवा शिखा में, किंवा वस्त्र में जहाँ भी हो, धारण करने से वह चक्र चराचर के साथ त्रिलोक को भी धारणकारी के वश में कर देता है। चक्ररूपिणी देवता को धारण करके वह राजा, अश्व, दुष्ट हस्ति, चोर, सिंह, सर्प, महाबली परसैन्य, शत्रु, दारुण अशनि, वेताल, राक्षस, भूत पिशाच—सबको सम्मोहित कर देता है।।३६-४०।।

मध्यङ्गतेन·····साध्यनामाक्षरं प्रिये—इस श्लोक की व्याख्या में विद्यानन्द तथा भास्करराय कहते हैं कि प्रथमतः कामराज कूट तत्पश्चात् साध्यनाम का आद्य अक्षर, पुनः कामराजकूट तदनन्तर साध्यनाम का द्वितीय अक्षर, पुनः कामराजकूट तदनन्तर साध्यनाम का तृतीय अक्षर—इस प्रकार से सब अक्षर ग्रथित करे। **बीजेन महाकामकलात्मना**—शिवानन्द तथा भास्करराय महाकामकला बीज को 'ई'कार कहते हैं, उसके द्वारा। विद्यानन्द कहते हैं कि महाकामकला बीज है—मूलविद्यामध्यगत महाकामराजबीज। **अवष्टभ्य**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—आत्मीकरण। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—अभिप्राय-ग्रथन। भास्करराय इसका अर्थ 'सम्पुटीकरण' बतलाते हैं। **बहिरप्यखिलैरेव वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः**—शिवानन्द यहाँ 'बहिः' शब्द का अर्थ करते हैं—चक्र के बाहर। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—नवयोनि चक्र का बहिर्देश। विद्यानन्द अन्य अर्थ कहते हैं। वे कहते हैं कि यहाँ बहिः का अर्थ यह है कि कामराजकूट से ग्रथित साध्यनामाक्षर लिखने के पश्चात् उसके बाहर उस त्रिकोण के मध्य में उस मातृकाक्षर द्वारा वेष्टित करना होगा। **हेममध्यगतं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—सोना के पत्र में मोड़कर।।३६-४०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मध्यङ्गतेन चक्रमध्यत्रिकोणगतेन। महाकामकलात्मना 'बिन्दुं सङ्कल्प्य' (१.१८५) इत्युक्तस्वभावेन ईकारात्मना। अवष्टभ्य आत्मीकृत्य। बहिः चक्रात्। हेममध्यगतं हेमपट्टमध्यगतम्। चक्रमिति शेषः। शिखायां चूलीतले। **अथवाऽस्यादौ धारयेद् यत्र यत्र वेति।** अस्यादौ खड्गादौ। **यत्र तत्र वेति।** महानसकोशगृहादिदेश इत्यर्थः। **करोति दासभूतं तत्त्रैलोक्यं सचराचरमित्यत्र** तच्छब्दश्चक्रं परापृशति। परतन्त्रं परसैन्यम्। महाबलमिति तन्त्रविशेषणम्। **वज्राशनिमिति।** वज्रं वर्जनात्। यत्र पतति तद्वर्जयतीति। तादृशीमशनिमित्यर्थः। **धारिता चक्ररूपिणीति।** देवतेति शेषः।।३६-४०।।

* अर्थरत्नावली *

मध्यङ्गतेनेत्यादि चक्ररूपिणीत्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—मूलविद्यामध्यगतमहाकामराजबीजानन्तरं साध्यनामाद्यक्षरं पुन: कामराजबीजं तदन्ते साध्यनामद्वितीयाक्षरम्। एवं क्रमेण यावन्नामपरिसमाप्त्यवष्टभ्य तन्महाचक्रमध्यत्रिकोणे सर्वमेतल्लिखित्वा तत्रैव त्रिकोणान्तरे मातृकया वेष्टयेत्। अत्रावष्टम्भशब्देन ग्रथनमभिप्रेतम्। यदुक्तम्—'ग्रथनं चाक्षरं प्रति' इति। तत्रापि मातृकावेष्ट(ने? नं) साधकनामाद्यक्षरयोगेनैव कार्यम्।।३६-४०।।

* सेतुबन्ध: *

महाकामकलात्मकं बीजं चतुर्थस्वरस्तेन मध्यङ्गतेन त्रिकोणान्तर्लिखितेन साध्यनामाक्षरमेकमेकमवष्टभ्य सम्पुटीकृत्य बहिश्चक्रार्धान्नवयोनिचक्राद् बहिर्मातृकाभिर्वेष्टयेदिति तु **(ऋजु) विमर्शिन्यां** व्याख्यातम्। **(अर्थ) रत्नावलीकार**स्तु—मध्यङ्गतेन मूलविद्यामध्यस्थेन बीजेन कामराजकूटेन साध्यनामाक्षराणि ग्रथयित्वा त्रिकोणान्तर्विलिख्य बहि: कामकूटाद् बहिस्त्रिकोणमध्य एव मातृकाभि: साध्यनामाक्षरग्रथनरीत्यैव वेष्टयेदिति व्याचख्यौ। वस्तुतस्तु—मूले चक्रस्येतिपदाभावेऽपि निकायिन्यायेन पूर्वयागप्रकृतिकत्वाद्धारिता चक्ररूपिणीत्युपसंहाराच्च चक्ररूपिणीत्युपसंहाराच्च चक्रस्येत्यस्योपस्थितौ तस्य मध्यं तस्य बहिरित्येवार्थ:। यत्तु **संहितायां** वचनम्—

कामकूटेन देवेशि सन्दर्भ्य पृथगक्षरम्।
साध्यनाम्नां त्रिकोणान्तर्वेष्टयेन्मातृकाबहि:।।

इति। तत्रापि चक्रं विलिख्येत्यस्य पूर्वश्लोकादनुवृत्तेस्तदविरोधेनैव चक्राद् बहिरित्येव व्याख्येयम्। तेन प्रकृतित: प्राप्तस्य बाधो न कृतो भवति। चतुर्थस्वरावष्टम्भो मातृकावष्टम्भश्च मानाभावात् **संहिता**विरोधाच्च नोपादेय इति युक्तम्। अत्राऽऽदौ कामकूटम्, ततो देवदत्तप्रथमाक्षरम्, पुन: कूटं वकार:, पुन: कूटं दकार:, कूटं त्तकार: कूटमिति ग्रथनक्रम:। **सहितायां** साध्यनाम्नामितिबहुवचननिर्देशादनेकसाध्योद्देशेन सकृदेवायं प्रयोग इति ध्वनितम्। तदनुसारेण साध्यनाम्नामक्षरमित्येव प्रकृते विग्रह:। सचराचरमित्यत्र तच्छब्दश्चक्रं परामृशतीति। **(ऋजु)विमर्शिन्यामुक्तम्**, तदयुक्तमिति स्पष्टम्।।३६-४०।।

तेन क्रमेण सन्दर्भ्य पुराणां नाम सुन्दरि।
मध्ये चतुष्पथे चापि चतुर्दिक्षु निधापयेत्।।४१।।
महान्कोलाहलस्तत्र ततो लोकस्य जायते।
योषितां च विशेषेण विद्विष्टानामपीश्वरि।।४२।।

हे सुन्दरि! पूर्वोक्त प्रकार से चक्र में पुर का नाम ग्रथित करे, तब पुर के मध्य में, चौरास्ता में तथा पूर्वादि चारो दिशाओं में (एक-एक चक्र को) गाड़ दे। इससे वहाँ के लोगों में महाविक्षोभ हो जाता है। हे ईश्वरि! इससे परस्पर में जो विद्वेष होता है, वहीं नारीगण में विक्षोभ होने लगता है।।४१-४२।।

पुराणां—शिवानन्द ‘पुर’ का अर्थ करते हैं—प्रसिद्ध नगर। भास्करराय अर्थ करते हैं—नगर। **महान् कोलाहलस्तत्र**—भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ यह है कि समस्त नगर साधक के वश में रहेगा।।४१-४२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तेन क्रमेण पूर्वोक्तप्रकारेण। सन्दर्भ्य ग्रथयित्वा। पुराणां प्रसिद्धानां नगरीणाम्। नाम संज्ञा। मध्ये पुराणाम्। चतुष्पथे रथ्याचतुष्टयसन्धौ। चतुर्दिक्षु पुराणां चतुराशासु। निधापयेत् निखानयेत्। महान् अनल्पः। कोलाहलः क्षोभात्मा। तत्र तासु पुरीषु। लोकस्य जनस्य। तत्रत्यानां जनानां परस्परक्षोभो भवतीति भावः। विद्विष्टानां परस्परं कृतवैराणाम्।।४१-४२।।

* अर्थरत्नावली *

तेन क्रमेणेत्यादि ईश्वरीत्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—तत्रापि मध्यवीजेन पुनर्नामाक्षरग्रथनं कार्यमिति विशेषः। अन्यन्मातृकावेष्टनादि समानमिति। सन्दर्भावष्टम्भावेकार्थाविति।।४१-४२।।

* सेतुबन्धः *

पूर्वोक्त एव प्रयोगे साध्यनामाक्षराणां स्थाने स्रुघ्नपाटलिपुत्रादिनगरनामाक्षराणीति विशेषः। नन्वेवं सति नगरस्यैव साध्यत्वात्पूर्वेणैव सिद्धमित्यत आह—मध्ये चेति। नगरस्य मध्यभागे चतुष्पथे पूर्वादिदिक्चतुष्टये च निखननार्थं षट्चक्राणि कार्याणीति विशेषान्न गतार्थतेति भावः। अत्र **संहितायां** दिक्षु पूर्वादिषु क्रमादित्युक्तेः प्रकृते चकारश्रवणाच्च षण्णां समुच्चय एव न विकल्पः। सर्वं नगरमेव स्ववशे तिष्ठतीति तात्पर्यार्थः।।४१-४२।।

एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां ज्वलन्तीं चिन्तयेत्प्रिये।।४३।।
षण्मासान्ध्यानयोगेन जायते मदनोऽपरः।
दृष्ट्वैवाऽऽकर्षयेल्लोकान् दृष्ट्वैव कुरुते वशे।।४४।।
दृष्ट्या संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्वैवापहरेद्विषम्।
दृष्ट्या करोति वागीशं दृष्ट्या सर्वं विमोहयेत्।।४५।।
दृष्ट्या करोति चाऽऽवेशं दृष्ट्या सर्वं विमोचयेत्।
दृष्ट्या चातुर्थिकादींश्च नाशयेद्विषमज्वरान्।।४६।।

हे प्रिये! इस चक्रराज के मध्यगता सशैलवनकानना चतुःसमुद्र-पर्यन्ता। अतिदीप्तिमती पृथ्वी का ध्यान अवश्य करना चाहिये। छः मास ऐसा ध्यान करने से साधक द्वितीय मदन (कामदेव) के समान हो जाता है। वह दृष्टिमात्र से लोगों का आकर्षण तथा स्त्रीगण का वशीकरण कर सकता है और अपनी दृष्टि से ही नारीगण को संक्षुब्ध कर देता है। देखने मात्र से विष का नाश करता है। देखकर किसी को भी वाग्मी बना सकता है। दृष्टि से सभी को विमोहित कर देता है। दृष्टि से ही आविष्ट कर देता है। दृष्टि द्वारा लोगों को मुक्त

कर सकता है। दृष्टि से ही वह लोगों के चातुर्थिकादि ज्वरों का नाश कर सकता है।

ज्वरान्—भास्करराय के अनुसार यह असाध्य रोगमात्र का उपलक्षण है।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतन्मध्यगतामित्यत्रैतच्छब्दश्चक्रराजपरामर्शक:। वनं जलम्। ज्वलन्तीं चक्रप्रभाकवलितत्वात्। मदन: काम:। अपरो द्वितीय:। **दृष्ट्या करोति वागीशमिति।** मूकमपि जनमनुग्रहदृष्टिपातेन सरस्वतीनृत्तगीतरङ्गं करोतीत्यर्थ:।।४३-४६।।

* अर्थरत्नावली *

एतदित्यादि नाशयते क्षणादित्यन्त: स्पष्टार्थ:। तत्राप्येतदिति श्रीचक्रमभिमतम्।।४३-४६।।

* सेतुबन्ध: *

एतस्य चक्रस्य मध्यगतां सर्वां पृथ्वीं चिन्तयेत्। षण्मासानित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया। ज्वरपदमसाध्यरोगमात्रोपलक्षणम्।।४३-४६।।

एतत्प्रपूजितं रात्रौ चक्रं सिन्दूररञ्जितम्।
करोति महदाकर्षं सुदूरादपि योषिताम्।।४७।।

सिन्दूररंजित इस महत् चक्र की रात में पूजा करने से बहुत दूरस्थ नारीगण का भी आकर्षण किया जा सकता है।।४७।।

सिन्दूररञ्जितम्—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—सिन्दूर-चित्रित। विद्यानन्द कहते हैं कि सिन्दूरचूर्ण से लिखित।।४७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतदित्यादि। सिन्दूरचित्रितं रात्रौ प्रपूजितं महदेतच्चक्रं सुदूरादपि योषितामाकर्षं करोतीत्यन्वय:।।४७।।

* अर्थरत्नावली *

एतदित्यादि सुदूरादपि योषितामित्यन्तेन सिन्दूररजसा श्रीचक्रं लिखित्वा तन्म(ध्य?ध्ये) त्रिकोणमध्ये (प्रथ)मं मूलवि(द्या? द्यां) तत: सम्बोधनान्तं देवीनाम पुनर्लिखित्वाऽर्थादेतन्मध्ये आकर्षणकर्मवत् सर्वं नामादिकं लिखित्वा रात्रौ पूजयेदित्यभिमतम्।।४७।।

* सेतुबन्ध: *

सिन्दूरेण रञ्जितं लिखितम्। **'रात्रौ सिन्दूरलिखितं पूजयेदेकचित्तत:'** इति **संहितैक**वाक्यत्वात्। तेन हरिद्रादिना विलिख्य सिन्दूरं पूरयेदिति व्याख्यानमनादेयम्। महदिति चक्रविशेषणम्। महतामाकर्षमिति वा। महमुत्सवं ददातीति मह:। स चासावाकर्ष इति वा।।४७।।

सदा दिक्षु विदिक्ष्वेवं यदा देवि प्रपूज्यते।
दिगनुक्रमयोगेन(ण) तदा सर्वं जगद्वशे।।४८।।

हे देवि! दिक्-विदिक् में इस प्रकार के दिक् क्रम में चक्र पूजित होने से जगत् पूजक के वशीभूत हो जाता है।।४८।।

इस श्लोक की व्याख्या में भास्करराय का कथन है कि साधक जिस दिशा में सबको वशीभूत करने की इच्छा रखता हो, उसी ओर मुख करके अखण्ड पूजन करे। इस प्रकार से क्रमशः एक-एक करके सभी दिशाओं की ओर पूजा करने से समस्त जगत् वशीभूत हो जाता है। इस क्षेत्र में दिशा का नाम ही साध्यनाम है।।४८।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

तदा सर्वं जगद् वशे। भवतीति शेषः।।४८।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

सर्वेत्यादि जगद्वश इत्यन्तेन श्रीचक्रमध्ये साध्यसाधकयोर्नाम वशीकरणवल्लिखित्वा पूर्वादिक्रमेणैवाभिमुखः पूजयेत्। अत्र साध्यनाम दिङ्नामैवेति सूचितम्।।४८।।

❊ सेतुबन्धः ❊

यां दिशं सर्वां वशयितुमिच्छुस्तद्दिगभिमुखः सदाऽखण्डं पूजयेत्। एवं क्रमेण सर्वं जगद्वशयति। अत्र दिङ्नामैव साध्यनामेत्याहुः।।४८।।

भूर्जपत्रे विलिख्यैतन्नवे निर्विवरोदरे।
रोचनागुरुकाश्मीरैर्मध्ये सन्दर्भयेत्पुरम् ।।४९।।
विपुलं देशमथवा विषयं मण्डलं तथा।
स्वानामसहितं कृत्वा यदि भूमौ निधापयेत् ।।५०।।
धारयेदथवा हस्ते कण्ठे वा बाहुमूलतः।
शिखायामथवा वस्त्रे यत्र तत्र स्थितं च वा ।।५१।।
चक्रमेतन्महाभागे पुरक्षोभणमुत्तमम् ।

निश्छिद्र नूतन भूर्जपत्र पर गोरोचन-अगुरु तथा कुङ्कुम से चक्र अंकित करे। उसके मध्य में साधक अपने नामाक्षर के साथ नगर, विराट् देश, विषय तथा मण्डल का नामाक्षर ग्रथित करके लिखे तथा इस चक्र को मिट्टी में गाड़ दे। अथवा हाथ, कण्ठ, बाहुमूल, शिखा, किंवा वस्त्र में, जहाँ भी हो रखकर धारण करे। तदनन्तर यथाविधि पूजा करके इसे मिट्टी में गाड़ना होगा। हे महाभागे! यह चक्र पुरक्षोभण कारक भी है।।४९-५१।।

प्राचीन टीकाकारों के मतानुसार इन श्लोकों का तात्पर्य है कि यथोक्त प्रकार से अंकित श्रीचक्र के मध्य में स्थित त्रिकोण के आभ्यन्तर में लिखित कामराज बीज गर्भगृह में अर्थात् रकार तथा हकार के मध्य में पुर (नगर) आदि का नामाक्षर साधक के नामाक्षर के साथ विदर्भित करके लिखना होगा। तत्पश्चात् यथाविधि पूजा करके उसे मिट्टी में गाड़ देना होगा अथवा हाथ आदि में (बाहु में) धारण करना होगा।।४९-५१।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

भूर्जेति। एतत् चक्रम्। नवे नूतने। निर्विवरोदरे अच्छिद्रे। काश्मीरं कुङ्कुमम्। मध्ये चक्रस्य। **सन्दर्भयेत् पुरमिति**। पुरादीनां नामाक्षराणि यथा सन्दर्भितानि ग्रथितानि भवन्ति तथेति स्वनामसहितं साधकसंज्ञाक्षरसंयुक्तम्। अयमर्थः—चक्रराजमध्ये त्रिकोणोदरलिखितकामराजवीजगर्भगृहे पुरादीनां नामाक्षराणि साधकनामाक्षरैः सन्दर्भितानि लिखेदिति। पुरक्षोभणं पुराणां क्षोभणमित्यर्थः।।४९-५१।।

※ अर्थरत्नावली ※

भूर्जपत्र इत्यादि उत्तममित्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—श्रीचक्रमध्ये त्रिकोणमध्यलिखितविद्यारेफहकारमध्ये पुरादिना(म) साधकनामाक्षरग्रथनयोगेन लिखित्वा कर्म लिखेदिति यावत्।।४९-५१।।

※ सेतुबन्धः ※

नूतने निश्छिद्रे भूर्जे चक्रं विलिख्य तन्मध्ये स्वनाम्ना विदर्भितं नगरदेशमण्डलखण्डान्यतमं कृत्वा विलिख्य सम्पूज्य निखननधारणाद्यन्यतमं कुर्यादित्यर्थः।।४९-५१।।

अर्कक्षीरं कुङ्कुमं च धत्तूरकरसं तथा।।५२।।
रोचनालक्तकं लाक्षारसं मृगमदोत्कटम्।
एकीकृत्वा चक्रमेतल्लिख्यते यस्य संज्ञया।।५३।।
तस्य चोरग्रहव्याधिरिपुसिंहाहिवाजिजम्।
यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेतपिशाचजम् ।।५४।।
लूतावृश्चिककीटानां कामलाशीतिकोद्भवम्।
भयं न विद्यते तस्य परमन्त्राभिचारजम्।।५५।।
नित्यं सन्धारणाद्देवि कालमृत्युयमादयः।
न शक्ता हिंसितुं सम्यग् रोमैकमपि सर्वथा।।५६।।

मदार का दूध, कुङ्कुम, धतूरा-फूल का रस, गोरोचन, आलता, लाक्षा का रस, कस्तूरी को मिलाकर उस (स्याही) से चक्र का अंकन करे। उसके मध्य में जिसका नाम लिखा जायेगा उसे चोर, ग्रह, व्याधि, शत्रु, सिंह, घोड़ा का भय; यक्ष, राक्षस, वेताल, भूत, प्रेत, पिशाच का भय; विषैली मकड़ी, वृश्चिक, कीट का भय; पीलिया रोग का भय, शीत ज्वर का भय, शत्रु द्वारा मन्त्रजनित अभिचारादि का भय नहीं होगा। हे देवि! इस चक्र को नित्य धारण करने से काल, मृत्यु, यमादि भी इसे धारण करने वाले का एक रोम भी नहीं उखाड़ सकेंगे अर्थात् कोई क्षति नहीं कर सकेंगे।।५२-५६।।

अलक्तकं—भास्करराय के मत से यहाँ अलक्तक पद से अन्य बाबला छाल इत्यादि के योग से तैयार रस का भी द्योतन होता है; क्योंकि यहाँ लाक्षारस का पृथक् रूप से उल्लेख किया गया है। **ग्रहः**—शिवानन्द इसे सूर्यादि ग्रह बतलाते हैं। **व्याधिः**—

भास्करराय इसे शीतज्वर कह रहे हैं। **शीतिका**—भास्करराय के मत से यह भी शीतज्वर है। **परमन्त्राभिचारणम्**—शिवानन्द के अनुसार शत्रुओं द्वारा किये गये मन्त्रसाधित अभिचारजनित कष्ट।।५२-५६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अर्कक्षीरमित्यादि। धत्तूरकरसम् उन्मत्तपुष्परसम्। अलक्तकलाक्षयोरवान्तरभेदो द्रष्टव्यः। मृगमदोत्कटम्। मृगमदः कस्तूरिका, तयोत्कटम् उद्रिक्तम्। संज्ञया नाम्ना। ग्रहः सूर्यादिः। व्याधिः आध्यात्मिकादिदुःखत्रयात्मा। वारिजं जलनिमित्तजं भयम्। **यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेताशुभात्मनामिति।** यक्षादिप्रेतान्तानां पञ्चानामन्येषामशुभात्मनामपीत्यर्थः। लूतेत्यादि। लूतादिकीटान्तानां त्रयाणां सम्बन्धि भयम्, कामलोद्भवं भयं शीतिकोद्भवं भयं चेत्यर्थः। तस्य साधकस्य। परमन्त्राभिचारजं भयमित्यस्यायमर्थः—परेषां शत्रूणां सम्बन्धि मन्त्रसाधिताभिचारजं भयमिति। नित्यसन्धारणात् चक्रराजस्य।।५२-५६।।

* अर्थरत्नावली *

अर्कक्षीरेत्यादि सर्वथेत्यन्तप्रयोगे रक्षाकर्मवन्नामकर्म लिखेत्।।५२-५६।।

* सेतुबन्धः *

अर्कक्षीरादिद्रव्यसप्तकं मेलयित्वा तेन चक्रं विलिख्य यस्य नाम मध्ये लिख्यते तस्य सर्वोपद्रवनिवृत्तिः। तेन तस्य नित्यं धारणे तु यावच्छरीरसम्पर्कस्तावत्कालमृत्युरपि तं न बाधत इत्यर्थः। इहालक्तकपदेन बर्बूरत्वगादिद्रव्ययोगजन्यो रसः। लाक्षारसस्य पृथगुपादानात्। तयोः सामानाधिकरण्येनान्वयस्तु नोपादेयः।

उन्मत्तरसलाक्षार्कक्षीरकुङ्कुमरोचनाः ।
कस्तूर्यलक्तसहिता एकीकृत्य तु संलिखेत्।।

इति संहिताविरोधात्। कामला ज्वरपत्नी। शीतिका शीतज्वरः। 'अकारप्रश्लेषेण को ब्रह्मात्मानिलार्केषु' इति कोशाद् वायुवाचकककारेण चाशीतिसंख्या वातजन्या रोगा वा गृह्यन्ते।।५२-५६।।

अथवा मध्यगो देवीं त्रिकोणोभयगां तथा।
अधस्तान्नामसंयुक्तां रोचनाकुङ्कुमाङ्किताम् ।।५७।।
निधापयेच्च सप्ताहाद् दासवत्किङ्करो भवेत्।

इसके पश्चात् अन्य प्रयोग कहते हैं। त्रिकोण के मध्य में तथा तीनों कोणों में गोरोचन, कुंकुम से देवी का अंकन करे। उसके नीचे उक्त चारो स्थान पर (त्रिकोण मध्य—तीनों कोण) साध्य तथा साधक का नाम संयुक्त लिखना चाहिये। जो साधक ऐसा करेगा, एक सप्ताह में साध्य उसके वश में दासवत् हो जायेगा।।५७।।

देवीं—शिवानन्द के अनुसार मूल विद्या का अंकन। भास्करराय का भी यही मत

है। **अधस्तान्नामसंयुक्तां**—भास्करराय इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि त्रिकोण मध्य तथा तीन कोणों में मूल विद्या लिखना होगा। उसके नीचे चार स्थान पर साध्य नाम भी पुनः-पुनः लिखना आवश्यक है; परन्तु शिवानन्द कहते हैं कि पूर्वोक्त चार स्थानों पर श्रीविद्या का कामराजबीज लिखना होगा तथा उसके नीचे चार स्थानों पर साधक नामाक्षर, साध्य नामाक्षर तथा कर्माक्षर का योग आवश्यक है। इस सम्बन्ध में विद्यानन्द का मत है कि साध्य नाम, साधक नाम तथा सम्बोधित करके देवी का नाम लिखकर तब कर्म का नाम लिखे।।५७।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

अथवेति। मध्यगां महाचक्रमध्यशक्तिमध्यस्थानगताम्। देवीं मन्त्ररूपिणीम्। त्रिकोणोदरगां कोणत्रयोदरगताम्। तथा यथा मध्ये तथा कोणत्रयेष्वपीत्यर्थः। अधस्ताद् बीजचतुष्टयाधःस्थाने। नामसंयुक्तां साध्यसाधककर्माक्षरसंयुक्ताम्। अयमर्थः—प्रथममुक्तद्रव्यैर्महाचक्रं विन्यस्य मध्यशक्तिस्थानमध्यभागे श्रीकामराजं विलिख्य कोणत्रये तदेव बीजं निष्पाद्य तद्बीजचतुष्टयाधस्ताच्छब्दलक्षितान्तःप्रदेशे—

अधरे साध्यनामार्णं साधकस्योत्तरे लिखेत्।
अन्तराग्निश्रियोः कर्म साधकांशे समालिखेत्।।
(प्र० सा० १०.५५-५६)

इति स्थित्या साध्यसाधककर्माक्षराणि लिखित्वा सप्राणप्रतिष्ठं यथोक्तमाराध्योक्तस्थाने निधापयेदुक्तफलसिद्धय इति। **दासवत् किङ्करो भवेत्।** साध्य इति शेषः।।५७।।

*** अर्थरत्नावली ***

अथवा मध्यगामित्यादि किङ्करो भवेदित्यन्तस्यायमर्थः—श्रीचक्रत्रिकोणमध्ये श्रीत्रिपुरसुन्दरीरूपं विलिख्य कोणत्रयलिखितमूलविद्याहकारमध्ये पूर्ववत् साधकस्य साध्यस्य देव्या नाम सम्बोधनपूर्वकं लिखित्वा कर्म लिखेदित्यर्थः।।५७।।

*** सेतुबन्धः ***

त्रिकोणस्य कोणत्रये मध्ये चेति चतुर्वारं विद्या विलिख्य तदधः स्थानचतुष्के साध्यनामापि पुनः पुनर्लिखेदिति व्याचक्षते। कामकूटं चतुर्वारं लिखेदित्यपि केचित्। पक्षद्वयेऽपि मूलाक्षरारूढता चिन्त्या। त्रिकोणोदरगामिति क्वाचित्कः पाठः। तत्पक्षे त्रयः कोणा उदरं चेति समासः सुवचः। त्रिकोणोभयगामित्येव तु तन्त्रान्तरसंवादी पाठः।।५७।।

अङ्कितां लिखितां नित्यं धारयेदुज्जिघृक्षताम्।।५८।।
नाम्ना सर्वज्ञभूतोऽपि मूको भवति तत्क्षणात्।

हरिद्रादि पीत द्रव्य से चक्र बनाकर उसमें वादानुवाद करने के इच्छुक व्यक्ति का नाम लिखकर धारण करना चाहिये। वह व्यक्ति तत्क्षण मूक हो जायेगा।।५८।।

उज्जिघृक्षताम्—भास्करराय अर्थ करते हैं कि शास्त्रीय अथवा लौकिक व्यापार में विवाद (वादानुवाद) करने के इच्छुक व्यक्ति। इस सम्बन्ध में विद्यानन्द लिखते हैं कि हरिद्रा आदि द्वारा चक्र बनाकर वहाँ त्रिकोण में प्रथमत: मूल विद्या, तदनन्तर सम्बोधनान्त देवी नाम, तदनन्तर 'अमुकस्य वाचं स्तम्भय-स्तम्भय' लिखकर पुन: मूल विद्या का अंकन करे। चक्रधारण के सम्बन्ध में भास्करराय लिखते हैं कि भूर्जपत्रादि पर पीत द्रव्य से चक्र बनाकर उसमें यथोक्त प्रकार से नाम-संयोग करना चाहिये एवं पूर्वाभिमुख होकर पीत पुष्प से पूजा करके साधक को धारण करना चाहिये।।५८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पीतद्रव्येण हरिद्रादिना। उज्जिघृक्षताम् उद्ग्रहणिकां चिकीर्षूणाम्। नाम्ना संज्ञया। अय-मर्थ:—विवदिषूणां प्रयोगकरणे प्रतिविवदिषोर्नाम्ना सहितं चक्रं विलिख्य तान् विवदिषून् तच्चक्रं धारयेदिति। अत्राभियुक्तवचनम्—

स्तम्भे कालनिभं प्रोक्तं मारणे चासितं तथा।
सुसितं शान्तिकर्मादौ वश्ये रक्तं समन्तत:।। इति।

मूको प्राप्तवाङ्निरोध:। तत्क्षणात् प्रयोगकालाविलम्बितमेव।। ५८।।

* अर्थरत्नावली *

पीतद्रव्येत्यारभ्य मूको भवति तत्क्षणादित्यन्तस्यायमर्थ:—पीतद्रव्यं हरिद्रादि, तेन चक्रं लिखित्वा तन्मध्ये त्रिकोणमध्ये प्रथमं मूलविद्या तत: सम्बोधनान्तं देवीनाम पुनरमुकस्य वाचं स्तम्भयेति, अन्तेऽपि मूलविद्येत्येवं लिखेत्।।५८।।

* सेतुबन्ध: *

ये तावत्स्वेन सहोज्जिघृक्षन्ति उद्ग्राहं कर्तुमिच्छन्ति शास्त्रीये लौकिके व्यवहारे वा विवदितुमिच्छन्ति, तन्नामसहितं चक्रं पीतद्रव्येण भूर्जादौ विलिख्य पूर्वाभिमुख: पीतैरेव पुष्पै: पूजयित्वा धारयेत्। प्रतिवादिमुखस्तम्भो भवति। तदुक्तं ज्ञानार्णवे—

पीतद्रव्यै: समालिख्य पीतपुष्पै: समर्चयेत्।
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत्सर्ववादिन:।।
सहस्रवदनो देवि मूको भवति तत्क्षणात्।
नाम्ना यस्य स वाग्मी हि पाषाण इव जायते।। इति।

क्वचिदिन्द्रदिङ्मुख इति मूलपाठ:।।५८।।

मारणादिप्रयोगा:

महानीलीरसेनापि नाम संयोज्य पूर्ववत्।।५९।।
दक्षिणाभिमुखो वह्नौ दग्ध्वा मारयते क्षणात्।

महानीलीरस द्वारा पूर्ववत् चक्र लिखकर उसमें यथोक्त रूप से नाम भी लिखे। दक्षिण दिशा की ओर बैठकर उसे अग्नि में जलाने से साध्य का मारण होगा।।५९।।

महानीलीरसेन—इसका अर्थ है—महानीलपङ्क। **नाम**—साध्यनाम या द्वेष्यनाम। **पूर्ववत्**—शिवानन्द व्याख्या करते हैं कि वाक्यस्तम्भन में जिस रीति से प्रक्रिया बताई गई, उसी प्रकार से। इस सम्बन्ध में विद्यानन्द का मत है कि महानीलरस से चक्र बनाये और उसमें पूर्ववत् मूल विद्या, तदनन्तर सम्बोधनान्त देवीनाम लिखकर 'अमुकं मारयं मारय लिखे।।५९।।

✻ ऋजुविमर्शिनी ✻

महानीलरसेन महानीलपङ्केन। इदमेवास्याभिधानम्। तत्तद्देशभाषाया नामान्तरं श्रोतव्यम्। नाम साध्यस्य। पूर्ववत् वाक्स्तम्भचक्रक्रमवत्। दग्ध्वा नीलपटादौ लिखितम्। मारयेत् (मारये)-त्याख्यातपदद्वयोपेतं प्रतिष्ठितप्राणं तच्चक्रं वह्नौ दग्ध्वा साध्यं मारयेदित्यर्थः।।५९।।

✻ अर्थरत्नावली ✻

महानीलीरसेनेत्यादि मारयतेऽचिरादित्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—तस्य महाचक्रस्य मध्ये पूर्ववन्मूलविद्यां लिखित्वा ततो देवीनाम सम्बोधनान्तं लिखित्वाऽमुकं मारय मारयेति लिखेदित्यर्थः।।५९।।

✻ सेतुबन्धः ✻

मारणप्रयोगमाह—नीलीरसेन चक्रं विलिख्य ब्राह्मणभिन्नस्याधार्मिकस्य द्वेष्यस्य नाम पूर्वोक्तरीत्या संयोज्य दक्षिणाभिमुखोऽभ्यर्च्य वह्नौ दहेत्, रिपुर्म्रियते।।५९।।

महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेणाङ्कितं लिखेत् ।।६०।।
नाम्नाऽऽरनालमध्यस्थं विद्विष्टः सर्वजन्तुषु ।

महिष और अश्व का मल लेकर उसमें गोमूत्र छोड़कर मिलाकर चक्र बनाकर उसमें नाम लिखे। तदनन्तर इसे कांजी में छोड़ दे। इससे साध्य सभी प्राणियों से विद्विष्ट होगा अर्थात् साध्य से सभी विद्वेष करेंगे।।६०।।

महिषाश्वपुरीषाभ्यां—इसकी व्याख्या भास्करराय के अनुसार यह है कि महिष तथा अश्व में पारस्परिक वैरभाव है। इसी कारण कोई-कोई महिष तथा अश्व को गौ तथा व्याघ्र का उपलक्षण कहते हैं। दोनों के मल को गोमूत्र में मिलाकर उससे यन्त्र लिखना होगा। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं कि सहज वैरी दोनों जीव के मूत्र-पुरीष से विद्वेषण यन्त्र बनाये।

आरनालमध्यस्थं—भास्करराय व्याख्या करते हैं कि अमरकोष के अनुसार आरनाल का अर्थ है—सौवीर (कांजी)। चक्र को इसमें छोड़ना होगा। विद्यानन्द के मत से

चक्रलेखन की विधि यह है कि प्रथमत: मूल विद्या तदनन्तर 'अमुकामुकयो: (अमुक से अमुक का) विद्वेषणं कुरु कुरु' तदनन्तर मूल विद्या, पुन: पूर्व की तरह नाम (साध्य-साधक दोनों का नाम), पुन: मूलविद्या—इस प्रकार लिखे।।६०।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

महिषाश्वपुरीषाभ्यामित्यनेन चक्रनिर्माणद्रव्यमुच्यते। गोमूत्रेण सेचनकेन। अङ्कितं विद्वेष-(म?य)युगाक्षरै:। नाम साध्यस्य संज्ञाक्षरम्। आरनालमध्यस्थं काञ्जिकमध्यस्थम्। कुर्यादिति शेष:।।६०।।

※ अर्थरत्नावली ※

महिषाश्वेत्यादि विद्विष्ट: सर्वजन्तुष्वित्यन्तेनैतदभिप्रेतम्—विद्वेषणं यथा महाचक्रमध्ये त्रिकोणमध्ये मूलविद्याङ्कितं साध्यसाधकयोर्नाम कर्मसहितं लिखेत्। प्रथमं मूलविद्या पुनरमुकामुकयोर्विद्वेषणं कुरु कुर्विति लिखित्वा ततो मूलविद्या पुनरपि नाम पूर्ववत्। पुनरपि मूलविद्या। एवमङ्कितं निरोधितं लिखेदिति यावत्। महिषाश्वपुरीषादिगोमूत्रैरिति सहजवैरिजीवयो: पुरीषमूत्रैर्विद्वेषणयन्त्रं लिखेदित्यर्थ:।।६०।।

※ सेतुबन्ध: ※

महिषपुरीषाश्वपुरीषयो रसं गोमूत्रेण सम्मेल्य तेन चक्रं विलिख्य तत्र देवदत्तयज्ञदत्तौ विद्वेषयेत्यादि विलिख्याभ्यर्च्य तच्चक्रं सौवीरमध्ये निक्षिपेत्। अथ काञ्जिके। 'आरनालकसौवीर' इति अमर:। यस्य नाम्नाऽङ्कितं स सर्वजन्तुषु विद्विष्टो भवतीत्यन्वय:। महिषाश्वेति तु मिथोवैरस्य गोव्याघ्रादेरुपलक्षणमित्यन्ये। पुरीषद्वयमेव लेखनद्रव्ये। गोमूत्रेण तु चक्रस्य सेचनमात्रमित्यपि केचित्। तदुभयमपि संहितादिविरुद्धम्।।६०।।

युक्त्वा रोचनया नाम काकपक्षेण संलिखेत्।।६१।।
नीलकर्पटके सम्यङ्नीलसूत्रेण वेष्टयेत्।
लम्बमानं तदाकाशे परमुच्चाटनं भवेत्।।६२।।

नीले वस्त्र पर गोरोचन द्वारा कौये के पंख की कलम से चक्र बनाकर उसमें साध्य का नाम अंकित करना चाहिये। उस वस्त्र को नीले धागे से लपेट कर उसे एक लाठी में बाधकर रखे, ताकि वह नीलावस्त्र आकाश में झूलता रहे। इससे परम उच्चाटन होगा।।६१-६२।।

नीलकर्पटके—विद्यानन्द अर्थ करते हैं—कृष्ण वस्त्र। विद्यानन्द के मत से लेखन-प्रकार यह है—प्रथमत: द्वितीया विभक्तियुक्त साध्य नाम, तदनन्तर 'उच्चाटय-उच्चाटय' तदनन्तर मूलविद्या।।६१-६२।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

युक्त्वा। उच्चाटनयुगेन योजयित्वेति यावत्। नाम साध्यस्य। काकपक्षेण लेखन्या। नीलकर्पटके कृष्णपटे। वेष्टयेत् बध्नीयात्। तत् चक्रम्।।६१-६२।।

* अर्थरत्नावली *

युक्त्वा रोचनयेत्यादि उच्चाटनकरं परमित्यन्तस्यायमर्थ:—गोरोचनया काकपक्षेण नीलकर्पटकस्य मध्ये चक्रं विलिख्य तन्मध्ये आदौ साध्यनाम द्वितीयान्तं लिखित्वा उच्चाटय उच्चाटयेति कर्मपदान्ते मूलविद्यां लिखेदिति यावत्।।६१-६२।।

* सेतुबन्धः *

नीलवस्त्रे गोरोचनद्रव्येण काकपक्षोत्थलेखन्या चक्रं विलिख्य तत्र साध्यनाम संयोज्य पूजयित्वा तद्वस्त्रं नीलसूत्रेणाऽऽवेष्ट्य यष्टौ बद्ध्वाऽऽकाशे लम्बयेत्। उच्चाटनं भवति।।६१-६२।।

दुग्धलाक्षारोचनाभिर्महानीलीरसेन च।
लिखित्वा धारयेच्चक्रं चातुर्वर्ण्यं वशं भवेत् ।।६३।।

दुग्ध, आँवला, गोरोचन, महानीलपङ्क मिलाकर चक्र लिखकर धारण करने से वर्णचतुष्टय (चारो वर्ण वाले) वशीभूत हो जाते हैं।।६३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

दुग्धेति। दुग्धं क्षीरम्। चातुर्वर्ण्यं जातिचतुष्टयम्। द्रव्यचतुष्टयेन वर्णचतुष्टयं वशीकुर्यादिति तात्पर्यम्।।६३।।

* अर्थरत्नावली *

दुग्धलाक्षेत्यादि चातुर्वर्ण्यं वशं भवेदित्यन्तस्यायमर्थ:—लाक्षाशब्देन ज(तुरु?तू)च्यते। अत्र चक्रनामादिलेखनं वशीकरणकर्मवज्ज्ञातव्यम्।।६३।।

* सेतुबन्धः *

दुग्धादिद्रव्यस्येतरेतरयोगद्वन्द्ववशाच्चकाराच्च परस्परमिश्रितमेकमेव लेखनद्रव्यम्। तदुक्तं संहितायाम्—

महानीलीरसोद्भिन्नारोचनादुग्धमिश्रितै: ।
लाक्षारसैर्लिखेच्चक्रं चतुर्वर्णान्वशं नयेत्।। इति।

अत्रोद्भिन्ना पञ्चमं द्रव्यं योजनीयं विधीयते। महानीलीरोचनाभ्यां दुग्धलाक्षारसादिभिरित्यत्राऽऽदिपदेनाप्येतदेव द्रव्यं ज्ञानार्णवेऽप्यभिप्रेतं दृश्यते। तदनुरोधेन मूले चकारोऽपि तत्समुच्चयार्थ एव व्याख्येय:। सुरेश्वरकृतशब्दप्रदीपाख्ये भिषक्कोशे—'औद्भित्रं क्षारिकायां स्यात्कडाहलवणेऽपि च' इति। एतेन चत्वारि द्रव्याणि चतुर्णां वर्णानां वशीकरणे यथासंख्यमन्वियन्तीति (ऋजु)विमर्शिनीकारोक्तिर्निरस्ता। श्वेतरक्तपीतनीलवर्णानां मृदादीनां स्मृत्यादिषु विप्रादिभेदेन व्यवस्थादर्शनं तेषां भ्रममूलम्, तत्तु तन्त्रान्तरे विशेषदर्शनान्निवर्त्यम्।।६३।।

एतेनैव विधानेन जलमध्ये विनिक्षिपेत्।
सौभाग्यमतुलं तस्य स्नानपानादिना भवेत् ।।६४।।

इस विधान से चक्र लिखे और जल में फेक दे। उस जल में स्नान करने तथा उसे पीने से साधक को अतुलनीय सौभाग्य प्राप्त होता है।।६४।।

एतेन विधिना—पूर्व श्लोक में वर्णित विधि के अनुसार अर्थात् दुग्धादि से चक्रलेखन करे। **जलमध्ये**—शिवानन्द व्याख्या करते हैं कि दीक्षाभिषेक के समय यथाशास्त्र स्थापित अभिषेक कुम्भ में कनकपट्ट पर अंकित चक्र निक्षेप करना होगा और अभिषेक के अन्त में कुम्भादि के साथ उस कनक चक्र को दक्षिणा के साथ गुरु को दान करना होगा। भास्करराय कहते हैं कि ऐसा अर्थ अन्य तन्त्रों में नहीं मिलता; यह शिवानन्द की अपनी व्याख्या है। **स्नानपानविधिना**—भास्करराय के अनुसार यहाँ 'आदि' शब्द से मुख-प्रक्षालन सूचित है। तन्त्रान्तर में इस जल के पान के सम्वन्ध में कहा है कि जो इस जल को पीयेगा, वह वश में होगा। इस प्रकार अनेक लोग वशीभूत होंगे, यही सौभाग्य है।।६४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतेनैवेति। एतेन अनन्तरोक्तविधिना। जलमध्ये वारिधान्याम्। क्षिपेत्। चक्रमिति शेषः। तस्य साधकस्य। आदिशब्देन मुखसेचनं लक्ष्यते। अत्रेदं सूचितम्—दीक्षाशब्दितनैमित्तिकाद्यभिषेकसमये चक्रं कनकपट्टे विलिख्य भूत(प्र?ल)स्थितमहाचक्रमध्यस्थितस्य सकूर्चासनस्य सनवरत्नस्य वासोयुगावृतमुखस्याश्वत्थादिस्त(म्ब?ब)कालङ्कृतस्यान्तर्निहितकूर्चस्याभिषेककुम्भस्योदरे प्रक्षिप्य सेचनक्रियानन्तरं कुम्भादिभिः सह तत्कनकयन्त्रं प्राणदात्रे गुरवे सदक्षिणं दद्यात् साधक इति। अत्राभियुक्तोक्तिः—

अभिषिच्य यन्त्रकलशं गुरवे प्रददातु संयतमतिः सुमतिः।
दुरितापनोदविधये द्युतये यशसे श्रियै च मतिसंयतये।।
(प्र० सा० २१.५२)

अभिषिच्य पुनः शिष्यं कुम्भादीन् गुरुराहरेत्।
(प्र० सा० ३१.२४)

प्राणप्रदानकर्त्रे न च कार्यं वित्तशाठ्यममलधिया।। इत्यादि।।
(प्र० सा० २५.१९)६४।।

* अर्थरत्नावली *

एवमेवेत्यादि न संशय इत्यन्तस्यात्मरक्षाकर्मवन्नामलेखनम्, चक्रलेखनं तु दुग्धलाक्षादिभिरेव कार्यमित्यर्थः।।६४।।

* सेतुबन्धः *

एतेनैव दुग्धादिद्रव्यपञ्चककरणकलेखनादिरूपेणैव। आदिपदेन मुखप्रक्षालनं ये ये पिवन्ति ते ते वशगा भवन्तीति तु तन्त्रान्तरसिद्धोऽर्थः। यत्तु (ऋजु)विमर्शिन्याम् उक्तम्—

दीक्षाभिषेकसमये कनकपट्टचक्रं कुम्भे निक्षेप्यम्। अभिषेकोत्तरं च तच्चक्रं गुरवे देयमित्ययमर्थोऽनेन लब्ध इति तत् तन्त्रान्तरे न दृष्टम्।।६४।।

एतन्मध्यगतां देवीं नागरीं वा सुराङ्गनाम्।
सप्ताहात्क्षोभयेत्सत्यं ज्वलमानां विचिन्त्य ताम्॥६५॥

इस चक्र के मध्य में राजमहिषी अथवा नगरवासिनी, किंवा सुराङ्गना, जो भी हो उसके लिये यह ध्यान करे कि वह मन्त्राग्नि-शिखा द्वारा ज्वलमाना है। वह सप्ताह भर में क्षोभित होगी।।६५।।

देवीं—भास्करराय देवी शब्द का अर्थ करते हैं—राजमहिषी। **ज्वलमानां**—शिवानन्द ज्वलमाना का अर्थ करते हैं—मन्त्रपावक-शिखा से ज्वलमाना।।६५।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

एतदित्यादि। देवीत्यामन्त्रणम्। एतच्चक्रमध्यगतां मध्यभागस्थितां शक्त्युदरविलिखितमध्यबीजमध्यगताम्। ज्वलमानां मन्त्रपावकशिखया। विचिन्तितां तामुक्तकालं ध्याताम्।।६५।।

*** अर्थरत्नावली ***

एतदित्यारभ्य विचिन्त्य तामित्यन्तः स्पष्टार्थः। एतदित्यत्रापि चक्रमुच्यते। अत्र नाम्ना विना ध्यानेनैव साधनमभिप्रेतम्।।६५।।

*** सेतुबन्धः ***

देवीं राजमहिषीम्। नागरीं नगरे भवां यां काञ्चित्। तां चक्रान्तर्ज्वलितां चिन्तयेदित्यादिरुक्तचर एवार्थः।।६५।।

महापातकयुक्तात्मा यदि देवीं प्रपूजयेत्।
शमीदूर्वासहाश्वत्थपल्लवैरथ वाऽर्कजैः॥६६॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः।

शमी, दूर्वा, घृतकुमारी तथा अश्वत्थ के पत्ते अथवा मदार के पत्ते द्वारा यदि कोई देवी की पूजा करे, तब उसके सात जन्म के कलुष का भी नाश हो जायेगा।।६६।।

सहा—घृकुमारी। **अर्कजैः**—मदार के पत्ते से। शिवानन्द कहते हैं कि यह पद अर्कपुष्प का उपलक्षण है अर्थात् मदार के पुष्प से भी पूजन हो सकता है। **सप्तजन्मकृतं**—शिवानन्द के अनुसार यह पद पूर्वतम अनन्तकोटि जन्मकृत पाप का उपलक्षण है।।६६।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

महापातकेति। अत्रापि देवीत्यामन्त्रणे। महापातकयुक्तात्मा महद्भिः पातकैर्युक्तोऽहमिति मन्यमानः। प्रपूजयेत्। चक्रमिति शेषः। **शमीति**। पल्लवशब्दः शम्यादिभिश्चतुर्भिः सम्बद्ध्यते।

अर्कजैः अर्कपल्लवैः। पुष्पस्याप्युपलक्षणमेतत्। कलुषम् एनः। सप्तजन्मकृतमिति प्राचीनानन्तकोटिजन्मकृतपापोपलक्षणम्। नरः साधकः।।६६।।

* अर्थरत्नावली *

महापातकेत्यादि नर इत्यन्तः सर्वपापप्रायश्चित्तप्रदर्शकः स्पष्टार्थः।।६६।।

* सेतुबन्धः *

शम्यादिपल्लवचतुष्टयं मिलितमेव पूजायां करणम्। द्वन्द्वावगतसाहित्यस्योपादेयविशेषणत्वेन विवक्षितत्वात्। अत एव 'मल्लिकामालतीजातीकुन्दैश्च शतपत्रकैः' इति ज्ञानार्णवश्लोकव्याख्यावसरे मल्लिकादीनां समुदितानां पूजासाधनत्वमित्युक्तं शङ्करानन्दैः। 'सहा कुमारी तरणिः' इति अमरः। अर्कजैरिति तु तत्पुष्पस्याप्युपलक्षणमिति वदन्ति।।६६।।

लिखित्या पीतवर्णेन चक्रमेतद्यदाऽर्चयेत् ।।६७।।
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत्सर्ववादिनः।
सिन्दूरेणाप्युल्लिखितं पूजयेदुत्तरामुखः ।।६८।।
यदा तदाऽस्य वशगो लोको भवति सर्वथा।
गैरिकेण तदालिख्य पूजयेत्पश्चिमामुखः ।।६९।।
सोऽपि सर्वाङ्गनाकर्षवश्यक्षोभकरो भवेत्।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा कृष्णं चक्रे समर्चयेत् ।।७०।।
यस्य नाम्ना तस्य नित्यं मन्त्रहानिस्तु जायते।
तद्वद् दिगन्तरालेषु पूजितं परमेश्वरि ।।७१।।
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटनकारकम्।
रोचनालिखितं देवि दुग्धमध्ये वशंकरम् ।।७२।।
क्षिप्तं गोमूत्रमध्ये तु शत्रूच्चाटनकारकम्।
तैलमध्यगतं चक्रं विद्वेषणकरं परम् ।।७३।।
तक्रमध्यगतं चापि विद्वेषणकरं भवेत्।
ज्वलज्ज्वलनमध्यस्थं सर्वशत्रुविनाशनम् ।।७४।।

साधक पूर्वाभिमुखी होकर पीतवर्ण से लिखित चक्र की पूजा करके समस्त विवादकारियों का मुख-स्तम्भन कर सकता है। सिन्दूर से लिखित चक्र का उत्तराभिमुखी होकर पूजन करके सभी लोगों को सर्व प्रकार से वशीभूत कर सकता है। गेरु से लिखे चक्र की पश्चिमाभिमुखीन होकर पूजा करके साधक सभी अंगनाओं का आकर्षण, वशीकरण तथा क्षोभण करने वाला हो जाता है। दक्षिणाभिमुखी होकर कृष्णवर्ण चक्र की पूजा करके साधक जिसका नाम युक्त करके पूजा करेगा, उसकी मन्त्र-हानि होगी। हे परमेश्वरि! साधक कृष्णवर्ण चक्र को बनाकर दक्षिणाभिमुखी होकर पूजा करके शत्रु का

स्तम्भन, विद्वेषण, व्याधिग्रस्त करना तथा उसका उच्चाटन करना सिद्ध कर लेता है। हे देवि! गोरोचन से लिखित चक्र को दुग्ध में भिगोकर (छोड़ देने से) रखने से वह वशीकरणकारी होगा, किन्तु इसे यदि गोमूत्र में छोड़ा जाय, तब यह उच्चाटनकारी हो जाता है। तेल में भिगोकर रखा गया चक्र परम विद्वेषणकारी होता है। मट्ठे में भिगोया गया चक्र विद्वेषणकारी माना गया है। प्रज्ज्वलित अग्नि में छोड़ा गया चक्र सर्वशत्रुविनाशक होता है।।६७-७४।।

पीतवर्णेन—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—हरिताल, हरिद्रा आदि। **गैरिकेन**—शिवानन्द के मत से यह है गेरु। **कृष्णवर्णं**—महानीलरसादि से लिखित श्रीचक्र। **मन्त्रहानिस्तु जायते**—मन्त्रहानि होगी। इस सम्बन्ध में शिवानन्द का मत है कि महानील रसादि से अंकित चक्र में मूलविद्या लिखकर 'अमुकस्य मन्त्रहानिं कुरु कुरु' लिखकर पूजा करने से मन्त्रहानि होगी। **तद्वत्**—पूर्व की ओर मुख करके जैसे पूजा की जाती है, वैसे। **दिगन्तरालयेषु**—विद्यानन्दकृत अर्थ है—ईशानादि से वायुपर्यन्त—कोण। **ज्वलनः**—अग्नि।।६७-७४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पीतवर्णं तालहरिद्रादिभिः। सिन्दूररेणुलिखितम्। चक्रमित्यध्याहार्यम्। गैरिकेण धातुना। एतत् चक्रम्। यः साधकः। कृष्णवर्णम्। यस्य साध्यस्य। नाम्ना संज्ञया। तस्य साध्यस्य। तद्वद् यथा दिङ्मुखः साधयति। दिगन्तरालेषु आग्नेयादिषु। पूजितं चक्रम्। दुग्धमध्ये क्षीरमध्ये। ज्वलनो वह्निः।।६७-७४।।

* अर्थरत्नावली *

लिखित्वेत्यादि वादिन इत्यन्तस्यायमर्थः—हरिद्रोन्मत्तहरितालपङ्केन श्रीचक्रं लिखित्वा तन्मध्यकोणे वादिनाम आद्यन्तमूलविद्यारोधितं पूर्ववल्लिखित्वा पूजयेदिति यावत्। सिन्दूरेत्यादि भवति सर्वदेत्यन्तः सर्ववश्यप्रयोगवन्नामलेखनादिसहितो ज्ञातव्यः। चक्रमित्यारभ्य क्षोभकरो भवेदित्याकर्षणवन्नामादिसहितो ज्ञातव्यः। दक्षिण इत्यादि जायत इत्यन्तस्यायमर्थः—महानीलीरसादिना चक्रं लिखित्वा तन्मध्ये श्रीमूलविद्यान्तेऽमुकस्य मन्त्रहानिं कुरु कुर्विति लिखित्वा पूजयेदित्यर्थः। तद्वदित्यादि कारकमित्यन्तस्यायमर्थः—ईशानादिवायव्यान्तं विदिङ्मुखस्तत्तद्द्रव्यैस्तत्तत्कर्मवन्नामसहितं चक्रं पूजयेदित्यर्थः। **रोचनालिखितमित्यादि**। अत्रापि वशीकरणकर्मवत् सर्वं नामादि। क्षिप्तमित्यादेरुच्चाटनकर्मवत् सर्वम्। (चक्र?तक्र)मध्यगतमित्यादेर्विद्वेषणकर्मवन्नामादिलेखनम्। ज्वलज्ज्वलनमित्यादेर्मारणकर्मवत् सर्वं लोहपट्टे समुत्कीर्य त्रिकटुकचित्रमूलविषादिपङ्केनालिप्याधोमुखमग्नौ निक्षिपेदिति यावत्।।६७-७४।।

* सेतुबन्धः *

अथ सार्धैः सप्तभिः श्लोकैस्त्रयोदश प्रयोगानाह। अत्र पीतपुष्पैरेवार्चनम्, दिगन्तरालेषु

विदिक्षु, 'अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणेषु पूजितम्' इति अर्णववाक्याल्लोके क्लृप्तत्वाच्चानेनैव क्रमेण स्तम्भनादिफलानि योज्यानि। तेन पूर्वोत्तरापरदक्षिणक्रमस्य पूर्वं क्लृप्तत्वादीशानाद्याग्नेयान्त: क्रम इति कल्पना परास्ता। ईशानादिवायव्यान्त: क्रम इति (अर्थ)रत्नावलीकारस्य तु महान् प्रमाद:, निर्युक्तिकत्वात्। तद्वदित्यनेन स्तम्भनादिकर्मानुगुणं पीतद्रव्यादिकं लेखने करणमुक्तम्। तदनिर्णये प्रकृतित: प्राप्तं रोचनादिकमेव ज्ञेयम्।।६७-७४।।

अथवा देवदेवेशि यदेकान्ते चतुष्पथम्।
तत्समीपे लिखेच्चक्रं सिन्दूरेण महाप्रभम्।।७५।।
सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि।
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत्।।७६।।
पूजयेद् रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण य:।
तत्क्षणात्स महेशानि साधक: खेचरो भवेत्।।७७।।

अथवा हे देवदेवेशि! एकान्त में चौराहे पर सिन्दूर से अत्युज्ज्वल चक्र बनाये। हे महेश्वरि! तदनन्तर उसमें चतुरस्र से आरम्भ करके त्रिकोण मध्य पर्यन्त अकारादिक्षकारान्त मातृकावर्ण लिखे तथा कुलाचार क्रम से रात्रिकाल में पूजन करे। जो साधक ऐसा करेगा, वह तत्क्षण खेचर-सिद्धि प्राप्त करेगा।।७५-७७।।

एकान्ते—भास्करराय के अनुसार जो स्थान पशु श्रेणी के मनुष्य से वर्जित हो। **चतुष्पथम्**—भास्करराय के मत से चौराहे के निकट। **सर्ववाह्यत:**—इस पद की व्याख्या में शिवानन्द का कथन है कि इस महाचक्र में अणिमादि सिद्धि से प्रारम्भ करके महात्रिपुरसुन्दरी-पर्यन्त देवताओं का जो-जो पूजा-स्थान है, वहाँ अकारादि-क्षकारान्त मातृका वर्ण विन्यस्त करे तथा त्रिकोण के 'अ-क-थ' आदि रेखात्रयरूप से एवं त्रिकोणमध्य में 'ह क्ष' का विन्यास कुलासनरूपेण करके पूजा करे। **रात्रिसमये**—शिवानन्द की व्याख्या है—अर्द्धरात्रि। **कुलाचारक्रमेण**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—कुलाचार की रीति से पञ्चमकार के साथ।।७५-७७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एकान्ते विजने। तत्समीप इत्यत्र तच्छब्दश्चतुष्पथं लक्षयति। महाप्रभम् अत्युज्ज्वलम्। सर्वबाह्यत इत्यस्यायमर्थ:—पूज्येऽस्मिन् महति चक्रे यद्यदणिमादिसिद्ध्यादीनां महात्रिपुरसुन्दर्यन्तानां देवतानां पूजास्थानमस्ति, तत्र तत्राकारादिक्षकारान्तां मातृकामकथादित्रिरेखात्मना मध्यस्थहक्षेण च त्रिकोणरूपकुलासनात्मना विन्यस्य पूजयेदिति। ननु देवता: कुत्र निवसन्ति? मन्त्रेष्विति ब्रूम:। यच्छ्रुति:—'क्व स्थ: क्व व: सद्यो हव्यं वक्ष्याम इति छन्द:स्वित्यब्रुवन्। गायत्र्यां त्रिष्टुभि जगत्यामिति। तस्माच्छन्दस्सु सद्भ्य आदित्येभ्य आङ्गीरसी: प्रजा हव्यं वहन्ति' (तै० ब्रा० २.२.३.७) इति। आह च—'मणिवन्मन्त्रमालम्ब्य प्रभवन्मन्त्रदेवता:' इति।

रात्रिसमये अर्धयामिन्याम्। यदागमः––'पूजोदितार्धयामिन्यां पितृवेश्मादिशायिनाम्' इति। कुलाचारक्रमेण महासमयमहानुष्ठानमार्गेण।।७५-७७।।

* अर्थरत्नावली *

अथवेत्यारभ्य खेचरो भवेदित्यन्तस्यायमर्थः—चक्रचतुरस्रमारभ्य त्रिकोणमध्यपर्यन्तं प्रतिदैवतमासनस्थानेष्वकारादिक्षकारान्तं वागुराकारं यथा भवति तथा लिखेदित्येतत्। अयमर्थः—प्रतिदैवतमासनं कुलासनवाग्भवं कृत्वेति मन्तव्यम्। तदुक्तं श्रीसिद्धनाथपादैः—

बीजं गुह्ये न्यसेदाद्यमकथादित्रिपङ्क्तिगम्।
शेषं बीजद्वयं कन्दमित्येतत्कौलमासनम्।। इति।

अत्र बीजद्वयमिति क्षकारहकाराविति भावः।।७५-७७।।

* सेतुबन्धः *

एकान्ते पशुजनवर्जिते चतुष्पथसमीपदेशे सिन्दूररजसा चक्रं विलिख्य तत्र मातृका अपि बाह्यमारभ्य मध्यपर्यन्तं लिखित्वा कुलाचाररीत्या मपञ्चकसाहित्येन रात्रौ पूजनेन खेचरत्वसिद्धिर्भवति। मातृकालेखस्तु—अणिमायाः स्थाने स्वाभिमुखाग्रं कोणं कृत्वेशानाग्नेयाभिमुख्येन द्वे वामदक्षिणरेखे विभाव्य मध्यबिन्दोरुपरि यथा तिर्यग्रेखा पतति तथा पूर्वरेखां विभाव्य तासां स्थानेऽकथादिषोडशषोडश मातृकां विलिख्य कोणत्रये हळ्क्षाँल्लिखेदिति केचित्। अणिमाद्यखिलदेवतानामासनस्थाने प्रत्येकं वागुराकारेण सर्वमातृकाः पुनः पुनर्लेख्या इत्यन्ये। वस्तुतस्तु—'चतुरस्रं मातृकार्णैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे। 'त्रिवृत्तं मातृकान्वितम्'। इत्यादिज्ञानार्णवादिज्ञापकात् केरलसम्प्रदायसिद्धः श्रीचक्रे मातृकालेखप्रकारोऽस्ति, तस्यायं विधिरिति युक्तम्। स च प्रकारः सुन्दरीमहोदये द्रष्टव्यः।।७५-७७।।

पूजयित्वा महेशानि तद्वदेकतरौ गिरौ।
अजरामरतां सत्यं लभते नात्र संशयः।।७८।।

हे महेशानि! इस प्रकार से एक वृक्ष वाले पर्वत पर पूजा करने से साधक निश्चित रूप से अजरामर हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है कि एक वृक्ष पर्वत का तात्पर्य है कि जिस पर्वत पर एक ही वृक्ष हो। सब वृक्षों को काटकर पर्वत पर एक वृक्ष छोड़ देना 'एकवृक्ष पर्वत' नहीं होगा)।।७८।।

तद्वत्—शिवानन्द का कथन है कि खेचरत्व-प्राप्ति हेतु जो पूजा कही गयी है, तद्रूप पूजन करना।।७८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

तद्वत् खेचरताप्राप्त्याराधनक्रमवत्। एकतरः असहायः। गिरौ पर्वते।।७८।।

* अर्थरत्नावली *

पूजयित्वेत्यादि स्पष्टार्थः। प्रयोगस्त्वयमेव। स्थाने विशेष इति विशेषः।।७८।।

*** सेतुबन्धः ***

एक एव तरुर्यस्मिंस्तादृशे पर्वते प्रागुक्तरीत्यैव पूजनादजरामरत्वं भवति। एकतर इति पाठं स्वीकृत्यासहाय इति व्याख्यानम् अर्णवादितन्त्रान्तरविरुद्धम्।।७८।।

समस्तसिद्धीनामेक एव प्रयोगः

महाभूतदिने वाऽपि श्मशाने यदि पूजयेत्।
पूर्ववन्निशि देवेशि साधकः स्थिरमानसः ।।७९।।
पादुकाखड्गवेतालसिद्धद्रव्यमनःशिलाः ।
अञ्जनं विवरं चेटी यक्षी दूरगतिस्तथा ।।८०।।
यत्किञ्चित्सिद्धिसन्तानं विद्यते भुवनत्रये ।
तत्सर्वमेव सहसा साधयेत्साधकोत्तमः ।।८१।।

इति श्रीनित्याषोडशिकार्णवस्य द्वितीयः पटलः

हे देवेशि! स्थिरमानस साधक यदि चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में पूर्वोक्त प्रकार से पूज़न करे तब उस साधकोत्तम को पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि, वेतालसिद्धि, सिद्धिसिद्धि, द्रव्यसिद्धि, मनःसिद्धि, शिलासिद्धि, अञ्जनसिद्धि, विवरसिद्धि, चेटीसिद्धि, यक्षीसिद्धि, दूरगतसिद्धि तथा अन्य सिद्धि के साथ-साथ त्रिभुवन में विद्यमान सब कुछ सहसा साधित हो जाता है।।७९-८२।।

महाभूतदिने—शिवानन्द के अनुसार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी। विद्यानन्द इसे मंगलवार को पड़ने वाली कृष्णपक्ष की चतुर्दशी कहते हैं। **स्थिरमानसः**—भास्करराय के अनुसार निर्भय होकर। **पादुकासिद्धिः**—पादुका पहनकर साधक जल-अग्नि आदि के ऊपर अनायास चल सकेगा। **खड्गसिद्धिः**—भास्करराय के मत से उद्दिष्ट व्यक्ति पर आघात करके वापस आ जाता है। **वेतालसिद्धिः**—भास्करराय अर्थ करते हैं—वेताल को वशीभूत करना। **सिद्धसिद्धिः**—भास्करराय के मत से अर्थ है, सिद्धों से भेंट, उनका साथ। **द्रव्यसिद्धिः**—भास्करराय के मत से इच्छामात्र से बहुमूल्य द्रव्य-निर्माण। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं बिना प्रयत्न अभीष्ट-सम्पन्नता पाना। **मनःसिद्धिः**—भास्कर राय के अनुसार मन का निग्रह है। **शिलासिद्धिः**—भास्करराय के मत से चिन्तामणि-प्राप्ति। विद्यानन्द इसे पारस पत्थर-प्राप्ति कहते हैं। **अञ्जनसिद्धिः**—भास्करराय इसे दूरदृष्टि-सिद्धि कहते हैं। **विषयसिद्धिः**—भास्करराय अर्थ करते हैं—पातल गर्त्त इत्यादि में प्रवेश की सिद्धि। **चेटीसिद्धिः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—दासीसिद्धि। भास्करराय अर्थ करते हैं—देवताविशेष की सिद्धि, उन्हें वश में करना। **यक्षीसिद्धिः**—शिवानन्द कहते हैं— भोगयोग्या विशिष्टालंकारभूषिता दिव्य स्त्री-सिद्धि अर्थात् उसे अपना बनाना। भास्करराय यक्षी को देवताविशेष बतलाते हैं। **दूरगतिसिद्धिः**—भास्करराय अर्थ करते हैं—मुहूर्तमात्र में दूरगमन। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—दूरपथ-गमन। इस सम्बन्ध

में वे कहते हैं— 'चित् सारपरमार्थ, देवता सर्वगता'। साधक यदि देवतात्म हो जाते हैं, तब वे सर्वगत हो जाते हैं। जहाँ जाने का संकल्प हो जाय, वे तत्क्षण वहीं हो जाते हैं। **यत् किञ्चित् सिद्धिसन्तानं**—भास्करराय अर्थ करते हैं—आणिमादिरूप अनन्त प्रकार भी सिद्धि। **सहसा**—शिवानन्द 'सहसा' शब्द की व्याख्या में कहते हैं कि इस मन्त्र की सम्यक् सिद्धि होने पर कुछ भी असाध्य नहीं रहता। साधक मन्त्रसिद्ध हो जो संकल्प करता है, वह साथ-साथ सम्पन्न हो जाता है।

श्री नित्याषोडशिकार्णव का द्वितीय पटल समाप्त

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

महाभूतदिने कृष्णचतुर्दश्याम्। स्थिरमानसः निर्विचिकित्सः। पादुका पादुकासिद्धिः, सा च वह्निसलिलादिषु यात्रा। इदं तु लेपादिना विना मन्त्रसिद्ध्यैवेत्यर्थः। खड्गः खड्गसिद्धिः। सा च स्वयंप्रहर्तृता। वेतालो वेतालसिद्धिः। सा च पिशाचादिपरिकरवत्ता। सिद्धद्रव्यम् अप्रयत्नसम्पन्नपायसापूपादिसिद्धिः। महोदयः अणिमादिविभूतिविशेषः। अञ्जनम् अञ्जनसिद्धिः। विवरं बिलद्वारलोकान्तरसिद्धिः। चेटी दासीसिद्धिः। यक्षी भोगयोग्यविशिष्टालङ्कारभूषितदिव्यपुरन्ध्रीसिद्धिः। दूरगतिः दूराध्वगमनम्। अयमर्थः—चित्सारपरमार्थाया देवतायाः सर्वगतत्वात् साधकोत्तमस्य देवतात्मत्वेन विश्रान्तेर्यस्मिन् देशे गमनसङ्कल्पः समुन्मिषितस्तस्य दे(व?श)स्य सदैव पुरःस्थितत्वादुचितैवोक्तिरिति।

मायूरपित्तकृकवाकुवसेन्द्रकोपकारञ्जबीजतुषगुग्गुलिकां कटिस्थाम्।
हेमावृतां वहति यः स तु योजनानां सद्यः शतं व्रजति पक्षिपतिर्दिवीव।।

इत्यभियुक्तोक्त्या गुलिकादिसिद्ध्या दूराध्वगमनम्, इह तु विद्यासिद्ध्या। सिद्धिसन्तानं सिद्धिनिचयः। सहसा 'सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन' इति स्थित्या यद्यन्मनसा सङ्कल्पयेत् तत्तत्सर्वमभिसन्ध्यव्यवधानेन सम्पादयेदिति शिवम्।।७७-७९।।

एवमृजुविमर्शिन्यां नित्याषोडशिकार्णवे।
शिवानन्दपरामृष्टो द्वितीयः पटलो गतः।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

महाभूतदिनमिति कृष्णाङ्गारचतुर्दशी। सिद्धद्रव्यं रसायनादि। मनश्शिला स्पर्शशिला। चेटी दासीजनः।।७७-७९।।

इति श्रीविद्यानन्दविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थ
रत्नावल्यां प्रयोगविधिर्द्वितीयः पटलः

❋ सेतुबन्धः ❋

अथ समस्तसिद्धीनां साधकमेकमेव प्रयोगमाह—महाभूतदिनं चतुर्दशी। साऽपि कृष्णैवेति केचित्। साऽपि भौमयुक्तैवेत्यपरे। स्थिरमानसो निर्भयः। पादुकारूढस्य जलोपर्यपि

गमनम्। खड्गे स्वयमेव प्रहृत्य पुनः स्वायत्तता। वेतालवशीकारः। सिद्धानां सहवासः। इच्छामात्रेण द्रव्याणामनर्घ्याणां निर्माणम्। मनसो निग्रहः। शिला चिन्तामणिलाभः। अञ्जनं व्यवहितदर्शनदम्। विवरं पातालबिलादिप्रवेशः। चेटीयक्ष्योर्देवताविशेषयोः स्वाधीनीकरणम्। दूरदेशे क्षणेन गमनम्। अन्यदपि यत्सिद्धिसन्तानमणिमादिरूपमनन्तविधं भुवनत्रयवर्ति तत्सर्वमनेनैव प्रयोगेण साधयेत्। अत एव स साधकेषूत्तमः। संहितायां त्वस्मिन्नेव प्रयोगे मासषट्कपर्यन्तमावृत्तिरुक्ता। तन्त्रान्तरेष्वेतदुत्तरं बहुजन्मकृतपापक्षयफलकानि प्रायश्चित्तात्मकानि पूजनान्युक्तानि तान्यप्यनेनैव प्रयोगेण साधनीयानीत्याशयेन यत्किञ्चिदित्युक्तम्। अनुक्तं सर्वमित्यर्थः। यत्किञ्चित्प्राचीनमग्नीषोमीयादित्यत्र यत्किञ्चित्पदस्य तथार्थवर्णनदर्शनादिति सर्वं शिवम्।।७९-८१।।

इति श्रीभास्करोन्नीते नित्याषोडशिकाम्बुधेः ।
व्याख्याने सेतुबन्धाख्ये विश्रामोऽभूद्द्वितीयकः ॥२॥

●

अथ तृतीयो विश्रामः

मुद्रापदनिर्वचनम्

श्रीदेव्युवाच

भगवंस्त्रिपुरामुद्राः सूचिता न प्रकाशिताः ।
कथं विरचनं तासां क्रियते वद शङ्कर ।।१।।

श्री देवी कहती हैं—भगवन्! त्रिपुरा मुद्रा आपके द्वारा सूचित हैं; परन्तु प्रकाशित नहीं है। हे शंकर! इनकी कैसे रचना भी जाती है, कहें।।१।।

त्रिपुरा मुद्रा—शिवानन्द के अनुसार त्रिपुरा-सम्बन्धिनी मुद्रा। उनके मत से इस मुद्रा का अर्थ है—अनेक शक्ति। **सूचिता**—यह प्रथम पटल में सूचित है। देखें—१.१५९, १.९८-९९। यह मुद्रा ग्रहादि के प्रकोप से मुक्त करती है, पाशसमूह को छिन्न कर देती है, ऐसी शक्ति है—मुद्रा।।१।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

एवमनल्पप्रयोगशरीरं द्वितीयं पटलं व्याख्यायेदानीमष्टाविंशतिसूत्रसन्दर्भस्य देवतासान्निध्यकरमुद्राविन्यासप्रतिपादकस्य तृतीयस्य पटलस्य व्याख्या लिख्यते—**श्रीदेव्युवाचेत्यादि।** त्रिपुरामुद्राः त्रिपुराम्बासम्बन्धिन्यो मुद्राः। मुद्रानाम काश्चन शक्तयः। उक्तं च—

मोचयन्ति ग्रहादिभ्यः पाशौघं द्रावयन्ति च।
मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः शक्तयो मताः।। इति।

अभियुक्तोक्तिरपि—

द्रावणात् पाशजालस्य तत्परस्य च मोचनात्।
मुद्रापीठमिति प्रोक्तं कामरूपं नमाम्यहम्।। इति। (सं. प.)

सूचिताः 'संक्षोभ' (१.१८४) इत्यनेन। विरचनं बन्धः। तासां मुद्राणाम्।।१।।

*** अर्थरत्नावली ***

अथ तृतीये पटले सर्वानुवादि टिप्पणं लिख्यते। श्रीदेव्युवाचेत्यादि भवेदित्यन्तस्य स्पष्टोऽर्थः।।१।।

*** सेतुबन्धः ***

एवमेकाशीतिश्लोकात्मकेन द्वितीयपटलेन चक्रसाधनं तत्साध्यांस्त्रिचत्वारिंशत्प्रयोगांश्च निर्वर्ण्य मुद्राणामपि फलस्य चक्रसाधनोत्तरमेव सिद्धिं दिध्वनयिषुरिहैव तासां विरचनप्रकारं दिदर्शयिषुः परमशिवो विमर्शांशेन प्रश्नमवतारयति। सूचिताः प्रथमपटले पूजायां कर्तव्यत्वेन विहिताः।।१।।

श्रीश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मुद्राः सर्वार्थसिद्धिदाः ।
याभिर्विरचिताभिस्तु सम्मुखा त्रिपुरा भवेत् ।।२।।

सर्वार्थसिद्धिप्रदा सब मुद्रा कहता हूँ, सुनो। साधक द्वारा इन मुद्राओं की रचना होने से त्रिपुरा अपनी सम्मुखता प्रदान करती हैं।।२।।

सम्मुखा त्रिपुरा भवेत्—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—मुद्रा की रचना होने पर त्रिपुरा साधक को प्रसन्न दृष्टि से देखती हैं।।२।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

याभिः मुद्राभिः। सम्मुखा त्रिपुरा भवेदित्यस्यायमर्थः—मुद्राविरचने कृते साधकं प्रसन्नदृशा पश्यतीति।।२।।

❊ सेतुबन्धः ❊

संमुखेति स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यनेन पक्षे टाप्।।२।।

त्रिखण्डा मुद्रा

परिवर्त्य करौ स्पृष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत्समौ ।
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती ।।३।।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि ।
त्रिखण्डेयं महामुद्रा त्रिपुराह्वानकर्मणि ।।४।।

हस्तद्वय परस्पर प्रवेशिताङ्गुलिक करके अंगुष्ठद्वय को परस्पराभिमुखी करके सीधा करे। तर्जनीद्वय को कुटिलाकार करे। दोनों अनामिका को उनके अन्तर्गत करे। हे महेश्वरि! कनिष्ठाद्वय को अपने स्थान पर रखे अर्थात् पहले जैसा था, वैसा ही रक्खे। इस प्रकार से रचित होगी—महामुद्रा त्रिखण्डा। त्रिपुरा के आवाहन कर्म में इसका विनियोग होता है।।३-४।।

परिवर्त्त्य करौ—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि हस्तद्वय को परस्पर क्षिप्ताङ्गुलिक करे। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—हस्तद्वय को परस्परान्तःप्रवेशिताङ्गुलिक करे। **स्पृष्टौ**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—'संयुक्त'। **अङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—उभय हस्त की वृद्धाङ्गुली परस्पर स्पृष्ट होकर दण्डाकार हो। **अनामान्तर्गते**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं कि यह पद 'तर्जन्यौ' पद का विशेषण है। अर्थ है—अनामाद्वय के अन्तर्गत। विद्यानन्द के मत से आलोच्य पद का अर्थ है—दोनों हाथ की अनामा को अधोनिहित करना। **कुटिलाकृती**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—आकुञ्चिताग्र। **कनिष्ठिके नियुञ्जीत**—भास्करराय के

मत से कनिष्ठाद्वय को परस्पर युक्त करना होगा। **निजस्थाने**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं कि पूर्व में जैसे अवस्थित थी, उस अवस्था में। भास्करराय का अन्य मत है। वे कहते हैं कि निज स्थान पद की लक्षणा द्वारा मध्य स्थान मध्यमाङ्गुलि के सम्बन्ध में कहा गया है।

भास्करराय आलोच्य श्लोक का यह अर्थ इस प्रकार करते हैं—परस्परान्तः प्रवेशिताङ्गुलिक हस्तद्वय को परस्परतः अभिमुख करके दक्षिण तर्जनी द्वारा वाम अनामिका के अग्र एवं वाम तर्जनी द्वारा दक्षिण अनामिका के अग्र को ग्रहण करना होगा। तदनन्तर कनिष्ठाद्वय, मध्यमाद्वय तथा अङ्गुष्ठद्वय को परस्पर अभिमुख करके सीधा करना होगा। इस प्रकार युगलात्मक खण्डत्रययुक्ता त्रिखण्डा मुद्रा त्रिपुरा आवाहन में विनियुक्ता होती है।।३-४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

परिवर्त्येतिद्वयं त्रिखण्डामुद्राप्रतिपादनपरम्। परिवर्त्य परस्परं क्षिप्ताङ्गुली कृत्वा। स्पृष्टौ इतराङ्गुलिभ्योऽविविक्तौ। समौ अन्योन्यम्। अनामान्तर्गते अनामाभ्यामन्तर्गते। कुटिलाकृती कुटिलाकारे। त्रिपुराह्वानकर्मणि, प्रयोक्तव्येति शेषः। अयमर्थः—प्रथममात्मीयौ हस्तौ परिवर्त्याङ्गुष्ठौ परस्परश्लिष्टौ कृत्वाऽनन्तरं समोच्छ्रितमध्यमाङ्गुलिद्वयोभयपार्श्वे व्यत्यासेनान्तर्गतानामिके तर्जन्यौ कुटिलाकारे विधाय पुनः कनिष्ठिके समे निजस्थाने नियुञ्ज्यादितीयमावाहनमुद्रा त्रिखण्डाख्या।।३-४।।

* अर्थरत्नावली *

परिवर्त्य कराविति। हस्तावन्योन्यं यथा स्पृष्टाङ्गुली भवतस्तथा कृत्वेत्यर्थः। **अङ्गुष्ठौ कारयेत् समाविति**। उभयकरज्येष्ठाङ्गुलिद्वयं समं कुर्यादिति। परस्परस्पृष्टौ दण्डाकारौ यथा भवतस्तथा कर्तव्यमिति यावत्। **अनामान्तर्गते कृत्वेति**। उभयकरानामाङ्गुलिद्वयमधः कुर्यादिति यावत्। **कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरीति**। कनिष्ठिकाङ्गुली पूर्वं यथा स्थिते तथैव कुर्यात्, न त्वन्तर्गते इति यावत्। **तर्जन्यौ कुटिलाकृती इति**। तर्जनीद्वयं कुटिलाकृती कुर्यात्। अप्रतिषिद्धमनुमतमिति न्यायेन मध्यमाङ्गुलिद्वयं यथास्थितमेव कुर्यात्, न त्वन्तर्गतमिति। **त्रिखण्डेयं महामुद्रा त्रिपुराह्वानकर्मणीति**। इयं रचिता मुद्रा त्रिखण्डासंज्ञा त्रिपुराह्वानकर्मणि नियुक्तेत्यर्थः।।३-४।।

* सेतुबन्धः *

आवाहनस्य पूजायां प्रथममुपस्थितत्वेन तदुपयोगिनीं वक्ष्यमाणनवमुद्रासमष्टिरूपां त्रिखण्डामुद्रां प्रथममाह—परस्परान्तःप्रवेशिताङ्गुलिकौ हस्तौ मिथः सम्मुखौ कृत्वा दक्षतर्जन्या वामानामिकाग्रं वामतर्जन्या दक्षानामिकाग्रं च गृह्णीयात्। ततः कनिष्ठिकायुगलं मध्यमायुगलमङ्गुष्ठयुगलं च परस्पराभिमुख्येन सरलं कुर्यात्। सेयं युगलात्मकखण्डत्रयेण युक्ता

त्रिखण्डा त्रिपुराया आह्वाने विनियुक्ता। अत्र परस्परान्तरङ्गुलीनां प्रवेश एव परिवर्तनपदेनोक्तः। स्पृष्टौ संयुक्तावङ्गुष्ठौ समौ सरलप्रसरौ। अनामे अन्तर्गते ययोस्ते तर्जन्यौ कुटिलाकृती आकुञ्चिताग्रे कृत्वा कनिष्ठिके द्वे नियुञ्जीत परस्परं योजयेत्। अत्र निजस्थानपदं लक्षणया मध्यस्थानस्थितमध्यमाङ्गुलिपरम्। मध्यमे अपि नियुञ्जीतेत्यर्थः। त्रिखण्डापदस्य यौगिकतया वा तल्लाभः। अत एवोक्तं ज्ञानार्णवे—

पाणिद्वये महेशानि परिवर्तनयोगतः।
योजयित्वा तर्जनीभ्यामनामे धारयेत्प्रिये।।
मध्यमे योजयेन्मध्ये कनिष्ठे तदधस्ततः।
अङ्गुष्ठावपि संयोज्य त्रिधा युग्मक्रमेण तु।।
त्रिखण्डा नाम मुद्रेयं त्रिपुराह्वानकर्मणि। इति।

न च प्रकृततन्त्ररीत्या मध्यमायोगस्य स्पष्टमकथनाद्द्विखण्डाया एव वामादिकलात्रितयस्वरूपताया वक्ष्यमाणत्वात्त्रिखण्डेति नामास्तु। तन्त्रभेदेन मन्त्रयन्त्रमुद्रादेर्भेदस्य बहुशो दर्शनादिति वाच्यम्। अविरोधे सम्भवति विरोधविकल्पयोरन्याय्यत्वात्। अत एवानामन्तर्गते इत्यत्र बहुव्रीहिः। अनामाभ्यामन्तर्गते इत्यपि केचित्।।३-४।।

सर्वसंक्षोभकारिणी मुद्रा

मध्यमे मध्यमे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते।
तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके।।५।।
एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी।

मध्यमा अङ्गुलिद्वय को मध्यग करके कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधित अनामिकाद्वय को मध्यमाद्वय के ऊपर रखना होगा और तर्जनीद्वय को दण्डाकार में प्रसारित करना होगा। यह होती है—सर्वसंक्षोभकारिणी मुद्रा।।५।।

मध्यमे—मध्यमा अंगुलिद्वय। **मध्यगे**—शिवानन्द के अनुसार मध्यस्थानगता। **दण्डवत् कृत्वा**—शिवानन्द के अनुसार मध्यमा अंगुलिद्वयोपरि। **प्रथमा**—भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ है—मुद्रा-प्रदर्शन के समय इस सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा से आरम्भ करे। त्रिखण्डा मुद्रा से मुद्रा प्रदर्शन कदापि प्रारम्भ न करे। इस मुद्रारचना के प्रकार के सम्बन्ध में मतभेद है। इस हेतु इस श्लोक की भास्कररायकृत व्याख्या द्रष्टव्य है।।५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मध्यमे मध्यगे कृत्वेति। मध्यमे मध्यमाङ्गुली। मध्यगे मध्यस्थानं गते, यथास्थानस्थिते कृत्वेत्यर्थः। कनिष्ठाङ्गुष्ठरोपिते। इदमनामिके इत्यस्य विशेषणम्। कनिष्ठिकाङ्गुष्ठचतुष्टयरोपिते इत्यर्थः। दण्डवत्कृत्वा दण्डाकारेणाभिप्रसार्य। मध्यमोपरि मध्यमयोरुपरि। प्रथमा दर्शनीयासु मुद्रासु मध्ये। त्रिखण्डामुद्रा पूर्वोक्ता त्रिपुराह्वानकर्मणि विनियुक्ता। अयमर्थः—प्रथममुत्तानौ हस्तौ

विधाय तर्जन्यौ दण्डवदितराङ्गुलिभ्यो विश्लिष्टं प्रसार्य कनिष्ठाङ्गुष्ठरोपिते अनामिके परस्पराश्लिष्टे यथास्थानस्थितमध्यमोपरि कुर्यादितीयं प्रथमा संक्षोभिणी मुद्रा।।५।।

⁕ अर्थरत्नावली ⁕

मध्यमे मध्यगे कृत्वेत्यारभ्य सर्वसंक्षोभकारिणीत्यन्तस्य व्याख्या लिख्यते—**मध्यमे मध्यगे कृत्वेति।** मध्यमाङ्गुलिद्वयं मध्यगं कृत्वा, मध्यस्थितं करोतीति यावत्। **मध्यमोपर्यनामिके इति।** कनिष्ठाङ्गुष्ठरोपिते अनामिके मध्यमाङ्गुल्योरुपरि कारयेत्। **तर्जन्यौ दण्डवत् कुर्यात्। एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणीति।** रचितैषा मुद्राणां प्रथमा सर्वसंक्षोभकारिणीति संज्ञा।।५।।

⁕ सेतुबन्धः ⁕

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोरग्रपर्वणी परस्पराभिमुख्येन सम्मेल्य तदुभयपर्वमध्यभागे मध्यमाग्रपर्वापि योजयेत्। कनिष्ठामध्यमाङ्गुष्ठानामग्रपर्वत्रयं परस्परसंलग्नं कुर्यादिति यावत्। तादृशं हस्तद्वयं संलग्नं कृत्वा दक्षानामिकां वाममध्यमामध्यपर्वोपरि वामानामिकां दक्षमध्यमामध्यपर्वोपरि प्रवेशयेत्। तर्जन्यौ तु सरले एव शून्य(भूम्य)भिमुखाग्रे कृत्वा संस्थापयेत्। इदं च मध्यमोपरीतिपदस्वारस्याल्लब्धम्। सेयं मुद्रा सर्वसंक्षोभिण्याख्या भवति। एषा तु प्रथमेत्यनेन यत्र मुद्राणां प्रदर्शनं विधीयते तत्रेत आरभ्यैव प्रदर्शयेन्न त्रिखण्डामारभ्येति ध्यन्यते। इदं च मुद्राविरचनमक्षरस्वारस्यलब्धमुक्तम्। ज्ञानार्णवोऽप्यस्मिन्नेवार्थेऽनुकूलः—

विमुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमे मध्यमे कुरु।
अङ्गुष्ठाभ्यां कनिष्ठाभ्यां चाऽऽपीड्य सरले ततः।।
तर्जन्यौ दण्डवत्कुर्यान्मध्यमस्थे ह्यनामिके।
सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा त्रैलोक्यक्षोभकारिणी।। इति।

तन्त्रराजे त्वन्यथोक्तम्—

कनिष्ठानामिकामध्या नखैरन्योन्यसङ्गताः।
कृत्वाऽङ्गुष्ठौ कनिष्ठास्थावृजू कुर्याच्च तर्जनी।।
सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा त्रैलोक्यक्षोभकारिणी। इति।

प्राञ्चस्तु—मध्यमे मध्यगे एव न तु स्थानान्तरगते कुर्यात्। निजस्थान एव ते वसत इति यावत्। कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते इत्यनामिकाविशेषणम्। तर्जन्यौ मध्यमोपरि दण्डवत्कुर्यादिति व्याचक्षते। एतत्पक्षे दूरान्वयः कतिपयपदवैयर्थ्यं तन्त्रान्तरविसंवादश्चेति स्पष्टम्।।५।।

सर्वविद्राविणी मुद्रा

एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदि ।।६।।
क्रियते चेन्महेशानि सर्वविद्राविणी तदा।

हे महेशानि! इस मुद्रा में ही मध्यमा अंगुलिद्वय को यदि सीधा करे तब सर्वविद्राविणी मुद्रा हो जाती है।।६।।

एतस्या एव मुद्रायाः—इस सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा से ही। **मध्यये सरले यदि**—भास्करराय अर्थ करते हैं कि यदि सर्वसंक्षोभिणी के समान तर्जनीद्वय को सीधा करे तब।।६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतस्या एवेति। एतस्याः संक्षोभिण्याः। मध्यमे मध्यमाङ्गुली। सरले स्पष्टे, त्यक्तकुसृति-कौटिल्ये इत्यर्थः। अयं प्रकारः—संक्षोभिण्या मुद्रायाः स्थिताया मध्यमाङ्गुल्यौ यदि सरले स्यातां पूर्वस्यां मुद्रायां तर्जन्याविव यदा स्थिते इयं मुद्रा द्वितीया सर्वविद्राविणीति।।६।।

* अर्थरत्नावली *

एतस्या इत्यारभ्य सर्वविद्राविणीत्यन्तस्यायमर्थः—एतस्याः सर्वसंक्षोभिणीमुद्राया मध्यमाङ्गुली सरले कुर्याद् यदा तदा सर्वविद्राविण्याख्या द्वितीया सा मुद्रा भवति।।६।।

* सेतुबन्धः *

एतस्याः सर्वसंक्षोभिण्या मध्यमे अपि तर्जनीवत्सरले भवतश्चेदित्यर्थः। न तु मध्यमे एव सरले इति।

मध्यमे तर्जनीयुक्ते सरले चेतरा(त्तदा) भवेत्।
सर्वविद्राविणी मुद्रा द्रावयेत्तु चराचरम्।।

इति तन्त्रान्तरात्।।६।।

आकर्षिणी मुद्रा

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।।७।।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षकारिणी ।।८।।

मध्यमा तथा तर्जनी के अग्र भाग को अंकुशा कृति करना होगा। उसके साथ सर्वविद्राविणी मुद्रा के ही समान मध्यस्थिता कनिष्ठा तथा अनामिका का संयोग करे। हे परमेश्वरि! यही है—त्रैलोक्याकर्षणकारिणी आकर्षणी मुद्रा।।७-८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मध्यमातर्जनीभ्यामिति। मध्यगे मध्यमाङ्गुलिद्वयगते। कर्तव्ये इति शेषः। अङ्कुशाकाररूपाभ्याम् अङ्कुशाकाराकृतिभ्याम्। अयमर्थः—अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमातर्जनीभ्यां सह समे कनिष्ठाङ्गुष्ठरोपिते अनामिके मध्यगे कर्तव्ये। इतीयं तृतीया आकर्षिणी मुद्रा।।७-८।।

* अर्थरत्नावली *

मध्यमातर्जनीभ्यामित्यारभ्य इयमाकर्षिणी मुद्रेत्यन्तस्यायमर्थः—मध्यमातर्जनीभ्यामङ्कुशाकारं कृताभ्यां मध्यगे मध्यस्थिते कनिष्ठानामिके कनिष्ठिके चानामिके च कनिष्ठानामिके ते समे कुर्यात्। कोऽर्थः? 'एतस्या एव मुद्रायाः' (३.६) इत्येतदत्रापि सम्बद्ध्यते। अतः

कनिष्ठानामिकाङ्गुलिचतुष्टयं पूर्वमुद्राया मध्यगं मध्यमातर्जनीभ्यां समं कुर्यात्, एकीकुर्यादित्यर्थः। एषा आकर्षणी मुद्रा तृतीयेति।।७-८।।

* सेतुबन्धः *

सर्वविद्राविण्यामेव तर्जन्योर्मध्यमयोश्चाऽऽकुञ्चिताग्रत्वे सर्वाकर्षिणी मुद्रा भवति। तदुक्तम्—

मध्यमातर्जनीयुग्मे वक्रे कुर्यात्सुलोचने।
एतस्या एव मुद्रायास्तदाऽऽकर्षणकारिणी।। इति।

अत्र मध्यमातर्जनीभ्यामिति तृतीयेत्थम्भूतलक्षणे। वक्राभ्यां ताभ्यामुपलक्षिता मुद्रेत्यन्वयः। कनिष्ठानामिके तु समे। पूर्वमुद्रास्थाभ्यां स्वाभ्यामेव तुल्ये। मध्यम इति तु परमेश्वर्या विशेषणम्। एतासां मुद्राणां मध्ये वासनारूपेण वामादिशक्तिरूपतयाऽवस्थित इत्यर्थः। अन्ये तु एतस्या एव मुद्राया इत्यनुवर्त्य कनिष्ठानामिके मुद्रामध्यगे मध्यमातर्जनीभ्यां समे च कार्ये इति योजयन्ति। अत्र साम्यं प्रमेयत्वादिनैव निर्वाह्यं वक्रत्वेन साम्ये तु कनिष्ठानामिके अप्याकुञ्चयेदिति विध्यर्थः स्यात्। तथा च तन्त्रान्तरविरोधोऽनुवृत्तिविरोधवैयर्थ्ये च।।७-८।।

सर्वविशकरी मुद्रा

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावङ्कुशाकृती।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते।।९।।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके अपि।
संयोज्य निबिडाः सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः।।१०।।
मुद्रेयं परमेशानि सर्वविशकरी स्मृता।

हस्तद्वय को पराङ्मुखाकार पुटाकर करे, तर्जनाद्वय को अंकुशाकार करे। हे देवि! पराङ्मुख रूप परिवर्त्त करे। अंकुशाकृति क्रम से मध्यमाद्वय को तर्जनीद्वय के अधोगत करे। अनामिकाद्वय को मध्यमाद्वय के अधोगत करे तथा कनिष्ठाद्वयअनामिकाद्वय को मध्यमाद्वय के अधोगत करे। कनिष्ठाद्वय को अनामिकाद्वय के अधोगत को। इस प्रकार सभी अंगुलियों को परस्पर मिलित कराकर वृद्धाङ्गुलिद्वय को मुद्रा के अग्रदेश में स्थापित करे। हे परमेशानि! इसे कहते हैं—सर्वविशकरी मुद्रा।।९-१०।।

पुटाकारौ—परस्पर पराङ्मुखरूप से आश्लिष्ट। **निबिड़ाः**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—दृढ़। **अङ्गुष्ठौ अग्रदेशतः**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है कि वृद्धाङ्गुलिद्वय को अङ्कुशाकृति तर्जनीद्वय के अग्रदेश में अवस्थित करे। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—वृद्धाङ्गुलिद्वय को मुद्रा के अग्रदेश में स्थित करना।।९-१०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पुटाकाराविति सार्धद्वयमावेशमुद्राप्रतिपादनपरम्। पुटाकारौ श्लिष्टौ। अङ्कुशाकृती अङ्कुशाकाररूपे। तदधोगते तर्जन्योरधोगते। संयोज्य संश्लेष्य। निबिडा दृढाः। कार्या इति शेषः। सर्वा

अङ्गुलयः। अग्रदेशतः अग्रदेशे। अयमर्थः—प्रथमं निजौ हस्तौ पुटाकारौ विधाय तर्जन्यावङ्कुशाकृती कृत्वा तर्जन्यधोगते मध्यमे मध्यमाङ्गुली परस्परतः परिवर्त्य तेनैव क्रमेण कनिष्ठानामिके परस्परतः संयोज्य दृढाः कृत्वा पुनर्ज्येष्ठाङ्गुलिद्वयमङ्कुशाकृती तर्जन्यग्रे स्थापयेदितीयमावेशकरी चतुर्थी मुद्रा। हस्तयोः पुटाकारकरणं पराङ्मुखेनेति सम्प्रदायः।।९-१०।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

पुटाकारौ करावित्यारभ्य सर्वावेशकरीत्यन्तस्यायमर्थः—**पुटाकारौ करौ कृत्वेति।** पराङ्मुखेन करौ पुटाकारौ कुर्यात्। तथा तर्जन्यावङ्कुशाकृती अङ्कुशाकारेण कुर्यात्। तथा तर्जन्यधोगते मध्यमाङ्गुली परिवर्तक्रमेणैव कुर्यात्। हे देवि! तेनैव कनिष्ठानामाङ्गुलिचतुष्टयं कुर्यात्। निबिडं दृढं च यथा भवति तथा कुर्यात्। **अङ्गुष्ठावग्रदेशत इति।** अङ्गुष्ठौ ज्येष्ठाङ्गुलिद्वयं मुद्राया अग्रदेशे स्थितं कुर्यादिति यावत्। हे महेशानि! इयं मुद्रा सर्वावेशकरी स्मृता। चतुर्थी मुद्रेति यावत्।।९-१०।।

❊ सेतुबन्धः ❊

करयोः पुटाकारतोक्तिः परस्परपराङ्मुखत्वसिद्ध्यर्था। अन्यथाऽदृष्टार्थतापत्तेः। तेन सम्प्रदायादेव पराङ्मुखत्वलाभ इत्युक्तमपास्तम्। एवं पराङ्मुखौ परिवर्तयेत्परस्परान्तःप्रवेशिताङ्गुलिकौ कुर्यात्। ततस्तर्जन्यौ परस्पराभिमुख्येन कुञ्चिताग्रे कार्ये। तदधो मध्यमे, तदधोऽनामिके, तदध कनिष्ठिके अपि तेनैव क्रमेणाङ्कुशाकारताक्रमेण संयोज्य निबिडाः सान्द्रा निरवकाशा अङ्गुलीः कृत्वा सर्वोर्ध्वमङ्गुष्ठौ न्युब्जौ निदध्यात्। कनिष्ठानामिके इत्यत्राल्पाच्तरमिति कनिष्ठायाः पूर्वनिपातः। सेयं मुद्रा सर्वावेशकरी, सर्ववशङ्करीत्यप्युच्यते।।९-१०।।

उन्मादिनी मुद्रा

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽनुजे ।।११।।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ ।।१२।।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम् ।

दोनों हाथों को पराङ्मुखी करना होगा। कनिष्ठाङ्गुलिद्वय को मध्यमाङ्गुलिद्वय के मध्य में स्थापित करना होगा। अनामिकाद्वय सीधी होगी और उसके बाहर रहेगी—तर्जनीद्वय। तदनन्तर अङ्गुष्ठद्वय को दण्डाकार करके उनके अग्रभाग को मध्यमाद्वय के अग्रभाग में मध्यमाद्वय के नखस्थान में युक्त करना होगा। इस मुद्रा को सर्वयोषिता (स्त्री) द्रावक उन्मादिनी मुद्रा कहा गया है।।११-१२।।

मध्यमामध्यगेऽनुजे—इसका अर्थ है—दाहिने हाथ की कनिष्ठा को बाँयें हाथ के मध्यमा के मध्यभाग में तथा बाँयें हाथ की कनिष्ठा को दाहिने हाथ की मध्यमा के मध्य भाग में स्थापित करे। **अनामिके तु सरले**—विद्यानन्द के मत से अनामिकाद्वय को दण्डाकार सीधा करना होगा।।११-१२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

सम्मुखाविति द्वयमुन्मादिनीमुद्रापरम्। मध्यमामध्यगे मध्यमाङ्गुल्योर्मध्यस्थानं गते। अनुजे कनिष्ठिके। तद्बहिरनामिकयोर्बहिः। मध्यमानखदेशगौ मध्यमाङ्गुल्योर्नखस्थानं गतौ। अयमर्थः—प्रथमं स्वसम्मुखौ हस्तौ संयोज्य अनुजे मध्यमामध्यगे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुलिद्वयं व्यत्यस्य मध्यमाङ्गुलिद्वयं मध्यमपर्वस्थितं विधाय कनिष्ठिकयोरग्रं मध्यमाभ्यां सम्पुट्य मध्यमानखाग्रेऽङ्गुष्ठद्वयं संयोज्य सरलाकारानामाद्वयबाह्ये तर्जनीद्वयं कुर्यादितीयमुन्मादिनी पञ्चमी मुद्रा।।११-१२।।

* अर्थरत्नावली *

सम्मुखौ तु करौ कृत्वेत्यारभ्य क्लेदिनी सर्वयोषितामित्यन्तस्यायमर्थः—**सम्मुखौ तु करौ कृत्वेति**। करौ परस्परमभिमुखौ कृत्वा। **मध्यमामध्यगेऽनुजे**। अनुजे कनिष्ठिकाङ्गुली ते व्यत्ययेन मध्यमाङ्गुल्योर्मध्ये कृत्वेत्यर्थः। **अनामिके तु सरले इति**। अनामिके अनामाङ्गुलिद्वयम्। सरले दण्डाकारे। कुर्यादिति यावत्। **तद्बहिस्तर्जनीद्वयमिति**। तयोरनामिकाङ्गुल्योर्बहिस्तदाधारतया तर्जनीद्वयं योजयेदित्यर्थः। **दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठाविति**। ततोऽनन्तरमङ्गुष्ठयुगलं दण्डाकारं कृत्वेत्यर्थः। **मध्यमानखदेशगाविति**। मध्यमाङ्गुल्योर्नखदेशेऽङ्गुष्ठयुगलाग्रं कर्तव्यमिति यावत्। इयं मुद्रा नाम्नोन्मादिनी सर्वयोषितां क्लेदिनीति। द्रावकमिति यावत्। इयं पञ्चमी।।११-१२।।

* सेतुबन्धः *

दक्षकनिष्ठां वाममध्यमया वामकनिष्ठां च दक्षमध्यमया दृढं गृह्णीयात्। तद् ग्रहणं च द्वेधा सम्भवति अनामिकयोरुत्तानकनिष्ठिकोर्ध्वमवस्थापनेन तदधोऽवस्थापनेन चेति। तत्र द्वितीयपक्षानुमतिद्योतनाय करौ सम्मुखौ कृत्वेत्युक्तम्। अनामिकयोः परस्पराभिमुख्येन संलग्नताया अस्मिन्नेव पक्षे संरक्षणात्। मध्यगेऽनुजे इत्यत्र सन्धिरार्षः। अनुजे कनिष्ठिके। अनुजशब्दः सतीसप्तम्येकवचनान्तो वा। ततोऽनामाद्वयं सरलं तद्बहिस्तत्पार्श्वयोर्दूरे तर्जनीद्वयमपि सरलम्। मध्यमयोराकुञ्चिताग्रयोर्नखोपरि न्युब्जौ दण्डाकारावङ्गुष्ठौ चेदेषा सर्वोन्मादिनी नाम मुद्रा भवति।।११-१२।।

महाङ्कुशा मुद्रा

अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वाऽङ्कुशाकृति ।।१३।।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इयं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिनी ।।१४।।

उन्मादिनी मुद्रा के अनामिकाद्वय को अन्तर्मुखी करना होगा तथा तर्जनीद्वय को अंकुशाकृति करे और उसी प्रकार अन्तर्मुखी करे। यह है—सर्वपुरुषार्थसाधनकारिणी महाङ्कुशा मुद्रा।।१३-१४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अस्यास्त्वित्यर्धं पद्यं महाङ्कुशामुद्राप्रतिपादनपरम्। अस्या उन्मादनमुद्रायाः। अधः कृत्वा

अन्तर्मुखीकृत्य। अङ्कुशाकृती अङ्कुशाकाररूपे तेनैव क्रमेण अन्तर्मुखीकरणक्रमेण। अयमर्थः— अनन्तरोक्ताया उन्मादनमुद्रायाः स्थिताया अनामिकायुगलमन्तर्मुखीकरणक्रमेण निवेश्याङ्कुशाकाररूपे तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेणान्तर्नियोजयेदितीयं महाङ्कुशाख्या मुद्रा षष्ठी।।१३-१४।।

* अर्थरत्नावली *

अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वेति। अस्या उन्मादिनीमुद्रायास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वा, अन्तः कृत्वेत्यर्थः। **अङ्कुशाकृती तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेदिति।** तेनैव क्रमेणाङ्कुशाकाररूपतया तर्जन्यावन्तः प्रवेशयेदित्यर्थः। **इयं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधकीति।** इयं रचिता मुद्रा महाङ्कुशसंज्ञा सकलपुरुषार्थसाधनीत्यर्थः। एषा तु षष्ठी मुद्रा।।१३-१४।।

* सेतुबन्धः *

अस्या उन्मादिनीमुद्राया अनामिकायुग्ममङ्कुशाकारं कृत्वा, तर्जन्यावपि तेनैवाङ्कुशाकाररूपेणैव क्रमेण योजयेत्। सेयं महाङ्कुशा नाम मुद्रा भवति।।१३-१४।।

खेचरी मुद्रा

सव्यं दक्षिणहस्ते तु दक्षिणं सव्यहस्ततः।
बाहू कृत्वा महेशानि हस्तौ संपरिवर्त्य च ॥१५॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्त्वा तेन क्रमेण तु।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥१६॥
अङ्गुष्ठौ तु महेशानि कारयेत्सरलावपि।
इयं सा खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमा प्रिये ॥१७॥

वाम बाहु दाहिनी और तथा दक्षिण बाहु वाम ओर ले जाकर दाहिने हाथ के परिवेष्टन क्रम में बाँह को ऊपर लाकर एक के अंगुलिविवर में अन्य अंगुली को प्रविष्ट कराये। अब परिवर्त्तनक्रम से कनिष्ठाद्वय तथा अनामिकाद्वय को युक्त करे और मध्यमाद्वय को ऊर्ध्वोन्मुखी करके उसे दोनों ओर रक्खे। हे महेशानि! तर्जनीद्वय एव मध्यमादि अंगुली द्वारा संश्लिष्ट अंगुष्ठद्वय को दण्डवत् सरल करना होगा। हे प्रिये! इस प्रकार से खेचरी नामक सर्वोत्तमा मुद्रा रचित होती है।।१५-१७।।

तेन क्रमेण तु—शिवानन्द अर्थ करते हैं—परिवर्त्तनक्रम से। **समाक्रान्ते**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—ऊर्ध्वोन्मुख मध्याङ्गुलिद्वय के उत्तर भाग में।।१५-१७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

त्रिभिः खेचरीमुद्रामाह—**सव्यमिति।** सव्यं वामम्। बाहुमिति सम्बन्धः। दक्षिणं दक्षिणं बाहुम्। सम्परिवर्त्य इतरेतरतः। कनिष्ठानामिके कनिष्ठे चानामिके च। तेन क्रमेण परिवर्तनक्रमेण। समाक्रान्ते ऊर्ध्वोन्मुखमध्यमाङ्गुलिद्वयोभयभागतः। सरलौ प्राग्वत्। सर्वोत्तमा सर्वासां मुद्राणां

मध्ये। अयमर्थः—प्रथमं सव्यं बाहुं दक्षिणदेशे दक्षिणं बाहुं सव्यदेशे कृत्वा पुनर्हस्तौ परस्परतः सम्परिवर्त्य ततः कनिष्ठाद्वयमनामिकाद्वयं च परिवर्तनक्रमेण संयोज्य पुनस्तर्जनीभ्यामुभयभागतः समाक्रान्ते मध्यमाङ्गुली सर्वोर्ध्वतः समुन्नमय्याङ्गुष्ठौ परस्परश्लिष्टौ कुर्यादितीयं खेचर्याख्या सप्तमी मुद्रा।।१५-१७।।

* अर्थरत्नावली *

सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं सव्यदेशतो बाहू कृत्वा महेशानीति। हे महेशानि! सव्यं वामबाहुं दक्षिणबाहोरधो योजयेत्। दक्षिणं दक्षिणबाहुं सव्यबाहोरुपरि कृत्वेति यावत्। **हस्तौ सम्परिवर्त्य चेति।** परस्पराङ्गुलिविवरपरिक्षिप्तान्योन्याङ्गुली हस्तौ कार्यौ। **कनिष्ठानामिके देवि युक्त्वा तेन क्रमेण चेति।** कनिष्ठानामिकाङ्गुलिचतुष्टयं तेन क्रमेण युक्त्वेति यावत्। **तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे इति।** सर्वोर्ध्वं तर्जनीभ्यां समाक्रान्तं मध्यमाङ्गुलिद्वयं कुर्यादिति। **अङ्गुष्ठौ तु महेशानि कारयेत् सरलावपीति।** अङ्गुष्ठौ सरलौ मध्यमाद्यङ्गुलीभिः संश्लिष्टौ परस्परं श्लिष्टौ दण्डवत् कुर्यादिति यावत्। **इयं सा खेचरी नाम्ना मुद्रा सर्वोत्तमा प्रिये इति।** इयं मुद्रा नाम्ना खेचरी सर्वोत्तमेत्यर्थः। इयं सप्तमी मुद्रा।।१५-१७।।

* सेतुबन्धः *

अथ नवभिः खेचरीमुद्रामाह—वामबाहुं दक्षभुजोपरि दक्षं हस्तपरिवेष्टनक्रमेण वामहस्तोपर्यानीय मिथःप्रवेशिताङ्गुलिकौ कृत्वा, दक्षतर्जन्या वामे कनिष्ठानामे, वामतर्जन्या दक्षे कनिष्ठानामे गृह्णीयात्। मध्यमे तु सर्वोर्ध्वं सरले एवं स्थापयेत्। सेयं खेचरी नाम मुद्रा भवति। तदुक्तं ज्ञानार्णवे—

वामं भुजं दक्षभुजे दक्षिणं वामदेशतः।
निवेश्य योजयेत्पश्चात्परिवर्त्य क्रमेण हि।।
कनिष्ठानामिकायुग्मे तर्जनीभ्यां निरोधयेत्।
मध्यमे सरले कृत्वा योनिवत्सरलौ ततः।।
अङ्गुष्ठौ खेचरीमुद्रा पार्थिवस्थानयोजिता। इति।

तन्त्रराजे तु—

सव्यदक्षकरौ सम्यग्व्यन्यसेत्कूर्परौ ततः।
मणिबन्धौ च बध्नीयादञ्जलिं मध्यपृष्ठयोः।।
विधाय भुग्ने तर्जन्यावङ्गुष्ठौ कारयेदधः।
कनिष्ठानामिके कुर्याद्व्यत्यस्ते करपृष्ठगे।।
इयं सा खेचरी मुद्रा ललिताप्रीतिकारिणी।। इति।

वामबाहुं दक्षिणाबाहोरधो योजयेदिति अर्थरत्नावलीव्याख्यानं तु अर्णवविरोधादुपेक्ष्यम्।

यदपि तर्जनीभ्यां मध्यमे समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वे कुर्यात्। अङ्गुष्ठौ तु सरलौ मध्यमाङ्गुलीभ्यां संस्पृष्टौ दण्डवत्कुर्यादिति, तदपि ज्ञानार्णवविरुद्धमेव।।१५-१७।।

खेचरी-महिमा

रचितेयं महादेवि सर्वतेजोपहारिणी।
बद्धयैवैतया देवि दृश्यते साधकोत्तमः ॥१८॥
योगिनीसर्ववृन्दैस्तु ज्वलत्पावकसन्निभः।
डाकिनीराकिणीवृन्दैर्लाकिनीकाकिनीगणैः ॥१९॥
साकिनीहाकिनीभिस्तु ध्यातेयं परमेश्वरि।
एतया ज्ञातया देवि योगिनीनां भवेत् प्रियः ॥२०॥
यतः समयमुद्रेयं सर्वासां परिकीर्तिता।

हे महादेवि! यह मुद्रा रचित होने पर सबके तेज का (साधक) अपहरण कर लेती है। इस मुद्रा की रचना द्वारा योगिनी वृन्द के साथ साधकोत्तम ज्वलन्त अग्नि के समान परिलक्षित होता है। हे परमेश्वरि! डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी, हाकिनीगण इस मुद्रा का ध्यान करती हैं। इसे सभी शक्तियों की समयमुद्रा कहा जाता है। जिसे यह मुद्रा ज्ञात है, वह साधक योगिनीगण का प्रिय हो जाता है।।१८-२०।।

योगिनीसर्ववृन्दैः—शिवानन्द के अनुसार योगिनीवृन्द द्वारा परिवृत। **डाकिनी-राकिनीवृन्दैः**—शिवानन्द के अनुसार षट्चक्र, षड् ऊर्मि तथा षट्कोण की अधीश्वरी डाकिनी-राकिनी-लाकिनी-काकिनी-साकिनी तथा हाकिनी रूप छः देवी द्वारा। **षट्चक्र**—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य तथा आज्ञा। डाकिनी आदि यथाक्रम से इन छः चक्रों की अधिष्ठातृ देवता हैं। **षट् ऊर्मि**—शारदातिलक के श्लोक १.४६ की टीका में राघवभट्ट 'ऊर्मि' शव्द का अर्थ करते हैं—आर्त्ति उत्पादक अवस्थाविशेष। प्रपंचसार में कहा गया है कि बुभुक्षा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, मृत्यु— ये हैं प्राण-बुद्धि-देह-धर्म में अवस्थित षट् ऊर्मि। बुभुक्षा-पिपासा प्राण की ऊर्मि है। शोक-मोह बुद्धि की ऊर्मि है। जरा तथा मृत्यु देह की ऊर्मि है। (देखें—प्रपंचसार तन्त्र १-४६। **षट्कोष**—त्वक्-असृक्-मांस-मेद-अस्थि तथा मज्जा। **योगिनीनां**—शिवानन्द के अनुसार योगिनी अर्थात् ब्राह्मी आदि शक्तियाँ।।१८-२०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अध्यर्धचतुर्भिः खेचरीस्तुतिमाह—**रचितेयमिति**। इयं मुद्रा। सर्वतेजोऽपहारिणी सर्वेषां तेजांस्यपहरतीति। बद्धया रचितया। एतया मुद्रया। योगिनीसर्ववृन्दैः सर्वयोगिनीवृन्दैरित्यर्थः। ज्वलत्प्राकारसन्निभः अग्निप्राकारवत् परैरधृष्यो भवतीत्यर्थः। डाकिनीत्यादिना षट्चक्रषडूर्मिषट्-कोशाधिष्ठात्रीभिः डरलकसहदेवीभिर्द्वादशार्धदेवताभिर्ध्यातोऽसौ साधक इत्याह। एतया मुद्रया। ज्ञातया अवधृतया, न त्वनुष्ठितयेत्यर्थः। योगिनीनां (ब्रह्मा? ब्राह्मया)द्युल्लसितानां सर्वासां

शक्तीनाम्। प्रियो वल्लभ:, स्पृहणीय इत्यर्थ:। किमिति सर्वासां प्रियो भवतीत्याह—**यत इति।** समयमुद्रा समस्तयोगिनीचक्रसन्निधिकरणपटीयसी मुद्रेति भाव:।।१८-२०।।

* अर्थरत्नावली *

रचिता बद्धा चेत्यत्र कररचनं रचना। तद्बाह्यपूजायाम्। बन्धस्त्वान्तर:। तेनान्त:खेचरी तदु(क्ता?क्त्या) सूचिता—

चिबुकं योजयित्वा तु षोडशस्वरमण्डले।
चन्द्रसूर्याग्निरोधेन मूलशक्तिनिकुञ्चनात्।।
रसनामन्तरा कृत्वा अनच्के धारयेन्मन:।
एषा सा खेचरी मुद्रा उन्मनात्वं प्रयच्छति। इति।

ज्ञानसारेऽप्युक्तम्—

बिन्दुकण्ठसमायोगात् प्रविकास्य शिरोऽम्बुजम्।
चन्द्रसूर्याग्निरोधेन मूलशक्तिं निकुञ्च्य च।।
रौद्रीं कुञ्चिकयोद्घाट्य द्विरष्टकमलोदरे।
रसनामन्तरा कृत्वा नासाग्रे रोपयेद् दृशौ।।
यवमात्रं त्रिकोणं तु मीलनोन्मीलनात्मकम्।
लिहन् स्वरसनाग्रेण पिबन्नमरवारुणीम्।।
सदा समरसीभूतं मन: शून्ये निवेशयेत्।
एषा सा खेचरी मुद्रा उन्मनात्वप्रदायिनी।। इति।।

* सेतुबन्ध: *

मुद्रामहिमानं वर्णयति—एष खेचरीमुद्राबन्धो यत: सर्वासां शक्तीनां समयबन्धरूपस्तस्मादेतद्भवनेन सर्वतेजोपहारादिकमेतज्ज्ञानेन देवतावल्लभत्वादिकं च भवतीत्यर्थ:। समय: सङ्केत:। यो यत्सङ्केतज्ञ: स तत्कूटान्तर्भावीति व्याप्तेरिति भाव:।।१८-२०।।

प्रयतोऽप्रयतो वाऽपि शुचौ देशेऽथवाऽशुचौ ।।२१।।
उत्थितो वोपविष्टस्तु चंक्रमन्निश्चलोऽपि वा ।
उच्छिष्टो वा शुचिर्भूत्वा भुञ्जानो मैथुने रत: ।।२२।।
मुद्राया मध्यमाङ्गुल्यौ परिवर्त्य क्रमेण तु ।
पार्थिवे स्थानके युक्त्वा सद्य: खेचरतां व्रजेत् ।।२३।।

शुद्ध अथवा अशुद्ध साधक, शुचि किंवा अशुचि किसी भी स्थान में, दण्डायमान अथवा उपविष्ट, भ्रमणरत अथवा निश्चल, भोजन के पश्चात् अकृताचमन किंवा कृताचमन, मैथुन में रत जिस किसी अवस्था में क्यों न हो, खेचरी मुद्रा की रचना करके मध्यमाङ्गुलिद्वय को पार्थिव स्थान से युक्त करते ही तत्क्षण खेचरता प्राप्त हो जाती है।।२१-२३।।

प्रयतः—शिवानन्द अर्थ करते हैं—शुद्ध। **अप्रयत्नः**—अशुद्ध। **शुचौ**—शिवानन्द के अनुसार 'मेध्य' तथा 'अशुचि' शब्द का अर्थ है—अमेध्य। **उच्छिष्टः**—भोजन के पश्चात् बिना आचमन रहना। **पार्थिवे स्थानके;**—भास्करराय के अनुसार मूर्द्धा- स्थित महाबिन्दु स्थान। **मुद्राया मध्यमाङ्गुल्यौ**—खेचरी मुद्रा में मध्यमा अंगुलिद्वय। अन्तर्मुद्रापेक्ष इसका एक गूढ़ अर्थ भी है। विद्यानन्द के मत से वह यह है—मुद्रा (कुण्डलिनी) चन्द्रसूर्यात्मिका है। इसकी दो उंगली (इड़ा तथा पिंगला) को मध्यमा में (मध्यम नाड़ी सुषुम्ना में) लुप्त करके उसे पार्थिव स्थानरूप शिव (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थापित करना होगा। **खेचरतां**—'खे' अर्थात् बोधगगन। इसमें जो चर है, वह है खेचरता अर्थात् बोधगगन में चारिता।।२१-२३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

प्रयतः शुद्धः। अप्रयतः इतरः। शुचौ मेध्ये। अशुचौ इतरस्मिन्। अस्या एव मुद्रायाः सम्बन्धनं 'खेचर्या शक्तिचक्रं तु क्षमस्वेति विसर्जयेत्' (१.१८९) इत्यनेन सूचितम्।

संहारंमुद्रास्वरूपमाह—**मुद्राया मध्यमेति।** अयमर्थः—खेचर्याख्याया मुद्राया अनन्तररचितायाः सम्बन्धिन्यौ मध्यमाङ्गुली कनिष्ठिकानामिकाक्रमवदितरेतरतः परिवर्त्य तर्जन्यङ्गुष्ठचतुष्टयं पूर्ववत् स्थापयित्वा पूजितमहाचक्रपार्थिवभागपश्चिमद्वारप्रदेशे पञ्चाङ्गनमस्कारपूर्विकामिमां संहारमुद्रां संयोज्य समाराधितं शक्तिचक्रं चिद्रसतया विलीनं परिभाव्य खे बोधगगने चरतीति चिन्तयेत् स्वस्यापि तत्सिद्धय इति।

अत्रेदं महद्रहस्यमस्ति—त्रिविधा खेचरी। अङ्गुलिविरचनात्मा काचिदुक्ता। बोधगगनचारिता काचित् फलात्मा न व्याख्यानार्हा। अन्या काचिद्योगात्मा संस्थानविशेषानुसरणरूपा सद्यस्तत्प्राप्तिसाधनी। सातिरहस्यभूता विलिख्यते—

चिबुकं योजयित्वा तु षोडशस्वरमण्डले।
चन्द्रसूर्यनिरोधेन मूलशक्तिनिकुञ्चनात्।।
रसनामन्तरा कृत्वा अनच्के धारयेन्मनः।
एषा सा खेचरी ध्याता उन्मनात्वं प्रयच्छति।। इति।

अन्यत्रापि—

चिबुकण्ठसमायोगात् प्रविकास्य शिरोऽम्बुजम्।
चन्द्रसूर्यनिरोधेन मूलशक्तिं निकुञ्च्य च।।
रौद्रीं कुञ्चिकयोद्घाट्य द्विरष्टकमलोदरे।
रसनामन्तरा कृत्वा नासाग्रे रोपयेद् दृशम्।।
यवमात्रत्रिकोणं तु मीलनोन्मीलनात्मकम्।
लिहन् स्वरसनाग्रेण पिबन्नमरवारुणीम्।।

सदा समरसीभूतं मनः शून्ये निवेशयेत्।
एषा सा खेचरी मुद्रा उन्मनात्वप्रदायिनी।। इति।
(ज्ञा० सा०)

श्रीतन्त्रसद्भावेऽपि—

बद्ध्वा पद्मासनं योगी नाभावक्षेश्वरं न्यसेत्।
दण्डाकारं तु तत्तावन्नयेद् यावत् कखत्रयम्।।
निगृह्य तत्र तत्तूर्णं प्रेरयेत् खत्रयेण तु।
एतां बद्ध्वा महायोगी खे गतिं प्रतिपद्यते।। इति।

तथा च श्रुतिः—'अन्तरेण तालुके य एष स्तन इवावलम्बते सेन्द्रयोनिः' (तै० उ० १.६.१) इति।।२१-२३।।

* अर्थरत्नावली *

मुद्राया मध्यमाङ्गुल्यौ परिवर्त्य क्रमेण त्विति। अस्याः खेचरीमुद्राया मध्यमे अङ्गुल्यौ परिवर्तिते यथा भवतस्तथा कृत्वेत्यर्थः। **पार्थिवे स्थानके युक्त्वेति।** तामेवंविधां मूर्ध्नि संयुक्तां मुद्रां महाचक्रभूस्थाने संयोज्येत्यर्थः। अन्तर्मुद्रापक्षेऽयमर्थः—मुद्रायाः कुण्डलिन्याश्चन्द्रसूर्यात्मिके द्वे अङ्गुली, ते मध्यमे मध्यमनाड्यां परिवर्त्य प्रविलाप्य, पार्थिवस्थानरूपके शिरसि ते कृत्वेत्यर्थः।।२१-२३।।

* सेतुबन्धः *

अथैतामेवाऽऽश्रित्य गुणफलसम्बन्धमाह—अस्या एव मुद्राया मध्यमयोः सरलतां निरस्य परिवर्तनं कृत्वा पार्थिवस्थाने योजयेत्। तावतैव खेचरत्वसिद्धिः। अत्राधिकारितावेदकप्रायत्यादिकमधिकरणतावच्छेदकं शुचित्वादिकं कालनियमादयश्च प्रयोगान्तर इव नाऽवश्यकाङ्क्षानीत्यर्थः। ज्ञानार्णवमते तु पार्थिवस्थानयोगः खेचरीशरीरघटकत्वान्नित्यः, वामकेश्वरमते तु काम्य इति विशेषः। पार्थिवस्थानं नाम मूर्धस्थितमहाबिन्दुस्थानमित्याहुः। यत्तु प्राचां टीकासु खेचरीत्रैविध्यमिह वर्ण्यते। तत्तदनुसारेण मुद्राया इति श्लोकोऽपि योज्यते, तत्प्रकृतानुपयोगान्नोक्तम् अस्माभिः। खेचरीशब्दस्य नानार्थत्वेन तेष्वर्थेष्वेकस्य खेचरीत्वस्य सैन्धवत्वादेरिवाभावेन मनोनिरोधविशेषादेस्तद्विभाजकधर्मत्वाभावाच्च।।२१-२३।।

बीजमुद्रा

परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ।।२४।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ।।२५।।
बीजमुद्रेयमचिरात् सर्वसिद्धिप्रवर्तिनी।

हे प्रिये! परस्पर स्पृष्ट हस्तद्वय का परिवर्त्तन करे। तदनन्तर तर्जनीयुगल और अंगुष्ठयुगल को युगपत् अर्द्धचन्द्राकृति करे। इस बार उसके अधोदेश में स्थित कनिष्ठाद्वय द्वारा अवष्टब्ध मध्यमाद्वय को इसके साथ युक्त करना होगा। इस प्रकार सर्व अधोदेश में अनामिकाद्वय को ईषत् कुटिलाकृति करके युक्त करना होगा। यह है—शीघ्र सर्वसिद्धि देने वाली बीजमुद्रा।।२४-२५।।

परिवर्त्य—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—दोनों हाथों की उँगलियों को परस्पर के रिक्त स्थान में ले जाकर प्रवेश करा देना। **अध: कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्**—विद्यानन्द इसका यह अर्थ करते हैं कि मध्यदेश में (अधोदेशस्थित मध्यमाङ्गुलिद्वय के मध्य में) कनिष्ठाङ्गुलिद्वय को धारण करना होगा।।२४-२५।।

❈ ऋजुविमर्शिनी ❈

परिवर्त्येति। अर्धचन्द्राकृती अर्धचन्द्राकारं यथा तथेति। तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं तर्जनीयुगलमङ्गुष्ठयुगलं च। कनिष्ठावष्टब्धे कनिष्ठाभ्यामवष्टब्धे। मध्यमे मध्यमाङ्गुली। कुटिले व्यत्यस्ते। सर्वाधस्तात् तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलकनिष्ठामध्यमानाम्। सर्वसिद्धिप्रवर्तिनी सर्वासामणिमादिसिद्धीनाम्। अयमर्थ:—प्रथममात्मीयौ करौ परिवर्त्य तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलमर्धचन्द्राकृति कृत्वा तदध: कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमाङ्गुली विनियुज्य सर्वाधस्तादनामिके व्यत्यस्य विनियोजयेदितीयमष्टमी बीजमुद्रा।।२४-२५।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

परिवर्त्येत्यादि। अन्योन्याङ्गुलिविवरपरिक्षिप्ताङ्गुली करौ कृत्वेति। **अर्धचन्द्रेत्यादि।** तर्जनीयुग्ममङ्गुष्ठयुग्मं च। युगपद् एककालमेव। अर्धचन्द्राकृति अर्धचन्द्राकारवत्, कुर्यादित्यर्थ:। **अध: कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेदिति।** अर्धचन्द्राकृतिरूपतया स्थिततर्जन्यङ्गुष्ठयुगले अधोदेशावस्थितमध्यमाङ्गुलिकनिष्ठाङ्गुलिद्वयावष्टब्धे कुर्यात्। मध्यमाङ्गुल्योर्मध्ये कनिष्ठाङ्गुलिद्वयं धारयेदित्यर्थ:। **तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके इति।** तथैव परिवर्तनक्रमेणैव। अनामिके सर्वाधस्तादीषत्कुटिले योज्ये इत्यर्थ:। **बीजमुद्रेयमचिरात् सर्वसिद्धिप्रवर्तकीति।** इयमुद्धृता नाम्ना बीजमुद्रा सर्वसिद्धिप्रवर्तकी। अष्टमी मुद्रेत्यर्थ:।।२४-२५।।

❈ सेतुबन्ध: ❈

आदौ मिथ: स्पृष्टयो: करयो: परस्परान्त:प्रवेशिताङ्गुलिकत्वरूपं परिवर्तनं कुर्यात्। ततस्तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलमर्धचन्द्राकृति कुर्यात्, गलहस्तिवदिति यावत्। युगपदित्यनेन युगलद्वयमपि तथा रचयेदिति लभ्यते। तत: स्वाधोभागे कनिष्ठिकाभ्यामवष्टब्धे कृत्वा मध्यमे अर्थादग्रभागे योजयेत्। मध्यमानामिकासन्धिद्वये कनिष्ठिकाग्रद्वयं विनिमयेन प्रवेश्य मध्यमयो: परस्परनखाग्रस्पर्शं कारयेदिति यावत्। तत: सर्वाधस्ताद्भागेऽनामिके वक्रे कृत्वा यथा सौख्यं भवति, तथैव व्यत्यस्ते योज्ये। सेयं बीजाख्या मुद्रा। अस्यामेव तर्जन्योरङ्कुशाकारताऽङ्गुष्ठयोर्नखाग्रयोगश्चोक्त: तन्त्रराजे—

मध्यमामध्यपार्श्वाधः कनिष्ठाग्रे विपर्ययात्।
अनामिकेऽधो व्यत्यस्ते तर्जन्यावङ्कुशाकृती।।
इतरे तन्नखाग्राग्रे बीजमुद्रेयमीरिता। इति।

केचित् तु—कनिष्ठिकाभ्यामवष्टब्धे मध्यमे अधो विनियोजयेदिति वदन्तस्तर्जनीमध्यमयोः सन्धौ कनिष्ठिकाप्रवेशनं मन्यन्ते। परे तु—मध्यमावष्टब्धे कनिष्ठिके इति व्याचक्षाणाः कनिष्ठावष्टब्धपदे बहुव्रीहिं मन्यमाना मध्यमाद्वयेनाऽऽकुञ्चितेन कनिष्ठिकायुगलं गर्भीकुर्यादिति मेनिरे। तदुभयमपि तन्त्रान्तरविसंवादादनादृत्यम्। सम्भवतः संवादस्य त्यागायोगात्। ज्ञानार्णवे तु भूयोविसंवादाद्भिन्न एव प्रकारः। यथा—

परिवर्त्याञ्जलिं कृत्वा कनिष्ठाग्रगते ततः।
मध्यमे स्थापयेद्देवि कनिष्ठे धारयेत्ततः।।
अनामिकाभ्यां सुदृढं तर्जनीमध्यमायुगम्।
अङ्गुष्ठाभ्यां समायोज्यमर्धचन्द्राकृति प्रिये।।
बीजमुद्रेयमाख्याता सर्वानन्दकरी शिवे।

इति।।२४-२५।।

योनिमुद्रा

मध्यमे कुटिलाकारतर्जन्युपरिसंस्थिते ।।२६।।
अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके।
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिताः ।।२७।।
एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति या स्थिता।

तर्जनीद्वय को कुटिलाकार करके उसके ऊपर मध्यमाद्वय को स्थापित करे। तदनन्तर कनिष्ठाद्वय को व्यत्यस्त अनामिकाद्वय के मध्यगत करना होगा। इस प्रकार सबको एकत्र संयुक्त करके अंगुष्ठद्वय द्वारा उसे दबाना होगा। यह है—योनिमुद्रा नामक प्रथम मुद्रा।

सर्वा एकत्र संयोज्या—भास्करराय के मतानुसार अनामिकाद्वय तथा कनिष्ठाद्वय को एकीकृत करे और उसे अंगुष्ठद्वय द्वारा निरुद्ध करे अर्थात् अनामिकाद्वय के नख के ऊपर अंगुष्ठद्वय को दबाकर रखे। **प्रथमा**—टीकाकार प्रथमा का एकाधिक अर्थ करते हैं—१. प्रथम वर्णनीया; क्योंकि यह सर्वोत्तमा मुद्रा है। २. अन्तर्यजन के समय योनिमुद्रा प्रथमा है, अतः प्रथमा है। ३. श्रीचक्ररचना में बिन्दु प्रथमतः रचित है तथा इस बिन्दुचक्र में प्रदर्शनीया मुद्रा है, तभी प्रथमा है। ४. महामुद्रा योनिमुद्रा अन्यान्य मुद्रारूप परिग्रह करती है। अन्य मुद्राओं का उत्पत्तिस्थल है; अतः प्रथमा है।।२६-२७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मध्यमे इत्यादिपद्यद्वयं योनिमुद्राप्रतिपादनपरम्। मध्यमे मध्यमाङ्गुली। कुटिलाकारतर्जन्यु-

परि संस्थिते कुटिलाकारयोस्तर्जन्योरुपरि संस्थिते। अनामिकामध्यगते व्यत्यस्तयोरनामिकयोर्मध्यगते। कनिष्ठिके कनिष्ठाङ्गुली। सर्वा अङ्गुलयः। एकत्र एकस्यां व्यक्तौ। अङ्गुष्ठपरिपीडिता अङ्गुष्ठाभ्यां परिपीडिताः। अयमर्थः—आदौ वक्राकारतर्जनीद्वयोपरि संस्थितं मध्यमाङ्गुलिद्वयं विरच्य पुनः परस्परं व्यत्यस्ततर्जनीमध्यमान्तर्विवरगतानामाद्वयोपरिगतं च कृत्वाऽनन्तरं तथा स्थितं मध्यमाङ्गुलिद्वयमध्यगतं कनिष्ठाद्वयं विधाय पश्चादङ्गुष्ठद्वयं कनिष्ठाङ्गुलिद्वयाग्रप्रदेशे विदध्यादितीयं योनिमुद्रा नवमी।।२६-२७।।

* अर्थरत्नावली *

मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरिसंस्थिते इत्यादेरयमर्थः—कुटिलीकृतमध्यमाङ्गुलिद्वयमादौ तर्जन्योरुपरि कृत्वा तद्व्यत्यस्तानामिकाद्वयमध्यगते च कुर्यात्। कनिष्ठिके च तथा नियोजयेत्। अनामिकामध्यगते च यथा भवतस्तथा कुर्यादित्यर्थः। अन्यत् सुगमम्। **एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति या स्थितेति।** एषा समस्तमुद्राणां प्रथमा दर्शनीयेत्यर्थः। नन्वेतदसङ्गतम्, तथा हि—'एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी' (३.६) इत्यत्र सर्वसंक्षोभणीमुद्रायाः प्राथम्यमूचिवान् शिवः।।२६-२७।।

* सेतुबन्धः *

चरमां योनिमुद्रामाह—तर्जन्यौ कुटिलाकारावङ्कुशाविव कृत्वा तादृशतर्जन्यग्रयोरुपरि मध्यमे उत्ताने निक्षिपेत्। ततः कनिष्ठिके व्यत्यस्ते कृत्वाऽनामिकाभ्यां गृह्णीयात्। एवमनामाकनिष्ठाचतुष्टयमेकीकृत्याङ्गुष्ठाभ्यां निरुन्ध्यात्। अनामिकयोर्नखोपर्यङ्गुष्ठौ न्युब्जौ निदध्यादिति यावत्। यद्यप्यक्षरस्वारस्यादीदृश एवार्थो लभ्यते, तन्त्रभेदान्मुद्राभेदो न दोषायेत्यपि सुवचम्, तथाऽपि तन्त्रान्तरसंवादायानामिके मध्यगते ययोस्ते इति बहुव्रीहिरेव युक्तः। ततश्चानामिके व्यत्यस्ते कृत्वाऽङ्कुशाकारतर्जन्युत्तानमध्यमयोर्मध्ये प्रवेशयेत्। तयोरधः कनिष्ठिके व्यत्यस्ते अनामिकापृष्ठसंलग्ने स्थापयेत्। अङ्गुष्ठपीडनं तु मध्यमामध्यपर्वणोरिति सिध्यति। तदुक्तं तन्त्रराजे—'कनिष्ठाङ्गुष्ठसंश्लेषान्महायोनिस्त्रिखण्डिका' इति।

सेयं योनिमुद्रा भवति। अस्या नवम्याः प्रथमत्वेन कीर्तनं कथमित्याशङ्क्य बहुधा समादधते—तत्र प्रथमा प्रथमकीर्तनीया, सर्वोत्तमत्वादित्यर्थ इति केचित्। परे तु बहिर्यागे सर्वसंक्षोभिणीमुद्रायाः प्राथम्यमन्तर्यागे तु योनिमुद्राया एवेति व्यवस्थाप्रदर्शनार्थमित्याहुः। तत्र विनिगमनाविरहेण वैपरीत्यं कुतो नेति विचार्यम्। यद्वा—चक्रनिर्माणे बिन्दोः प्रथममुत्पन्नत्वाद् बिन्दुचक्रे प्रदर्शनीयत्वादस्याः प्राथम्यम्। अथवा—

एका चैषा महामुद्रा योनिमुद्रात्वमागता।
तया विभक्तः स्वात्मा तु संक्षोभादिप्रभेदतः।।

इति अभियुक्तोक्त्या स्वेतरमुद्राजनकत्वात् प्राथम्यमित्यप्याहुः। अथवा—प्रथमपदेन देव्येव कथ्यते। 'अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य' इति श्रुतेः। 'पूर्वजा त्रिपुराम्बिका' इति स्मृतेश्च। तत्र जननांशे गौणत्वात्सर्वकारणार्थकं प्रथमादिपदमेव तद्वाचकमिति निर्विवादम्।

ततश्चैषा मुद्रा प्रथमैव देवीस्वरूपैवेत्यर्थः। यद्वा—पूर्वोक्तासु दशसु मुद्रासु त्रिखण्डाया एव प्रथमकीर्तनात् प्रथमशब्देन त्रिखण्डोच्यते। ततश्चैषा योनिमुद्रा त्रिखण्डैव, ततः किञ्चिद्विलक्षणेत्यर्थः। 'महायोनिस्त्रिखण्डिका' इति तन्त्रराजोक्तेः। इत्थमुक्तिश्चानामिकामध्यगते इति पदे बहुव्रीहौ तात्पर्यग्राहिका, तेन तत्पुरुषलघीयस्त्वन्यायस्य नात्र प्रसरः। अथवा—चक्रपूजायाः संहारक्रम इव सृष्टिक्रमोऽपि तन्त्रान्तरसिद्धोऽस्त्येव। न हि सृष्टिक्रमेण पूजनेऽपि संक्षोभिण्यादिक्रमेणैव मुद्राः प्रदर्शनीया इति नियन्तुं युक्तम्, नवसु चक्रेषु नवमुद्राणां नियमितत्वात्। अत एव मध्यचक्रमात्रपूजादिसंक्षेपपक्षे न संक्षोभिण्यादिक्रमेणैव मुद्राप्रदर्शनम्। अपि तु वश्यमुद्रादिक्रमेणैव। तथा च सृष्टिक्रमाभिप्रायेण प्राथम्योक्तिः। तया च सृष्टिक्रमेणार्चनध्वननमिति तत्त्वम्।।२६-२७।।

एता मुद्रा महेशानि त्रिपुराया मयोदिताः ॥२८॥
पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः ।

इति नित्याषोडशिकार्णवस्य तृतीयः पटलः

हे महेशानि! यह नव मुद्रायें मैंने कही। पूजा के समय यथानुक्रम से इनका प्रयोग करना चाहिये।।२८।।

यथानुक्रमयोगतः—भास्करराय कहते हैं कि संहारक्रम में सर्वसंक्षोभिणी आदि क्रम में अर्थात् प्रथम मुद्रा होगी। सृष्टिक्रम में योनिमुद्रा प्रथम मुद्रा होगी। इस क्रमानुसार प्रयोग करे।

नित्याषोडाशिकार्णव का तृतीय पटल समाप्त

* ऋजुविमर्शिनी *

एषा त्विति। तुर्विशेषे। नवम्यपीयं मुद्रा प्रथमा उत्कृष्टा, योन्युद्भूतत्वात् सर्वासां मुद्राणाम्। अत्राभियुक्तवचनम्—

एका चैव महामुद्रा योनिमुद्रात्वमागता।
तया विभक्त आत्मा तु संक्षोभादिप्रभेदतः।। इति। (सं० प०)

एताः क्षोभिण्याद्याः। त्रिपुराया भगवत्या मातुः सम्बन्धिन्यः। मया चिद्रूपेणात्मना। उदिता विमर्शपदवीं प्रापिताः। यथानुक्रमयोगत उद्दिष्टक्रमयोगतः। इति शिवम्।।२८।।

एवमृजुविमर्शिन्यां नित्याषोडशिकार्णवे।
शिवानन्दपरामृष्टस्तृतीयः पटलो गतः।।

* अर्थरत्नावली *

इदानीं योनिमुद्रायाः प्राथम्यमभिदधाति। तेनैव पूर्वापरविरोधान्न निर्णय इति। अत्रोच्यते—विभक्तविषयत्वान्न दोषः। तथाहि—बाह्यपूजायां सर्वसंक्षोभणीमुद्रायाः प्राथम्यमभिमतं परमेश्वरेण। अन्तर्यजनवेलायां श्रीमहायोनिमुद्रायाः प्राथम्यमिति न विरोध इति सिद्धम्। मुद्रा च द्विविधा

बाह्याभ्यन्तरभेदेन। तत्र बाह्या कराभ्यां बन्धनीया नित्याषोडशिकार्णवे समुद्धृतबीजैरित्यर्थः। तत्तद्बीजानि च लिख्यन्ते—द्रामिति सर्वसंक्षोभण्याः, द्रीमिति सर्वविद्राविण्याः, क्लीमिति सर्वाकर्षिण्याः, ब्लूमिति सर्वावेशकारिण्याः, सः इति सर्वोन्मादिन्याः, क्रोमिति सर्वाङ्कुशायाः, ह्स्फ्रोमिति खेचर्याः, ह्सौमिति बीजमुद्रायाः, ऐमिति योनिमुद्रायाः। एवमन्तर्यजनवेलायां द्रामिति क्रमाद् बीजक्रमः।।२६-२८।।

इति श्रीविद्यानन्दविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थरत्नावल्यां मुद्राप्रदर्शनस्तृतीयः पटलः

* सेतुबन्धः *

मुद्रानिरूपणमुपसंहरति—यथानुक्रमपदेन संहारक्रमे संक्षोभिण्यादिक्रमेण सृष्टिक्रमे योन्यादिक्रमेण संक्षेपात्पुरुषार्थत्वमात्रे ता मा भूदित्येतदर्थः। तेन संयोगपृथक्त्वन्यायेनाऽऽसामुभयार्थत्वसिद्धिः। तत्र फलकामप्रयोगस्तु सिद्धचक्रस्यैव नान्यस्य चक्रसाधनोत्तरमस्याऽऽम्नानात्। न च समिदादिफलश्रवणस्येव मुद्राफलश्रुतिरर्थवाद इति मन्तव्यम्। प्रकरणपाठबहिःपाठाभ्यां वैषम्यात्। सुन्दरीतापिन्यामपि तृतीयोपनिषदि स्वातन्त्र्येण मुद्राणां कथनादिति शिवम्।।२८।।

इति श्रीभास्करोन्नीते नित्याषोडशिकाम्बुधेः ।
व्याख्याने सेतुबन्धाख्ये विश्रामोऽभूत्तृतीयकः ॥३॥

अथ चतुर्थो विश्रामः

महाज्ञानप्रभाव-व्याप्त्यादिविषयकाःप्रश्नाः

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वमाख्यातं मुद्राणां ज्ञानमुत्तमम्।
वदेदानीं महादेव्या एकैकाक्षरसाधनम्॥१॥
महाज्ञानं प्रभावं च व्याप्तिं स्थानं भवं लयम्।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन शरीरे परमेश्वर॥२॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे भगवन्! मुद्रासमूह का उत्तम ज्ञान आपने कहा। अब मन्त्ररूपिणी महादेवी अर्थात् श्रीविद्या के एक-एक कूटों का साधन कहिये। हे परमेश्वर! महा ज्ञान, उसका प्रभाव, व्याप्ति, स्थान, जन्म, लय, स्थूल-सूक्ष्म भेद से द्विविध शरीर के सम्बन्ध में कहिये।।१-२।।

सर्वम्—विद्यानन्द के मत से 'सर्वम्' है—बहिर्मुद्रा-रचना तथा आन्तर मुद्रा बन्धन रूप से दो प्रकार का। **ज्ञानम्**—विद्यानन्द कहते हैं कि ज्ञान अर्थात् उक्त उभयगोचर ज्ञान। **एकैकाक्षरसाधनम्**—भास्करराय कहते हैं कि एकैक अक्षर अर्थात् कूट का साधन अर्थात् प्रत्येक का सिद्धि प्रकार। **महाज्ञानं**—शिवानन्द इसका अर्थ कहते हैं—महादेवी के स्वरूप-विषय। विद्यानन्द तथा भास्करराय दोनों महाज्ञान का अर्थ करते हैं—महत् एवं तत् ज्ञान। भास्कर राय कहते हैं कि इस पद द्वारा ज्ञान तथा ज्ञेय का अभेद सूचित होता है। **प्रभावं**—शिवानन्द 'प्रभाव' शब्द का अर्थ करते हैं—सामर्थ्य तथा भास्कर राय अर्थ करते हैं—ज्ञान-माहात्म्य। **व्याप्तिं**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—विश्वरूप परिणाम। **स्थानं**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—जगत् की स्थिति। **भवं**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—जगत् का जन्म। शिवानन्द भवं का अर्थ करते हैं—उल्लास। विद्यानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं—'भवति जन्मादिति भवः' अर्थात् पश्यन्ती रूप अक्षरसन्दर्भ से मध्यमा-वैखरीरूप अक्षरसन्दर्भोत्पत्ति ही भव है। **लयम्**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—विश्रान्ति। विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—पश्यन्ती रूप में मध्यमा तथा वैखरीरूप लय प्राप्त करता है, यही लय है। भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ है—संहार। **स्थूलसूक्ष्मविभेदेन**—स्थूल तथा सूक्ष्म भेद से। शिवानन्द अर्थ करते हैं कि स्थूल अर्थात् वैखरीरूप, सूक्ष्म अर्थात् मध्यमा पश्यन्ती रूप। विद्यानन्द का मत कुछ अलग है। उनके मत से स्थूल है—वैखरी रूप एवं सूक्ष्म है मध्यमारूप। दोनों का कारण है पश्यन्ती रूप।।१-२।।

ऋजुविमर्शिनी

एवं पूजाङ्गभूतमुद्रादशकप्रतिपादनपरं तृतीयं पटलं विमृश्य मूलविद्याङ्गभूतबीजत्रयव्याप्त्यादिप्रकाशनपटीयस्येकसप्ततिसूत्रग्रथिते तुरीये पटले विमर्शनीयानि पदानि विमृश्यन्ते— **श्रीदेवीत्यादि।** सर्वं रचनाप्रकारकालविशेषानुक्रमविषयम्। उत्तमं पुरुषार्थप्रदत्वात्। महादेव्या मन्त्ररूपिण्या जगन्मातुस्त्रिपुराभट्टारिकायाः परविमर्शशरीरिण्या वरेण्यायाः। एकैकाक्षरसाधनम् एकैकमक्षराणां त्रयाणां साधनम्। महाज्ञानं महादेव्याः स्वरूपविषयम्। प्रभावं सामर्थ्यम्। व्याप्तिस्थानं व्याप्तिपदम्। भवम् उल्लासम्। लयं विश्रान्तिम्। स्थूलसूक्ष्मविभेदेन। स्थूलं वैखर्यात्मना, सूक्ष्मं मध्यमापश्यन्तीभ्याम्।।१-२।।

अर्थरत्नावली

अथ चतुर्थे पटले टिप्पणं लिख्यते। **भगवन् सर्वमाख्यातमित्यादि।** सर्वमित्यन्तर्बहिर्मुद्रारचनबन्धनप्रकारद्वयमिति भावः। रचनं बाह्यम्, बन्धनमान्तरम्। ज्ञानमिति तदुभयगोचरं ज्ञानम्। **वदेत्यादि।** इदानीं मूलविद्याया देव्या एकैकाक्षरसाधनम् एकैकबीजसाधनं वदेत्यर्थः। **महाज्ञानप्रभावमित्यादि।** महच्च तज्ज्ञानं चेति महाज्ञानम्, तच्च तस्य प्रभावश्च विमर्शरूपः, तम्। किमुक्तं भवति—प्रकाशविमर्शरूपौ शिवशक्तिवर्णावकारहकारोपलक्षितौ महाज्ञानतत्प्रभावावुपदिश्येते इति भावः। **व्याप्तिस्थानमिति।** तदुभयं शक्तिशिवरूपमेकादशं पश्यन्तीरूपं तन्मध्यमावैखरीरूपाणामक्षराणां व्याप्तिस्थानमाश्रयस्थानम्, तदाश्रित्य तत्प्रवर्तनात्। **भवमिति।** भवत्यस्मादिति। अस्मात् पश्यन्तीरूपादक्षरसन्दर्भात्तदुत्तरप्रकारद्वयाक्षरसन्दर्भस्योत्पत्तिरिति भावः। **लयमिति।** लीयतेऽस्मिन्निति लयः। मध्यमावैखरीरूपं तदुभयमस्मिन्नेव पश्यन्तीरूपे(ण?) लीयत इति भावः। **स्थूलसूक्ष्मविभेदेनेति।** स्थूलं च सूक्ष्मं च स्थूलसूक्ष्मम्। किमुक्तं भवति? पश्यन्तीकार्यरूपं वैखरीमध्यमाद्वयं स्थूलसूक्ष्मम्। तत्र मध्यमा सूक्ष्मं रूपम्, वैखरी स्थूलं रूपमिति भावः। तदुभयकारणं पश्यन्तीरूपं परमित्यर्थात् सिद्धम्। एवं परसूक्ष्मस्थूलभेदेन शरीरे वर्णक्रमः संव्यवस्थित इति प्रागीषत् सूचितं त्वया। तदिदानीं प्रकटीकुरु हे परमेश्वर! इति यावत्।।१-२।।

सेतुबन्धः

श्रीगुरुपादुका विजयतेतराम्। एवं सार्धाष्टाविंशत्या श्लोकैर्घटितेन तृतीयपटलेन मुद्रास्वरूपं निर्वर्ण्य चक्रसाधने सपरिकरे समाप्तेऽवसरप्राप्तं मन्त्रसाधनं विवक्षुस्तस्य कूटत्रयात्मकतया ततः पूर्वं विशेषणज्ञानविधयोपस्थितानां कूटानां प्रातिस्विकं साधनं वक्तुकामस्तेषां साधनविषये तत्स्वरूपनिरूपणायान्येष्वपि विषयेषु प्रश्नमवतारयति द्वाभ्याम्—

ज्ञानमिति करणे ल्युट्। महादेव्याः श्रीमहाविद्यायाः। एकैकस्याक्षरस्य कूटस्य साधनं प्रत्येकसिद्धिप्रकारम्। महच्च तज्ज्ञानं च महाज्ञानम्। ज्ञानज्ञेययोरभेदाभिप्रायेणेत्थमुक्तम्। महज्ज्ञानं यस्य तमिति वा। ज्ञाने महत्त्वं च स्वसिद्ध्युत्तरं ज्ञातव्यांशानवशेषात्। 'यस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्' इति श्रुतेः। प्रभावं ज्ञानमाहात्म्यम्। व्याप्तिं विश्वात्मना परिणामम्।

स्थानं जगतः स्थितिम्। भवं जन्म। लयं संहारम्। भवस्थानयोश्छन्दोनुरोधेन वैपरीत्येनोक्तिः। शरीरे इति द्विवचनम्। तेनैत एकादश प्रश्नाः। चकारोऽनुक्तसमुच्चायकः। तेन करशुद्ध्यादिविद्यानां साधनादिकमायुधमन्त्रादिकं च कथयेत्यर्थः।

अत्रेदं बोध्यम्—धौतोऽतिश्वेतः सुसूक्ष्मतमो महार्हो महापट इव निर्गुणः परशिवः। तस्यैवातिश्वेतेनान्नरसेन सर्वांशे लेपेन घनतापादने स एत घटित इत्युच्यते। तत्तुल्यः शक्तियुक्त उच्यते। तत्रैवं करिष्यमाणचित्रानुगुण्येन सूक्ष्माकारेण लाञ्छनाल्लाञ्छितो भवति। तत्तुल्यः सूक्ष्मसृष्टिविशिष्टः परशिवः सूत्रात्मेत्युच्यते। ततो विविधरञ्जनेन योगाद् रञ्जितः पटो विराट्पुरुषो भवति। अत्र परशिवाख्यं परब्रह्म स्वभावादनन्तशक्तिकम्। तदुक्तं ज्ञानवासिष्ठे—'सर्वशक्तिपरं ब्रह्मनित्यमापूर्णमव्ययम्' इत्यादि। तद्गतशक्तिकदम्बसमष्टिरेव त्रिपुरसुन्दरी। 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्विगूढाम्' इत्यादिश्रुतिभिः शक्तिशक्तिमतोरभेदाच्च न ब्रह्मणो निर्धर्मकत्वभङ्गः। तदुक्तं श्रीपद्मपादाचार्यैः—आनन्दो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति सन्ति धर्माः। अपृथक्त्वेऽपि चैतन्यात्पृथगिवावभासन्त इति। अत एव तादृशशक्तिविशिष्टमेव परं ब्रह्मेति तान्त्रिकसिद्धान्तः। तेन शक्तेरपि ब्रह्मकोटावेव निवेशः। संक्षेपशारीरकेऽपि—'चिच्छक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते' इति।

ततश्च शुद्धपटस्येव लाञ्छनाद्यसम्भवात्सान्द्रत्वापादिकाया अन्नरसस्थानीयायाः शक्तेरेव सृष्टिजनकत्वम्। परशिवस्य सान्निध्यमात्रेणैव कारणत्वं यत्तु कारणतावच्छेदकतायाः पर्याय एव। ततश्च शिवनिष्ठा शक्तिरेव सृष्ट्यात्मना परिणमते। यथा चास्मिन्पक्षे विवर्तवादिभिरुद्भावितानि दूषणान्यलग्नकानि स्युस्तथा वरिवस्यारहस्यादौ विस्तरः। अत्रान्नरसस्य पटे सर्वांशेन सम्बन्धो जनिष्यमाणसृष्टिद्वयात्मना परिणामश्च व्याप्तिः। लाञ्छनं सूक्ष्मं शरीरम्। रञ्जनं स्थूलम्। द्वयोः शरीरयोराद्यक्षणं सम्बन्धो भवः। तयोः किञ्चित्कालमवस्थानम्। सूक्ष्मशरीरमेवोत्पत्तिः स्थूलशरीरमेव स्थितिरिति वा। चित्रस्य क्षालनेन पुनः पटस्यान्नरसगन्धमात्रविशिष्टत्वेनावस्थानं लयः। एवंप्रकारेण तत्त्वानुभवो महाज्ञानम्। तत्फलरूपो मोक्षः प्रभाव इति विवेकः। केचित् तु—महाज्ञानं प्रकाशः। प्रभावो विमर्शः। व्याप्तिस्तयोः सामरस्यम्। स्थानं परा वाक्। भवः पश्यन्ती। लयो मध्यमा। स्थूलशरीरं वैखरीति व्याचक्षते। तत्र मूलं मृग्यम्।।१-२।।

महाज्ञाननिरूपणम्

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि महाज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमं परम्।
येनानुष्ठितमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति ।।३।।

हे देवि! सब ज्ञानों में उत्तम परतत्त्वविषयक महाज्ञान सुनो। इस ज्ञान का उदय होने मात्र से साधक संसार सागर में अब निमज्जित नहीं होता।।३।।

महाज्ञानं—विद्यानन्द महाज्ञान का अर्थ करते हैं—परम प्रकाश-विमर्शरूप वर्णक्रमादिभूत

पश्यन्तीमय शिव का स्वरूपज्ञान। **सर्वज्ञानोत्तमं**—विद्यानन्द के मत से संसारमोचकत्व-हेतु यह ज्ञान सर्वज्ञान में उत्तम है। **अनुष्ठितमात्रेण**—भास्करराय अर्थ करते हैं—उदय होने-मात्र से। **भवाब्धौ न निमज्जति**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि उक्त प्रकार का ज्ञान-प्राप्त साधक संसार में रहकर भी संसारक्लेश का अनुभव नहीं करता।।३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शृण्वित्यादि। महाज्ञानं संसारक्लेशहरत्वात्। सर्वज्ञानोत्तमं सर्वेषां ज्ञानानामुत्तमम्, अनुभवारूढत्वात्। अनुष्ठितमात्रेण अनुसंहितमात्रेण। न निमज्जति व्यवहरन्नपि संसारक्लेशं नानुभवति। जीवन्मुक्तत्वादित्यर्थः। अत्राभियुक्तवचनम्—

संसार एव निवसन् जनो व्यवहरन्नपि।
न बन्धनं तथाप्नोति पद्मपत्रे पयो यथा।। इति।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञायामपि—

सर्वो ममायं विभव इत्येवं परिजानतः।
विश्वात्मनो विकल्पानां प्रसरेऽपि महेशता।। इति।
(४.१.१२)

श्रीपरमार्थसारेऽपि—

भिन्नाज्ञानग्रन्थिर्गतसन्देहः पराकृतभ्रान्तिः।
प्रक्षीणपुण्यपापो विग्रहयोगेऽप्यसौ मुक्तः।।
अग्न्यभिदग्धं बीजं यथा प्ररोहासमर्थतामेति।
ज्ञानाग्निदग्धमेकं कर्म न जन्मप्रदं भवति।। इति।
(६१-६२)

* अर्थरत्नावली *

शृणु देवीत्यादि। महाज्ञानं परमप्रकाशविमर्शरूपस्य वर्णक्रमादिभूतपश्यन्तीमयस्य शिवस्य स्वरूपज्ञानमिति भावः। **सर्वज्ञानोत्तममिति।** सर्वेषां तत्त्वज्ञानानां मध्ये एतदेवोत्तमं संसारमोचकत्वादिति। **येनेत्यादि।** येनानुष्ठितमात्रेण भवाब्धौ संसारसागरे न निमज्जति न निपततीति यावत्।।३।।

* सेतुबन्धः *

सर्वेषां परिणामानां ज्ञानान्यपेक्ष्योत्तमं परिणामिविषयकं महाज्ञानम्। परं परतत्त्वविषयकं शृणु। येन ज्ञानेन। अनुष्ठितमात्रेण, उदितमात्रेण। तादृशज्ञानस्य सहकार्यन्तरानपेक्षणादिति भावः।।३।।

त्रिपुराभिव्यक्तिप्रकाराः

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या ज्ञानादितः प्रिये।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका ।।४।।

हे प्रिये! त्रिपुरा परमा शक्ति हैं। ये आद्या हैं। ज्ञान-ज्ञातृ-ज्ञेयरूपिणी त्रिपुटी कल्पना-क्षमा है। स्थूल त्रैलोक्य और सूक्ष्म त्रैलोक्य की उत्पत्तिमातृका हैं।।४।।

त्रिपुरा—इसकी व्याख्या में विद्यानन्द का कथन है कि त्रि अर्थात् त्रितत्त्व, त्रिबिन्दु। उससे पुरा अर्थात् पूर्वस्थिता। **परमा**—विद्यानन्द के अनुसार विश्वोत्तीर्णा। **शक्ति:**—शिवानन्द के मत से यहाँ शक्ति का अर्थ है—सर्वसाधिका। मायालक्षण-विनोदिनी। विद्यानन्द शक्ति का अर्थ 'सामर्थ्य' बताते हैं। **आद्या**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—प्रथमोन्मेषरूपा। विद्यानन्द के अनुसार अर्थ है—वर्णसमूह की आदिभूता, कारणरूपा। भास्करराय कहते हैं कि कोई-कोई आद्या का अर्थ करते हैं—ज्ञान-इच्छा क्रियात्मक शक्तित्रितय की आद्या, तत् समष्टिरूपा शान्तात्मिका। **ज्ञानादित:**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं ज्ञान-ज्ञातृ-ज्ञेयरूप त्रिपुटित। वे कहते हैं कि कोई-कोई 'ज्ञाना आदित:' इस प्रकार से सन्धि-विच्छेद करके ज्ञाना तथा आदित: को पृथक् कर देते हैं। इनके मत से ज्ञाना अर्थात् ज्ञानरूपा। ज्ञाना त्रिपुरा का विशेषण है। आदित: का अर्थ है—सर्वादिभूत व्रह्म से। शिवानन्द 'आदित:' का अर्थ करते हैं 'महाप्रकाशरूप अनुत्तर शिव से। **स्थूलसूक्ष्मविभेदेन**—स्थूल तथा सूक्ष्मभेद से। शिवानन्द के मत से स्थूल अर्थात् कला-तत्त्व-भुवन अभिधेयरूप अर्थत्रिक तथा सूक्ष्म अर्थात् वर्ण-पद-मन्त्र—यह अभिधानरूप शब्दत्रिक। विद्यानन्द के मत से स्थूल अर्थात् वैखरी, सूक्ष्म अर्थात् मध्यमा। **त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका**—त्रैलोक्य की उत्पत्तिमातृका अर्थात् कारणभूता। शिवानन्द 'त्रैलोक्य' का अर्थ करते हैं—कर्त्तृ-करण-कर्म-व्युत्पत्तिहेतु लोक-लोकन-लोका-आत्मक प्रपंच अर्थात् ३६ तत्त्वसमुदाय। विद्यानन्द के मत से 'त्रैलोक्य' शब्द का अर्थ धामत्रय है अर्थात् सोम-सूर्य-अग्नि। उसकी उत्पत्तिमातृका अर्थात् जननी। उन्होंने त्रैलोक्य शब्द का अन्य अर्थ भी किया है। जैसे—त्रिवीजात्मक प्रकाश त्रैलोक्य। वैखरीरूप वाग्भवबीज, मध्यमारूप कामराजवीज तथा पश्यान्तीरूप शक्तिबीज—इस प्रकार से त्रिबीजात्मक प्रकाश। इसकी उत्पत्तिकारिणी मातृका।।४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

परमा। पारम्यं सर्वोत्कृष्टत्वम्। शक्ति: सर्वधारिका मायालक्षणा विमोहिनी। आद्या प्रथमोन्मेषरूपा। जाता व्यक्तिं गता। आदित:। महाप्रकाशरूपाऽनुत्तरशिवात्मन: स्वरूपभूता विमर्श-शक्ति(:) बी(जोच्छून्या?जादुच्छूना)दिव महास्फुरत्तात्माऽनुभवैकगम्या स्पन्दशक्तिरुज्जृम्भितेत्यर्थ:। स्थूलसूक्ष्मविभेदेन। स्थूलं कलातत्त्वभुवनाभिधेयरूपार्थत्रिकम्, सूक्ष्मं वर्णपदमन्त्राभिधानरूपशब्दत्रिकम्, तयोर्विभेदेन, तत्तद्रूपेणेत्यर्थ:। अथवा स्थूलं कार्यं पृथिव्यापस्तेजो वायुर्नभ इति। सूक्ष्मम् एषामेव रूपम् गन्धो रसो रूपं स्पर्श: शब्द इति। त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका। कर्तृकरणकर्मव्युत्पत्त्या लोकलोकनलोक्यात्मा प्रपञ्च: षट्त्रिंशत्तत्त्वसमुदाय:। त्रिलोक एव त्रैलोक्यम्। तस्योत्पत्तौ समुदये मातृभूता कारणभूता।।४।।

※ अर्थरत्नावली ※

त्रिपुरा परमेत्यादि। त्रिभ्यः पुरा त्रिपुरा। त्रिबिन्दुत्रितत्त्वेभ्यः पुरा पूर्वं स्थितेति भावः। कोऽभिप्रायः? त्रिवृत्करणात् प्रागियं केवलमाकाशाकारपरमकाम्यरूपातत्कामान्तरस्थितेति भावः। सा परमा विश्वोत्तीर्णा। शक्तिरिति सामर्थ्यम्। तस्याद्यशिवस्यान्तर्गतविमर्शरूपेति भावः। **आद्येति।** त्रिपुरा वर्णानामादिभूता कारणरूपा सेयमकारहकारकामकलापर्यायप्रकाशविमर्शरूपाऽपीति यावत्। **जातादितः प्रिये! इति।** अभिव्यक्ताद् हकारात्मकाच्छिवात्। कोऽभिप्रायः? इच्छादिचतुष्कला समष्टिरूपिणी त्रैलोक्योत्पत्तिकारिणी केवलहकारात्मिका शक्तिराद्या वामादिचतुष्कलासम्पिण्डितरूपिणी आदितो वस्तुरूपादङ्कुररूपेण व्यक्तिं गतेति भावः। स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकेत्यस्यायं भावः—अकारहकारौ वर्णक्रमस्याद्यन्तौ। तत्समष्टिसमरसभावेन रुद्रसंख्यपरमामृतमयं पश्यन्तीरूपं परमिति सुसिद्धवत् कृत्वा तदुत्तरयोर्मध्यमावैखर्योः सूक्ष्मस्थूलतां व्यपदिश्यैवं परसूक्ष्मस्थूलवर्णाङ्कुरा आद्यशक्तिरेव सप्तषष्टिवर्णरूपिणी त्रैलोक्योत्पत्तिकारिणी मातृका। लोक्यतेऽनेनेति लोकस्त्रैलोक्यम्। धामत्रितयस्योत्पत्तिर्मातृकाचक्रादिति तथोच्यते। एवं सप्तषष्टिवर्णरूपिणी त्रिधामजननी जातेति सम्बन्धः। अथवा रसाधारस्थवर्णकदम्बकं त्रिबीजसम्बन्धि त्रिधा विभक्तं कुर्यात्। अथवा वैखरीरूपं वाग्भवबीजम्, मध्यमारूपं कामराजम्, पश्यन्तीरूपं शक्तिबीजमिति। एवं त्रिबीजात्मकः प्रकाश एव त्रैलोक्यमित्यर्थः। तस्योत्पत्तिकारिणी मातृकेति यावत्। अनेन शरीराभ्यन्तरे भङ्ग्या उपासनाप्रकारोऽपि दर्शितः।।४।।

परमा शक्तिरिति सामानाधिकरण्याद् बीजापूरवदकारात्मनः शिवात् कारणात् तथैंकरसविमर्शात्मकहकारापरपर्यायकामकलारूपेण या जाता परिणता। अयं भावः—वामादिचतुष्कलासम्पिण्डितरूपादकारादङ्कुररूपेणेत्यादि चतुष्कलासमष्टिरूपिणी केवलहकारात्मकी शक्तिः प्रकाशादुल्लसन्ती या जातेति यावत्। **स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृकेति।** अत्र लोकशब्द आलोकपर्यायः। प्रकाशपर्याय इत्यर्थः। अकारहकारयोश्च-तुष्कलाश्रयावयवाद् व्यष्ट्या सामरस्ये तत्त्रिविधप्रकाशपर्यायालोकवत् पश्यन्तीरूपसूक्ष्मतया परमिति सिद्धवत्कृत्वा पुनर्मध्यमावैखर्योः सूक्ष्मस्थूलभावात् परसूक्ष्मस्थूलाकारं त्रिधा भिन्नं शिवशक्तिलोकनं शिवशक्त्यभिन्नं तथा चाव्यक्तैकादशाक्षरानन्तरसमयं पश्यन्तीवाग्रूपं नवनादात्मसूक्ष्मवर्णमध्यमावाग्रूपं सप्तचतवारिंशद्व्यक्तिलिपिविप्रकीर्णं वैखरीवाग्रूपमितीदं त्रिधा लोकनमित्येव त्रयस्त्रिलोकत्रिप्रकारास्तेषां समुदायस्त्रैलोक्यम्, तस्योत्पत्तौ मातृका कारणभूता शिवशक्तिरित्यर्थः। त्रिवृत्करणवृन्दमेवेदमपि ज्ञातव्यम्। अन्यच्च रसाधारबीजं पश्यन्तीरूपं चेत्यपि शरीरान्तर्वर्णचक्रं त्रिबीजवत् प्रकाशवत् स्यात्। एवं वर्णक्रमस्य शरीरान्तरुपासनाप्रकारो दर्शितः।।४।।

※ सेतुबन्धः ※

सर्वस्य जगतः प्रलयकालस्यावधिपर्यन्तं हि विनष्टप्राणिनां कर्माणि सूक्ष्मरूपेणान्तर्निगीर्यैकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तिष्ठति। तत्परिपाकवैचित्र्यवशादेव हि सिसृक्षादिरूपा ब्रह्मशक्तिः पूर्वमव्यक्ततया स्थिताऽपि तदा व्यक्तीभवति। सेयमेव त्रिपुराख्या परमा शक्तिः सृष्टेराद्या प्रथमा कारणभूतेति यावत्। ततोऽप्याद्यं यद्यपि परं ब्रह्मास्ति, तथाऽपि तत्प्रलयप्रथमक्षणमारभ्य तच्चरमक्षणपर्यन्तं

विद्यमानमपि न सृष्टिक्षममासीत्। इयं तु सिसृक्षादिरूपा शक्ति: स्वयं व्यक्ता सत्युत्तरोत्तरं सृष्टिं व्यधादित्याशयेनास्या एवाऽऽद्यत्वेन व्यपदेश: कृत:। इयं शक्तिरिच्छारूपाऽपि निर्विषयकचिन्मात्रभवत्वात् तद्रूपाऽपि भवति। इयमेव हि ज्ञेयज्ञात्रादित्रिपुटीकल्पनक्षमेत्यत उक्तं ज्ञानादित इति। ज्ञानज्ञातृज्ञेयरूपत्रिपुटीत इत्यर्थ:। अत एव त्रिभ्य: पुरेतिव्युत्पत्तिध्वननाय त्रिपुरापदेन विशेष्यनिर्देश:। ज्ञानेति भिन्नं पदं त्रिपुराया विशेषण्। ज्ञानरूपेति तदर्थ:। आदित इत्यस्य सर्वादिभूताद् ब्रह्मण: सकाशादित्यर्थ इति तु केचित्। ज्ञानेच्छाक्रियात्मकशक्तित्रितयस्याऽऽद्या तत्समष्टिरूपशान्तात्मिकेत्यर्थ इति अन्ये। सेयं शक्ति: स्लक्ष्यमाणसूक्ष्मत्रैलोक्यस्थूलत्रैलोक्ययोरुत्पत्तौ मातृका माता तज्जनिकेति यावत्। केचित् तु त्रैलोक्यं विद्याकूटत्रयं तदुत्पादिका मातृका स्थूलसूक्ष्मभेदेन वैखरीमध्यमादिभेदेन द्विविधा ज्ञानादितो हकाररूपशिवाज्जातेत्यर्थ इत्याहु:।।४।।

कवलीकृतनि:शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी ।
तस्यां परिणतायां तु न कश्चित्पर इष्यते ।।५।।

तत्त्वसमुदाय को नि:शेष कवलीकृत करती हैं, ऐसे स्वरूप वाली जो विमर्शशक्ति मातृका हैं। विकासमख प्राप्त होने पर विमर्श पदवी के अतिरिक्त अन्य कोई परमेश्वर ईप्सित नहीं है। अर्थात् उनकी आवश्यकता नहीं है।।५।।

कवलीकृतनि:शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं कि प्रलयकाल में नि:शेष तत्त्वसमुदाय अर्थात् ३६ तस्वसमूह को कवलीकृत अर्थात् अन्त:कृत करती है, ऐसे रूप वाली। षट्त्रिंशत्तत्त्व त्रिविध है—अशुद्ध, शुद्धाशुद्ध तथा शुद्ध। आरोहक्रम से पृथ्वीतत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक अशुद्ध है, शुद्धविद्यातत्त्व से लेकर सदाशिव तत्त्व तक शुद्धाशुद्ध है और शक्तितत्त्व एवं शिवतत्त्व शुद्ध हैं। ३६ तत्त्व वाच्य है। तन्त्रमत से वाच्य-वाचक में भेद नहीं है। ये वाच्यरूप तत्त्वसमूह को वाचकरूप वर्ण में अन्त:कृत करते हैं कि शिवानन्द आलोच्य श्लोकार्ध का यह तात्पर्य निर्देश करते है। बीज में अंकुर-काण्ड-पत्र-पुष्प-फल के समान शक्ति में कार्यरूप प्रपञ्च सद्रूपेण वर्त्तमान है।

परिणतायां—विकास दशा प्राप्त है। विद्यानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं कि जो परमप्रकाशरूपा चित् शक्ति हैं, वे ही वाचक तथा वाच्यभेद से वर्ण तथा तत्त्व रूप से विभक्ता तथा संकुचिता होकर कुलाभिमानिनी हो जाती हैं। वे पुन: जब वर्ण-पद-मन्त्र एवं कला-तत्त्व-भुवनरूप षड्भेद-विशिष्ट षडध्वा विलापनकारयित्री हो जाती है; नाम-गुण-जातिलक्षण से अतीता परम प्रकाश भूमिका में प्रविष्टा हो जाती हैं, तब विकास दशा प्राप्त (परिणता) हो जाती हैं। विद्यानन्द इस सम्बन्ध में 'संकेतपद्धति' से इस वचन को उद्धृत करते हैं—'सङ्कोच: परमा शक्तिर्विकास: परम: शिव:।' परमाशक्ति हैं—संकोच तथा

परमशिव हैं—विकास। **परः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—विमर्श पदवी–व्यतिरिक्त अविमृष्टरूप। **न कश्चित् पर इष्यते**—विद्यानन्द इस श्लोकार्ध के अन्तर्निहित भाव की यह व्याख्या करते हैं—उक्त प्रकार लक्षण-विशिष्ट विमर्श शक्त्यात्मक परमेश्वर हैं। वे कभी शक्तिस्वरूप से विच्युत नहीं होते। यदि कभी होते भी हैं, तब परमेश्वर नहीं रह जाते। तब वे जड़त्व प्राप्त रहते हैं। अतएव सिद्धान्त है कि परमेश्वर शक्त्यात्मक ही हैं, अन्य नहीं हैं; क्योंकि शिव-शक्ति का नित्य तादात्म्य, अविनाभाव सम्बन्ध है। विकास भाव प्राप्त विमर्श शक्ति ही प्रकाशरूप परमशिव हैं। अतएव उनसे व्यतिरिक्त अन्य कुछ की आकांक्षा नहीं रह सकती ।।५।।

* ऋजुविमर्शिनी *

कवलीकृतेति। कवलीकृतो ग्रासीकृतः, निःशेषो निरवशेषः, तत्त्वग्रामस्तत्त्वानां समुदायः। तानि च शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषप्रकृतिमनोबुद्ध्यहङ्कारश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्निसलिलभूमयः। अयमर्थः—बीजावस्थायामङ्कुरकाण्डपत्रपुष्पफलादिवच्छक्त्यवस्थायामन्तः सदात्मना वर्तते कार्यरूपः प्रपञ्च इति। **अस्यामिति**। अस्यां विमर्शाख्यायां शक्तौ। परिणतायां विकासभावमापन्नायाम्। परो विमर्शपदवीव्यतिरिक्तोऽविमृष्टरूपः। अयं भावः—विमर्शाख्यायामस्यां शक्तौ षडध्वस्फारमयषट्त्रिंशत्तत्त्वगर्भमहाहन्तापरामर्शमहाविभूतिरूपप्रपञ्चात्मना महाविकासभावमापन्नायामेतत्स्थितिव्यतिरिक्तः कश्चिदस्तीति वादोऽयमनुपपन्न इति। यमर्थस्तुना द्योत्यते। किञ्चावभासस्य शिवस्य विमर्श एव स्वभावः। तदुक्तं महागुरुभिः—

स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः।। इति।। ५।।

(ई० प्र० १.५.११)

* अर्थरत्नावली *

कवलीकृतनिःशेषेत्यादि। अशुद्ध-शुद्धाशुद्ध-शुद्धात्मना त्रिविधतत्त्वानि वाच्यभूतानि। तस्य वाचकत्वाभेदेन त्रिवृत्कृतो वर्णक्रमः स्थित इति कृत्वा सा मातृका तथोच्यते। तथात्वमपि प्रकाशात्मनस्तत्त्वसमूहस्य विमर्शात्मना वाचकत्वेन सदाऽविभागात्। **तस्यामित्यादि**। परिणतायां विकासभावमागतायाम्। कोऽर्थः? परमप्रकाशरूपा या चिच्छक्तिः सैव वाच्यवाचकभेदेन वर्णतत्त्वरूपेण विभक्ता सङ्कुचितेव कुलाभिमानिनी स्थिता। सैव पुनर्वर्णतत्त्वषड्भेदसम्भेदनद्वारेण षडध्वं प्रविलापयन्ती नामगुणरूपजातिलक्षणातीतपरमप्रकाशभूमिकामाढौकते यदा, तदा विकासदशां गता परिणता भवतीति भावः। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—
सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमः शिवः। इति।

न कश्चित् पर इत्यादेरयं भावः—तदेवंलक्षणविमर्शशक्त्यात्मक एव परमेश्वरो न कदाचिदपि शक्तिस्वरूपं व्यभिचरति। यदि व्यभिचरतीत्युच्यते, तर्हि न स परमेश्वरः, जडत्वापातात्।

तस्माच्छक्त्यात्मक एव परमेश्वरो नान्य इति सिद्धम्। तदुक्तम्—

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः। इति। (स० म०)

अन्यच्च—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।। इति। (बो० प० ३)

कवलीकृतेत्यादि। शुद्धमिश्राशुद्धात्मना त्रिवृत्कृतस्य तत्त्वसमुदायस्य वाच्यरूपस्य वाचकत्वेन कवलीकृतस्त्रित्कृतो वर्णक्रम इति। कवलीकृतो ग्रासीकृतः। निःशेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी सा विमर्शशक्तिर्मातृका च जायत इति। **तस्यामित्यादि।** परिणतायां विकासभावं गतायाम्। कोऽर्थः? परमप्रकाशरूपा या चिच्छक्तिः सैव तत्त्ववर्णस्वरूपवाच्यवाचकभावेनविभक्ता सङ्कुचितैव कुलाभिमानिनी स्थिता। पुनरपि विभक्तानुग्रहभाववर्णतत्त्वषड्भेदनिर्भेदनक्रमेण षडध्वं विलापयन्ती नामगुणरूपजातिलक्षणातीता परप्रकाशभूमिकामाढौकते यदा, तदा विकाशदशां गता परिणता। उक्तं च—

सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमः शिवः। इति।

पर (इत्यादेः) अयं भावः—विमर्शशक्त्यात्मक एव परमेश्वरो न कदाचिदपि पदार्थात्मतां व्यभिचरति। फलभेदारोपितभेदः पदार्थात्मा शक्तिरिति प्रसिद्धः। यदस्या व्यभिचरति निस्सारो न परमेश्वरः, जडत्वापातात्। तस्माच्छक्त्यात्मक एव परमेश्वरो नान्य इति प्रसिद्धम्। तदुक्तम्—

शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः। इति। (स० म०)

* सेतुबन्धः *

ननु प्रलयकालेऽनुपलभ्यमानयोस्त्रैलोक्ययोरुत्पत्तिर्न सम्भवति। सम्भवे वा शशशृङ्गादेरपि तथात्वाविशेषादुत्पत्त्यापत्तिरित्यत आह—प्रलयकाले कवलीकृता निगीर्णा निःशेषास्तत्त्वग्रामाः षट्त्रिंशत्तत्त्वसमूहा येन तादृशस्वरूपवती। ततश्च सूक्ष्मरूपेण स्वान्तःस्थितमेव विश्वं सृष्टिकाले प्रकटयति नान्यत्। तदुक्तं भगवता वसिष्ठेन—

यथाऽण्डान्तर्जले बर्ही सर्वाऽस्तीदं तथाऽऽत्मनि।
फलपत्रलतापुष्पशाखाविटपमूलवान् ।।
वृक्षबीजे यथा वृक्षस्तथेदं ब्रह्मणि स्थितम्। इति।

तथा च फलवशेन शशशृङ्गादेः संस्काररूपेणाप्यसत्त्वकल्पनया न तदुत्पत्तिप्रसङ्ग इति भावः। ननु निखिलं विश्वं कवलयन्त्याः शक्तेरपि सूक्ष्माकारेण परशिव एव निलीनतया सशक्तिकजगत्कारणत्वेनाभ्युपगन्तव्येन परेणैवो-पपत्तेः किमन्तर्गडुना शक्तिकल्पनेन तद्धेतोरेवास्तु तद्धेतुत्वं किं तेनेतिन्यायविरुद्धेनेत्यत आह—तुशब्दः पूर्वपक्षव्यावर्तक आवश्यकत्वव्यञ्जकश्च। शक्तिपरिणामकल्पनस्याऽऽवश्यकत्वेन तत एवोपपत्तेः प्रत्युत परशिवकल्पनमेव व्यर्थत्वान्नेष्यत इत्यर्थः। अयं भावः—औपनिषदानां पक्षस्तु परस्य चिद्रूपस्य ब्रह्मणः शक्तिर्मायाख्या। सा च जडैव। सैव च जगतः परिणाम्युपादानम्। परं ब्रह्म तु विवर्तोपादानम्। अत एव जगतोऽपि मायिकत्वाज्जडत्वं मिथ्यात्वं च। अद्वैतश्रुतयस्तु—पारमार्थिकव्यक्तिरेकैवेत्येवंपराः। सर्वं ब्रह्मेतिसामानाधिकरण्यं तु बाधायामित्यादिः। तान्त्रिकाणां पक्षस्तु—परचिन्निष्ठा या

चिच्छक्तिरौपनिषदानामपि सम्मता सैवानन्तरूपत्वात् मायेत्युच्यते। 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते', 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इत्यादिश्रुतेः। तत्परिणाम एव प्रपञ्चः। अत एव च चिद्रूपः। 'चिद्विलासः प्रपञ्चोऽयम्' इति ज्ञानवासिष्ठात्। अत एव च सत्योऽपि। सर्वं ब्रह्मेतिसामानाधिकरण्यस्यात्यन्ताभेद एव स्वारस्यात्। न चाद्वैत श्रुतिविरोधः। विरोधापादकस्यैकस्य भेदस्यैव मिथ्यात्वाङ्गीकारादित्यादिः। प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। आत्मकृतेः परिणामात्। तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य इत्यादिवैयासिकसूत्राणामप्यस्मिन्नेवार्थे स्वरस इति स्पष्टमेव। एवं च पक्षद्वयेऽपि प्रपञ्चकारणतया शक्तेरावश्यकत्वे परशिव एवान्तर्गडुत्वान्नौपनिषदैः कल्प्यः। नहि घटं प्रति परिणामिमृत्तिकापेक्षया विवर्तरूपं किञ्चित्कारणान्तरमुपलभामहे। अत एवैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेनेत्यादिदृष्टान्तप्रदर्शनं श्रुतिषूपपद्यत इति।।५।।

पराशक्तिमन्तरा शिवस्य शवप्रायत्वम्

परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन।
शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेत्।।६।।

परमेश्वर जब शक्तिविरहित हों, तब कुछ भी नहीं कर सकते। हे परमेशानि! जब वे शक्तियुक्त होते हैं, तभी कुछ करने में समर्थ होते हैं।।६।।

परः—विद्यानन्द अर्थ करते हैं—परमेश्वर। **हि**—कारण। पूर्वश्लोक में जो 'न कश्चित् पर इष्यते' यह सिद्धान्त कहा गया है, यहाँ उसका कारण-प्रदर्शन किया गया है। **किञ्चन**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—सृष्ट्यादि कर्म में से कुछ। इस श्लोक की व्याख्या में टीकाकार गण जो कहते हैं, उसका सारांश यह है कि शिव शक्त्यात्मक हैं। शिव शक्ति में भेद नहीं है। भेद स्वीकार करने से जगत् अनीश्वर हो जायेगा; क्योंकि शक्तिरहित शिव में नियमन सामर्थ्य नहीं रहता। शिव-शक्त्यात्मकता को अंगीकृत करने पर ही शिव सृष्ट्यादि सब कर्म कर लेते हैं। वास्तव में शक्ति ही सृष्टि आदि सब करती हैं। देवीभागवत में कहा भी है—

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्।।

अर्थात् शक्ति निखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि तथा पालन करती हैं। वही चराचर जगत् का इच्छा द्वारा संहार करती है।।६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शक्तिरहितः परोऽस्तीत्यस्मिन् पक्षे दूषणमाह—**परो हीति**। परः परमेशः। हिर्हेतौ। शक्तिरहितः शक्त्या वैभवेन रहितः। **शक्तः कर्तुं न किञ्चनेत्यस्यायमर्थः**—सृष्ट्यादिषु कर्मसु मध्ये न किञ्चिदपि कर्म सम्पादयितुं शक्नोति, असमर्थत्वादिति। शक्तिवैधुर्यपक्षे त्वकर्तृतामुक्त्वा

शक्तिमत्पक्षे कर्तृतामाह—**शक्तस्त्विति**। शक्त्या विमर्शाख्यया स्वाभाविक्या संविदा, युक्तः सम्मिलितः, समरसीभूत इत्यर्थः। तदुक्तम्—'शक्तयोऽस्य जगत्कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः' (स० म०) इति। पञ्चदशिकायामपि—

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।। इति। (बो० प० ३)

शिवसूत्रेऽपि—'स्वशक्तिप्रचयो विश्वम्' (३.३०) इति। श्रीविज्ञानभैरवेऽपि—

शक्तिशक्तिमतोर्यस्मादभेदः सर्वदा स्थितः।
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् परा शक्तिः परात्मनः।।
न वह्नेर्दाहिका शक्तिर्व्यतिरिक्ता विभाव्यते। इति च। (१८-१९)

* अर्थरत्नावली *

परो हि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन इति। शक्त्या (अर्थः ? युक्तः) शिवो नान्य इति प्रतिज्ञातं परमेश्वरेण। इदानीं हेतूपन्यासेन तमर्थं समर्थयति। परः परमेश्वरः। शक्तिरहितः शक्त्या रहितश्चेत्। किञ्चन स्वल्पमपि। कर्तुं न शक्तः। अशक्तत्वादिति यावत्। कोऽर्थः? शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभ्युपगमपक्षेऽनीश्वरं जगदापद्येत, तन्नियमनसामर्थ्याभावादिति। शक्तस्तु परमेशानि शक्त्या युक्तो यदा भवेदित्यस्यायमर्थः—यदा पुनः स परमेश्वरः शक्त्यात्मकोऽभ्युपगम्यते, तदाऽसौ सर्वजगद्रचनासमर्थो भवति।।६।।

परो हीत्यादि शक्त्यात्मकत्वहेतूपन्यासेन समर्थयति। परः परमेश्वरः। शक्तिरहितः शक्तिहीनश्चेत्। न किञ्चन न स्वल्पमपि कर्तुं शक्तः। शक्तिरहितत्वादिति यावत्। शक्ति-शक्तिमतोः शक्तीश्वरयोर्भेदाभ्युपगमे जगदनीश्वरत्वमापाद्यते, तस्य नियमनसामर्थ्याभावात्। **शक्तस्त्वित्यादि**। यदा शक्त्यात्मक एव शिव इत्यभ्युपगम्यते, तदा हि शक्तः सर्वजगन्निर्माणादिसमर्थो भवति।।६।।

* सेतुबन्धः *

ननु दाहकत्वादिशक्तेर्वह्न्यादिनिष्ठताया दर्शनेन धर्मिणमन्तरेण धर्मरूपायाः शक्तेरवस्थानायोगेन शक्तित्वनिर्वाहायैव धर्मी परशिवः कल्पनीय इत्यत आह—अयं भावः—न वयं शक्तिव्यसनितया कल्पयामः। अपि तु क्षित्यादिप्रपञ्चस्य कार्यत्वेन कारणमन्तरेण तदयोगात्। तार्किका अपि क्षित्यादेः सकर्तृकत्वं कार्यतयैवानुमिमते। औपनिषदानामप्ययमेवार्थः सम्मतः। यदाहुः भूतपञ्चकविवेके विद्यारण्यश्रीपादाः—

निस्तत्त्वा कार्यगम्याऽस्य शक्तिर्मायाऽग्निशक्तिवत्।
नहि शक्तिं क्वचित्कश्चिद् बुध्यते कार्यतः पुरा।। इति।

ततश्च कार्यत्वान्यथानुपपत्त्या कल्प्यमानः परशिवो निर्धर्मकश्चेदनुपपत्तेरपरिक्षयात् तत्रैका शक्तिरपि तत्परिक्षयाय कल्पनीयैव। उक्तं च देवीभागवते—

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्।।

न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः।
न सूर्यो वरुणः शक्ताः स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन।।
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
कारणं सैव कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते।।

इत्यादि। 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' इति शक्तिसूत्रं च। नैवं शक्तिकारणतावादिनामस्माकं परशिवस्याकल्पने कार्यत्वानुपपत्तेरपरिक्षयोऽस्ति। धर्मत्वानुपपत्तिस्त्वेकस्यैव वस्तुनो धर्मधर्म्युभयात्मकत्वकल्पनयाऽपि सुपरिहरा। शक्तिशक्तिमतोरभेदस्य औपनिषदैरप्यङ्गीकारादिति। परः शक्तिरहितश्चेन्न कार्यं कर्तुं शक्तो भवति। उपादानगोचरापरोक्षचिकीर्षाकृतिमत्त्वस्यैव कर्तृत्वरूपतया तस्येच्छाज्ञानक्रियात्मकशक्तित्रयघटितत्वात्। तादृशशक्तिसहितश्चेत्कार्यक्षमो भवति। नैवं शक्तेः शिवसाहित्येऽन्वयव्यतिरेकौ सम्भवतः। अतो न परस्याऽऽवश्यकतेत्यर्थः।।६।।

शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते।
ज्ञातेनापि महादेवि शर्म कर्म न किञ्चन।।७।।
ध्यानावष्टम्भकाले तु न रतिर्न मनःस्थितिः।

शक्तिरहित सूक्ष्म शिव का नाम-धाम कुछ भी नहीं है। हे महादेवि! इस प्रकार के शिव ज्ञात होने पर उसमें शर्म-कर्म कुछ नहीं रहता। इस प्रकार शिव के ध्यानाष्टम्भ काल में न रति रहती है, न ही मन की स्थिति।।७।।

शक्त्या—भास्करराय यहाँ शक्ति शब्द का अर्थ करते हैं—शक्त्यावच्छेदक धर्म। विद्यानन्द शक्ति शब्द का अर्थ कहते हैं—विमर्शशक्ति। **सूक्ष्म**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—दुर्विज्ञेय। भास्कराचार्य अर्थ करते हैं—प्रवृत्तिनिमित्त-शून्यताहेतु दुर्ज्ञेय। **नाम**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—शिव-महेश्वर-शंकर आदि। **धाम**—शिवानन्द धाम शब्द का अर्थ करते हैं—प्रकाश, बोध, ज्ञान, अनुभव, उन्मेषादि सिद्धि। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—प्रकाश, ज्ञान। **ज्ञातेन**—शिवानन्द ज्ञात शब्द का अर्थ करते हैं—ज्ञानकर्मभूत। **शर्म**—शिवानन्द के मत से शर्म का अर्थ है—शिव-शक्ति सामस्यात्मक परिपूर्णाहं-परामर्श स्थितिलक्षण अकृत्रिम सुख। **कर्म**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—आभासन, रक्ति, विमर्शन, बीजावस्थापन, तद्विलापनात्मक कर्म। कोई-कोई इसका अर्थ करते हैं—पञ्चकृत्यकरण। पञ्चकृत्य अर्थात् उद्भव-स्थिति-संहार-तिरोधान-अनुग्रह। **ज्ञातेनापि महेशानि शर्म न किञ्चन**—इसका अर्थ है कि शक्तिरहित शिव का किसी प्रकार से किंचित् ज्ञान होने पर उसके द्वारा कोई पुरुषार्थ-लाभ नहीं होता। **ध्यानावष्टम्भकाले**—अवष्टम्भ का अर्थ है—आलम्बन। अर्थात् ध्यानावष्टम्भन काल का तात्पर्य है—ध्यान के समय। शिवानन्द इसे समाधि का उपलक्षण कहते हैं। **रतिः**—विद्यानन्द रति शब्द का अर्थ करते हैं—स्वरस परमानन्द विभव को छोड़कर तुच्छ बुद्बुद्प्राय विषयों की अभिलाषा।

शिवानन्द अर्थ करते हैं—विश्वैकात्मक शिव-शक्ति के सामरस्यरूप महाह्रद में आनन्दलाभ। **मनःस्थितिः**—मन का स्थिरीकरण। **ध्यानावष्टम्भकाले तु न रतिर्न मनःस्थितिः**—विद्यानन्द इसकी दो व्याख्या करते हैं—१. शक्तिविरहित शिव के ध्यान में रति तथा मनःस्थैर्य सम्भव पर नहीं है। २. संकुचित समस्त रूपविशिष्ट परमानन्द प्रकाशलक्षण शिव के साथ सामरस्य में उपनीता, परा शक्ति की अनुसन्धान वेला में रति अर्थात् स्वरसपरमानन्दविभव-व्यतिरिक्त तुच्छ बुद्बुदप्राय विषयाभिलाषा सम्भव नहीं है तथा परमशिव शक्ति सामरस्य अनुसन्धान वेला में समस्त सुख-दुःख के हेतु संकल्प-विकल्पास्पद मन का भी पृथक् अवस्थान सम्भव नहीं है।

भास्करराय उक्त श्लोकार्द्ध की व्याख्या में कहते हैं कि शक्तिहीन शिव शुभाशुभ धर्महीन होने से असुन्दर रहते हैं। उनमें मन का अनुराग नहीं होता। इसीलिये उनका ध्यान सम्भव नहीं है। यदि बलपूर्वक मन को उस ध्यान में लगाया भी जाय, तब मन क्षणकाल ही वहाँ रहेगा, दीर्घ काल-पर्यन्त नहीं रहेगा। इसलिये उसमें ध्यानावष्टम्भरूप स्थैर्य अर्थात् निर्विकल्प समाधि सम्भव नहीं है।।७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शक्तिमत्परमेशव्यतिरिक्तपक्षे शिवादीनामभिधानाभिधेयसिद्धिश्च न सम्भवतीत्याह—**शक्त्येति**। शक्त्या विना शक्तिसम्मिलितव्यतिरेकपक्षे। शिवे परमश्रेयोरूपिणि। सूक्ष्मे अतिक्रान्तचक्षुरादिसंविद्देवीप्रसरमार्गे। नाम शिवमहेशमहेश्वरशङ्करपरमेश्वरमहादेवमृडमहेशानेशाद्यभिधानव्यवहार इत्यर्थः। धाम स्थानप्रकाशानुभवोन्मेषोद्यन्तृतादिसिद्धिरित्यर्थः। परिस्फुरत्तात्म शाक्तं तेज इति यावत्। किञ्च एवमयमित्येवंरूपेण कश्चिद् वस्तुविशेषो ज्ञातो भवति। स त्वस्य स्वभावः। स तद्विशिष्टः सदा भवति। सैव शक्तिरिति वयं मन्यामहे। तदभावे तस्य ज्ञातत्वं न सम्भवति। तत् तिष्ठतु। ज्ञातत्वपक्षेऽपि शिवस्य प्रयोजनाभावं दर्शयति—**ज्ञातेनापीति**। ज्ञातेन ज्ञा(त?न)कर्मीभूतेनापि। अर्थसामर्थ्यात् कथि(तः?तेऽपि) महेशानीत्यामन्त्रणं शक्तिव्याप्तिपरामर्शसूचकम्। अशक्तः शिव इत्येतत्पक्षोपन्यासोऽपि तद्विकासोपन्यासेनेति तात्पर्यम्। शर्म शिवशक्तिसामरस्यात्म परिपूर्णाहंपरामर्शस्थितिलक्षणमकृत्रिमं सुखम्। कर्म आभासनर-क्तिविमर्शबीजावस्थापनतद्विलापनात्मकम्। **ध्यानेति**। ध्यानं समाधेरप्युपलक्षणम्। अयमर्थः—अशक्तः शिव इत्यङ्गीकृतौ ध्यानसमाधानवेलायां महानन्दोदधिनिमग्नानां महायोगिनां विश्वैकात्म्यात्मशिवशक्तिसामरस्यमहाह्रदरमणं तत्र मनसः स्थिरीकरणं च न भवतीति।।७।।

* अर्थरत्नावली *

इदानीं शक्त्या रहितः शिव इत्यस्य बहुदोषदुष्टत्वं दर्शयति—**शक्त्या विनेत्यादिना। शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यत इति।** शक्त्या विना शक्तिरहिते विमर्शरहिते शिवे। सूक्ष्मे दुर्विज्ञेये। नाम धाम न विद्यते। नाम ईश्वरः शिव इत्यादि। धाम प्रकाशो

ज्ञानम्। कोऽर्थः? शक्तिरहितः शिव इत्यस्मिन् पक्षे शिव ईश्वर इत्यादिनामभिरनिर्देश्यो भवेत्। तथा शक्तिरहितः शिव इत्यभ्युपगमपक्षेऽप्रकाशात्मत्वेन शिवस्य जडत्वमापद्येत। तस्मादुभयदोषं परिहर्तुमिच्छता महाविमर्शपरः शक्त्यात्मकः परमप्रकाशः शिव इत्यवश्यमभ्युपगन्तव्यम्। अन्यथा नास्तिकाग्रे परब्रह्मवादिपक्षवन्निरीश्वरं जगदापद्येत। **ज्ञातेनापि महेशानि कर्म शर्म न किञ्चनेति।** ज्ञातेनापि कथञ्चिज्ज्ञातेनापि। कर्म शर्म न किञ्चन स्वल्पमपि न सम्भवतीत्यर्थः। अयं भावः—शक्तिरहिते शिवे ज्ञातेऽपि न कश्चित् पुरुषार्थो लभ्यते। तथाहि—शक्तिरहितत्वान्न कर्मवान् शिवः। कर्मेत्युद्भवस्थितिसंहारतिरोभावानुग्रहकरणम्। शर्म प्रकाशविमर्शात्मकशक्तिशिवसामरस्यपराहंभावानन्दात्मना स्थितिः। तदुभयमपि शक्त्या विना शिवे न सम्भवतीत्यर्थः। अतः शक्त्यात्मक एव शिवः। शक्तिरपि शिवात्मकस्वभावैवेति सिद्धम्। **ध्यानावष्टम्भकाले तु न रतिर्न मनःस्थितिरिति।** अस्यार्थः—ध्यानकालेऽपि शक्त्यभावादुभयं न सम्भाव्यते। अथवा सङ्कुचितसमस्तरूपायाः परमानन्दप्रकाशलक्षणपरमशिवसामरस्यमुपनीताया परविकासदशामापन्नायाः परायाः शक्तेरनुसन्धान वेलायां न रतिः। स्वरसपरमानन्दविभवव्यतिरिक्ततुच्छबुद्बुदप्रायविषयाभिलाषो रतिः। साऽस्मिन्न सम्भवति। **न मनःस्थितिरिति।** अस्य समस्तदुःखहेतुसङ्कल्पविकल्पास्पदमनसोऽपि परमशक्तिशिवसामरस्यानुसन्धानवेलायां न पृथगवस्थानमिति यावत्। एतदेव महाज्ञानशब्देनोक्तमिति भावः।।७-८।।

शक्त्या विनेत्यादि। अधुना शक्तिराहित्ये सत्यस्य वहुदोषदुष्टत्वं दर्शयतिशक्त्या विना। शक्तिर्विमर्शस्वातन्त्र्यम्, तद्रहिते शिवे। सूक्ष्मे दुर्विज्ञेये शून्ये। नाम धाम न विद्यते। शिवः शङ्करः स्थाणुरीश्वरः स्रष्टेत्यादिभिर्नामभिरनिर्देश्यो भवेत्। धाम प्रकाशो वोधो ज्ञानमिति परस्परपर्याया एकार्थाः। तथापि शक्तिपर्यायविमर्शराहित्ये प्रकाशस्य प्रत्यवमर्शकाभावादप्रकाशात्मकत्वेन शिवस्यान्धतमस्त्वापत्तिः। तदुक्तम्—'वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदववोधस्य शाश्वती। न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिका।' (वा० प० १.१२४) इति। तस्माद् दोषद्वयविनिर्मुक्तो महाविमर्शात्मकः परप्रकाशः शिव इत्यर्थः। **ज्ञानेनापीति।** कथञ्चिदाभासते ज्ञानादिति। तेनार्थक्रियाकारिशक्तिरहितेन शिवेनास्य ज्ञातुः शर्म कर्म न किञ्चन। कोऽर्थः? निःश्रेयसपदप्राप्तियोग्यतामाविर्भावयन्त्यः प्रवृत्तयः कर्म। तदुद्दीपिनी मनोनिर्वृतिरिति शर्म। तदुभयसङ्कल्पोऽपि शक्तिशून्यवेत्तुः सर्वथा नैव सम्भवति। उक्तं च—'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' (श्लो० वा०) इति। शक्तिराहित्ये ज्ञातादपि तस्माद् ग्रहीतुमसमर्थत्वान्न कस्यापि पुरुषार्थलाभ इत्यर्थः। न किञ्चन। अशक्त्यात्मकः शिवोऽप्यकर्मशर्मवान्। पञ्चत्यकरणं कर्म। प्रकाशविमर्शात्मकशिवशक्तिसामरस्यपराहंभावानन्दात्मनाऽवस्थितिः शर्म। तदुभयमपि शक्त्या विना निस्सारतया शिवस्यापि नैव सम्भवतीति। अतः शक्त्यात्मक एव शिवः, शक्तिरपि शिवात्मकस्वभावैवेति सिद्धम्। 'शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति। तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव।' (बो प० ३) इति। ध्यानावष्टम्भेति। सङ्कुचितविश्वरूपायाः परमानन्दप्रकाशलक्षणपरमशिवसामरस्यमुन्नीतायाः परविकासदशामापन्नायाः परायाः शक्तेरनुसन्धानवेलायां न रतिः, स्वरसपरमानन्दविभवव्यतिरिक्तकर्मप्रायविषयाभिलाषो रतिः, साऽस्मिन्न भवति। **न मनःस्थितिरिति।** समस्तदुःखसङ्कल्पविकल्पस्पन्दस्य मनसोऽपि परमशिवशक्तिसामरस्यानुभवस्थाय्यावरणेन न पृथगवस्थानम्। एतावद् विज्ञानशब्देनोक्तमिति भावः।।७-८।।

* सेतुबन्धः *

ननु जगत्कर्तृत्वस्यान्यथोपपत्तावपि कर्मठानां कर्मफलदानार्थं ज्ञानिनां मोक्षार्थमुपासकानामुपास्त्यर्थं च परशिवः कल्प्यः। कर्मणां जडत्वेन फलदातृत्वायोगात्, निर्गुणस्यैव मुक्तोपसृप्यत्वात्, उपास्यमन्तरेणोपासनायोगादित्याशङ्क्य निरस्यति—उपासना हि नामकीर्तनादिरूपा निर्धर्मकस्य न संगच्छते। शक्यतावच्छेदकलक्ष्यतावच्छेदकयोर्धर्मरूपत्वेन तदभाववति नाम्नामप्रवृत्तेः। पदे बोधकत्वशक्तेरिवार्थे बोध्यत्वस्यापि शक्तिविशेषरूपतया तदङ्गीकारेणैव तन्निर्वाहे लाघवाच्छक्त्यैवोक्तरीत्योपपत्तौ कृतं परशिवेन। शक्त्या शक्यतावच्छेदकादिरूपेण धर्मेण। सूक्ष्मे प्रवृत्तिनिमित्तशून्यत्वाद्दुर्ज्ञेये, नाम वाचकलक्षकशब्दजातम्। धाम प्रकाशः पदजन्यं ज्ञानम्। न विद्यते न सम्भवतीत्यर्थः। एतेन चक्रराजमध्ये यो बिन्दुर्लिख्यते स कामेश्वरस्य स्वरूपमिति रहस्यं ध्वनितम्। तदङ्के देव्या यन्त्रणं गुरुमुखैकवेद्यमन्तरेण केवलस्य कामेश्वरस्य न पृथक्पूजनम्। कामेश्वरस्य सूक्ष्मत्वेन नामधामोभयाभावादेव। 'नेति नेति' इति श्रुत्वा सर्वनिषेधशेषत्वेनैव तस्य ज्ञेयतया सगुणत्वाभावात्। अत एव कामेश्वरायुधानां गत्यन्तराभावेन देव्यायुधैः सहैव पूजनमष्टमपटले वक्ष्यति।

त्रिकोणरूपा योनिस्तु बिन्दुना बैन्दवं भवेत्।
कामेश्वरस्वरूपं तद् विश्वाधारस्वरूपकम्।।

इत्यादीनि तन्त्रान्तरवचनान्यमुमेवार्थं प्रतिपादयन्तीत्यन्यदेतत्। ननु कल्पितधर्मसाहित्येन शब्दानां प्रवृत्तिस्तज्जन्यज्ञानविषयता च सम्भवत्येव। धर्मेषु धर्मिसमानसत्ताकत्वस्यानावश्यकत्वादित्यत आह—ज्ञातेनापीति। परेणेति शेषः। यथाकथञ्चित् परशिवस्य ज्ञानोपपादनेऽपि तादृशज्ञाने मोक्षजनकतायाः कर्मोपयोगस्य चायोगः। तादृशज्ञानस्य सार्वदिकत्वेनातिसुलभत्वात्। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' इति श्रुतेरिति भावः। तथा ज्ञातेन परेण शर्म सुखं मोक्षः कर्म च किमपि न भवतीत्यर्थः। अत एव—

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
शक्तिहीनो हि यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः।।

इति देवीभागवतमुपपद्यते। ननु घटमहं जानामीत्यादिज्ञानेषु ब्रह्मणो मानेऽपि सविकल्पकज्ञानस्य पुरुषार्थसाधनतां (न) ब्रूमः। किं तु सकलधर्मशून्यैकविषयकनिर्विकल्पकस्येत्यत आह—**ध्यानेति**। शुभाशुभधर्महीनस्यासुन्दरत्वेन तत्र मनसो रतेरयोगान्न ध्यानं सम्भवति। बलात्काराद्विना तत्र मनसः प्रवर्तनेऽपि कतिपयक्षणस्थायित्वमेव स्यान्न चिरकालस्थितिस्तेन न ध्यानस्यावष्टम्भरूपं स्थैर्यं निर्विकल्पसमाध्य-परपर्यायं स्यात्। तदभावे तु न पुरुषार्थसिद्धिरिति भावः। शक्तेस्तु धर्मधर्म्युभयात्मकत्वेन नाम धाम शर्म कर्म रतिः स्थितिश्चेति सर्वमप्युपपद्यत इत्यर्थादुक्तं भवति। अत एव भागवते—

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
सगुणा निर्गुणा चेति द्विविधोक्ता मनीषिभिः।।

सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला।
ददाति वाञ्छितानर्थानर्चिता विधिपूर्वकम्।। इति।

एवं परशिवमन्तरेण परा शक्तिर्नास्त्येवेति प्रत्यवस्थातारं जल्पकथया निरस्येदानीं वादकथामनुसृत्य व्याप्तिभवशरीरद्वयप्रश्नान्समाधत्ते—

त्रिपुराशक्तेरन्तःसौषुम्नपरमार्गानुप्रवेशः

प्रविश्य परमार्गान्तः सूक्ष्माकारस्वरूपिणी ।।८।।
कवलीकृतनिःशेषबीजाङ्कुरतया स्थिता ।

निःशेष विषयजात को जिन्होंने कवलीकृत किया है, वह सूक्ष्माकार-स्वरूपिणी परमार्गान्तःप्रविष्टा होकर बीजांकुर भाव से अवस्थान करती है।।८।।

परमार्गान्तः—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—पर अर्थात् शिव, उनका प्रापक मार्ग—सुषुम्ना, उसका अन्तः। यह मार्ग इन्द्रियप्रसवा इदन्ताभूमि नहीं है। विद्यानन्द परमार्गान्त पद का अर्थ करते हैं—पञ्चशक्तिमय अनात्मक संकोचरूप सृष्टिमार्ग। भास्करराय के मत से उक्त पद का अर्थ है—पर अर्थात् परमशिव। पर ही मार्ग परमार्ग। अथवा पर का मार्ग परमार्ग। मार्ग अर्थात् व्याप्तिस्थान। उसका अन्तः अर्थात् व्याप्तिस्थान जितना है, वह अन्तःप्रविष्ट हो।

सूक्ष्माकारस्वरूपिणी—शिवानन्द के मत से अर्थ है—स्वरूपज्योतिरूपा, विभागात्म गुणीभूत प्राणपश्यन्ती आकाररूपिणी। विद्यानन्द के मत से इस पद से विमर्श शक्ति बताई गयी है। भास्कर राय इस पद का अर्थ करते हैं—अवयवसंस्थान। जैसे वृक्ष की पत्र-पुष्प-फल-शाखादि विशेषता है उसका अवयव-संस्थान। वृक्षत्व इसका सूक्ष्म रूप है। वैसे ही ३६ तत्त्व विमर्श शक्ति का अवयव संस्थान है। उसका स्वरूप है—इसका सूक्ष्म रूप।

कवलीकृतनिःशेषा—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है कि जिसके द्वारा निःशेष विषयजात कवलीकृत अर्थात् ग्रासीकृत हुआ है, वे हैं कवलीकृतनिःशेषा। शिवानन्दोक्त निःशेष विषयजात और भास्करराय-कथित षट्त्रिंशत्तत्त्व एक ही बात है; क्योंकि यह प्रपञ्च षट्त्रिंश तत्त्वात्मक है। उसके बाहर कोई विषय नहीं है। **बीजाङ्कुरतया स्थिता**—शिवानन्द के मत से यहाँ बीज अर्थात् कारण तथा अङ्कुर अर्थात् कार्य, इन अवस्थाद्वय द्वारा कथित। विद्यानन्द के मत से इस श्लोकांश का अर्थ यह है—वामादि पंचक तथा इच्छादि पञ्चक (वामादि पञ्चक = वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका—ये चार तथा इनकी समष्टि एक = पाँच। इच्छादिपञ्चक = इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता—ये चार और इनकी

समष्टि एक = पाँच) का ग्रास करके समासभावेन स्थित जो अनामरूपात्मक बिन्दु है, वह बीज है और तदन्तर्वर्त्ती विमर्शरूपेण अवस्थिता जो शक्ति है, वह स्वेच्छा से उच्छून दशा में निर्गता है। इस प्रकार वे मृणाल तन्तुरूपा प्रथमरेखा हैं। वे अंकुर हैं। इस प्रकार बीज एवं अंकुररूपेण अवस्थिता हैं। भास्करराय आलोच्य पद का दो अर्थ करने में तत्पर होकर कहते हैं कि बीज अर्थात् ३६ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर और अंकुर अर्थात् उनका स्थूल शरीर। उनके मत से ३६ तत्त्वों के सूक्ष्म शरीररूप सब बीज और स्थूल शरीररूप समस्त अंकुर—इस उभयरूपता में अवस्थिता, इस पद का अर्थ है।।८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवं प्रसङ्गागतं शक्तिमच्छिवपक्षोपन्यासं निगमय्य प्रकृतामेव त्रिपुराशक्तिमन्त:सौषुम्नमार्गानुप्रवेशमुखेन पुनरपि प्रपञ्चयति—**प्रविश्येत्यादि**। परमार्गान्त: परस्य शिवस्य प्रापकसुषुम्नामार्गान्त:। न त्विन्द्रियप्रसरेदन्ताभू(मि: ?मौ)। सूक्ष्माकारस्वरूपिणी स्वरूपज्योतीरूपा विभागात्मगुणीभूतप्राणपश्यन्त्याकारस्वरूपिणी। कवलीकृतनिश्शेषा यया निश्शेषं विषयजातं कवलीकृतं ग्रासीकृतं सा कवलीकृतनिश्शेषा। बीजाङ्कुरतया स्थिता। बीजं कारणम्, अङ्कुरं कार्यम्, एवमवस्थाद्वयेन शब्दितेत्यर्थ:। तदुक्तं श्रीरहस्यगुरुप्रवरेण—

अवस्थायुगलं चात्र कार्यकर्तृत्वशब्दितम्।
कार्यता यक्षिणी तत्र कर्तृत्वं पुनरक्षयम्।। इति। (स्प०का० १४)

* अर्थरत्नावली *

प्रविश्य परमार्गं तु सूक्ष्माकारस्वरूपिणी। कवलीकृतनिश्शेषबीजाद्याङ्कुरतां गतेत्यस्य व्याख्या—प्रविश्य परमार्गमिति पञ्चशक्तिरूपमयनात्मकं सङ्कोचरूपं सृष्टिमार्गं प्रविश्य सूक्ष्माकारस्वरूपिणी विमर्शशक्तिरिति भाव:। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

अनिकेता(प्त ?ख्य)चिद्व्योम्न: सृजन्ती(ति ?) पञ्च(क ?कं) स्वयम्।
शक्तिस्तुर्यात्मभेदेन लयमेत्यनिकेतने।। इति।

कवलीकृतानि ग्रासीकृतानि निश्शेषबीजानि वस्तुतत्त्वरूपाणि येन सम्भव(ति ?न्ति) कवलीकृतनिश्शेषबीजस्य परमबिन्दुरूपस्य शिवस्य आद्याङ्कुरतां प्रथमाङ्कुरभावं सा प्रकृता विमर्शशक्तिर्यत: प्राप्नोतीति यावत्। कोऽभिप्राय: ? वामादिपञ्चकमिति इच्छादिपञ्चकं ग्रसित्वा समरसभावेन स्थितो यो बिन्दुरनामरूपात्मा स बीजम्, तदन्तर्विमर्शरूपेण स्थिता या शक्ति:, सा स्वेच्छावशाद् बीजोच्छूनदशायां निर्गता, तस्मात् सा मृणालतन्तुरूपा प्रथमरेखा, प्रथमाङ्कुर इत्यर्थ:। बीजाङ्कुरतया स्थितेति पाठे सर्वमेतत् समानम्।।८।।

प्रविश्य परमार्गं तु सूक्ष्माकारस्वरूपिणीति। इत: पूर्वं चतुर्वह्निरूपप्राणापरपर्यायोऽप्यूर्ध्वगम(त्वाहो ?वाहो) विकासात्मक: प्रकृतस्तस्माद्भिन्न: परमार्ग:। पञ्चशक्तिस्वरूपापन्नात्मन: सङ्कोचभावेनाधोमुखागमवाहस्तत्त्ववर्णादिषडध्वसृष्टिमार्ग:। तत्र समस्ता(यो ?ध्वो)पसंहारेण स्वस्वरूपपरमविकासमात्मसात्कुर्वती निरतिशयाखण्डपरमप्रकाशविमर्शानन्दपरोल्ला- सैकरसा शैवी

शक्तिर्या सदोदिता, तया निजेच्छया क्वचित् समुन्मेषसमये स्वत: स्फुरन्त्याऽऽद्यप्रभया बालार्ककोटिभागैकभागवत्सूक्ष्म(त?)या मृणालैकतन्तुनिभया गर्भीकृतसमस्तसंसारमपि तदुत्तरकारितत्त्वतेजोऽवसितं बिन्दुरूपं शिवप्रकाशसूक्ष्ममकाराख्यं बीजमनुबन्धन्त्याऽर्धचन्द्राकारया वक्ष्यमाणवामादिशक्त्याधारभूतया कन्दाख्याम्बिकाशक्त्या भूयते सूक्ष्माकारस्वरूपिणीत्युच्यते। कवलीकृतनिश्शेषबीजाद्यङ्कुरतां गतेति॥८॥

❊ सेतुबन्ध: ❊

वामा शिवेतिपदद्वयमुत्तरश्लोकस्थमिहैवान्वेति। पर: परशिव एव मार्ग:। स्वव्याप्त्याधारत्वात्। परस्य मार्ग इति वा। परशिवस्य यावान्मार्गो व्याप्तिस्थानं तावत: सर्वस्याप्यन्त: प्रवेशेन शून्याकारमपि परशिवेन्दुमुच्छूनतापादनेन विद्धतरमिव कृत्वा सूक्ष्माभ्यामाकारस्वरूपाभ्यां युक्ता सती कवलीकृतानां नि:शेषाणां षट्त्रिंशतस्तात्त्वानां यानि बीजानि सूक्ष्मशरीररूपाणि यानि च स्थूलशरीराणि तत्तदङ्कुराणि तत्तद्रूपतया स्थिता सतीयं शिवा वामेत्युच्यते। वामा विश्वस्य वमनादिति व्युत्पत्ति:। अत्राऽऽकारोऽवयवसंस्थानम्। यथा वृक्षस्य पत्रपुष्पफलशाखादिमत्ता। स्वरूपं वृक्षत्वमित्यनयोर्भेद:। पटे गन्धात्मनाऽवस्थितोऽन्नरसो घनतया सर्वं पटं व्याप्य पश्चादुत्पत्स्यमानचित्रबिन्दुभावेन तत्पश्चात् लाञ्छनरूपेण च परिणत इवेति भाव:।।८।।

वामा शिवा तथा ज्येष्ठा शृङ्गाटाकारतां गता ॥९॥
रौद्री तु परमेशानि जगद्ग्रसनरूपिणी।

हे परमेशानि! पूर्वोक्त परमार्गान्त:प्रविष्टा विमर्श शक्ति त्रिपुरा शिवा वामा-ज्येष्ठा जगद्रूपिणी रौद्रीरूपेण शृंगाराकार को प्राप्त हैं।।९।।

वामा—शिवानन्द के मत से 'वामा तत्त्वानि वमतीति' तत्त्वसमूह का वमन अर्थात् उद्गिरण करने से वे वामा हैं। अथवा संसार-प्रत्यनीकभूता शक्ति हैं वामा। प्रत्यनीक = विरुद्ध। विश्व के वमनकर्तृत्व के कारण अथवा अंकुशवत् वक्ररूपत्व हेतु वामा हैं। भास्करराय वामा शब्द के इस अर्थ का निर्देश करते हैं—वामा है सृष्टिशक्ति। **शिवा**—शिवमयी। **ज्येष्ठा**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—विश्वोदय प्रसव भूमि। ये हैं स्थिति शक्ति। **रौद्री**—शिवानन्द के अनुसार चित् पद में जगत् का निरोधन, लय करने तथा द्रावण अर्थात् द्रवीकरण करने के कारण हैं रुद्र। रुद्र की विभूतिमयी जो चित् शक्ति हैं—वे हैं रौद्री। **शृङ्गाटाकारतां गता**—शृङ्गाट अर्थात् त्रिकोण। अत: अर्थ होगा—त्रिकोणकार को प्राप्त। इस श्लोकांश की व्याख्या में शिवानन्द का कथन है कि यह आलोच्यमाना चित् शक्ति ही स्थिति-संहार-सृष्टिकरी त्रिकोणात्मता को प्राप्त होती है। दीपकाचार्य त्रिकोणाकार-प्राप्ति की यह वर्णना करते हैं—साधक के अग्रभाग से आरम्भ करके ईशानकोण-पर्यन्त विस्तृत रेखा वामा है और अग्नि कोण-पर्यन्त विस्तृत रेखा ज्येष्ठा है और बिन्दु के सम्मुखवर्त्ती तिर्यग् रेखा रौद्री है। इन तीनों की समष्टि अम्बिका उक्त प्रकार से रचित त्रिकोणाकार को प्राप्त होती है। **जगद् ग्रसनरूपिणी**—गर्भीकृताशेष जगद्बीजरूपिणी।

शिवानन्द के मतानुसार इस पद का अन्तर्निहित भाव है—आद्या शक्ति सृष्ट्यादि क्रमात्मक जगत् का ग्रास करके सबको (समस्त को) आत्मरूपेण प्रकाशित करती है।।९।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

कुलस्थानगतमूलाधारादकुलस्थानगतपरमशिवं प्रत्युल्लसन्तीयं महाशक्तिः परावागात्मना विश्ववैचित्र्यमवविभासयिषुरेवंविधां संज्ञां लभत इत्याह—**वामेत्यादि।** वामा तत्त्वानि वमतीति। अत्राभियुक्तवचनम्—

वान्तं ययाऽनिशं सर्वं महदादिप्रभेदकम्।
कटाहादिशिवान्तं यत्तद्ग्रासादीश्वरीं नुमः।। इति।

अथवा संसारप्रत्यनीकभूता शक्तिः। शिखा तेजोरूपिणी, विश्वग्रसनशीला संविदित्यर्थः। ज्येष्ठा विश्वोदयप्रसरभूमिः। **शृङ्गाटाकारतां गते**त्यस्यायमर्थः—इयमेव प्रकृता चिच्छक्तिः स्थितिसंहृतिसृष्टिकरी त्रिकोणात्मतां गतेति। रौद्रीत्यादिकः प्रकृताया एव शक्तेर्विशेषद्योतकः। **रौद्री।** जगतश्चित्पदे निरोधनाद् द्रावणाद्रुद्रः, तद्विभूतिमयी रौद्री चितिशक्तिः। परेशानीत्यामन्त्रणं महाविभूतिमयत्वं संविदः स्वानुभवसिद्धमिति श्रोतृजनं प्रतिबोधयति। **जगद्ग्रसनरूपिणी।** सृष्ट्यादिक्रमात्मकमपि जगद्ग्रसित्वा सर्वं स्वात्मतया आद्या शक्तिः प्रकाशयतीति भावः।।९।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

वामा शिवा तथा ज्येष्ठा जगदङ्कुरतां गता। रौद्री तु परमेशानि जगद्ग्रसनरूपिणीत्येतस्य (व्याख्या)—वामा शिवा। बीजस्य प्रथमाङ्कुररूपेण स्थिता या शक्तिर्विमर्शशक्तिः, साग्रभागेन कुटिलीभूय बिन्दुदक्षिणेन ईशानान्तं गता सा रेखा वामाशक्तिरूपा। **तथा ज्येष्ठेति।** बिन्द्वीशानगता रेखा पुनः कुटिलीभूय बिन्दुपश्चिममाग्नेयं गता ज्येष्ठा। पुनर्वामेन बिन्द्वग्रप्रथमाङ्कुरमिलिता यदा तदा रौद्रीशक्तिरूपा भवतीत्यर्थः। इत्थं गता सा विमर्शशक्तिः प्रथमाङ्कुररूपैव शृङ्गाटाकारा भवति। शृङ्गाटं त्रिकोणं भवति। एतदभिप्रेतं शास्त्रादौ 'यदेकादशमाधारम्' (१.६) इत्यत्र सूचितम्। इहानुक्तमिहापेक्षितं श्रीदीपकाचार्येण श्रीत्रिपुरसुन्दरीदण्डके सूचितम्—'झटिति (यदि) सर्वशून्यान्तर्भूमौ निजेच्छासमुन्मेषसमयं समासाद्य बालाग्रकोट्यंशरूपां विगर्भीकृताशेषसंसारबीजाऽनुबध्नासि कन्दं त(था?दा) त्वमम्बिका गीयसे। तदनु परिजनितकुटिलाग्रतेजोऽङ्कुरा जननि वामेति संस्तूयसे। (ततः) बद्धसुस्पष्टरेखा शिखा ज्येष्ठेति सम्भाव्यसे। सैव शृङ्गाटाकारतामागता तदा रौद्रीति विख्याप्यसे। (२४) (इति)। अस्यार्थः—सर्वं समस्तं वर्णतत्त्वोपसंहारेण झटिति सर्वशून्यविकासबीजाभावं गता विमर्शरूपिणी शक्तिर्निजेच्छावशाद् बीजसमुच्छूनदशायां बालाग्रभागस्य कोटिभागीकृतस्य एकभागसमानसूक्ष्मरूपाऽन्तःकृतसमस्तवर्णतत्त्वस्वरूपिणी उपरि समुद्भूयमानशृङ्गाटरूपत्रिशक्तीनामादौ प्रभासनतया त्वधोमुखार्धचन्द्राकारेण स्थिता अम्बिकाशक्तिरूपा कन्दमिति गीयसे। **तदनु परिजनितेति।** तदनु अर्धचन्द्रेति स्थिताया बिन्दुरू(पी?पं) बीजम्, तस्मात् परिजनितप्रथमाङ्कुररूपं रेखाग्रभागे कुटिलीभूय बीजदक्षिणेनेशानपर्यन्तं व्याप्य स्थिता तेजोऽङ्कुररूपा वामेति संस्तूयसे। बद्ध-

सुस्पष्टरेखेति। तदनु भूयोऽपि कुटिलीभूय विन्दुपश्चिमेनाग्नेयदिशं गता सुस्पष्टरेखा सा ज्येष्ठेति संगीयसे। सैव भूयोऽपि कुटिलीभूय प्रथमाङ्कुरेण मिलिता रौद्रीति विख्याप्यसे। एवं त्रिशक्तिरूपेण शृङ्गाटं त्रिकोणं लिख्यत इति भावः। अतो व्यष्टिसमष्ट्यात्मना व्यवस्थितपञ्चकारणरूपविन्दुमाविश्य गुप्तरूपेण वर्तते वर्णादिभूतो ह्यकारः परमशिवः प्रकाशस्वभाव इति भावः। तदुक्तं श्रीसिद्धनाथपादैः—

अनच्कं यत्परं ज्योतिः सर्वप्राणिहृदि स्थितम्।
इच्छा कुण्डलिनी तस्य तेजो नादसमुद्भवः।।
इच्छानादसमायोगाद् रौद्री शक्तिरजायत।
आसामाधाररूपेण चन्द्रबिम्बार्धमम्बिका।।
क्रमात् कुलोदयो व्याप्तिः कुलौघश्चायमुच्यते। इति।

जगद्ग्रसनरूपिणीति। इत्थमकुलशृङ्गाटाकारतां गता विमर्शशक्तिर्या समस्ताध्वप्रविलापनहेतुः परमप्रकाशभैरवाभिन्ना सा जगद्ग्रसनरूपिणी भवति। तदुक्तं श्रीमते—'संवर्तामण्डलान्ते क्रमपदनिहितानन्दशक्तिः सुभीमा' इति। संवर्तयोनिमण्डलं मध्यस्थलमिति यावत्।।९।।

तदनु प्रागुक्ता स्वान्तःकृतवामेच्छादित्रिशक्तितत्त्वमन्त्रवीजमुख्यसर्वसूक्ष्मभावसमरसीभावेन प्रकाशमानादनामरूपादकारस्य सूक्ष्माकाराद् विन्दुरूपा निजेच्छासमासादितसमुन्मेषादुच्छूनदशायां तदन्तर्व्याप्ता विमर्शशक्तिसमविन्दुस्फुटनमग्रभागस्थं परमार्ग सृष्टिमार्गद्वारनिर्गमनकाले प्रविश्य कुटिलाग्रतेजोंऽशेन यदाऽङ्कुरिता तदा वामा नाम शिखा। **तथा ज्येष्ठेत्यादि।** बिन्दोर्दक्षिणभागे प्रसृतायास्तस्या वामायाः शिखरमूले वक्रीभूता या तिर्यग्दीर्घा या सा ज्येष्ठा नाम। सा तु पुनर्वक्रारम्भभावेन प्रसृता प्रथमाङ्कुरमिलिता यदा स्यात् तदा रौद्री नाम। एवं सा विमर्शशक्तिरूपेण शृङ्गाटाकारतां गता। शृङ्गाटं त्रिकोणमित्यर्थः। एवमभिप्रेत्य 'यदेकादशमाधारवीजम्' (१.६) इति सूचितम्। इह लक्ष्यमाणमेव श्रीदीपकाचार्येणापि स्पष्टमेव 'झटिति (यत्?)' इत्यादिग्रन्थेनायमर्थः स्तोत्रीकृतः। 'अनच्कं यत्परं ज्योतिः' इत्यादि 'कुलौघश्चायमुच्यते' इत्यन्तेन ग्रन्थेन श्रीकुलरत्नशास्त्रेणानूदितः। **जगद्ग्रसनरूपिणीत्यादि।** गर्भीकृताशेषजगद्बीजरूपिणी।।९।।

* सेतुबन्धः *

एवं व्याप्तिं भवं सूक्ष्मस्थूले शरीरे च कथयित्वा स्थानलयप्रश्नौ समाधत्ते—**अङ्कुरादिफलान्तावयवकं यद्रूपं षड्भावविकारेषु विपरिणामान्तमेतदात्मना परिणाम एव स्थितिः। इदं च रूपं प्रधानत्वाद्वा शिखरवत्सर्वान्त्यत्वाद्वा दलद्वयरूपाङ्कुरस्य विषाणसाम्याद्वा शृङ्गपदेन व्यपदिश्यते। ईदृशे रूपेऽटतीति शृङ्गाटा देवी। यत्तु शृङ्गाटपदेन त्रिकोणं व्यपदिश्यते तत्राप्येषैव व्युत्पत्तिः। विषाणाकाररेखाद्वये तिर्यग्रेखाया अटनात्। चतुर्णां पथां मेलने जलोद्भवफलविशेषेऽप्येवमाकारवत्त्वादेव निरूढलक्षणेत्यन्यदेतत्। ईदृशदशाप्रवृत्तिनिमित्तवती देवी ज्येष्ठेत्युच्यते। एवं प्रपञ्चस्थितिकाले समाप्ते जगतो ग्रासेन या संहारं कुरुते सा तादृशप्रवृत्तिनिमित्तकत्वाद् रौद्रीपदेन त्रिपुरैव व्यवह्रियत इत्यर्थः। दीपकाचार्यास्तु—स्वाग्रमारभ्ये-**

शानाग्नेयान्तं प्रसृते रेखे वामाज्येष्ठे। बिन्दो: पूर्वस्यां तिर्यग्रेखा रौद्री। एतत्त्रितयसमष्टिरम्बिका शृङ्गाटाकारतां त्रिकोणाकारतां यातेति व्याचक्षते।।९।।

त्रिपुरैव ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी ज्ञानक्रियेच्छाशक्त्यात्मिका च

एषा सा परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरी ।।१०।।
त्रिपुरा त्रिविधा देवि ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी ।
ज्ञानशक्ति: क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिका प्रिये ।।११।।
त्रैलोक्यं संसृजत्येषा त्रिपुरा परिकीर्त्यते ।

हे देवि! ये परमेश्वरी परमा शक्ति एक हैं। ये ही त्रिपुरा त्रिविधा ब्रह्मा-विष्णु-महेशस्वरूपिणी हैं। हे प्रिये! ज्ञान शक्ति-क्रियाशक्ति-इच्छाशक्तिरूपा ये ही त्रैलोक्य का सृजन करती हैं। इन्हें त्रिपुरा कहा गया है।।१०-११।।

परमा—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—विमर्शरूपा, 'मैं आत्मवत् ही' इस प्रकार से भासमाना हैं अर्थात् अहन्ता रूपेण भासमाना हैं। इदन्तारूप नहीं हैं। **एका**—एकविद्या। **त्रिपुरा**—भास्करराय कहते हैं कि पुर शब्द का अर्थ है—शरीर। तीन पुर हैं जिनका, इससे त्रिपुर शब्द साधित हुआ है। त्रिपुरा शब्द की अन्य व्याख्या भी है। जैसे प्रपञ्चसार तन्त्र में कहते हैं कि अम्बिका को त्रिपुरा नाम दिया गया है। इसीलिये इन्होंने त्रिमूर्त्ति की सृष्टि की है। त्रिमूर्त्ति ही पूर्व में विराजित थी। पूर्व से ही वे त्रिवेदमयी थीं तथा त्रिलोकी के लय में वे सबको पूर्ण करके विराजित हैं (प्रपञ्चसार-९.२)।

इसके अतिरिक्त वामा, ज्येष्ठा, रौद्री—ये तीन शक्ति, इच्छा-ज्ञान-क्रिया—ये तीन शक्ति, सृष्टि स्थिति-संहार—ये तीन चक्र, चन्द्र-सूर्य-अग्नि—ये तीन धाम, शक्ति-कामराज तथा वाग्भव—ये तीन बीज, शिवतत्त्व-विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्व—ये तीन तत्त्व, रज:-तम: तथा सत्व—ये तीन गुण एवं त्रिकोणादि भेदत्रयाविर्भाव के द्वारा त्रिवृत्करण-चतुरा होने से भी इनको त्रिपुरा कहा है (विद्यानन्द कृत इस श्लोक की टीका)।

त्रिविधा—त्रिप्रकारा। **ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी**—भास्कर कहते हैं कि वामा-ज्येष्ठा-रौद्री ही पुरुषवेशाविष्टा होकर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र होते हैं। **ज्ञानशक्ति**—शिवानन्द कहते हैं कि ज्ञानशक्ति अवभासनात्मिका है, किन्तु विद्यानन्द के मत से ज्ञानशक्ति संहारकारिणी रुद्र है। ये कहते हैं कि क्रियाशक्ति तथा इच्छाशक्ति का गुणभूतत्व एवं ज्ञानशक्ति का आधिक्य होने से विमर्शरूपिणी शक्ति रुद्रमूर्त्ति धारण करके संहार करती हैं। **क्रियाशक्ति**—शिवानन्द कहते हैं कि क्रियाशक्ति उल्लेखनरूपा है। विद्यानन्द के मत से क्रियाशक्ति विष्णु कहलाने से पालन करने वाली है। वे व्याख्या करते हैं कि जब ज्ञानशक्ति तथा इच्छाशक्ति का गुणभूतत्व एवं क्रियाशक्ति का आधिक्य होता है, तब विमर्शरूपिणी शक्ति

विष्णुमूर्त्ति धारण करके पालन करती है। **इच्छाशक्ति**—शिवानन्द कहते हैं कि इच्छाशक्ति विच्छेदन, अवभासनस्वातन्त्र्यात्मामायालक्षणा समवायिनी शक्ति है। विद्यानन्द के अनुसार इच्छाशक्ति ब्रह्मारूप होने से सृष्टिकारिणी है। वे कहते हैं कि जब इच्छाशक्ति का आधिक्य तथा ज्ञान शक्ति एवं कर्मशक्ति का गुणभूतत्व होता है, तब विमर्शरूपिणी शक्ति ब्रह्मा का रूप धारण करके सृष्टि करती है। **त्रैलोक्य**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—ग्राहक-ग्रहण ग्राह्यात्मक।

ज्ञानशक्ति परिकीर्त्तिते—इसकी व्याख्या करते समय विद्यानन्द कहते हैं कि वर्ण-पद-मन्त्र-कला-तत्त्व-भुवन—ये षडध्व हैं। यह शब्दात्मक तथा अर्थात्मक होता है। वर्ण-पद-मन्त्र शब्दात्मक हैं। कला-तत्त्व-भुवन अर्थात्मक हैं। यह षडध्व कार्यकारणभावेन अवस्थित है। जो स्थूल है, वह कार्य है एवं जो सूक्ष्म है, वह कारण है। जैसे भुवन कार्य है एवं तत्त्व कारण है। मन्त्र है कार्य एवं पद है कारण। लय-साधन के समय कार्य को कारण में लय करना पड़ता है। कला तथा वर्ण वाच्य-वाचकभावेन स्थित हैं। इसीलिये वाच्य कला का वाचक वर्ण में लय करना पड़ता है।

विद्यानन्द कलाध्वा की आलोचना नहीं करते। यहाँ उल्लेख करना है कि कार्यरूप छत्तीस तत्त्वों के कारणरूप पाँच कला की बात कही गयी है। जैसे क्षितितत्त्व-निवृत्तिकला। अप्तत्त्व से लेकर प्रकृति तत्त्व-पर्यन्त प्रतिष्ठा कला। पुरुषतत्त्व से लेकर मायातत्त्व-पर्यन्त विद्याकला। शुद्धविद्यातत्त्व से सदाशिवतत्त्व-पर्यन्त शान्तिकला। शक्तितत्त्व तथा शिवतत्त्व—शान्त्यतीता कला।

विद्यानन्द कहते हैं कि 'क्ष' से 'ट' पर्यन्त २४ वर्ण में निवृत्तिकला की अन्तर्भावना करनी होगी अर्थात् लयभावना करनी होगी। 'ञ' से 'घ' पर्यन्त सात वर्ण में प्रतिष्ठा कला की अन्तर्भावना,'ग' से लेकर 'क' पर्यन्त तीन वर्ण में विद्याकला की अन्तर्भावना, अष्ट दीर्घ स्वरवर्ण में शान्तिकला की एवं अष्ट ह्रस्व स्वरवर्ण में शान्त्यतीता कला की अन्तर्भावना करनी होगी। यही है वर्णाध्वा में पञ्चकलाध्वा का संहार क्रम। इसी प्रकार व्याप्य-व्यापकभाव से अवस्थित पदादि पञ्चाध्वा वर्णक्रम के अन्तर्गत सिद्ध होता है। वर्णक्रमरूपिणी चिच्छक्ति वैखर्यादि क्रमभेद से (वैखरी-मध्यमा-पश्यन्ती) त्रितत्त्व- गामिनी (आत्मतत्त्व-विद्यातत्त्व-शिवतत्त्व) हैं। वे ही धाम संविद् रूप से पररूपिणी हैं। वे ही सर्वतत्त्वरूपिणी हैं। त्रिवृत्करण के पूर्व में वे एकविद्या हैं। इस प्रकार उनका चिन्तन करना चाहिये।

यह विमर्श शक्ति इच्छादि कलाचतुष्टय (कला शब्द का एक अर्थ है—शक्ति। इच्छा, क्रिया, ज्ञाना, शान्ता ही कलाचतुष्टय है) को कूर्माङ्ग के समान (जैसे कच्छप अंगों

को भीतर सिकोड़ लेता है) सिकोड़ कर पञ्च कारणरूप अकुल बिन्दु में शृङ्गाटाकार से विराजमान होकर पुन: शृङ्गाटरूप उस कन्दाभिमानिनी कलाचतुष्टय का ग्रास करती है और नि:शेष बीजात्मक केवल बिन्दु में अन्त:सार विमर्शरूपेण त्रिवृत्करणता के पूर्व अवस्थिता हो जाती हैं, इन्हें ही त्रिपुरा कहा गया है।।१०-११।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

एषा सा परमा शक्तिरेकैव परमेश्वरीत्यनेनैवंविशिष्टामसामान्यवैभवां संविदं स्वात्मतया प्रत्यभिज्ञापयति महादेशिक: शिव:। परमा शक्तिरिति विमर्शरूपा आत्मवदेवाहमित्यवच्छिन्नत्वेन भासमाना, न त्विदन्तयेत्यर्थ:। त्रिपुरा प्राग् व्याख्याता। त्रिविधा त्रिप्रकारा। कथं त्रिपुरात्वमित्याह—**ब्रह्मविष्ण्वीशरूपिणी।** शक्तित्रयावष्टम्भेन ब्राह्मयाद्या मातर:। **ज्ञानशक्ति: क्रियाशक्तिरिच्छाशक्त्यात्मिकेति।** ज्ञानशक्तिरवभासनात्मिका। क्रियाशक्तिरुल्लेखनरूपा। इच्छाशक्तिर्विच्छेदनावभासनास्वातन्त्र्यात्मा मायालक्षणा समवायिनी शक्ति:। शक्तित्रयं श्रीमालिनीविजये व्याख्यातम्। तदुत्तरत्र वक्ष्याम:। **त्रैलोक्यं संसृजत्येषा त्रिपुरा परिकीर्त्यत** इत्यस्यायमर्थ:—इत्थं तत्तत्क्रियावैचित्र्यविशेषणाहन्ताभिधाना चैषा विमर्शाख्या शक्तिर्ग्राहक ग्रहणग्राह्यात्म त्रैलोक्यं संसृजतीति यस्मात्, तस्मात् त्रिपुरेति कीर्त्यत इति।।१०-११।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

एषा सा परमा शक्तिरित्यादि। इत्थमकारे बिन्दुरूपे पञ्चावयवरूपिणी स्थिता या विमर्शशक्ति:, सा पुनस्तस्यैव बिन्दुरूपस्य द्वितीयाङ्कुररूपिणी विभज्यते यदा, तदा सैषा विमर्शशक्ति: स्वावयवचतुष्टयं कूर्माङ्गवत् सङ्कुचितं कृत्वा गुप्तरूपेण ईकाराख्यं कामकलाक्षरं प्रविविक्षु: (सा?) परमा शक्तिरेकविधैव सती बीजोच्छूनदशायां ज्ञानक्रियेच्छारूपत्रयबिन्दुरूपे वाह्यमा(णा?ना) त्रैविध्यं गता त्रिपुरा। अथवा तत्रैव परिवर्तमाना बीजस्य द्वितीयाङ्कुरभावं गता सपरार्धरूपिणी भूत्वा पुनरधोमुखी भूत्वा आभ्रूमण्डलं स्पन्दमाना सा चन्द्रमण्डलं प्रविश्य सृष्टिचक्रत्रिकं प्राप्य इच्छाशक्तिरूपिणी (शक्ति)बीजमयी शिवतत्त्वव्यापिका ब्रह्मकारणसृष्टिपालयित्री स्थिता। पुनरिच्छावशात्तदध: स्पन्दमाना ह्याविश्य हृदयं सूर्यमण्डलं व्याप्य वर्तमाना क्रियाशक्तिरूपिणी कामराजबीजमयी विद्यातत्त्वव्यापिका स्थितित्रितयमण्डलं कुर्वती विष्णुकारणपालयित्री स्थिता। सैव पुनरिच्छावशान्मूलमण्डलं व्याप्य वर्तमाना संहारचक्रत्रितयमण्डलं कुर्वती ज्ञानशक्तिरूपा वाग्भव (बीजमयी आत्मतत्त्वव्यापिका रुद्रकारणसंहारयित्री स्थिता। एवं शक्तित्रयबीजत्रयगुणत्रयादिभिस्त्रिवृत्करणरचनाचतुरा तथा त्रिविधा त्रिप्रकारा समस्ताध्वव्यापिनी त्रिपुरेत्युच्यत इति भाव:।

ज्ञानशक्तिरित्यादि त्रिपुरा परिकीर्त्यत इत्यन्तस्यायं भाव:—इच्छादिशक्तित्रितयस्यैव व्यापृतत्वं न चतुर्थकलाया: शान्ताख्याया:, तस्या: कन्दरूपत्वात्। त्रिशक्तीनां बीजसाम्यमत्रैवेत्यवस्थात्रयमस्ति। तत उद्रेकावस्थायां सृष्ट्यादित्रितयकर्तृत्वं त्रिपुरामूर्तिवैचित्र्यात्, साम्यावस्थायां तिरोभावकर्तृत्वमीश्वरमूर्त्या, बीजाद्य(म?)नुग्रहकर्तृत्वं सदाशिवमूर्त्या। इत्थं कृत्वा पञ्चकर्तृत्वं

शक्तीनामवस्थाभेदवशात्। उद्रेकस्त्वेकैकशक्त्याधिक्यम्। तद्यथा—यदेच्छाशक्तेराधिक्यं गुणभूतत्वं क्रियाज्ञानशक्त्योस्तदा ब्रह्ममूर्तिमास्थायाध्वभेदं सृजति सा विमर्शरूपिणी शक्तिः। यदा तु क्रियाशक्तेराधिक्यं ज्ञानेच्छाशक्त्योर्गुणभूतत्वं तदा विष्णुमूर्तिमास्थायाध्वभेदं पालयति। यदा पुनर्ज्ञानशक्तेराधिक्यं क्रियेच्छाशक्त्योर्गुणभूतत्वं तदा रुद्रमूर्तिमास्थायाध्वभेदं प्रविलापयति। अध्वरूपाणि षट्प्रकाराणि वर्णपदमन्त्रकलातत्त्वभुवनाख्यानि। तानि च शब्दार्थात्मकानि। वर्णपद-न्त्राणि शब्दात्मकानि। कलातत्त्वभुवनान्यर्थात्मकानि। तानि च कार्यकारणभावेन स्थितानि। तत्र स्थूलं कार्यं सूक्ष्मं कारणम्। वर्णान्युक्तान्येव सप्तषष्टिप्रकाराणि। पदानि च वर्णसंयोगजान्येकाशीत्यादीनि। मन्त्राणि च पदजानि द्वादशश्लोक्यादि। शुद्धपञ्चकम्, मायाकालकलानियतिविद्यारागपुरुषाख्यानि शुद्धाशुद्धसप्तकम्, प्रकृतिगर्वबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायुगुह्यशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुज्वलनसलिलधराख्यान्यशुद्धरूपाणि चतुर्विंशतिसंख्यानि। भुवनानि चतुर्दशादिशतान्तानि चतुर्विंशतिः। तत्र कार्यरूपं मन्त्रभुवनद्वयं तत्कारणभूतेन पदतत्त्वद्वयेन प्रविलापयेत्। पदतत्त्वद्वयमपि स्वकारणवर्ण(तत्त्वा?कला)त्मनि संहरेत्। तौ च कलावर्णात्मानौ वाच्यवाचकभावेन स्थिताविति कृत्वा वाच्यं कलाध्वानं वाचके वर्णाध्वनि कारणे संहरेत्। तत्र क्षादिटान्तात्मनि चतुर्विंश(तिषु?तौ) निवृत्तिकलामन्तर्भावयेत्। ञादिघान्तसप्तके(षु?) प्रतिष्ठाम्। गादिका(न्त?न्तेषु) त्रिपु विद्याम्। दीर्घस्वराष्टकेषु शान्तिम्। ह्रस्वा(द्य?)ष्टकेषु शान्त्यतीतकलामन्तर्भावयेत्। एवं वर्णा(न्तमध्व?ध्वनि) पञ्चकलाध्व(नि?नः) संहारप्रकारः। एवं पञ्चाध्वनामपि व्याप्यव्यापकभावेन स्थितानां वर्णक्रमान्तर्गतत्वमस्तीति वर्णक्रमरूपिणी चिच्छक्तिरपि वैखर्यादित्रिभेदेन त्रितत्त्वगामिनीति सैव धामसंवित्स्वरूपेणैव पररूपिणी स्थिता सर्वतत्त्वरूपिणी त्रिवृत्करणात् पूर्वमेकविधेव चानुसन्धेया। सा च विमर्शशक्तिरिच्छात्मना कलाचतुष्टयं कूर्माङ्गवत् सङ्कोचयित्वा पञ्चकारणरूपेऽकुलबिन्दौ शृङ्गाटात्मनि वर्तमाना शृङ्गाटं तत्कन्दाभिमानिकलाचतुष्टयं ग्रसित्वा केवले बिन्दौ विशेषबीजात्मनाऽन्तःसारविमर्शरूपेण स्थिता त्रिपुरा परिकीर्त्यत इत्यभिप्रायः। एतदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

मूर्तिवैचित्र्यविभवादिच्छायाः प्रविकस्वरम्।
अध्वभेदं सृजत्युच्चैर्व्याप्यव्यापकभेदितम्।।
स्थूलो व्याप्यो व्यापकोऽन्यो भुवनादिः कलान्तगः।
एवमन्यत् समस्तं तज्ज्ञानशक्तिविपाकयुक्।।
रौद्रीरूपं समुल्लास्य निखिलं गम्यते यदि। इति।

परमा। सा विमर्शशक्तिरेकैव व्यष्टिसमष्ट्यात्मना पञ्चसूक्ष्मभेदाभिन्नवर्णक्रमादिभूतं प्रकाशस्वभावं परशिवरूपमकाराख्यबिन्दुमाविश्य परमार्गपर्यायसृष्टिमार्गोन्मुखी भूत्वा स्वीयावयवचतुष्टयं कूर्मवदात्मनि सङ्कोच्य कामकलारूपमीकाराक्षरमात्मसात्कृत्य निजेच्छया ज्ञानक्रियेच्छारूपबिन्दुत्रयात्मनापि त्रेधा विभज्य मायाबीजस्य द्वितीयाङ्कुरायमाणा सपरार्धरूपिणी पुनरधोमुखी स्पन्दन्ती निजेच्छया च सृष्टिचक्रमूर्तिना भ्रूबिलबिन्दुमण्डलाभिमानिनीच्छाशक्तिबीजशिवतत्त्वराजसब्रह्मकारणसृष्टिरूपिणी पुनरधस्तादाहतसूर्यमण्डलव्यापिनी स्थितिचक्रेणेति प्रक्रियाशक्तिकामराजबीजविद्यातत्त्वसात्त्विकविष्णुकारणपालयित्री

सैव पुनरामूलमधोऽग्निमण्डलमाकुर्वती संहारचक्रवर्तिनी ज्ञानशक्तिवाग्भववीजात्मतत्त्वतामसरुद्रकारणसंहारिणीत्येवं त्रिशक्तित्रिचक्रत्रिधामत्रिबीजत्रितत्त्वत्रिगुणत्रिकोणादिभेदत्रयाविर्भावेण त्रिवृत्करणरचनावैचित्रीचतुरा त्रैविध्येन समस्ताध्वव्यापिनी त्रिपुरेत्युच्यते।

ज्ञानशक्तिरित्यादि। अत्र संसृजतिक्रियान्तस्पष्टोपा(न्तश्री?त्तत्रि)शक्तिसाध्यसृष्ट्या-दिकर्मत्रयसंसर्गं त्रिजगद्विषयं त्रिपुरा त्रिविधा देव्येकैव करोतीत्यत इच्छादिशक्तीनां तिसृणामेव (विद्यातत्त्वं? व्यापृतत्त्वं) न तु तुरीयकलायाः शान्ताख्यायाः, तस्या अम्बिकायाः (रूप?) कन्द(र्प?)रूपत्वात्। अन्यच्च, तिसृणामपीच्छादिशक्तीनां वीजसाम्य(मुद्रेकमिति। अस्या? मत्रैवेत्यवस्था)स्तिस्रो विद्यन्ते। तदिच्छाक्रियाज्ञानशक्तीनामेकैकस्यामेवोद्रेकाख्यमाधिक्यं तदुद्रिक्तशक्तिव्यतिरिक्तयोः शक्त्योर्द्वयोरप्यतुल्यभावं च भजतां ब्रह्मविष्णुरुद्राणां तथा तेषां साम्यवीजदशाजुषोरीश्वरसदाशिवयोश्च मूर्तिमती सा विमर्शशक्तिरेकैव स्वेच्छया षडध्वनां सृष्टिस्थितिलय(वि?तिरो)धानानुग्रहैः पञ्चकृत्यैः क्रीडति। तेऽप्यध्वानः षट्त्रिंशत्तत्त्वानि तथा भुवनानि चतुर्विंशत्यधिके द्वे शते। तथा च कला अपि तत्तद्भुवनान्तः स्फुरन्त्यस्तथाख्यास्तावत्य एवेति रूपाध्वानस्त्रयः। अथ वर्णाः पञ्चाशत्। अनन्तपदव्यापकानि सुप्तिङन्तौपाधिसङ्कोचितानि पदान्येकाशीतिरेव। तथा गर्भीकृतासंख्यातमन्त्रवत् सप्तकोटिमहामन्त्रा व्यापकाः साङ्गब्रह्मशिवाख्या मन्त्रा एकादशेति नामाध्वानोऽपि त्रयः। तत्र भुवना(ध्वनि स? ध्वनः) तत्त्वाध्वनि, (स च? तस्य) वर्णाध्वनोत्युत्तरोत्तरव्यापकाध्वनि पूर्वपूर्वव्याप्याध्वान्तर्भावो ग्रन्थविस्तारभीत्याऽत्रानुक्तोऽपि गुरुतः शास्त्रतश्च यथावद्विज्ञेयः। तस्मात् स्व(स्व?स्वा)न्तराध्वपरमकारणयोस्तत्त्ववर्णाध्वनोः 'आक्षकण्ठाप्रधाना मालाशार्णः सदाशिवः' इत्युक्तयुक्त्या (कष्टा?क्षिति)तत्त्व(क्रम?क्ष)वर्णादिप्रधानतत्त्व(ट)वर्णान्तं चतुर्विंशते(रूर्ध्व?रशुद्ध)तत्त्वानां वर्णानाम्, तथा पुरुषतत्त्व(ज्ञ?ञ)वर्णादिमायादितत्त्व(स?घ)वर्णान्तं सप्तानां (शुद्धा)शुद्धतत्त्वानाम्, तथा शुद्धविद्यातत्त्व(भ?ग)वर्णादिसदाशिवतत्त्व(ग?क)वर्णान्तं त्रयाणां शुद्धतत्त्वानां वर्णानाम्, तथा शक्तितत्त्वस्य शुद्धस्यैकस्य विसर्जनीयादाकारान्तस्य दीर्घाष्टकस्य, तथा शिवतत्त्वस्य शुद्धस्यैकस्यानुस्वाराद्यकारान्तस्य ह्रस्वाष्टकस्य चेत्येवं वाच्यवाचकप्रकाशसामरस्यं वह्निदाहिकैक्यमिव स्वातन्त्र्येण प्रतिपन्नं प्रतिपद्य सर्वाध्वभिः सामान्यरूपं तदा सर्वप्रकाशैक्यप्रत्यवमर्शकवर्णाध्वनां वैशेषिकं च पञ्चकलानामैकात्म्यमवगन्तव्यम्। यथा कटपयादिभिः स्वशून्यनन्तैः(?) संख्यावर्णैर्बद्धवाक्यैः श्लोक्यते—

यज्ञो जनस्य यच्चारकमित्युक्तसंख्यया। अङ्गान् तत्त्वपुरेशार्णपदमन्त्राध्ववनां परे॥
उपान्त्यांशारुरुं क्षेमो गिरीपुत्रः खनीरिति। मध्यमाशाः सनिः सूत्रं सेनानीरः खनीरिति॥
अंशांशानदयालीनं कायं रक्तमितीरिते। रक्त मया त्वया योगानमित्युदितमांशगाः॥
निवृत्त्यादिभिराश्लिष्टाः कलाभिः पञ्चभिः क्रमात्। सामान्यपञ्जिकारेयं·········शिशोर्विवक्ष्यते॥
व्याप्ताः पञ्च कला वर्णैर्विंशत्या चतुरूर्ध्वया। सप्तभिस्त्रिभिरष्टाभिर्दीर्घैर्ह्रस्वैस्तथाऽष्टभिः॥
प्राङ्निवृत्तिः प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्च पञ्चमी । शान्त्यतीतेति कवयः कलयन्ति कलाः क्रमात्॥

एवं स्वव्यतिरिक्तानां सर्वेषामध्वनां स्वस्वकारणप्रवेशद्वारेण वर्णक्रमान्तर्भावो भवतीति सर्वाध्वसत्तया स्फुरद्वर्णक्रमरूपिणी स्थिता च विमर्शशक्तिरपि वैखर्यादित्रिभेदेन त्रितत्त्वगामिनी सैव धामसंवित्स्वरूपेण परारूपिणी स्थिता सर्वतत्त्वस्वरूपिणी पुनस्त्रिवृत्करणात् पूर्वमेकविधैवानुसन्धेया। सा च विमर्शशक्तिरिच्छादिस्वकलाचतुष्टयं कूर्माङ्गवत् सङ्कोच्य पञ्चकारणरूपाऽकुलबिन्दौ शृङ्गाटात्मनि वर्तमाना पुनः शृङ्गाटतत्कन्दाभिमानिनी कलाचतुष्टयं ग्रसित्वा केवलबिन्दौ निरशेषबीजात्मन्यन्तस्सारविमर्शरूपे स्थितेति त्रिवृत्कारणतया पुराभवत्वात् त्रिपुरा परिकीर्त्यते। तदुक्तम्—

मूर्तिवैचित्र्यविभवादिच्छायाः प्रविकस्वरम्। अध्वभेदं सृजत्युच्चैर्व्याप्यव्यापकभेदितम्।।
स्थूलो व्याप्यो व्यापकोऽन्यो भुवनादिः कलान्तगः । एवमन्यत् समस्तं तज्ज्ञानशक्तिविपाकयुक्।।
रौद्रीरूपं समुल्लास्य निखिलं गम्यते यया। इति।।१०-११।।

*** सेतुबन्धः ***

ननु प्रपञ्चोत्पत्तेः पूर्वमेव त्रिपुटीतः पूर्वत्वादस्या युक्तं त्रिपुरात्वं न स्थित्यादिदशायामित्याशङ्क्य सर्वदैव महादेव्यास्त्रिपुरात्वमनपनोद्यमित्याह द्वाभ्याम्—वामाज्येष्ठारौद्र्य एव पुंवेषेणाऽऽविष्टा ब्रह्मविष्णुरुद्रा भवन्ति। तच्छक्तिभूता भारतीपृथिवीरुद्राण्य एव ज्ञानेच्छाक्रिया इत्युच्यन्ते। कर्तृत्वशरीरघटिका अप्येता एव तिस्रः। तदुक्तम्—

न सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता ब्रह्मणः परा।
इच्छात्वं तस्य सा देवी सिसृक्षोः प्रतिपद्यते।।
एवमेतदिति ज्ञेयं नान्यथेति सुनिश्चितम्।
ज्ञापयन्ती झटित्यन्तर्ज्ञानशक्तिनिर्गद्यते।।
एवम्भूतमिदं वस्तु भवत्विति यथा पुनः।
ज्ञाता तदेव तद्वस्तु कुर्वत्यत्र क्रियोच्यते।।

इति मालिनीविजयतन्त्रे। 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इति श्रुतिरपि। अत्र बलमिच्छेति तद्व्याख्यातारः। एतास्तिस्रोऽपि ब्रह्मणः स्वभाव एव न ततो भिन्ना इत्यर्थः। ततश्च सृष्टिसमये ज्ञानादित्रयरूपत्वादितरकालेष्वपि वामादिब्रह्मादित्रयरूपत्वात् त्रिपुरात्वमस्या न व्याहन्यत इति भावः। पुरशब्दः शरीरार्थः। त्रीणि पुराणि यस्याः सेति विग्रहः।।१०-११।।

रमते एकाकिनी त्रिपुरैव

यदोल्लसति शृङ्गाटपीठात्कुटिलरूपिणी ।।१२।।
शिवार्कमण्डलं भित्त्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम् ।
तदुद्भवामृतस्यन्दपरमानन्दनन्दिता ।।१३।।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं पुरुषमेति सा ।
निर्लक्षणं निर्गुणं च कुलरूपविवर्जितम् ।।१४।।
ततः स्वच्छन्दरूपा तु परिभ्राम्य जगत्पुनः ।
तेनाऽऽचारेण सन्तुष्टा पुनरेकाकिनी सती ।।१५।।
रमते स्वयमव्यक्ता त्रिपुराख्यातिमागता ।
तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टा वर्णशक्तित्रयात्मिका ।।१६।।

जब कुटिलरूपिणी शृङ्गाटपीठ से ऊर्ध्व में स्फुरिता होकर शिवार्क मण्डल का भेद करती है और इन्दुमण्डल को द्रावित करती है, तब वह उससे उद्भूत अर्थात् इन्दुमण्डल-द्रावजनित अमृतक्षरणरूप परमानन्द से नन्दिता हो जाती है। वह कुलयोषित् कुल

त्यागकर परपुरुष से मिलिता हो जाती है। यह परपुरुष निर्लक्षण, निर्गुण, कुलवर्जित तथा रूपवर्जित है। तदनन्तर वह स्वच्छन्दरूपा पुनः जगत् का परिभ्रमण करके उस आचार से संतुष्ट (कुलाचार से संतुष्ट) होकर एकाकिनी सती अकेले रमण करती है। वह अव्यक्ता, तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टा, वर्णत्रयात्मिका तथा शक्तित्रयात्मिका होकर 'त्रिपुरा' आख्या को प्राप्त करती है।।१२-१६।।

उल्लसति—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—मध्यचारी मार्ग अर्थात् सुषुम्ना मार्ग से ऊर्ध्व में स्फुरिता होती है। **शृङ्गाटपीठात्**—शिवानन्द के अनुसार मूलाधारगत चतुर्दल पद्मस्थ त्रिकोणरूप उस स्थान से। **कुटिलरूपिणी**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—इदन्ता प्रसरोन्मुखी, जो स्वाभाविक सृष्टिमार्ग का परित्याग करके गुरुकथित वृद्धि के अनुसार संहार मार्ग के प्रति स्फुरिता है। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—प्रत्यावर्त्तन के पथ पर प्रत्यावृत मुखत्वहेतु रक्तरूपिणी। **शिवार्कमण्डलं भित्वा**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—मूलाधार से आरम्भ करके उन-उन आधारगत चक्रगत पद्म का भेदन करके ब्रह्मरन्ध्रगत हंसात्मक शिवाधिष्ठान अंकोपलक्षित प्रकाश भूमि प्राप्त होती है। भास्करराय आलोच्य श्लोक का अर्थ करते है—'शिवरूपं च अर्क-मण्डलं उच्छूनबिन्दुकामाख्यं रविमपि भित्वा' अर्थात् शिवरूप अर्कमण्डल अर्थात् कामनामक जो उच्छून बिन्दु है, जिसे रविबिन्दु अथवा रवि कहते हैं, उसका भेदन करना होगा।

यहाँ यह उल्लेख करना है कि शिवबिन्दु तथा शक्तिबिन्दु का समरसीभूत जो मिश्रबिन्दु है, वह है—रविबिन्दु।

इन्दुमण्डलम्—शिवानन्द के अनुसार महाप्रकाश-शिव-सम्मेलन समुज्जृम्भित महानन्दलक्षण चन्द्रमण्डल। भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ है—शून्याकार बिन्दु। अमृतमयत्व के कारण इसे इन्दुमण्डल कहते हैं, जो सहस्रारस्थ है। **तदुद्भवामृतरसानन्दपरमानन्दनन्दिता**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—महासामरस्य-जनित महानन्दानुभवरूप अमृतस्यन्दात्मक परमानन्द द्वारा नन्दिता अर्थात् परिपूर्णा। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—इन्दुमण्डल विद्रावित होने पर वहाँ पर पीयूषस्रावनिभ जो परमानन्द विद्यमान है, उसके द्वारा नन्दिता होती हैअर्थात् उस समरस स्वभाव को प्राप्त होती है। **कुलयोषित्**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—अतिस्पृहणीयत्व के कारण तथा सबसे अगोचर होने के कारण देहप्रमाता की पत्नी को कुलयोषित् कहते हैं। आगम की भाषा में यह है—कुलेश्वरी, देहाभिमानिनी संवित्। **कुलंत्यक्त्वा**—शिवानन्द कुल का अर्थ बतलाते हैं—३६ तत्त्वसमुदायरूप शरीर। उसका त्याग करना अर्थात् इसके अभिमान, देहाभिमान का त्याग। भास्करराय के मत से कुल अर्थात् यह प्रपंच, उसका त्याग करे। अन्य अर्थ है—

सद्वंश का त्याग करे अर्थात् कुलत्यागिनी हो जाय। **परं पुरुषं**—शिवानन्द के अनुसार इसमें 'पर' का अर्थ है—अन्य, उत्कृष्ट, अकुलस्थानवर्त्ती। पुरुष का अर्थ है—पूर्ण, पुंस्त्वयुक्त, अकृत्रिम प्रमाता। भास्करराय परपुरुष पद के दो अर्थ करते हैं—१. परशिव, २. जारपुरुष। **निर्लक्षणः**—भास्करराय के मत से इसका एक अर्थ है—असाधारण धर्महीन एवं द्वितीय अर्थ है—सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शुभलक्षण-रहित। **निर्गुणं**—भास्करराय इसके दो अर्थ बतलाते हैं। प्रथम है—सत्त्वादि गुणों से अतीत। दूसरा अर्थ है—चातुर्य आदि गुण से रहित। **कुलरूपविवर्जितं**—भास्करराय इसके दो अर्थ करते हैं—(क) कुल अर्थात् मातृमेयादि, तत्प्रयुक्त रूप अर्थात् सविषयत्व, उससे विवर्जित अर्थात् निर्विषयचिद् रूप। (ख) कुल तथा रूपविवर्जित अर्थात् दुष्टवंशोत्पन्न तथा असुन्दर। **एति**—शिवानन्द अर्थ कहते हैं 'गच्छति'—भास्करराय अर्थ करते हैं—स्वैरवृत्तिशीला। यह स्वरूप ही चित् शक्ति के अर्थ में व्यवहत होता है। **परिभ्राम्य जगत्**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—प्रपञ्चरूप में अनेक प्रकार से परिणता। **तेन आचारेण**—भास्करराय अर्थ करते हैं स्वैरिणी के आचार में। **सन्तुष्टा**—शिवानन्द के अनुसार परमानन्दमयी, प्रीतिमती। **एकाकिनी**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—अद्वितीया। भास्करराय एकाकिनी शब्द का दो अर्थ करते हैं—(क) अनेक रूपों का त्याग किया है, ऐसी जो है। (ख) दासीप्रभृति से रहिता। **सती**—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—महास्फुरत्तारूपा। **अव्यक्ता**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—विश्वोत्तीर्णा, भानैकशरीरिणी। भास्करराय के मत से इसका एक अर्थ है—मन-वाणी से अगम्या एवं दूसरा अर्थ है—लोक दृष्टि से अगोचरा। **रमते स्वयं**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं अद्वयानन्दमयी महाहन्तात्मिका स्वसंवित् अनुभव करती है। भास्कराचार्य 'रमते' का अर्थ करते हैं—सृष्टि आदि क्रीड़ा करती है। वे 'स्वयं' शब्द का अर्थ करते हैं कि यह 'एकाकिनी' पद से अन्वित है। **तत्वत्रयविनिर्दिष्टा**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व रूप से कथिता। **वर्णशक्तित्रयात्मिका**—वर्णत्रयात्मिका तथा शक्तित्रयरूपा। वर्णत्रयात्मिका, अक्षरत्रयात्मिका तथा बीजत्रयात्मिका। अक्षर का अर्थ है—बीज (विद्यानन्द ने भी इस ग्रन्थ में अन्य श्लोक के अन्तर्गत 'एकैकाक्षरसाधनम्' पद का अर्थ किया था—एकैक बीजसाधन। अतः अक्षर का अर्थ बीज होता है)। शक्तित्रयात्मिका अर्थात् ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति। भास्करराय इन श्लोकों का सार यह कहते हैं—मूलाधार पीठस्थ त्रिकोणगा कुलकुण्डलिनी सूक्ष्मरूपेण सुषुम्नमार्ग से अन्तःप्रविष्टा होकर अनाहत चक्रस्थ सूर्य का भेदन करके सहस्रारस्थ इन्दुमण्डल को द्रावित करके अकुलकुण्डलिनी के साथ संगता हो जाती है। इस मिलन से उद्भूत अमृतधारा से आप्यायिता होकर प्रत्यावर्त्तन क्रमेण स्वस्थान में आ जाती है।।१२-१६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

यदेति। उल्लसति मध्यचारमार्गेण ऊर्ध्वं स्फुरति। शृङ्गाटपीठाद् मूलाधारगतचतुर्दलपद्ममध्यत्रिकोणकुलस्थानात्। कुटिलरूपिणी इदन्ताप्रसरोन्मुखी। सृष्टिमार्गं स्वाभाविकं विहाय गुरूक्तयुक्त्या संहारमार्गं प्रति यदोल्लसतीत्यभिप्रायः। **शिवार्कमण्डलं भित्त्वेति**। मूलाधारादितत्तदाधारगतकमलोदरनिर्भेदनक्रमेण ब्रह्मस्थानगतहंसात्मशिवाधिष्ठानार्कोपलक्षितप्रकाशभुवं प्राप्येत्यर्थः। **द्रावयन्तीन्दुमण्डलमिति**। महाप्रकाशशिवसम्मेलनसमुज्जृम्भितं महानन्दलक्षणं द्रावयन्तीत्यर्थः। **तदिति**। अयमर्थः—महासामरस्यमहानन्दानुभवरूपामृतस्यन्दात्मपरमानन्देन नन्दिता परिपूर्णेति। पारिपूर्ण्यमाकाङ्क्षणीयराहित्यम्। तदुक्तं श्रीरहस्यगुरुभिः—

आकाङ्क्षणीयमपरं येन नाथ न विद्यते।
तव तेनाद्वितीयस्य युक्तं यत्परिपूर्णता।। इति (शि० स्तो० ५.१७)

व्याख्यातसामरस्यविषयेऽभियुक्तोक्तिः—

मूलाधारात् स्फुरिततडिदाभा प्रभा सूक्ष्मरूपो-
दगच्छन्त्यामस्तकमणुतरा तेजसां मूलभूता।
सौषुम्नाध्वाचरणनिपुणा सा सवित्राऽनुबद्धा
ध्याता सद्योऽमृतमथ रवेः स्रावयेत् सार्धसोमात्।। इति।
(प्र० सा० १०.७)

कुलेति। अतिस्पृहणीयत्वात् सर्वजनागोचरत्वाच्च कुलयोषिद् देहप्रमातुः पत्नी, आगमभाषया कुलेश्वरी देहाभिमानिनी संविदित्यर्थः। **कुलं त्यक्त्वा**। षट्त्रिंशत्तत्त्वसमुदायरूपं शरीरं कुलम्, तदभिमानं विसृज्य। देहप्रमातृतां त्यक्त्वेत्यर्थः। परम् अन्यमुत्कृष्टं चाकुलस्थानवर्तिनम्। पुरुषं पूर्णं पुंस्त्वयुक्तं चाकृत्रिमप्रमातारम्। एति गच्छति। काचित् कुलाङ्गना चिरकालं कस्यचिद् गृहिणी भूत्वा गुप्ता वर्तमाना सती देशिकाख्यकटकावलम्बनेन तत्प्रदर्शितमार्गानुसारेण महाभोगप्रदं परं पुरुषं गूढाचारेणाभिसरतीति ध्वन्योऽर्थः। सेति प्राक्परिशीलिता। किंविशिष्टं परं पुरुषमिति? तदाह—**निर्लक्षणम्**। निर्गतानि लक्षणानि यस्मात्तम्। निर्गुणं निर्गता गुणा यस्मात्तम्। कुलरूपविवर्जितं कुलेन रूपेण च विवर्जितम्। अत्र महाकवयः—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।। इति।
(कु० सं० ५.७२)

अत्र रहस्यं च—'स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता' (श्वे०उ० ३.१९) इति, 'निष्कलं निष्क्रियम्' (श्वे० उ० ६.१९) इत्यादि च।

तत इति। स्वच्छन्दरूपा महदवष्टम्भेन निर्यन्त्रणप्रचारा। जगत् चिदम्बरमवलम्ब्य तद्रूपतया स्फुरत्। तेन चारेण यथा संहारक्रमेण पूर्वमूर्ध्वं गता। पुनः सृष्टिक्रमेण तेन चारेणेत्यर्थः। सन्तुष्टा परमानन्दमयी प्रीतिमती। एकाकिनी अद्वितीया। सती महास्फुरत्तारूपा। **रमते स्वय-**

मिति। अद्वयानन्दमयीं महाहन्तात्मिकां स्वसंविदमनुभवतीत्यर्थ:। अव्यक्ता विश्वोत्तीर्णा भानैकशरीरिणी। व्यक्तिमागता विश्वात्मना प्रकाशमाना। अथवा अव्यक्ता पश्यन्तीवाक्प्रधानेन रूपेण, व्यक्तिमागता मध्यमादिवाक्प्रधानेन रूपेण। तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टा। आत्मविद्याशिवाख्यं तत्त्वत्रयम्, तद्रूपतया शब्दिता। वर्णशक्तित्रयात्मिका वर्णत्रयात्मिका शक्तित्रयात्मिका च।।१२-१६।।

※ अर्थरत्नावली ※

यदोल्लसतीत्यादि तेन मार्गेण सन्तुष्टेत्यन्तस्यायमर्थ:—यदा यस्मिन् काले। उल्लसति ऊर्ध्वं लसति स्फुरति, संहारमार्गं प्राप्य स्फुरतीत्यर्थ:। **शृङ्गाटपीठादिति।** अकुलबिन्दोरिदं लक्षणमुक्तम्। तल्लक्षणलक्षितं तदेव शृङ्गाटं त्रिकोणकुलशक्तेरासनमिति भाव:। तस्मात् त्रिकोणपीठादूर्ध्वं गच्छत्यकुलबिन्दुरूपपरपुरुषसमागमेच्छया यदा, तदा तामेव शक्तित्रयबीजत्रयतत्त्वत्रयत्रिवृत्कृतसर्वाध्वप्रविलापनेन विकासभूमिमुपगूहत इति यावत्। निर्लक्षणमित्याद्यकुलबिन्दुरूपस्य शिवस्य स्वरूपकथनम्। अन्यत् सुगमम्। पुनरेकाकिनी सतीत्यादि व्यक्तिमागतेत्यन्तस्यायमर्थ:—एवं संहारक्रमेणोपभोगसन्तुष्टा पुन: स्वेच्छावशात् सृष्टिमार्गं प्रविश्योक्तसमयेन कुलपुरुषमुपगूहन्तं प्रलोभयन्तीव स्थिता विमर्शशक्तिर्गमाग(मैव? मेन) रमत इति यावत्। **एकाकिनीति।** यदेवं परपुरुषसमागमं स्वातन्त्र्यवशात् समाचरति, तदा तत्कर्माण्युपादानसहकारिकारणनिरपेक्षतयैव समाचरति। कोऽभिप्राय:? य(दे?दै)वं गमागमेन जगच्चित्रविरचनविलापनकारिणी, तदा स्वातिरेकेण तदुपकरणकारणभिन्नास्ति, तदुपादानसहकारिकारणस्वातन्त्र्यं व्यतिरिक्तं नापेक्षत इति भाव:। तदुक्तं सूत्रद्वयेन—'चिति: स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतु:' (प्र० हृ० १), 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (प्र० हृ० २)। तथा ऋजुविमर्शिन्यामप्युक्तम्—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वात्मतूलिकयात्मनि।
स्वयमेव तदालोक्य प्रीणाति जगदीश्वरी।। इति।

अव्यक्ता व्यक्तिमागतेति। इत्थं सा (सदा? शक्तिरा)शिवमाकीटमेकप्रकारेण गमागमं वितन्वती उच्छ्वासनि:श्वासलक्षिताऽप्यदीक्षितात्मभिर्मलमयै: कर्मनृतै: पशुभि: क्षुद्रकर्मरतै: (न) ज्ञायते यस्मात्, तस्माददीक्षितात्मनां देशिकपदोपसर्पणविमुखानां समलाशयानामव्यक्तेति भाव:। तदितरेषां कल्याणदेशिककटाक्षस(व्य?)मुत्थज्ञानाग्निनिर्दग्धसमस्तमलानामलाशयानां जीवतामेव शिवत्वमुपगतानां चेतस्यनवरतमभिव्यक्तिमागतेति भाव:। तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टेत्यादि त्रयात्मिकेत्यन्तस्य त्रिपुरायास्त्रिभेदकारणं त्रितत्त्वत्रिवर्णत्रिशक्तिभेदमित्युक्तमर्थं पुनरुपसंहारेऽप्यनुस्मरतीति भाव:।।१२-१६।।

यदोल्लसतीत्यादि सन्तुष्टेत्यन्तम्। यदा उल्लसति ऊर्ध्वं स्फुरति संहारायोर्ध्वं ज्वलयति। शृङ्गाटपीठात् अकुलस्थाने यदा कन्दबिन्दुशृङ्गाटपीठमाविर्भूतम्, तदा जातात् कुलशक्तेरप्यासनभूता(त्) त्रिकोण(ात्)। कुटिलरूपिणी सङ्कुचितरूपिण्यपि शिवा उपाधिलयभावे निरावरणमहाप्रकाशधर्मिणी सा शक्तिर्हृदि स्थितं कामराजमर्कमण्डलं तेज:कणमिवान्तर्निधाय त्रिवृत्कृतं सर्वं विलापयन्ती उद्गच्छन्ती

कुलयोषित् कुलकुण्डलिनीशक्तिरकुलगतं सम्यगमृतमण्डलं द्रावयन्ती तत्र स्रवद्दिव्यामृतपानाविर्भूतपगनन्दसमृद्धा स्वजन्मगृहमपि विस्मृत्वाऽकुलबिन्दुरूपं परपुरुषाख्यं शिवम्, निर्लक्षणं स्वतः प्राप्यभूमिहीनम्, निर्गुणं मायिनम्, कुलरूपविवर्जितम् आभिजात्यजन्मसौन्दर्यरहितमनादिनिधनम्, अभ्येत्य स्वच्छन्दं रमते। यथा कुलयोषिदभिजाता सुन्दरी काचित् स्वं मनोहारिणमुत्कृष्टं स्वयंवृतं पतिमुद्वास्य स्वस्मान्निवर्तितल(क्ता?क्षणा)न्तरं निरतिशयगुणास्पदमाभिजात्येन वर्जितं तमाश्लिष्य स्वजन्मगृहमुपेक्ष्य तेन सह स्वेच्छया क्रीडति तथैवेत्यर्थः। तेन मार्गेणेत्यादि। तेन मार्गेण (सामरस्यानुभवसन्तोषा? संहारक्रमेणोपभोगसन्तुष्टा) पुनरेकाकिनी पुनरुपाधिधूननेन परमशिवसमरसीभावादद्वैतरूपिणी तदा पुनरेकाकारे मूलशृङ्गाटे एकाकिनी परमानन्दरूपिणी सती प्रागुपहितत्वादव्यक्तापि गमागमाभ्यां नादप्रकाशविमर्शरूपेण भक्तानां व्यक्तिमागता स्वेच्छया प्रसीदतीत्यर्थः। एकाकिनीशब्देन शक्तिप्राधान्यमभिव्यनक्ति परमेश्वर इति भावः। 'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' (प्र० हृ० १), 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' (प्र० हृ० २) इति। अन्यत्रापि—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वात्मतूलिकयात्मनि। स्वयमेव तदालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः।। इति।

किञ्च, अव्यक्ता····व्यक्तिमागतेत्यस्यायमभिप्रायः—विश्वात्मरूपिणी शक्तिराशिवमाकीटमुच्छ्वासनिःश्वासलक्षणं गमागमं वितन्वती देशिकरहितानां क्षुद्रकर्मनिरतानां पशूनां मलकर्ममायाख्यपाशजालावृतत्वादज्ञाताऽप्यव्यक्ता(ऽपि) कल्याणदेशिककटाक्षोद्यज्ज्ञाना(दि?ग्नि)दग्धपाशानां भक्तिशालिनां जीवतामेव शिवभावमापन्नानां चेतस्यनारतमभिव्यक्तत्वाद् व्यक्तिमागतेत्युक्तमिति। **तत्त्वत्रयविनिर्दिष्टेत्यादि।** त्रिपुरायास्त्रैविध्यशक्त्यादिवद्भावपरिणतितात्पर्यमुपसंहारेऽप्यनुस्मारयति।।१२-१६।।

* सेतुबन्धः *

लयकालेऽप्येषा त्रिपुरैवेति द्योतयँल्लयप्रकारमाह सार्धैश्चतुर्भिः—यदा स्थितिकालावधेः समाप्तिस्तदा क्षित्यादिप्रपञ्चस्य स्थूलरूपतया प्रथनरूपाच्छृङ्गाटपीठात्कुटिलरूपिणी परावर्तमानतया प्रत्यङ्मुखत्वाद्वक्ररूपिणी सती शिवा देवी शिवरूपं चार्कमण्डलमुच्छूनबिन्दुकामाख्यं रविमपि भित्त्वा तद्रूपं परिहृत्य ततोऽपि प्राक्तनं शून्याकारं बिन्दुममृतमयत्वादिन्दुमण्डलमपि विद्राव्य तत्र विद्यमानो यः पीयूषस्रावनिभः परमानन्दस्तेन नन्दिता तत्समरसभावमापद्यते। एतावान्हि प्रपञ्चस्य लयप्रकारः। कामकलास्वरूपे हि यो मुखत्वेन परिणममानो बिन्दुः, स सूर्यरूपः। ततोऽपि सूक्ष्मस्तुरीयबिन्दुस्तु चन्द्ररूप इति तान्त्रिकाणां समयरहस्यम्। इममेवार्थं समासोक्त्यलङ्कारेण स्वैरिणीवृत्तान्तं स्मारयन्पुनर्वर्णयति—**कुलयोषिदिति।** कुलं सजातीयसमूहः। साजात्यं चैकज्ञानविषयत्वेन त्रिपुट्याः। तत्सम्बन्धिनी योषित्। स्थूलप्रपञ्चात्मना परिणतेति यावत्। पक्षे कुलीना स्त्री, कुलं प्रपञ्चं त्यक्त्वा, पक्षे स्वकीयं सद्वंशमविगणय्य, परं पुरुषं परशिवम्। पक्षे जारम्। निर्लक्षणमसाधारणधर्महीनम्, पक्षे सामुद्रिकोक्तसुलक्षणहीनम्। निर्गुणं सत्त्वादिगुणत्रयातीतम्, पक्षे चातुर्यादिगुणरहितम्। कुलं मातृमेयादि तत्प्रयुक्तं रूपं सविषयत्वं तेन विवर्जितं निर्विषयचिद्रूपमिति यावत्। पक्षे दुष्टवंशोत्पन्नमसुन्दरं च। एति अभेदेन प्राप्नोति। पक्षे तेन सह रमते। सृष्टिप्रलययोर्मुहुर्मुहुरावर्तनमाह—**तत इति।** ततः शिवशक्त्योः समरसभावरूपानन्दैकनिकेतनस्य प्रलयस्यानन्तरम्। पुनरपि स्वच्छन्दरूपा स्वैरवृत्तिशीला, 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति' इति शक्तिसूत्रात्। अत्र स्वपदं चिच्छक्तिपरम्।

'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः' इति पूर्वसूत्रे तस्या एवोपक्रान्तत्वात्। जगत्परिभ्राम्य प्रपञ्चात्मनाऽनेकधा परिणता। पुनस्तेनाऽऽचारेण स्वैरिण्याचारेण सन्तुष्टा स्वयमेकाकिनी त्यक्तानेकरूपा। पक्षे त्यक्तदास्यादिजना। अव्यक्ता वाङ्मनसयोरगम्या, पक्षे जनैरनालोकिता सती रमते सृष्ट्यादिक्रीडाः कुरुते। अव्यक्तत्वमेव स्फुटयति—**तत्त्वेति**। षट्त्रिंशत्तत्त्वानि व्यक्तानि। तानि तत्त्वत्रयरूपेणाऽऽत्मविद्याशिवनामकेन प्रविलापयति। तदुक्तम्—

मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात्।
शक्तिशिवौ शिवतत्त्वं तुरीयतत्त्वं समष्टिरेतेषाम्।। इति।

तथा शब्दसृष्टिमेकपञ्चाशन्मातृकारूपां स्वाभिन्नविद्याकूटत्रये प्रविलापयति। कूटानां क्रमेणाकथादिहळक्षरूपत्वात्। तथा चक्रसृष्टिं शक्तिवृन्दरूपामिच्छाज्ञानक्रियारूपसूक्ष्मशक्तित्रये प्रविलापयति। एवं व्यक्ततापरिहारदशायामपि त्रित्रिरूपत्वात् त्रिपुरेति ख्यातिमागता। इह ग्रन्थे मूलाधारपीठस्थत्रिकोणगा कुलकुण्डलिनी सूक्ष्मरूपेण सुषुम्णामार्गान्तः प्रविश्यानाहतमण्डलस्थं रविं भित्त्वा सहस्रारस्थेन्दुमण्डलं विद्राव्याकुलकुण्डलिन्या संगता तदुत्थामृतधाराभिराप्यायिता परावृत्य स्वस्थानमायातीत्यप्यर्थ उत्तरतन्त्रे वक्ष्यमाणः श्लेषेणोक्तः।।१२-१६।।

वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्षरूपिणी।
कामराजे कामकला कामरूपा क्रियात्मिका।।१७।।
शक्तिबीजे परा शक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी।
एवं देवी त्र्यक्षरी तु महात्रिपुरसुन्दरी।।१८।।

वाग्भव बीज में अथवा कूट में मोक्षरूपिणी ज्ञानशक्ति वागीश्वरी, कामराजबीज में अथवा कूट में कामरूपा क्रियात्मिका कामकला तथा शक्तिबीज में अथवा कूट में शिवरूपिणी इच्छाशक्ति अवस्थिता है। इस प्रकार से देवी महात्रिपुरसुन्दरी ही त्र्यक्षरी हैं।।१७-१८।।

वागीश्वरी—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—वाग्भवाधिष्ठात्री। **ज्ञानशक्तिः**—शिवानन्द के अनुसार ज्ञान-प्रवर्त्तन करने वाली है, अतः ज्ञानशक्ति कहलाती है। भास्करराय कहते हैं कि इसका अर्थ है—ज्ञानशक्त्यात्मिका। ज्ञानशक्ति वागीश्वरी देवी का विशेषण है। **वाग्भवं**—श्रीविद्या का वाग्भव बीज अथवा कूट। **मोक्षरूपिणी**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—विद्यात्मरूपता के कारण अमृतत्त्व-प्रकाशिका। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—मोक्षप्रदा। **कामराज**—श्रीविद्या का कामराज बीज अथवा कामराजकूट। **कामकला**—कामेश्वरी। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—कामराज बीज सारभूता। **क्रियात्मिका**—शिवानन्द अर्थ कहते हैं—कामशक्तिरूपा। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—क्रियाशक्त्यात्मिका। **शक्तिबीजे**—श्रीविद्या का शक्तिबीज अथवा कूट। **परा**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—परा अर्थात् व्यापिका। **इच्छा**—इच्छाशक्ति।

शिवरूपिणी—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—परमशिव सामरस्यरूपा। भास्करराय के अनुसार इसका अर्थ है—धर्म। **त्र्यक्षरी**—त्रिवर्णात्मिका। त्रिबीजात्मिका श्रीविद्यारूपा।।१७-१८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अमुमेवार्थं विवेचयति—**वागिति**। वागीश्वरी वाग्भवाधिष्ठात्री। ज्ञानशक्ति:, विद्याप्रवर्तकत्वात्। वाग्भवे बीजे। मोक्षरूपिणी विद्यारूपतयाऽमृतत्वप्रकाशिका। यद्रहस्यम्—'विद्ययाऽमृतमश्नुते' (ई० उ० ११) इति। कामकला कामराजबीजसारभूता। कामरूपा महाचमत्काररूपा। क्रियात्मिका क्रियाशक्तिरूपा। परा व्यापिका। इच्छा इच्छाशक्ति:। शिवरूपिणी परमशिवरूपिणी। परमशिवसामरस्यस्वरूपिणीत्यर्थ:। **एवमिति**। अस्यायमर्थ:—एवं सामर्थ्ययुक्ता त्रिवर्णात्मिका त्रिपुरसुन्दरीति।।१७-१८।।

* अर्थरत्नावली *

वागीश्वरीत्यारभ्य इच्छैव शिवरूपिणीत्यन्तेन यस्मिन् स्थाने यदक्षरं या शक्तिर्यत्तत्त्वं तद्विभागं दर्शयतीति भाव:।।१७-१८।।

वागीश्वरीत्यादि इच्छैव शिवरूपिणीत्यन्तम्। यस्मिन् बीजे या तदीया शक्तिर्यत्तत्त्वं यत्फलं तद्विभागं दर्शयति। आद्यबीजे मोक्षो जाड्यमोक्ष:, वागीश्वरत्वं फलम्। कामकला कामेश्वरी बीजेशा। कामरूपं कन्दर्पसौभाग्यं मध्यबीजफलम्। परा शक्तिरमृतेश्वरी। विषमोक्षस्तृतीयबीजफलम्।।१७-१८।।

* सेतुबन्ध: *

ईदृश्या त्रिपुरया सहाभेदं प्रकृतविद्याया उपदिशति—वाग्भवकामराजशक्तिबीजेषु त्रिषु ज्ञानशक्त्यात्मिका वागीश्वरी मोक्षप्रदा, क्रियाशक्त्यात्मिका कामकला कामप्रदा, इच्छाशक्त्यात्मिका परा शक्तिर्धर्मप्रदा क्रमेण तिष्ठति। शिवरूपिणी धर्मप्रदा। एवंप्रकारेण श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्येव श्रीविद्यारूपेत्यर्थ:।।१७-१८।।

पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्धविमोचनी।
संस्मृता पापहरणी जप्ता मृत्युविनाशिनी।।१९।।
पूजिता दु:खदौर्भाग्यव्याधिदारिद्र्यघातिनी।
हुता विघ्नौघशमनी ध्याता सर्वार्थसाधिका।।२०।।

श्रीविद्या परम्परानुसार सम्यक् ज्ञाता होने पर भवबन्धन का मोचन कर देती हैं। उनका चिन्तन करने से वे पापहरण करती हैं। जप करने पर मृत्यु का नाश करती हैं। उनका होम करने पर वे विघ्नसमूह का प्रशमन करती हैं। ध्यान करने पर वे सर्वार्थसाधिका हो जाती हैं।।१९-२०।।

पारम्पर्यक्रमेण—शिवानन्द का अर्थ है कि गुरुपरम्परा क्रम है—शिवादि से लेकर अपने गुरु-पर्यन्त। वे कहते हैं कि गुरु भी दिव्य, सिद्धौघ तथा मानवौघ परम्परा से त्रिविध

हैं। श्रीविद्या के कामराज सन्तान (सम्प्रदाय) तथा लोपामुद्रा सन्तान (सम्प्रदाय) ये दो सम्प्रदाय विद्यमान हैं। प्रत्येक सन्तान की पूर्वोक्त त्रिविध दिव्यौघादि त्रिविध परम्परा है। **विज्ञाता**—शिवानन्द इसका अर्थ करते है कि 'शब्दत: अधिगता अर्थत: विज्ञाता च' अर्थात् शब्द के दृष्टिकोण से अधिगता एवं अर्थ के दृष्टिकोण से विज्ञाता। पारम्पर्येण पद से सूचित होता है कि यह कार्य होगा गुरु के उपदेशानुसार। केवल पुस्तक पढ़कर नहीं होगा। **पापहरणी**—पापों का हरण करने वाली। शिवानन्द कहते हैं कि यहाँ पाप शब्द पुण्य का भी उपलक्षण है; क्योंकि जो परमार्थवित् हैं, उन्हें पाप-पुण्य कुछ भी स्पर्श नहीं करता।।१९-२०।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

एवंविशिष्टेयं त्रैपुरी विद्या सत्सम्प्रदायविज्ञाता कार्यकरीत्याह—**पारमिति**। पारम्पर्येण शिवादिस्वदेशिकपर्यन्तगुरुपारम्पर्येण। पारम्पर्यं तु त्रिप्रकारम्—दिव्यसिद्धमानवभेदेन। इह विद्यायां सन्तानद्वयमस्ति—कामराजसन्तानो लोपामुद्रासन्तान इति। विद्याया: सकीलनिष्कीलभेदेन सन्तानद्वयायति:। तयो: कामराजसन्तान: सकीलविद्यानुबन्धी विच्छिन्नश्च। विच्छेदो नाम पारम्पर्यवियोग:। इतरो निष्कीलविद्यानुबन्धी लोपामुद्राऽगस्त्यादिपरिगृहीतत्वादविच्छिन्नश्च। तत्र दिव्यौघ: सप्तभिर्गुरुभिर्मुद्रित:, सिद्धौघश्चतुर्भि:। मानवौघस्त्वपर्यन्तोऽप्यृजुविमर्शिनीकर्त्रवधि महागुरुभिरष्टभि: स्थापित:।

तत्र दिव्यक्रमो लिख्यते—मध्यत्र्यश्रमध्यस्थानगतोड्याणपीठस्थितसमस्तविद्याभिधेयमहात्रिपुरसुन्दरीदेवीविमृष्टरूपो महाप्रकाशरूप: परमानन्दलक्षण: परमशिव एव प्रथमो गुरु:। अस्य गुरो: श्रीचर्यानाथ इति संज्ञा। स च स्वाभिन्नायै विमर्शाख्यायै स्वशक्त्यै कृतादौ प्रथममुपदिदेश। अत्राभियुक्तवचनम्—'त्र्यश्रान्तरौड्डपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी' (सं० प०) इत्यादि,

अदृष्टविग्रहा स्वान्तरुदिता परमा कला।
अस्वराकारतामाप्ता त्र्यश्रसङ्केतमध्यगा।। (सं० प०) इति
एक एव प्रकाशाख्य: पर: कोऽपि महेश्वर:।
तस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधै:।। (सं० प०) इति च।

मध्यत्र्यश्राग्रकोणगतकामरूपपीठस्थितवाग्भवबीजाभिधेयकामेश्वरीदेवीविमृष्टरूपश्रीमदोड्डनाथदेवस्त्रेतागुरु:। अत्राभियुक्तवचनम्—'त्र्यश्राग्रकोणगा या सा कामेशी कामपीठगा' (सं० प०) इत्यादि।

मध्यत्र्यश्रदक्षिणकोणगतजालन्धरपीठस्थितकामराजबीजाभिधेयवज्रेश्वरीदेवीविमृष्टरूपश्रीषष्ठनाथदेवो द्वापरगुरु:। अत्राभियुक्तवचनम्—'त्र्यश्रदक्षिणकोणस्था वज्रेशी जालपीठगा' (सं० प०) इत्यादि।

मध्यत्र्यश्रोत्तरकोणगतपूर्णगिरिपीठस्थितशक्तिबीजाभिधेयभगमालिनीदेवीविमृष्टरूपश्री-

मित्रेशनाथदेव: कलिगुरु:। अत्राभियुक्तवचनम्—‘त्र्यश्रस्योत्तरपीठस्था भगेशी पूर्णपीठगा’ (सं० प०) इत्यादि।

मित्रेशदेव: कलियुगादौ भगवतीं लोपामुद्रां भगवन्तमगस्त्यं च महातप:पुञ्जमिथुनमनुगृहीतवान्। एतत्सप्तकं दिव्यौघसंज्ञम्।

सिद्धक्रमो लिख्यते—लोपामुद्राऽगस्त्याभ्यां कङ्कालतापसाचार्योऽनुगृहीत:। तेन धर्माचार्यो लघु(नुति)कर्ताऽनुगृहीत:। तेन मुक्तकेशिनी नाम योगिन्यनुगृहीता। तयाऽस्मद्गोत्रमहत्तर: प्रसिद्धब्रह्मपादानो भोजदेवदृष्टचमत्कारो महादेशिकप्रवर: श्रीमान् दीपकाचार्यो दण्डककर्ताऽनुगृहीत:। एतच्चतुष्टयं सिद्धौघसंज्ञम्। अत्राभियुक्तवचनम्—

दि(व्या:?व्यं) सिद्धत्रयं पूर्वं दम्पती च तत: क्रमात्।
लोपामुद्रा तथाऽगस्त्यस्ताभ्यां कङ्कालतापस:।।
तेन धर्मश्च कृपया धर्मेण च महात्मना।
मुक्तकेशी ततस्तेन दीक्षिता मन्त्रनायिका।।
तया दीपकनाथश्च दीपकेन महात्मना। इत्यादि।

(सं० प०)

मानवक्रमो लिख्यते—दीपकाचार्यस्यौरस: पुत्र: सङ्केतपुञ्जप्रकाशको जिष्णुदेवस्तेनानुगृहीत:। तेन कटाक्षीकृतो मातृगुप्तदेव: प्रभाकरगुरु:। तेनावलोकितस्तेजोदेव:। तेनेक्षितो मनोजदेव:। तेन दृष्ट: कल्याणदेव:। तेन सम्भावित: श्रीरत्नदेव:। तेनाङ्गीकृत: श्रीवासुदेवमहामुनि:। तेन पुत्रीकृत ऋजुविमर्शिनीकर्ता शिवानन्दमहायोगी। एतदष्टकं मानवौघसंज्ञम्। सर्वेषां पूजानाम पूज्यवक्त्रात् श्रोतव्यम्। पारम्पर्यक्रमोऽपि पारम्पर्यक्रमायात:। सर्वथा समर्चनीया महागुरव:। अनादरणे तु महान् दोष:। तदुक्तं भगवता व्यासमुनिना—

ऋतस्य दातारमनुत्तरस्य निधिं निधीनां चतुरन्वयानाम्।
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं पापान् लोकास्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठान्।। इति।

(म० भा० १.७६.६४)

पिता माता तथैवाग्निर्गुरुरात्मा च पञ्चम: ।
यस्यैते पूजिता: पार्थ तस्य लोकावुभौ जितौ । इति च।

(म० भा० ३.१५९.२४)

अभियुक्तवचोऽपि—

लोकसाधारणैर्धर्मैर्नावमान्यो गुरु: शिव:।
चतुश्चरणसाधर्म्यादटव्यां मृगराडिव।। इति।

(य?अ)त्रानुक्तं यद्यपि गुरुपङ्क्तिसमाराधनस्थानम्, तथाप्येतद्विद्याविषये शास्त्रान्तरोक्तं स्थानमादर्तव्यम्। तथा चाभियुक्तोक्ति:—‘प्राङ्मध्ययोन्यो: पुनरन्तराले सम्पूजयेत् प्राग् गुरुपाद-

पङ्क्तिम्' (प्र० सा० ९.१४) इत्यादि। एवमङ्गविद्योद्धारस्तदाराधनं तत्स्थानं च। तदुक्तं श्रीलक्षणसारे—

जातवेदसि भूतेशे यातुधाने समीरणे।
देवीमौलौ चतुर्दिक्षु क्रमाद् हृदादिकं यजेत्।। इति।

'ततः कामेश्वरी नित्या' (१.२६) इत्यादिनित्यानां प्रसक्तेस्तदर्चा कथिता। स्थानप्रकारौ सम्प्रदायतः। 'तर्पणानि निवेदयेत्' (१.१८३) इत्युक्त्यन्यथाऽनुपपत्त्याऽर्घ्यशुद्धिरुपदिष्टा। सा च शास्त्रान्तरादायाता। तथा चाहुराचार्याः—

स्वच्छन्दभैरवे तन्त्रे यद्यपीदमुदाहृतम्।
तथापीह समानत्वात् सिद्धान्तेऽप्युपयुज्यते।। इति।

(क० क्र० ५०१)

यथा लक्षणसारेऽर्घ्यशुद्धिविधानम्—

कृतमण्डलपर्यन्ते हे(तुय?तोर्य)जनमारभेत्।
पशुवेश्मोषिताशु(द्धिः?द्धि)शोधनायामृताय च।। इत्यादि।

'सर्वबाह्यतः (२.७४) इत्येतत्कुलचक्रकल्पनसूचनम्। 'पूजयेद्रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण यः' (२.७५) इत्येतत्कारणोपादानबीजम्। 'मयाऽप्येतद्व्रतस्थेन क्रियतेऽद्यापि सुव्रते। जपस्त्रि-सन्ध्यमेतस्यास्तदेतत्पदसिद्धये।।' (४.६९) इत्येतत्सन्ध्यानुष्ठानमूलम्। 'गणेश' (१.१) इति सूत्रं सूर्यार्घ्यदाननिमित्तम्। 'एतेनैव' (२.६४) इत्येतत् स्नानपानादिसूचनम्। 'अथवा येन' (४.५१) इत्येतन्मूलविद्याध्याननिदानम्। 'एवं पूजाविधानं तु कृत्वादौ साधकोत्तमः' (१.१८३) इति पूजाविधानान्यथाऽनुपपत्त्या पूजारम्भकालप्राप्तातालत्रयकल्पनम् 'तालत्रयं पुरा दत्त्वा सशब्दं विघ्नशान्तये' (२७) इति श्रीपरात्रिंशिकोक्तनीत्या समुदितमित्यशेषमनवद्यम्।

भवबन्धविमोचिनी। एवं पारम्पर्येण सह विज्ञातेयमवगता त्रैपुरी विद्या शब्दतोऽधिगताऽर्थतो विज्ञाता च संसारबन्धात् साधकं मोचयतीत्यर्थः। अस्याः संसारमोचकत्वे युक्तिमाह—**संस्मृतेति।** पापहरणी। पापं पुण्यस्याप्युपलक्षणम्। परमार्थवित् पुण्यपापैर्न संस्पृश्यते। तदुक्तं श्रीपरमार्थसारे—

हयमेधशतसहस्राण्यपि कुरुते ब्रह्मघातलक्षाणि।
परमार्थविन्न पुण्यैर्न च पापैर्लिप्यते विमलः।। (७०) इति।

* अर्थरत्नावली *

एवमित्यादि विमोक्षणीत्यन्तस्य—भेदेऽप्येवमुक्तप्रकारेणास्यास्त्रिपुरसुन्दरीविद्याया अक्षरत्रयोत्पत्तिरुक्ता। अक्षरत्रयस्यापि त्रिवृत्कृतसर्वाध्वव्यापकत्वमस्तीति भावः। **पारम्पर्येण विज्ञातेति।** शिवादिगुर्वन्तपादुकाक्रमेण सह विज्ञायते यदा, तदेयं त्रिपुरसुन्दरी विद्या पुरुषार्थसाधिका भवति। अन्यच्च भवबन्धविमोक्षणी जायते। भवबन्धः, तस्मादेनं साधकं मोचयति परमानन्दलक्षणपरमशिवसमरसीभावं प्रयच्छतीति भावः।

पारम्पर्यं तु द्विप्रकारमस्ति—एकं कामराजसन्तानम्, अपरं लोपामुद्रासम्प्रदायम्। सकीलनिष्कीलभेदेन प्रकारद्वयमाश्रित्य समुपास्यते साधकोत्तमैः। तदिदानीं चतुः(षष्टि?)पीठभेदेन लिख्यते। आदौ प्रकाशविमर्शसारनिर्विशेषबिन्दुलक्षणः परमानन्दानुभव एव परमो गुरुः। स पुनर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा स्वेच्छावशात् प्रकाशविमर्शशक्तिशिवात्मनात्मानं विभज्योड्याणपीठे कृते युगे कामेश्वरकामेश्वरीसंज्ञया स्थितश्चर्यानाथरूपी ह्यस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रविद्यामुद्राख्यत्रितयप्रकाशकत्वेन गुरुताराज्ञास्वरूपी तुरीयविद्याभिमानी आज्ञासङ्केतप्रवर्तकः परमशिवः स्वाभेदेन स्थितायै स्वशक्त्यै कामेश्वर्यै प्रथममुपदिदेश। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

त्र्यस्रान्तरौडुपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी।
शाक्तस्फारसमाविष्टो यो ह्येतामुच्चरेन्नरः।।
सोऽचिराल्लभते सिद्धिं वाक्कामविषसंज्ञिताम्।
छिन्ना रुद्धाश्च ये मन्त्राः कीलिता मूर्च्छिताश्च ये।।
सिद्ध्यन्ति तेऽचिरात्तस्य शक्तिविस्फारबृंहिताः।
मुद्रा विद्याश्च मन्त्राश्च (यन्त्र?यत्र) यन्त्राणि संस्थिताः।।
तमहं पीठराजेशमोङ्काराख्यं नमाम्यहम्।
वाक्कामविषमोक्षाणामालयं सर्वसिद्धिदम्।।
श्रीपीठं राजदुष्प्रेक्ष्यं तमहं शरणं श्रये।
अज्ञानतिमिरध्वंसादाज्ञास्फारप्रदर्शनात् ।।
आज्ञापीठमिति प्रोक्तमोडुपीठं नमाम्यहम्।

अनेनौडुपीठभेदेन स्थितं चर्यानन्दशक्तिरूपमन्त्रविद्यामुद्राप्रकाशकं तुरीयविद्यास्वरूपमाद्यमिथुनमिति यावत्। अथ पुनस्तस्य चर्यानाथरूपस्य परमशिवभट्टारकस्याज्ञापीठे स्थित्वा कृताधिकारं कुर्वतो विमर्शरूपिणी शक्तिः कामेश्वरी। सा पुनः पूजकत्रिपीठभेदेन ओषमित्राख्या(न्) शक्तिकामराजवाग्भवाधिदैवतान् मन्त्रविद्या(मुद्रा)गुरून् त्रेताद्वापरकलिष्वधिकारपुरुषान् चित्राणविषयज्येष्ठमध्यमबालाख्यान् त्रीन् सिद्धान् सुपरीक्ष्य तेषु प्रकाशयामास मन्त्रविद्यामुद्रागुरूनिति। एतत्त्रितयं सङ्केतपद्धत्यां यथोक्तमवलोक्य शोधितं कुर्यात्। यद्यथा—

त्र्यश्रस्योत्तरकोणस्था भगेशी पूर्णपीठगा।
कामादिनवसङ्केतयन्त्रमन्त्रविधौ स्थिता।।
नवसिद्धिप्रदा या सा मन्त्रपीठकृतास्पदा।
अणिमादिमहामोक्षपर्यन्तघटनोद्यता ।।
द्वादशान्तादिताल्वन्तं जगदाह्लादकं परम्।
पुनः कन्दादिताल्वन्तं शक्तिबीजं समुद्धरेत्।।
पूर्णपीठे स्थिता याज्ञा विषनिर्नाशिनी परा।
यैर्मनाक् स्मर्यते तेषामजरामरता सदा।।

मननत्राणधर्मोऽसौ मन्त्रो यः परिकीर्तितः।
अस्याधारो मन्त्रपीठः पूर्णाख्यो जयतादजः।।

इत्याद्यस्य ज्येष्ठस्याधिकारः।

त्र्यस्रदक्षिणकोणस्था वज्रेशी जालपीठगा।
नवविद्याख्यसङ्केतस्फारसिद्धिप्रदायिका ।।
करशुद्धौ देहरक्षात्मासने चक्रशासने।
मन्त्राधारे तथा साध्यावाहने तु सुपूजिता।।
त्रिपुरा त्रिपुरेशी च सुन्दरी पुरवासिनी।
श्रीर्मालिनी च सिद्धाम्बा महात्रिपुरभैरवी।।
विद्यासङ्केतमेततु गुरुपूर्वत्वमागतम्।
श्रीमद्दीपकसन्तानसन्तत्या दर्शितं नुमः।।
गुदमेढ्रनाभिचक्रहृद्दलभ्रूविभेदितम् ।
तरुणारुणसङ्काशं कामराजं समुद्धरेत्।।

इति षष्ठनाथस्य मध्यमस्याधिकारः।

त्र्यस्राग्रकोणगा या सा कामेशी कामपीठगा।
मुद्रादशकसङ्केतदशसिद्धिप्रदायिका ।।
एका चैव महामुद्रा योनिमुद्रात्वमागता।
तया विभक्तः स्वात्मा तु संक्षोभादिप्रभेदतः।।
शक्तिगर्भात् प्रोच्छलन्तं हृद्ग्रन्थिप्रविभेदकम्।
देदीप्यमानं जिह्वाग्रे वाग्भवं तु समुद्धरेत्।।
कामपीठे स्थिता बाला कामतत्त्वप्रबोधिका।
समरणाद् देशिकान्द्राणां वाग्विलासप्रदायिका।।
द्रावणात् पाशजालस्य तत्परस्य च मोदनात्।
मुद्रापीठमिति प्रोक्तं कामरूपं नमाम्यहम्।।

एष बालस्य मित्रस्याधिकारः। त्रिसिद्धा ओलित्रयाभिमानिन इति। तदुक्तं सङ्केतपद्धत्याम्—

कन्दाग्रकोणात् प्रोच्चैर्या स्फुरन्ती सततोदिता।
कामेशीं सर्वगां नित्यां गुरुरूपां नमामि ताम्।
ज्येष्ठमध्यमबालाख्यान् चित्प्राणविषयात्मकान्।
ओषमित्रीशसंज्ञेयान् नौम्यहं सिद्धपुङ्गवान्।। इति।

अत्रौड्डादिसिद्धानां नामाद्याक्षरग्रहणम्। यथा—ओ इत्यनेन ओड्डस्य ग्रहणम्। ष इत्यनेन षष्ठस्य। मित्रीश इति सम्पूर्णस्य ग्रहणम्। ऋकारेण ऋषिरिति ग्रहणम्। षकारेण षष्ठ इति। षष्ठमित्रयोर्लौकिके वैदिके एकप्रकारेण नामग्रहणं कृतम्। श्रीमदोड्डस्य कौले

ओड्डु इत्येव प्रसिद्धम्। लोके ऋषिरिति श्रीमत्क्रोधमुनिभट्टारक इति श्रीमद्दुर्वाससस एवाभिधानम्। तदिदं त्रितयं कादिभेदे ओलित्रितयनिरूपणे ओलिगायत्र्यां स्पष्टं ज्ञायते। तद्यथा—ओड्डुनाथाय विद्महे श्रीदुर्वाससे धीमहि। तन्नः कौलिः प्रचोदयात्। तथा—षष्ठनाथाय विद्महे श्रीकुमाराय धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्। मित्रनाथाय विद्महे श्रीकण्ठाय च धीमहि। तन्नः कुब्जिः प्रचोदयात्।। श्रीदुर्वासःसुब्रह्मण्यमहादेवा लौकिके। एतेषां पूजानाम गुरुमुखादेवावगन्तव्यम्, न पुनः पुस्तके लेख्यम्। एते व्यापिनीसमनोन्मन्यपरपर्यायाः शृङ्गाटत्रिरेखाभिमानिनस्तत्र सन्निहिताः। चतुर्थमिथुनरूपं कामेश्वरकामेश्वरीरूपं प्रकाशविमर्शमयं शृङ्गाटमध्यस्थबिन्दुरूपं बीजोच्छूनविभक्तबिन्दुभागाकारमाश्रित्य स्थितं श्रीचर्यानाथतच्छक्तिमिथुनमिति भावः। एवं शृङ्गाटस्य त्रिरेखामयत्रिबीजमध्यस्थतुरीयविद्यास्वरूपमिति। पञ्चकारणरूपपरमकामात्मके गुप्ताद्यस्वरूपे सर्वमेतद्व्यवस्थितमिति सुनिपुणमतिभिरवगन्तव्यमिति भावः। एतत्पञ्चकं दिव्यौघः। एतेषां गुप्तनामग्रहणं यथा प्रकादिमस आद्यग्रहणाज्ज्ञातव्यम्। ततः परं कलियुगगुरुणा मित्रीशेन मिथुनमनुगृहीतं तल्लोपामुद्रागस्त्यात्मकम्। तत्पूजानाम सपर्यानामाद्यग्रहणं गुरुमुखाज्ज्ञातव्यम्। ताभ्यामनुगृहीतः कङ्कालतापसः, तेन धर्माचार्यः, धर्माचार्येण मुक्तकेशिनी नाम योगिनी, तया श्रीदीपकाचार्यः। एतत्पट्कं सिद्धौघः। कदंविकैर्मम आद्यग्रहणाद् गुप्तनाम। तदनु जिष्णुदेव-मातृगुप्तदेव-तेजोदेव-मनोजदेव-कल्याणदेव-रत्नदेव-श्रीवासुदेवाख्याः सप्तकं मानवौघाः। किंविशकमपश्वैराद्यग्रहणाद् गुप्तनाम। इत्थं सर्वेषां पूजानाम गुरुमुखाज्ज्ञातव्यम्।

कामराजसन्तानेऽपि दिव्यपञ्चकं समानमेवेति तत्र तत्र स्पष्टम्। ततः पपकौकुकागनाश्रीसंज्ञान् दिव्यान् सर्वान् सम्पूज्य, ससगपिमगणविधिसंज्ञान् सिद्धान् सम्पूज्य, नतुसुखदिविसंज्ञान् मानवगुरून् सम्पूजयेत्। यथा दीपकसन्ताने श्रीमती लोपामुद्राऽगस्त्यपत्नी प्रधानभूता: विनष्टसन्तानं पुनरुत्थाप्य प्रवर्तयतीति कृत्वा सा प्रधानभूता तत्र, तथाऽत्रापि क्लीमानन्दसंज्ञः कामदेवो रतिभर्ता विनष्टसन्तानं पुनः पुनः प्रवर्तयतीति तन्नामाङ्कितमिदं सन्तानम्।

एवं पारम्पर्यक्रमं गुरुमुखेन ज्ञात्वैव य एनामभ्यस्यति चेदैहिकामुष्मिकं फलमिति प्रकाश-विमर्शसमरसानन्दलक्षणं कैवल्यमिहानुभवति भवबन्धविमोक्षणीत्युच्यते। संस्मृता पापहरिणीत्यादि ध्याता सर्वार्थसाधकीत्यन्तेन स्मरणजपपूजाहोमध्यानानां पृथक् फलं दर्शयति।।१८-२०।।

एवं त्रिबीजत्रैविध्यादप्यागमोक्ता महात्रिपुरसुन्दरीति नामार्थप्रशंसा। पारम्पर्येण शिवादिगुर्वन्त-पादुकाक्रमेण सह सम्यग् ज्ञाता चेत् संसारबन्धं मोचयति। परमानन्दलक्षणे परमशिवे समरसीभावं प्रयच्छतीति भावः।

पारम्पर्यं तु कामराजलोपामुद्रादिकं नानाविधं प्रवर्तते। तत्रादौ तावत् प्रकाशविमर्शसारनिर्विशेष-बिन्दुलक्षणः परमानन्द एवानुभूतिगम्यः परमो गरीयान् शिवः। पुनरोजापूकपीठानां कृतादियुगानुसारिणामाद्ये गु(णो?णौ)लिनादसाधारणनादतया समस्तायाः श्रीमूलविद्यायास्तदन्येषु त्रिषु ज्येष्ठमध्यकनि(ष्ठा?ष्ठौ)-लि(?त्र)यप्रवर्तकपृथक्त्रिनादात्मकतया व्यक्तीनामपि शक्तिकामराजवाग्भवबीजानामधिदेवतान्तर-परिणामात्मकचर्योड्डीशषष्ठमित्रप्रकाशनामभिश्चतस्रो गुरुमूर्तयो जाताः। इति प्रकाशान्तपदम् (?) ततः प्रागुन्मिषितं महादिव्यगुरुपञ्चकं दिव्यौघः। काम एवान्तः? स एव विनष्टसन्तानं पुनः प्रवर्तयतीति

तन्नामाङ्कितं स्वसन्तानमवगन्तव्यम्। तदुपरि समयादिविमलान्तं नादपञ्चकं सिद्धौघः। ततः परमागमोक्ताऽव(ति?नि)सन्ततिर्मानवौघः। इति कामराजगुरुसन्ततिः। श्रीलोपामुद्रासन्ततिर्हृदि स्थापिता नात्र लिखिता। इति पारम्पर्यनिर्णयः। एवमेनां विद्यामभ्यस्यति चेद् भवबन्धविमोक्षणीत्युच्यते। संस्मृता पापहरिणीत्यादिना जपपूजाहोमध्यानानां पृथक्-पृथक् फलमर्थिनां प्रकाशयति॥१८-२०॥

※ सेतुबन्धः ※

इदानीं महाज्ञानप्रभावप्रश्नौ समाधत्ते—ईदृशं देवीतत्त्वविषयकं महाज्ञानं परमशिवादिस्वगुरुपर्यन्providedाविच्छिन्नपारम्पर्योपदेशक्रमेण लब्धं चेदेव भवबन्धं मोचयति। पुस्तकावलोकनादिनोपायान्तरेण लब्धं तु न फलति। प्रत्युतानर्थायैव।

पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विताः।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचयः।।

इत्युत्तरतन्त्रे (७.८१) वक्ष्यमाणत्वात्। पारम्पर्येणेत्युक्त्या विद्याया गुरुमुखात् सप्तविधान्यतमदीक्षापुरःसरमेवोपदेशो ग्राह्य इति ध्वनितम्। एवं गुरुमुखाद्विज्ञाय ततः संस्मृता पुनः पुनश्चिन्तिता पापं हरति। जपपूजाहोमध्यानैर्मृत्युनाशादिफलप्रदा भवतीत्यर्थः। ज्ञानार्णवेऽप्युक्तम्—

एषा विद्या वरारोहे पारम्पर्यक्रमागता।
भवबन्धं नाशयति स्मृता पापापहारिणी।।
जप्ता मृत्युञ्जयेशानि ध्याता सर्वार्थसाधिनी।
दुःखदौर्भाग्यदारिद्र्यभयघ्ना पूजिता भवेत्।।
महाविघ्नौघशमनी हवनान्नात्र संशयः।। इति।

अत्र विधीयमाना जपहोमादयः स्वतन्त्रा एव। प्रत्येकं फलान्वयात्। पुरश्चर्याहोमादयस्तु जपाङ्गमिति सिद्धान्तः। तत्रापि समप्रधानत्वं स्वीकृत्य खजसूयादिवत्परस्परसाहित्यमात्रमङ्गमित्यपि सुवचम्। अत्र प्राञ्चष्टीकाकाराः—विंशतेः श्लोकानां व्याख्यामतीव विस्तृत्य यथेच्छमेव स्वातन्त्र्येण वर्णयन्तोऽत्रत्यपारम्पर्यपदेन लोपामुद्रासन्तानकामराजसन्तानदिव्यसिद्धमानवौघतद्भेदादिकं बहु विस्तृत्य लिखन्तः स्वोत्प्रेक्षितार्थं ईदृशपरम्परायात इति वदन्ति। तत्सर्वं प्रामाणिकमप्यक्षरस्वारस्यानाक्रान्तत्वात्, मूलानुपयुक्तत्वाद् ग्रन्थगौरवभयाच्चोपेक्षितम् अस्माभिः।।१९-२०।।

त्रिपुराबीजत्रितयसाधनं तत्प्रयोगाश्च

एतस्याः शृणु देवेशि बीजत्रितयसाधनम्।
धवलाम्बरसंवीतो धवलावासमध्यगः ॥२१॥
पूजतयेद्धवलैः पुष्पैर्ब्रह्मचर्यरतो नरः।
धवलैरेव नैवेद्यैर्दधिक्षीरौदनादिभिः ॥२२॥
सङ्कल्पधवलैर्वाऽपि यथाकामफलप्रदाम्।
संपूज्य परमेशानि ध्यायेद्वागीश्वरीं पराम् ॥२३॥

हे देवी अब इन तीनों बीजों का साधन प्रकार कहता हूँ, तुम श्रवण करो। हे परमेश्वरि! धवलाम्बर संवित् सौरगृहमध्यग ब्रह्मचर्यरत व्यक्ति धवल पुष्प, नैवेद्य, दधि, दुग्धौदनादि द्वारा अथवा संकल्पधवल पुष्पादि द्वारा यथाभिलाषित फल प्रदानकारिणी परा वागीश्वरी की पूजा करके उसका ध्यान करे।।२१-२३।।

इन श्लोकों में वाग्भवबीज का साधन-प्रकार विवृत हो रहा है।

धवलाम्बरसंवितः—शुक्ल वस्त्र पहनकर। **धवलावासमध्यगः**—धवलावास अर्थात् सौधगृह। उसके मध्यग अर्थात् सौधगृह के मध्य आसन-ग्रहणकारी। **ब्रह्मचर्यरतः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अष्टांग मैथुन-वर्जित। स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिष्पत्ति—ये हैं अष्टाङ्ग मैथुन। शिवानन्द कहते हैं कि नारी को वाग्देवता मानकर अष्टांग मैथुन का वर्जन करना होगा। **दधिक्षीरौदनादिभिः**—दधि-क्षीरौदनादि द्वारा। क्षीरौदन अर्थात् पायस। भास्करराय कहते हैं कि इस पद द्वारा घृतगोलक, नारियल का जल इत्यादि भी सूचित होता है। **सङ्कल्पधवलैर्वा**—इसके द्वारा धवल पदार्थ का विकल्प कहते हैं। यदि धवल पुष्पादि न मिले तब जो मिल रहा है, उसी में धवल भावना करे और उसके द्वारा पूजनादि करे। **ध्यायेत्**—ध्यान करे। टीका में विद्यानन्द कहते हैं कि त्रिपुरा श्वेतवर्णा, बालारूपा तथा पुस्तक एवं अक्षमाला-धारिणी ध्येया हैं। भास्करराय के मत से यह ध्यान-विवरण टीकाकारों का स्वकपोलकल्पित होने के कारण उपेक्षणीय है। वे ज्ञानार्णवोक्त इस ध्यान को उचित बतलाते हैं—

वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन् बुधः।
कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम्।।
अत्यन्तशुभ्रवसनां वज्रमौक्तिकभूषणाम्।
मुक्ताफलामलमणिजपमालालसंकराम् ।।
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम्।
एवं ध्यायेन्महेशानि सर्वविद्याधिपो भवेत्।।

ज्ञानी साधक वागीश्वरी का ध्यान करके वाग्भव विद्या का जप करे। वह कर्पूरधवला, शुभ्र पुष्पाभरणभूषिता, अत्यन्त शुभ्रवसना, हीरकभूषणा, एक हाथ में मुक्ता अथवा स्फटिक की जपमाला-शोभिता है, दूसरे हाथ में पुस्तक, एक हाथ में वरमुद्रा तथा अन्य हाथ में अभयमुद्रा है। हे महेशानि! वागीश्वरी का यह ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से वह सर्वविद्या का अधीश्वर हो जाता है। **वागीश्वरीं परां**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—महास्फुरत्ता पूर्णाहं-विमर्शरूप अनाहत लक्षणा वाक्।।२१-२३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अस्या विद्यायास्त्रयाणां बीजानां प्रत्येकमाराधनं वक्तुमुपक्रमते—**एतस्या इति।** तत्र

प्रथमं वाग्भवबीजसाधनमाह—**धवलेति।** धवलाम्बरं शुक्लवस्त्रम्। धवलावासः सौधगृहम्। ब्रह्मचर्यरतो वनिताजनं वागधिदेवतेति मन्यमानः। अष्टाङ्गमैथुनवर्जित इत्यर्थः। उक्तं च—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। इति।
(द० स्मृ० ७.३१-३२)

सङ्कल्पधवलैर्वाऽपीति। धवलोपकरणवैकल्ये भावितश्वैत्यैः। **वागीश्वरीं परामिति।** महास्फुरत्तां पूर्णाहंविमर्शरूपामनाहतलक्षणां वाचमित्यर्थः। उक्तं च—'अनाहतशीर्ष्णी वाग् जुषाणा सोमस्य तृप्यतु' (तै० सं० ३.२.५.१) इति।।२१-२३।।

* अर्थरत्नावली *

एतस्याः शृणु देवेशि बीजत्रितयसाधनमिति। चतुर्थपटलारम्भे महादेव्याः पृथक् पृथग् एकैकबीजसाधनं कथमपि पृष्टस्तत्प्रश्नस्योत्तरं दातुमिदानीमेवावसर इति कृत्वा प्रत्येकबीजसाधनप्रकारं कथयामि, तच्छृण्विति भावः। धवलाम्बरेत्यारभ्य सम्पूज्य परमेशानीत्यन्तेन वाग्भवबीजसाधनवेलायां वेषवस्त्राभरणवासआसनपूजोपकरणधूपगन्धपुष्पनैवेद्यमूर्तिध्यानानां श्वेतरूपता कार्या। ब्रह्मचर्येणापि भवितव्यमिति भावः। ध्यानस्य श्वेतफलत्वं सरस्वतीरूपत्वं च श्रीमद्दण्डकोक्तप्रकारेण परिकल्पनीयम्। तद्यथा—'सुस्फीतस्फटिकघटिताक्षसूत्रनक्षत्रनिचयचक्रपरिवर्तनविनोदसन्दर्शितनिशासमयचारे सुचारे महाज्ञानमयपुस्तकं हस्तपद्मेऽत्र वामे दधत्या भवत्या स्फुटं वाममार्गस्य सर्वोत्तमत्वं समुपदिश्यते' (त्रि० द०१९) इति (सूचितम्?)। तत्रायं भावः—यथा मूलग्रन्थोक्तदेवीमूर्त्यां भुजे वर्णे शरीरे धार्ये विशेषः। द्विभुजा श्वेतवर्णा बालारूपा पुस्तकाक्षमालाधारिणी ध्येयेति भावः।।२१-२३।।

एतस्याः शृणु देवेशीत्यादि। 'एकैकाक्षरसाधनं वद' (४.१) इति प्रागुक्तस्योत्तरं देवीस्वरूपानुभावप्रकाशपूर्वकं यदि श्रोतुस्तात्पर्याधिक्या(त् सप्रयो)जनमितीदानीमवसरप्राप्तिं प्रति बीजसाधनश्रुतिः श्राव्यते। धवलाम्बरेत्यादि वागीश्वरी परामित्यन्तं श्रीदण्डकान्तर्वसत् 'सुस्फुटस्फटिक' (त्रि० द० १९) इत्यादिवाक्यप्रकटितस्फटिकाक्षसूत्रपुस्तकधारिकरयुगलां वाग्बीजक रक्तकलेवरां सकलां सितसरोजासनवसनसुमनोऽनुलेपनाभरणाभिरामां सुसितादिदेवीदत्तवलक्षवेषो जितेन्द्रियः साधको न्यासेनात्मसात्कृत्वा सधूपदीपनैवेद्यादिभिर्धवलैश्च मस्तके हृदि च सम्पूज्य देव्यात्मान्तरप्यन्तर्यागेन वक्ष्यमाणेन परां निष्कलां कुण्डलिनी तेजोरूपां वागीश्वरीमभ्यसेदित्युपक्रमाभिप्रायः।।२१-२३।।

* सेतुबन्धः *

एवमष्टौ प्रश्नान्समाधायावशिष्टप्रश्नत्रयं समाधित्सुः शिष्यावधानायाऽऽह। स्पष्टोऽर्थः। तत्राऽऽदौ वाग्भवबीजसाधनं पुरश्चरणमाह—धवलावासः सौधगृहम्। इदमुपलक्षणं शुक्लाकल्पादेः। अत एवोक्तं तन्त्रान्तरे—

शुक्लाम्बरपरीधानो गन्धकस्तूरिकायुतः।
मुक्ताफलस्फुरद्धारभूषणः शुक्लमाल्यधृत्।। इति।

ब्रह्मचर्यरतः, अष्टविधमैथुनत्यागी। क्षीरौदनादिभिरित्यादिपदेन घृतगोलकनारिकेलोदकादि-परिग्रहः। धवलपदार्थसंग्रहासमर्थस्य त्वाह—**संकल्पेति।** यथोपपन्नानेव पदार्थान्धवलत्वेन विभावयेदित्यर्थः। **ध्यायेदिति।** ध्यायञ्जपेदित्यर्थः। अत्र प्राञ्चः—द्विभुजा श्वेतवर्णा बालारूपा पुस्तकाक्षमालाधारिणी ध्येयेत्याहुः। तदिदं स्वकपोलकल्पितं तन्त्रान्तरानवलोकनकृतमित्युपेक्ष्यम्। तथा च ज्ञानार्णवे—

वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन्बुधः।
कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाभरणभूषिताम्।।
अन्यन्तशुभ्रवसनां वज्रमौक्तिकभूषणाम्।
मुक्ताफलामलमणिजपमालालसत्कराम् ।।
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम्।
एवं ध्यायेन्महेशानि सर्वविद्याधिपो भवेत्।। इति।

जपसंख्या तु विशेषादर्शनादक्षरलक्षन्यायेनैकलक्षरूपा यावद्विशेषदर्शनं निर्णेया।

बीजरूपामुल्लसन्तीं ततोऽनङ्गपदावधि।
ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्भिद्य जिह्वाग्रे दीपरूपिणीम्॥२४॥

तदनन्तर ब्रह्मग्रन्थि का भेदन करके बीजरूपा अनङ्गपदावधि ऊर्ध्वगामिनी होकर तदनन्तर दीपरूपिणी होकर जिह्वाग्र में अवस्थान करती है—ऐसा चिन्तन करती है। यह चिन्तन करे।।२४।।

बीजरूपाम्—शिवानन्द इसका अर्थ करते है कि वाग्भव बीजाधिष्ठान महाशक्तिरूपा है। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—वाग्भवबीज से अभिन्ना कुण्डलिनीरूपा। **ततः**—तदनन्तर। भास्करराय इसका अर्थ करते है—महासिद्धि के उपरान्त। **अनङ्गपदावधि**—भास्कररायकृत व्याख्या है—'अनङ्गोऽशरीरः कामेशात्मा परशिवस्तस्य पदं ब्रह्मरन्ध्रं तदवधि' अनङ्ग अर्थात् अशरीर कामेशात्मा परशिव हैं, उनका पद अर्थात् स्थान अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र। तदवधि अर्थात् वहाँ तक। ब्रह्मरन्ध्र है—अकुल सहस्रदल पद्म। अतः परशिव का स्थान है। **जिह्वाग्रे दीपरूपिणीम्**—विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—ज्योतिस्तम्भरूपा। भास्करराय का अर्थ है—ज्योतिरूप से स्थिता। आलोच्य श्लोकान्तर की व्याख्या में यह कहते हैं कि परशिव के स्थान ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर अमृतक्षरण होने पर साधक के जिह्वाग्र में ज्योतिरूपेण अवस्थान करती हैं, ऐसा चिन्तन करना होगा।।२४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

अन्तर्मातृकोदयप्रतिपत्तिमाह—**बीजेति।** बीजरूपां वाग्भवबीजाधिष्ठानमहाशक्तिरूपाम्। उल्लसन्तीं ज्योतीरूपतया पश्यन्त्यादिक्रमेणोर्ध्वं स्फुरन्तीम्। अनङ्गपदावधि। अनङ्गोऽशरीरः, अकुलस्थानगतः परमशिवः। अनङ्गशब्दोऽशरीर इति रहस्यम्। तदेव पदम्, पद्यते ज्ञायते

मुमुक्षुभिरिति। तदवधि तत्पर्यन्तम्। ब्रह्मग्रन्थिं विनिर्भिद्येत्यस्यायमर्थः—प्रथमं मूलाधारगतचतुर्दलकमलकर्णिकागतेच्छाज्ञानक्रियाशक्त्यात्मकत्रिकोणस्थानात् तद्घटं विनिर्भिद्येति। अत्र रहस्यागमसारसम्प्रदायतत्त्वविदो महायोगिप्रवराः साम्बमिश्राः—'या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती' (सा० प० ५) इति। अस्यार्थः साम्बपञ्चाशिकाविवृतिरचने श्रीक्षेमराजाचार्यकृते द्रष्टव्यः। दीपरूपिणीं प्रकाशैकरूपिणीम्।

या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी।
इच्छात्वं तस्य सा देवी सिसृक्षोः प्रतिपद्यते।।

……………………………………

एवमेतदिति ज्ञेयं नान्यथेति सुनिश्चितम्।
ज्ञापयन्ती झटित्यन्तर्ज्ञानशक्तिर्निगद्यते।।
एवंभूतमिदं वस्तु भवत्विति यदा पुनः।
जाता तदैव तत्तद्वत् कुर्वन्त्यत्र क्रियोच्यते।।
एवमेषा त्रिरूपापि पुनर्भेदैरनन्तताम्।
अर्थोपाधिवशाद्याति चिन्तामणिरिवेश्वरी।।
तत्र तावत्समापन्ना मातृभावं विभिद्यते।
द्विधा च नवधा चैव पञ्चाशद्धा च मालिनी।।
बीजयोन्यात्मकाद्भेदाद् द्विधा बीजं स्वरा मताः।
कादयश्च स्मृता योनिर्नवधा वर्गभेदतः।।
बीजमत्र शिवः शक्तिर्योनिरित्यभिधीयते।
वर्गाष्टकविभेदेन माहेश्वर्यादि चाष्टकम्।।
प्रतिवर्णविभेदेन शतार्धकिरणोज्ज्वला।
रुद्राणां वाचकत्वेन तत्संख्यानां निवेशने।।

(३.५-१३, १५)

इति श्रीमालिनीविजयनिरूपितनीत्या पारमेश्वरी परा वाक् प्रसरन्ती इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरूपतां (श्रित्वा) बीजयोनिवर्गवर्ग्यरूपां शिवशक्तिमाहेश्वर्यादिवाचिकामादिक्षान्तरूपां मातृकात्मतां श्रित्वा जिह्वाग्रान्निर्गच्छ(न्तीं?न्ती, तां) चिन्तयेदिति भावः।।२४।।

* अर्थरत्नावली *

बीजरूपामित्यारभ्य चिन्तयेदित्यन्तस्यायमर्थः—एवं सकलां वागीश्वरीं सम्पूज्य मृणालतन्तुवत् सूक्ष्मरूपिणीमपि स्वभासाक्रान्तजगत्त्रयां शरच्चन्द्रसमुच्चयसंकाशामतुलप्रभामग्निवर्णां वाग्भवबीजरूपां मूलवलयकमलकर्णिकानिषण्णां शृङ्गाटपीठोदरमध्यस्थितनिश्शेषबीजबिन्दुस्फुटनोद्भवामृज्वीभूतां मध्यमार्गेण चक्रपञ्चकनिर्भेदेन ब्रह्मरन्ध्रं प्रविश्याकुलसहस्रारकमलकर्णिकानिषण्णचिन्मयकलाषोडशभरितपूर्णेन्दुबिम्बमध्यन्यस्तशृङ्गाटपीठोदरगतपरमगोलकब्रह्म-

रन्ध्रग्रन्थिं विनिर्भिद्य गलत्क्षीरधारोपमसुसितसप्तषष्टिवर्णपदवाक्यरूपनिरन्तरनिबिडसुधाधारया परिप्लुतशरीरां धारया सह लम्बिकारन्ध्रपदेन तालुमूलमाविश्य जिह्वामापूर्य तदग्रेण बहिर्निपतन्तीं दीपशिखाकारां शक्तिं ध्यायन् प्रथमबीजमभ्यसेदिति। प्रतिपदं च विविच्य दर्शयामः। जिह्वाग्रे ध्यायेदिति सम्बन्धः। कामिति वि(ष?श)ये परां वागीश्वरीमिति सम्बध्यते। परामिति निष्कलरूपिणीमिति भावः। ज्योतिस्तन्तुरूपामिति यावत्। बीजरूपामिति वाग्भवबीजरूपिणीम्। तां स्मृत्योत्थापयेदित्यर्थः। **उल्लसन्तीमिति**। उपरितनपञ्चचक्रभेदेन ऊर्ध्वं स्फुरन्तीमित्यर्थः। तत इति प्रकृताच्छृङ्गाटपीठादित्यभिप्रायः। **अनङ्गपदावधीति**। अनङ्गोऽङ्गरहितः। अङ्गमिति शरीरं करचरणादिलक्षितम्, तन्नास्ति यस्य परमशिवस्य प्रकाशैकस्वभावस्येति (सं?स) भवत्यनङ्गोऽशरीरः परमशिवः। स एव पद्यत इति पदम्, विश्वस्य प्रापणाद्वा पदम्। मर्यादेति भावः। ब्रह्मरन्ध्रं विनिर्भिद्येति ब्रह्मणो ग्रन्थिं ब्रह्मग्रन्थिं प्रकाशैकस्वभावस्य ब्रह्मणो ग्रन्थिं गोलकाकारां शक्तिम्। तन्त्वग्रेण भित्वा प्रवेशयेदिति भावः। तस्य गोलकाकार(त्व)मुक्तमुत्तरषट्के—कदम्बगोलकाकारं तं कामं बिन्दुरूपिणम्। जिह्वाग्र इति विश्रान्तिस्थानं सूचितम्। दीपरूपिणीमिति शक्तितन्तोः प्रभाया दीपप्रभोपमत्वं दर्शितम्। एवं वाग्भवरूपिण्याः शक्तेरुदयो मूलाधारे, मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं व्याप्तिः, विश्रान्तिस्तु जिह्वाग्रे। एवं वाग्भवबीजस्य साधनप्रकारः। ब्रह्मरन्ध्रमिति पाठे सुगममेव॥२४॥

बीजरूपां वाग्बीजज्योतिर्मूर्तिम्। उल्लसन्तीम् उद्दीपनानन्तरं चक्रवृन्दनिर्भेदनायोर्ध्वं स्फुरन्तीम्। ततः प्रकृतशृङ्गाटपीठात्। अनङ्गपदावधि अनङ्गवपुरनवयवो वा तस्मात् निष्कलोऽनङ्गः प्रकाशक(स्वंतावत् ? स्वभावः) परमशिवः, स वा पदम्, सम्पद्यत इति पदम्। तदेवाकुलबिन्दुरूपमवधीरितमतः प्राप्य पूर्वं नास्तीति वाग्भवोपलक्षिताया अस्या विमर्शशक्त्या इत्यर्थः। ब्रह्मग्रन्थिं तस्य परब्रह्मतनोः शिवस्य ग्रन्थिरूपं तत्परबिन्दुं गोलकाकारम्। विनिर्भिद्य समरसीभावेन तादात्म्यं प्राप्य। तस्मादूर्ध्वगमावधेः शिवस्थानादाज्ञामागत्य। जिह्वाग्रे विश्रान्तिस्थाने। दीपरूपिणीं दीपवदुज्ज्वलां चिन्तयेत्। वाग्भवरूपिण्याः शक्तेरुद(ये मूलानां? यो मूलाधारे), मूलादिब्रह्मग्रन्थिपर्यन्तं व्याप्तिस्थानम्, जिह्वाग्रं विश्रान्तिस्थानम्। कोऽर्थः? मूलाधारे कमलकर्णिकाश्रयशृङ्गाटोदरस्फुरदशेषतत्त्वभूतबिन्दुस्फुटनोद्भवां वाग्भवबीजात्मिकां वागीश्वरीं परां निष्कलां शरच्चन्द्रचन्द्रिकासन्निभामथवा दीपशिखाभासुरामृज्वीभूतमृणालतन्तुतनीयसीमपि स्वभावसंक्रान्तनिखिलभुवनाभोगां सुषुम्नासुषिरेण पञ्च चक्राणि विदार्य उद्गत्य ब्रह्मबिलमुल्लङ्घ्य षोडशान्तगतसहस्रारारविन्दबीजकोशकाशदशानन्दसंविन्मयषोडशकलापूरितपूर्णेन्दुमण्डलान्तमुल्ला(स?स्य) कुलशृङ्गाटविष्टरोपविष्टमुपदिष्टब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकं परामृततेजःसमृद्धकदम्बगोलकाकारं परबिन्दुं विगाह्य प्रविश्य ततः क्षीरधारावदमृतधारामूर्त्या स्रवन्त्यां तदनुक्रान्तसप्तषष्टिवर्णक्रमनादिन्या परिप्लुतसकलकुलाधारया लम्बिकारन्ध्रेण तालुमूलमवगाह्य जिह्वामापूर्य तदग्रेण बिन्दुभिर्निस्सरन्तीं परामृततेजोवाङ्मयीं मूलशक्त्या व्यवधानेन यावत्फलोदयं ध्यायेत्। इति वाग्भवबीजसाधनम्॥२४॥

* सेतुबन्धः *

एवं सिद्धमन्त्रस्य काम्यप्रयोगमाह—ततो मन्त्रसिद्ध्युत्तरं वाग्भवबीजाभिन्नां कुण्डलिनीरूपां वागीश्वरीं ब्रह्मग्रन्थिं मूलाधारचक्रोपरि विद्यमानं ग्रन्थिं विनिर्भिद्य, अनङ्गोऽशरीरः कामेशात्मा

परशिवस्तस्य पदं ब्रह्मरन्ध्रं तदवध्युल्लसन्तीमूर्ध्वं यान्तीं ततोऽमृतं संस्राव्य जिह्वाग्रे ज्योतीरूपतया स्थितां चिन्तयेदित्युत्तरश्लोकस्थेनान्वयः। यद्यपि **ज्ञानार्णवे**—

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्रवत्पीयूषवर्षिणीम्।
तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्यायेद् जिह्वाग्रेऽमृतधारिणीम्।।
पाषाणेन समो वाऽपि मूर्खो जीवसमो भवेत्।

इत्यत्र प्रकृततन्त्रे वा कुण्डलिनी न श्रूयते तथाऽपि मूले ब्रह्मग्रन्थिविभेदनाल्लिङ्गात् तन्त्रान्तरेऽमृतस्रावोक्त्या च साऽनुमीयते। ब्रह्मग्रन्थिपदं ब्रह्मरन्ध्रपरमिति तु केचित्। प्राञ्चस्तु—पुरश्चरणकाम्यप्रयोगयोरसंसर्गाग्रहादिदं सर्वमेकप्रयोगत्वेन व्याचक्षते। तत् तन्त्रान्तरानालोचनादुपेक्ष्यम्।।२४।।

चिन्तयेन्नष्टहृदयो ग्राम्यो मूर्खोऽतिपातकी।
शठोऽपि यः पदं स्पष्टमक्षरं वक्तुमक्षमः।।२५।।
जडो मूकोऽतिदुर्मेधा गतप्रज्ञो विनष्टधीः।
सोऽपि सञ्जायते वाग्मी वाचस्पतिरिवापरः।।२६।।

ऐसा करने से नष्ट हृदय, ग्राम्य, मूर्ख, अतिपातकी, शठ, जो स्पष्ट रूपेण एक भी वर्ण नहीं बोल सकता, ऐसा जड़, मूक, दुर्मेधा, गतप्रज्ञ, विनष्ट धी होने पर भी वह द्वितीय वाक्पति (बृहस्पति) के समान वाग्मी हो जाता है।।२४-२६।।

नष्टहृदयः—विद्यानन्द के मत से अर्थ है—नष्ट धैर्य। भास्करराय के मत से इसका तात्पर्य है—कलुषित चित्त। **ग्राम्यः**—शिवानन्द के अनुसार पशुकर्म में रत। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—कामपरवशीकृत व्यक्ति। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—नागरिक चातुर्य से रहित। **मूर्खः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—सद्-असद् विवेक ज्ञान से रहित। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—सद्-असद् विवेचना में अकुशल। **अतिपातकी**—शिवानन्द अर्थ करते हैं निषिद्धैकसेवी। विद्यानन्द का अर्थ है—स्वधर्म से च्युत। भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—पातककृत प्रतिबन्धयुक्त। **शठः**—वञ्चक। **जड़ः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अनवहित। विद्यानन्द का अर्थ है—निश्चेष्ट। भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—अलस। **अतिदुर्मेधा**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अतिशय दुर्बुद्धि। **गतप्रज्ञः**—विद्यानन्द इस पद की व्याख्या में कहते हैं कि स्वाभाविक प्रज्ञा रहने पर गुरु देवतादि की अवमानना करने से जिसकी प्रज्ञा नष्ट हो गयी है। भास्करराय कहते हैं कि इसका अर्थ है—प्रतिभाशून्य। **विनष्टधीः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अनुत्पन्नधीः। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—अवधारण करने में जिसकी बुद्धि अकुशल है, ऐसा। भास्करराय अर्थ करते हैं—भ्रान्त बुद्धि।।२४-२६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

चिन्ता पुनः पुनर्निभालनम्। नष्टहृदयः। विश्वप्रतिष्ठास्थानत्वाच्चित्प्रकाशो हृदयम्। उक्तं च—'सर्वेषामेव जन्तूनां संविद्धृदयमुच्यते' इति। ग्राम्यः पशुकर्मरतः। मूर्खः सदसद्विवेकानभिज्ञः। अतिपातकी निषिद्धैकसेवी। शठः वञ्चकः। जडः अनवहितः। मूकः अस्फुरितवाक्। अतिदुर्मेधाः अतिशयेन दुर्बुद्धिः। गतप्रज्ञो गतस्थिरप्रज्ञानः विनष्टधीः अनुत्पन्नधीः।।२५-२६।।

* अर्थरत्नावली *

एवं चिन्तयेन्नष्टहृदय इत्यारभ्य सर्वज्ञो देवि जायत इत्यन्तः श्लोकसमुदायो वाग्भवबीजसाधनफलवचनः स्पष्टार्थः। तत्रास्पष्टार्थानि पदानि व्याकुर्मः। नष्टहृदयः नष्टधैर्यः। ग्राम्यः कामपरवशीकृतः। मूर्ख इति सदसद्विवेचनाकुशल इत्यर्थः। पातकीति स्वधर्मप्रच्युत इति भावः। शठोऽपीऽति कृत्रिमपर इत्यर्थः। जडो निश्चेष्टः, अलस इति यावत्। **अतिदुर्मेधा इति।** अश(व्द?क्य)संपाद्यबुद्धिरित्यर्थः। **गतप्रज्ञ इति।** नैसर्गिकप्रज्ञोऽपि गुरुदेवताद्यवमानेनान्नष्टप्रज्ञो भवति यस्तथाविध इत्यर्थः। **विनष्टधीरिति।** अधिगतार्थावधारणाकुशलबुद्धिरित्यर्थः।।२५-२६।।

नष्टहृदय इत्यादि जायत इत्यन्ताः फ(ले?ल)वचनाः। (दिसंशयसाहानियमा महति प्रीयन्ते?)। नष्टहृदयो नष्टविषयधैर्यः। ग्राम्यो दुष्कामोपभोगाधीनः। मूर्खः सदसद्विवेकाकुलितः। पातकी स्वधर्मच्युतः। शठः कृत्रिमः। जडः अलसः। अतिदुर्मेधा यस्मिन् बुद्धिः सम्पादयितुं यत्नतोऽप्यश(क्ता?क्या) सोऽतिदुर्मेधाः। गतप्रज्ञो गुरुदेवताद्यवमानेन निसर्गसिद्धाऽपि यस्य प्रज्ञा निर्मूढा स गतप्रज्ञः। विनष्टधीः अधिगम्यमानार्थावधारणासमर्थधीः।।२५-२६।।

* सेतुबन्धः *

अथ नवभिः श्लोकैरस्य प्रयोगस्य फलं वर्णयति—-नष्टं कलुषितं हृदयं चित्तं यस्य सः। त्यक्तधैर्य इत्यन्ये। ग्राम्यो नागरिकचातुर्यहीनः। अतिपातकी पातककृतप्रतिबन्धवान्। जडः अलसः। अतिदुर्मेधा दुःसाधतरधारणाः। गतप्रज्ञः प्रतिभाशून्यः। विनष्टधीर्भ्रान्तबुद्धिरप्यपरो वाचस्पतिरिव वाग्मी सम्यग्जायते।।२५-२६।।

सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभः ।
सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् ॥२७॥
वाताहतसमुद्रोर्मिमालातुल्यैरुपन्यसेत् ।
सुकुमारतरस्फारवृत्तालङ्कारपूर्वकम् ॥२८॥
पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता देवेशि जायते ।

सत्पण्डित-समूह का गर्व हनन करने वाला, अप्रतिहत प्रभ, सत्तर्क, पद, वाक्य, अर्थालंकार तथा शब्दालंकार आदि का सारवेत्ता हो जाता है।।२७-२८।।

सत्पण्डितघटाटोपजेता—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं कि उत्तम-दिग्गज पण्डितों की घटा अर्थात् समूह, उनका आटोप अर्थात् गर्व का जेता अर्थात् गर्व हनन

करने वाला। शिवानन्द 'पण्डित:' पद की व्याख्या में कहते हैं कि पण्डा अर्थात् सम्यक् तत्त्वदर्शिनी प्रज्ञा, वह जिसमें संजात हो, वह है—पण्डित। **अप्रतिहतप्रभ:**—भास्करराय अर्थ करते हैं कि अकुण्ठित अथवा अम्लान, प्रभा अर्थात् प्रतिभा जिनकी है, वे हैं—अप्रतिहतप्रभ। **सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित्**—भास्करराय इसके अर्थ में कहते हैं कि शास्त्र चतुर्विध है—पदशास्त्र, पदार्थशास्त्र, वाक्यशास्त्र तथा वाक्यार्थ शास्त्र। 'पदवाक्यार्थ' पद द्वारा उक्त चतुर्विध शास्त्र से तात्पर्य है। सत्तर्क इसका विशेषण है। अर्थात् वेद के अविरुद्ध तथा अबाधित युक्तियुक्त। अर्थ शब्द को परवर्त्ती अलंकार शब्द के साथ अन्वित करने से अर्थालंकार तथा शब्दालंकररूपी पदान्वय करके अर्थ-निर्देश किया जा सकता है। शिवानन्द ने 'सत्तर्क' का अर्थ कहा है—आगमयुक्ति-अनुभवयुक्त। विद्यानन्द तर्क, पद, वाक्य, अर्थ, शब्द तथा अलंकार—इन छ: पद के साथ सत् पद का अन्वय करते हैं। अर्थात् उनके मत से सत्तर्क, सत्पद, सद्वाक्य, सदर्थ, सच्छन्द तथा सदलंकार रूप से पदान्वय होता है। शिवानन्द के मत से सार शब्द उत्कर्ष का वाचक है। भास्करराय के मत से सार का अर्थ है—निष्कर्ष। सारवित् अर्थात् सत्तर्क पद इत्यादि के निष्कर्ष से जो अवगत हैं। **वाताहतसमुद्रोर्मिमालातुल्यै:**—भास्करराय वाताहत पद का अर्थ करते हैं—प्रचण्ड वाताक्षुब्ध, जैसे जो समुद्र है, उसकी उर्मिमाला के तुल्य अर्थात् तरंगसमूहतुल्य उसके द्वारा। **उपन्यसेत्**—भास्करराय इस पद के पूर्व में 'शब्दै:' इस पद का अध्याहार करते हैं अर्थात् उनके मत से अर्थ होगा—पूर्वोक्त तरंगसमूहतुल्य शब्द द्वारा 'उपन्यसेत्' अर्थात् वचनारम्भ करना होगा। **सुकुमारतरस्फारवृत्तालङ्कारपूर्वकम्**—विद्यानन्द के मत से 'सुकुमारतर:' का अर्थ है—अधिकतर सुकुमार अर्थात् ललित। इससे सुकुमार का अर्थ होगा—ललिततर। स्फार अर्थात् मूर्त्तिमान। सुकुमारतर स्फार वृत्तालंकार का विशेषण है। वृत्त अर्थात् वसन्ततिलकादि छन्द। अर्थलंकार अर्थात् उपमादि। भास्करराय के मत से यहाँ अलंकार शब्द से शब्द लंकार तथा अर्थालंकार दोनों अर्थ प्रकट होता है। पूर्वकम् अर्थात् वृत्तालंकार के साथ। **महाकाव्यकर्त्ता**—महाकाव्यरचयिता। भास्करराय कहते हैं कि यहाँ महाकाव्य शब्द रूपक है। अष्टादश उपरूपक इत्यादि का भी उपलक्षण है।।२७-२८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पण्डिता: पण्डा सम्यक्तत्त्वदर्शिनी प्रज्ञा सञ्जाता येषां ते पण्डिता:। घटा समूह:। आटोपो गर्व:। अप्रतिहतप्रभ आरम्भमध्यविश्रान्तिदशास्वस्खलितवक्त्रतेजा इत्यर्थ:। अत्राभियुक्तवचनम्—

इति निगदितवानसौ महात्मा परिकरबन्धगृहीतवक्त्रतेजा:।
अकथयदिदमज्ञतोपशान्त्यै परमपदैकविबोधकं वसिष्ठ:।। इति।

(यो० वा० २.२.२८)

यत्कथ्यते हि हृदयङ्गमयोपमानयुक्त्या गिरा मधुरमुग्धपदार्थया च।
श्रोतुस्तदङ्गहृदयं परितो विसारि व्याप्नोति तैलमिव वारिणि वार्य शङ्काम्।।
(यो० वा० ३.८४.४५) इति च।

सत्तर्केति। आगमयुक्त्यनुभवोपेतः सत्तर्कः। सारशब्द उत्कर्षवाची। पदगुम्फैः पदसमूहैः।।२७-२८।।

* अर्थरत्नावली *

सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभ इति। सन्तः पण्डिताः सत्पण्डितास्तेषां घटा समूहः, तस्य आटोपोऽवलेपः, गर्व इति यावत्। स्वयमप्रतिहत(स्व?प्र)भावः सन्नेव तस्याटोपस्य जेता भवतीत्यर्थः। **सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारविदिति।** सन्तस्तर्काः सत्तर्काः, सन्ति पदानि सत्पदानि, सन्ति वाक्यानि सद्वाक्यानि, सन्तोऽर्थाः सदर्थाः, सन्तश्च ते शब्दाश्चेति सच्छब्दाः, सन्तश्च तेऽलङ्काराश्चेति सदलङ्काराः। तेषां सर्वेषां सारो हृदयं तद्वेत्तीति सत्तर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारविदित्युच्यत इति समासार्थः। प्रमाणानुग्राहकः सम्भवासम्भववचनः सत्तर्कः। (पदानि यथोक्तलक्षणानि)। आकाङ्क्षासन्निधियोग्यतावशा(द्विहितै?दन्वितै)कार्थप्रतिपादकपदसमुदायो वाक्यम्। अर्थाः शब्दप्रतिपाद्याः। अलङ्कारा जात्यादयो नाटकाटविपर्यटनपटवः। वातोद्धूतसमुद्रोर्मिमालातुल्यैरुपन्यासैरप्रयत्नेन पदकम्बकरचनासमर्थ इत्यर्थः। **सुकुमारतरस्फारवृत्तालङ्कारपूर्वकैरिति।** सुकुमारतराश्च ते स्फाराश्चेति सुकुमारतरस्फाराः। के ते? वृत्तालङ्काराः। वृत्तानि वसन्ततिलकादीनि, अलङ्कारा उपमादयः। तत्सम्बद्धैरित्यर्थः। सुकुमारोऽत्र ललितः। स्फारः स्फूर्तिमानिति यावत्।।२७-२८।।

घटा समूहः। आटोपः अवलेपः। अप्रहितप्रभः अव्याहतप्रभावः। सत्तर्क इत्यत्र (सत् शब्दः प्रतिपदमलङ्कारपदान्तमनुवध्नाति) तर्क ऊहः, उत्प्रेक्षेति यावत्। पदानि यथोक्तलक्षणानि। आकाङ्क्षासन्निधियोग्यतावशादन्वितैकार्थप्रतिपादकसमुदायो वाक्यम्। शब्दप्रतिपाद्या अर्थाः। जातिरू(पो?पको)पमानादयोऽलङ्काराः। तेषां हृदयं सारं वेत्तीति सारवित्। (तर्काः) यथावदुक्ता वैशेषिकनैयायिकादिसिद्धान्ताः। पदानि सुप्तिङन्तपदानि। (यामकानि? वाक्यानि) व्यक्तार्थानि (रूपाणि परमीमांसा? पूर्वमीमांसारूपाणि)। अर्थशब्दालङ्कारा उपमारूप(क)दीप(क)जात्यादयोऽर्थालङ्काराः पुनरुक्तवदाभासमानानुप्रासयमकचित्रबन्धादयः शब्दालङ्काराः। इत्येतेषां सतां विशिष्टतमानां तर्कादीनां सारो हृदयं तात्पर्यं तद्वेत्तीति सारवित्। **वाताहतेत्यादि।** अयत्नेनातिसुन्दरपदकदम्बकविरचनातिशयचातुर्यं वाताहतसमुद्रोर्मिमालातुल्यम्। सुकुमारतरस्फाररीत्यलङ्कारपूर्वकैः। सुकुमारललितस्फारमूर्जितं तत्।।२७-२८।।

* सेतुबन्धः *

सत्पण्डितानां पण्डितोत्तमदिग्गजानां घटा समूहस्तस्याऽऽटोपो गर्वस्तस्य जेता हर्ता। स्वयमप्रतिहताऽकुण्ठिताऽम्लाना वा प्रभा प्रतिभा मुखश्रीर्वा यस्य सः। शास्त्रं चतुर्विधम्—पदशास्त्रम्, पदार्थशास्त्रम्, वाक्यशास्त्रम्, वाक्यार्थशास्त्रं चेति। अन्येषां शास्त्राणामिहैवान्तर्भाव इति तु वृत्तचन्द्रोदयादौ विवेचितम् अस्माभिः। तेषामिह पदवाक्यार्थपदेन ग्रहणम्। तेषां सत्तर्कत्वं विशेषणम्। वेदाविरुद्धाबाधितयुक्तिमन्तीति तदर्थः। अथवा पदवाक्यपदेनैव तेषां

परामर्शः। अर्थशब्द उत्तरत्रान्वयी, अर्थालङ्कारशब्दालङ्काराविति। एतेषां सारं निष्कर्षं वेत्तीति तथा। सत्पदं तर्कादिषट्के केचिदन्वियन्ति। तत्पक्षे पदवाक्यातिरेकेण शब्दः कीदृश इति प्रश्ने ध्वन्यात्मकगीतरूप इत्युत्तरं वाच्यम्। **वातेति**। चण्डवातनिर्धूतोदधितरङ्गसमूहतुल्यैः शब्दैरुपन्यसेत्। शास्त्रनिर्माणमुक्त्वा काव्यनिर्माणमप्याह—**सुकुमारेति**। सौकुमार्यं शब्दगतो गुणविशेषः। वृत्तं गुरुलघ्वानुपूर्वीविशेषः। अलङ्कारा यमकोपमादयः। पदानां गुम्फैर्ग्रथनविशेषैः। महाकाव्यमिति दशानां रूपकाणामष्टादशानामुपरूपकाणां संकीर्णादीनामप्युपलक्षणम्।।२७-२८।।

वेदवेदाङ्गवेदान्तसिद्धान्तज्ञानपारगः ।।२९।।
ज्योतिःशास्त्रेतिहासादिमीमांसास्मृतिवाक्यवित् ।
पुराणरसवादादिगारुडानेकमन्त्रवित् ।।३०।।
पातालशास्त्रविज्ञानभूततन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
विचित्रचित्रकर्मादिशिल्पानेकविचक्षणः ।।३१।।
महाव्याकरणोदारशब्दसंस्कृतसर्वगीः ।
सर्वभाषारुतज्ञानी समस्तलिपिकर्मकृत् ।।३२।।
नानाशास्त्रार्थशिक्षादिवेत्ता भुवनविश्रुतः ।
सर्ववाङ्मयवेत्ता च सर्वज्ञो देवि जायते ।।३३।।

हे देवि! वेदाङ्ग, वेदान्त, सिद्धान्त—ये चतुष्टय ज्ञानपारग हैं। ज्योति शास्त्र, इतिहासादि, मीमांसा, स्मृति तथा वाक्य के वेत्ता, पुराण, रसवादादि, गारुड़ तथा अनेक मन्त्रों का वेत्ता, पातालशास्त्र, विज्ञान, भूततन्त्र का अर्थतत्त्वविद्, विचित्र चित्रकर्मादि, अनेक शिल्प-विचक्षण, महाव्याकरण-सम्मत उदार संस्कृत शब्दबहुल हो जिसका वचन, सर्वभाषा तथा रुत को जानने वाला, समस्त लिपिकर्म करने वाला, नाना शास्त्रों की शिक्षादि से अवगत, भुवनविश्रुत साधक, सर्वज्ञ सर्वात्मवेत्ता हो जाता है।।२९-३३।।

वेदाः—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—ऋग्वेदादि कर्मकाण्ड। **वेदाङ्गानि**—भास्करराय के मत से इसका अर्थ है—छन्दः, कल्प तथा निरुक्त। **वेदान्ताः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—वेद का अध्यात्म भाग। **सिद्धान्ताः**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—शैवशास्त्र। भास्करराय के मत से—पञ्चाम्नायात्मक शास्त्र। **पारगः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—उत्कर्ष-प्राप्त। **ज्योतिःशास्त्रम्**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—आर्यभढ़ादि का शास्त्र। भास्करराय कहते हैं कि इसका अर्थ है—गर्ग आदि अष्टादश सिद्धान्तरूप। **इतिहासादि**—विद्यानन्द इसका अर्थ कहते हैं—उपाख्यान। भास्करराय कहते हैं—इतिहासाः अर्थात् महाभारतादि। इनके मत से इतिहास के 'आगे आदि' युक्त रहने से रामायण, योगवाशिष्ठादि सब कुछ इसी में अन्तर्भूत हो जाता है। **मीमासा**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—उत्तरमीमांसा तथा पूर्वमीमांसा। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—

वेदार्थ-विचार। भास्करराय के अनुसार तात्पर्य है—उत्तरमीमांसा तथा भक्तिमीमांसा। **स्मृति:**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—मनुप्रणीत शास्त्र। विद्यानन्द के मत से याज्ञवल्क्यादि १८ शास्त्र। **वाक्यानि**—शिवानन्द के मत से विदग्ध गोष्ठी में विदग्ध व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त पञ्चावयवयुक्त वाक्य। **पुराणानि**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—अष्टादश पुराण। भास्करराय के मत से १८ पुराण तथा १८ उपपुराण = ३६ पुराण। **संवाद:**—भास्करराय के मत से पारदादि-विषयक शास्त्र। उनके मत से रसवाद पद के साथ युक्त आदि शब्द से चरक-सुश्रुतादि भी समझना चाहिये। **गारुड़म्**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—इन्द्रजाल। **पातालशास्त्रम्**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है कि बिलद्वार-प्रकाशक शास्त्र। भास्करराय के मत से अर्थ है—बिलद्वार-प्रवेशक शास्त्र। **चित्रकर्मणि**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—चित्र रचना। इसमें आदि शब्द लगने से अर्थ हो जाता है—गृह निर्माण-विषयक विश्वकर्माशास्त्र भी। **शिल्पानेकविचक्षण:**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—गिरिस्तम्भ, उपधिपान, आसुर भक्षण, इन्द्रपदभ्रंशन आदि में प्रवीण। **महाव्याकरण**—शिवानन्द के मत से इस पद में महा लगने में तात्पर्य लक्षित होता है—महर्षि-प्रणीत महाभाष्यादि। **सर्वभाषा-रुतज्ञानी**—शिवानन्द के मत से यहाँ भाषा का तात्पर्य है—मनुष्य की भाषा। रुत का अर्थ है—पशु-पक्षी की भाषा। अत: पद का अर्थ है—मनुष्य तथा पशु-पक्षी की भाषा का ज्ञान। **समस्तलिपिकर्मकृत्**—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—यवन आदि १८ लिपि। यह लिपिलेखन जो करे, वह। **नानाशास्त्रशिक्षादिवेत्ता**—शिवानन्द के मत से नाना शास्त्र से तात्पर्य है—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, बौद्धदर्शन, जैनदर्शन, पाशुपतदर्शन, पाञ्चरात्र, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र आदि अर्थात् नाना शास्त्र। भास्करराय नाना शास्त्र का अर्थ करते हैं—जैन-बौद्ध-चार्वाकादि नाना शास्त्र। शिक्षादि पद का अर्थ करते हैं—पाणिनि आदि शिक्षा अथवा प्रातिशाख्यादि विद्या (प्रातिशाख्य वैदिक व्याकरण) अर्थात् इन सब शास्त्रों को साधक आयत्त कर लेता है।।२९-३३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

वेद: कर्मकाण्डम्। वेदाङ्गं निरुक्तादि। वेदान्त: अध्यात्मभाग:। सिद्धान्त: शैवशास्त्रम्। ज्ञानशब्दो वेदादिषु चतुर्षु सम्बद्ध्यते। पारग: काष्ठां प्राप्त:। ज्योति:शास्त्रम् आर्यभटीयादि:। इतिहासादि: भारतादि:। मीमांसा पूर्वा चोत्तरा च। स्मृति: मन्वादिशास्त्रम्। वाक्यानि गोष्ठीषु विदग्धै: प्रयुक्तानि पञ्चावयवयुक्तानि। विदित: सर्वत्र। पुराणम् अष्टादशसंख्याकम्। रसवादतन्त्रं काकचण्डेश्वरीमतादि। आदिशब्दो गन्धयुक्त्यादितन्त्रं परामृशति। पातालशास्त्रं बिलद्वारप्रकाशकं शास्त्रम्। **विचित्रेति।** आदिशब्देन मयमतादिकं लक्ष्यते। शिल्पानेकविचक्षण इति गिरिस्तम्भोदधिपानासुरभक्षणेन्द्रपदभ्रंशनादिप्रवीण इत्यर्थ:। महाव्याकरणेत्यत्र महच्छब्देन महर्षिप्रणीतं

महाभाष्यादिकं लक्ष्यते। सर्वभाषारुतज्ञानी। सर्वेषां जन्तूनां भाषाज्ञानी रुतज्ञानी च। यथायोग्यं मनुष्याणां भाषा विजानाति, पक्ष्यादीनां विरुतं च जानाति। यदाह पक्षिवाक्यश्रवणप्रतिक्रिययोः कण्वं प्रति व्यासमुनिः—

विश्वामित्रसुतां ब्रह्मन् न्यासभूतां भरस्व वै।
कामक्रोधावजितवान् सखा ते कौशिकीं गतः।।
तस्मात् पोषय तत्पुत्रीं दयावानिति तेऽब्रुवन्।
सर्वभूतरुतज्ञोऽहं दयावान् सर्वजन्तुषु।
निर्जनेऽपि महारण्ये शकुन्तैः परिवारिताम्।
आनयित्वा ततश्चैनां दुहितृत्वे न्ययोजयम्।। इति।

(म० भा० १.७२.१४)

समस्तलिपिकर्मविद् बहुभेदभिन्नाक्षरविन्यासकर्मापि विजानाति। **नानेति**। नानाशास्त्रं न्यायवैशेषिकसांख्ययोगबौद्धार्हतपाशुपतपञ्चरात्रभरतवात्स्यायनीयादि। शीक्षा शिक्ष्यतेऽनयेति वर्णाद्युच्चारणलक्षणम्, शिक्ष्यन्त इति वा शिक्षा वर्णादयः। शिक्षैव शीक्षा। दैर्घ्यमागमायातम्। भुवनविश्रुता लोकेषु प्रथितयशाः। **सर्वज्ञो देवि जायत इति**। ईश्वरकल्पो भवतीत्यर्थः।।२९-३३।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

सिद्धान्तज्ञानपारग इति शैवागमज्ञानपारग इत्यर्थः। इतिहा(सान्यु?स उ)पाख्यानानि। मीमांसा वेदार्थविचारः। स्मृतयोऽष्टादश मन्वादिप्रोक्ताः।।२४-३३।।

(विद्या?सिद्धा)न्तः शैवागमः। इतिहास उपाख्यानानि। मीमांसा न्यायेन वाक्यविचारः। स्मृतयोऽष्टादश याज्ञवल्क्यादयः।।२४-३३।।

❋ सेतुबन्धः ❋

वेदा ऋग्वेदादयः कर्मकाण्डाः। वेदाङ्गानि छन्दःकल्पनिरुक्तानि त्रीणि। अन्येषां पृथग्ग्रहणात्। वेदान्ता उपनिषदः। सिद्धान्तः पञ्चाम्नायात्मकं शास्त्रम्। ज्योतिःशास्त्रं गर्गाद्यष्टादशसिद्धान्तरूपम्। इतिहासो भारतादिः। आदिना रामायणवासिष्ठादिकाव्यानि। मीमांसाः पूर्वोत्तरभक्तिभेदेन तिस्रः। स्मृतयो मन्वादिप्रणीताः। वाक्यं वररुचिकृतं लौकिकं वा। पुराणानि षट्त्रिंशत्। रसवादः पारदादिविषयकः। आदिना चरकसुश्रुतादि। गारुडम् ऐन्द्रजालम्। पातालशास्त्रं बिलद्वारप्रवेशविषयकम्। चित्रकर्म चित्रलेखः। आदिना गृहनिर्माणादिविषयकं विश्वकर्मशास्त्रम्। शिल्पानेकेत्यत्र विशेषणस्य बाहुलकः परनिपातः। महाव्याकरणं महाभाष्यादि। सर्वभाषा महाराष्ट्र्याद्या मागध्याद्याश्च। रुतानि पशुपक्षिभाषाः। समस्तलिपयो यवनान्यादयोऽष्टादश लिपयः। नानाशास्त्राणि जैनबौद्धचार्वाकादीनि। तदर्थं शिक्षादिः, अध्यापनोद्ग्राहणादिः पाणिन्यादि शिक्षाप्रातिशाख्यादिर्वा। सर्ववाङ्मयानि यावनादीनि। सर्वज्ञस्त्रिकालज्ञः।।२९-३३।।

एवमेतन्महादेवि वाग्भवस्य तु साधनम्।
ततस्तु शृणु वक्ष्यामि कामराजस्य साधनम्।।३४।।

हे महादेवि! इस प्रकार ये सब वाग्भव बीज के साधन हैं। अब कामराज बीज का साधन कहता हूँ, सुनो।।३४।।

∗ सेतुबन्धः ∗

वाग्भवसाधनोपसंहारपूर्वकं कामराजसाधनं प्रतिजानीते। स्पष्टम्।।३४।।

तथा कामकलारूपा मदनाङ्कुरगोचरे ।
उद्यदादित्यबिम्बाभा समुज्ज्वलवपुः प्रिये ।।३५।।
स्फुरद्दीपशिखाकारा बिन्दुधाराप्रवर्षिणी ।
समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीविता ।।३६।।
महास्वमहिमाक्रान्तिस्वस्थाहंकृतिभूमिका ।
क्रमेण तु ततोऽनङ्गपर्यन्तं प्रोल्लसन्त्यपि ।।३७।।
शरीरानङ्गपर्यन्तमेकैवमुभयात्मिका ।

हे प्रिये! कामकला भी इस प्रकार मदनाङ्कुरगोचर-साधनीया है। उद्यद् आदित्यबिम्बाभा, समुज्ज्वलवपु, स्फुरद् दीपशिखाकारा, बिन्दुधारा-प्रवर्षिणी, समस्ताभोग-कवलीकृत-जीविता, महास्वमहिमाक्रान्तिस्वस्थाऽहंकृति भूमिका कामकला क्रम से अनङ्ग-पर्यन्त प्रकृष्ट रूप से उल्लसिता होती हैं और वहाँ से शरीरानङ्ग-पर्यन्त वापस आ जाती हैं। इस प्रकार कामकलारूपा एक ही चित् शक्ति उभयात्मिका है।।३५-३८।।

तथा—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि इस प्रकार से वाग्भव बीज का साधन कहा गया। भास्करराय अर्थ करते है कि इस प्रकार से वागीश्वरी साधनीया हैं। **कामकलारूपा**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—कामराज बीज-सारभूता शक्ति। **मदनाङ्कुरगोचरे**—शिवानन्द के मत से मदनाङ्कुर का अर्थ है—योनिवलयान्तवर्त्ती उद्गत मांसविशेष। उसके गोचर में अर्थात् योनिस्थान में। शिवानन्दादि टीकाकारों के मत से उक्त स्थान में कामकला का चिन्तन करे। भास्करराय आलोच्य पद का अर्थ करते हैं कि जहाँ मदनांकुर दीखता है, वही है—कामबीज; क्योंकि बीज का अंकुरत्व प्रसिद्ध है। गोचर अर्थात् विषय में। सम्पूर्ण पद का अर्थ है—कामराजबीज के विषय में। **उद्यदादित्यबिम्बाभा**—उदीयमान सूर्यमण्डल की विशेष आभा। इसके द्वारा देवी का अतिशय रक्तवर्ण सूचित है। भास्कर राय इसका अर्थ कहते हैं—उदीयमान सूर्य तथा उसका पक्व बिम्ब, उसके समान रक्तवर्णा। **समुज्ज्वलवपुः**—शिवानन्द के अनुसार—अतिदीप्त वपु। **स्फुरद्दीपशिखाकारा**—विद्यानन्द की व्याख्या है—मूलाधार से ऊर्ध्व की ओर विस्तृता, स्वाधिष्ठान से लेकर ब्रह्मरन्ध्र के अन्तर्गत प्रस्फुरित सहस्रदल पद्मकर्णिका तक दीपशिखाकारा चिन्तनीया। भास्करराय की व्याख्या है—स्फुरत् अर्थात् मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त व्याप्ता, दीपशिखा

के समान आकार वाली। अर्थात् अन्तर्याग में विभाव्यमान तेजःतन्तु के समान। शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं कि दीपशिखा शब्द द्वारा ज्योतिस्तन्तु लक्षित होता है, उस प्रकार दीपशिखाकारा। **बिन्दुधाराप्रवर्षिणी**—भास्करराय के अनुसार अमृत की धाराप्रवर्षिणी अर्थात् वर्षा कराने वाली, अमृतवर्षिणी। **समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीविता**—भास्करराय अर्थ कहते हैं—समस्त भुवन अर्थात् त्रैलोक्य, आभोग अर्थात् विस्तार। अपनी आरक्त शक्ति से भरित, ऐसा ध्यान करे। ऐसे जो देवी द्वारा कवलीकृत है अर्थात् अपने वश में जिन्होंने प्राणियों का जीवन रक्खा है, वे। शिवानन्द का अर्थ है कि भुवनभोग शब्द द्वारा प्राणिजात लक्षित हो रहा है। कवलीकृत अर्थात् ग्रासीकृत। अतः ग्रासीकृत प्राणिजीविता। इनके मत से पद का अर्थ है—समस्त प्राणिजात कामकला द्वारा अवष्टब्ध हैं। **महास्वमहिमाक्रान्तिस्वस्थाहंकृतिभूमिका**—भास्करराय अर्थ करते हैं कि महती स्वमहिमा की क्रान्ति है—महास्वमहिमाक्रान्ति, स्वीय महत्त्व व्याप्ति। स्वस्थ, अर्थात् यथास्थानस्थिता अथवा अचंचला। अहंकृति अर्थात् पराहंता। उसकी भूमिका अर्थात् आधार। ऐसी जो अन्तर्निहित हैं, वे। भाव है कि इस स्वविभूतित्व से सर्वत्र व्याप्ति के कारण, अन्य सभी के उनके शरीरत्व के कारण सर्वत्र अहंताबुद्धि के उदय के कारण अपने शरीर की तरह सर्वशरीर में स्ववशंवदत्व अवश्यम्भावी है। शिवानन्द की व्याख्या है कि महत् स्वमहिमा द्वारा जो व्याप्ति है, उसके करण सुख में अवस्थिता (स्वस्था), अहंकृति भूमिका है। अर्थात् सर्व प्राणीगण में अहंकृति की अवस्थिति है। इन्होंने इस पद को कामकला का विशेषण कहा हैं। **क्रमेण**—भास्करराय अर्थ करते हैं—स्वाधिष्ठानादि चक्रक्रम से। **अनङ्गपर्यन्तं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अकुल स्थानगत अनंग नामक परमशिव- पर्यन्त। भास्करराय अर्थ करते हैं—मूलाधार से लेकर अनंग-पर्यन्त अर्थात् कामेश्वर शिव- पर्यन्त। **प्रोल्लसन्ती**—शिवानन्द के अनुसार मूलाधार से अकुल शिव-पर्यन्त उन-उन स्थानों का भेद करते-करते प्रकृष्टरूपेण ऊर्ध्व में स्फुरिता। भास्करराय के अनुसार प्रकृष्टरूपेण ऊर्ध्व गमनकारिणी। **शरीरानङ्गपर्यन्तं**—शिवानन्द के अनुसार पुनः प्रतिलोममार्ग से सृष्टिरूप से योनिस्थानगत अनंग पदवाच्य कुलपुरुष-पर्यन्त। विद्यानन्द उक्त पद की व्याख्या करते हैं—अनंगशिवस्थान। ब्रह्मरन्ध्र से आरम्भ करके मूलाधार भूमिका अवरोहक्रम में शरीरानङ्ग पर्यन्त अर्थात् कुलसम्बन्धी बिन्दुरूप अनंग-नामक मूलाधार वलयनिलय-पर्यन्त। आलोच्य पद का अर्थ करते हुये भास्करराय कहते हैं कि स्वाभिलषित स्त्री के शरीर में मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त तथा वहाँ से पुनः मूलाधार-पर्यन्त पुनः-पुनः यातायातकारिणी कामकला देवी की चिन्तना करनी होगी। यहाँ 'शरीरानङ्ग पद' द्वारा मदनशरीर या शरीरवान मदन द्योतित होता है। योनिमण्डल को ही मदनशरीर कहा जाता है। इसे ही कहते हैं कि स्त्रीशरीर में ही उक्त चिन्ता प्रतिपन्न होती

है। **एका**—शिवानन्द के मतानुसार इसका अर्थ है—कामकलात्मिका मध्यम बीजाधिष्टानभृता परम शक्ति। ये एका है। विद्यानन्द के मत से 'एका' का अर्थ है—सूक्ष्म तन्तुरूपिणी चित् शक्ति। ये एका हैं। **उभयात्मिका**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—सृष्टि संहाररूप में गमागमानुभवकारिणी परम शक्ति। विद्यानन्द के मत से इसका तात्पर्य है—देवी अग्नि-सोमात्मक रूप से, द्राव्य-द्रावक रूपेण चिन्तनीया है।।३५-३७।।

॥ ऋजुविमर्शिनी ॥

अथ कामराजबीजसाधनमाह—**तथेति**। तथा यथा वाग्भवबीजसाधनमुक्तम्। कामकलारूपा कामराजबीजसारभूता। शक्तिरिति शेषः। मदनाङ्कुरगोचरे। मदनाङ्कुर इति योनिवलयान्तः स्फुरन् मांसविशेषः तस्य गोचरे योनिस्थाने। तस्याः प्रतिपत्तिमाह—**उदयार्यमेति**। उदयः प्रकटीभावः। अर्यमा रविः। समुज्ज्वलवपुः अतिदीप्तवपुः। स्फुरद्दीपशिखाकारा। दीपशिखाशब्देन ज्योतिस्तन्तुर्लक्ष्यते, तदाकारा। बिन्दुधाराप्रवर्षिणी (दू?द्रु)तलाक्षाबिन्दु(व)द्रक्तामृतधारावर्षिणी। **समस्तेति**। भुवनाभोगशब्देन प्राणिजातं लक्ष्यते। ग्रासीकृतप्राणिजीविता। सर्वं प्राणिजातं कामकलावष्टब्धमित्यर्थः। **महेति**। अस्यायमर्थः—महता स्वमहिम्ना आक्रान्तं सर्वम्, तया आक्रान्त्या हेतुना स्वस्था सुखेन स्थिता। सर्वप्राणिनामहङ्कृतिभूमिकेति। भूमिका अवस्थितिः। एतत्पर्यन्तं कामकलाविशेषणम्। **क्रमेणेति**। अनङ्गपर्यन्तम् अकुलस्थानगतानङ्गाभिधेयपरमशिवावधि। प्रोल्लसन्ती मूलादकुलशिवावधि तत्तत्स्थानं निर्भिद्य प्रकर्षेणोर्ध्वं स्फुरन्तीत्यर्थ। अपि पुनरर्थे। **शरीरेति**। शरीरानङ्गपर्यन्तम्। पुनः प्रतिलोममार्गेण सृष्टिरूपेण योनिस्थानगतानङ्गशब्दवाच्यकुलपुरुषपर्यन्तमित्यर्थः। **एकैवमुभयात्मिकेति**। एवमेका कामकलात्मा मध्यबीजाधिष्ठानभूता सृष्टिसंहारात्मना गमागममनुभवन्ती उभयात्मिका परमशक्तिरिति यावत्।।३५-३७।।

॥ अर्थरत्नावली ॥

तथा कामकलारूपेत्यारभ्य एकैवमुभयात्मिकेत्यन्तेन श्लोकसमुदायेन कामराजबीजसाधनप्रकारमुपदिशति। तथा कामकलारूपा मदनाङ्कुरगोचर इत्यस्य यथा पूर्वं वाग्भवबीजसाधनावसरे वाग्भवबीजात्मना शक्तिं चिन्तयेदित्युक्तम्, तथा तेनैव प्रकारेण मृणालनालान्तः प्रस्फुरद्योनिवलयमदनाङ्कुरस्थाने शक्तिर्महाकामकलारूपतया महाकामराजबीजात्मना चिन्तनीयेत्यर्थः। **तरुणारुणबिम्बाभा समुज्ज्वलवपुः प्रिये इति**। उद्यदादित्यमण्डलप्रभाप्रमोषितकिरणसंहतिरित्यर्थः। कोऽर्थः? अति(रि?र)क्ता चिन्तनीयेति यावत्। **स्फुरद्दीपशिखाकारेति**। मूलाधारादुपरि पर्यस्ता स्वाधिष्ठानादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रान्तं प्रस्फुरत्सहस्रदलकमलकर्णिकापर्यन्तं दीपशिखाकारा दीपप्रभावच्चिन्तनीया। मूलशक्तिरिति यावत्। तरुणरुणबिम्बाभा चिन्तनीयेत्युक्त्वा तदनन्तरमेव दीपशिखाकाराऽप्युच्यते, अतः पूर्वापरविरोधान्न निर्णय इति। तदिह विषयभेदेन परिहर्तव्यम्। तरुणारुणबिम्बाभेति प्रभायास्त्वतिरक्ततोदाहरणम्, दीपप्रभेति दीप्तिमत्तायाम्। अतो न विरोध इति। **बिन्दुधाराप्रवर्षिणीति**। तत्क्षणात् क्वथितसान्द्रलाक्षाद्रवोपमां स्फुरत्स्फुलिङ्गबिन्दुधारामधःशक्तिनादेन रसन्तीमेवोर्ध्वं यान्तीं ध्यात्वेति भावः। **समस्तभुव-**

नाभोगकवलीकृतजीवितेति। स्वशक्तिकिरणपाशजालपाशितसमस्तभुवनान्तश्चारिप्राणिनिकायजीवितेत्यर्थः। **महास्वमहिमाक्रान्तिध्वस्ताहङ्कृतिभूमिकेति।** महास्वमहिम्नाऽहंभावलक्षणस्वात्मेश्वरविमर्शानुसन्धानमयेन ध्वस्तमहत्त्वादिपरिच्छेदाभिमानहेतुकृत्रिमाहङ्कारभूमिकेत्यर्थः। क्रमेण तु ततोऽनङ्गपर्यन्तं प्रोल्लसन्त्यपीत्यन्तस्य क्रमेण मूलाधाराद्यारोहावरोहणक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं नीता सहस्रारकमलकर्णिकान्तःस्फुरिताधोमुखे कुलेतरसंज्ञाऽकुलबिन्दुरूपाऽनङ्गाख्यपरमशिवपर्यन्तमधश्शक्तिरुल्लसन्ती महाकामराजबीजरूपा ध्यातव्येत्यर्थः। शरीरानङ्गपर्यन्तमित्यस्य तस्मादनङ्गशिवस्थानब्रह्मरन्ध्रादारभ्य मूलाधारभूमिकावरोहक्रमेण शरीरानङ्गपर्यन्तं कुलसम्बन्धिबिन्दुरूपाऽनङ्गाख्यमूलाधारवलयनिलयपर्यन्तं पूर्ववद् ध्यायेत्। **एकैवमुभयात्मिकेति।** सूक्ष्मतन्तुरूपिणी चिच्छक्तिरेकैव। एवमुभयात्मना अग्नीषोमात्मना द्राव्यद्रावकभावेन चिन्तनीयेति भावः। अधश्शक्तिरग्न्यात्मिका, ऊर्ध्वशक्तिः सोमात्मिकेति यावत्।।३४-३७।।

अनन्तरं तथा कामकलेत्यादिग्रन्थेन कामकलादिबीजसाधनं निगद्यते। तथा प्राग्वत्, वाग्भववदित्यर्थः। कोणे नित्यमविनाभावेन सन्निहितत्वात्। यद्वा मध्यमपदलोपी समासः। तरुणारुणतरणिबिम्बप्रभेति यावत्। स्फुरद्दीपशिखाकारा मूलबिन्दोः कुलबिन्दुपर्यन्तं दीर्घीभवन्निर्मलप्रदीपप्रभाकारा मूलशक्तिरित्यर्थः। प्रातस्तरुणसूर्यव(दि?द)तिरक्ततां त(दा?था) दीपशिखावदूर्ध्वदीप्तिमत्तां वक्तीत्यविरोधः। बिन्दुधाराप्रवर्षिणी सूक्ष्मतरशक्तिशिखोष्णातितापसङ्गविद्रुतचित्सुधामण्डलगतकुलशृङ्गाटविगलदमृतधारां पातयन्ती भवति यदा, तदा सतस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीविता समस्तेषु भुवनेषु शरीरेष्वाभोगाय परिपूरणाय परिपोषणाय प्र(विष्टा?वेशा)य स्वस्वयैकया कलया प्रतिकवलीकृतजीवितात्मसात्कृतचैतन्या। अपि च, महास्वमहिमाक्रान्तध्वस्ताहङ्कृतिभूमिका महास्वमहिमाक्रान्त्या सर्वात्मेश्वरपरमसामरस्यात्मकपरानन्दानुभावलक्षणापहारं भावसंव्याप्तिविनाशितेदंभावादिपरिच्छिन्नाभिमानहेतुकृत्रिमाहङ्कारभेदभूमिकाक्रमेण मूलाधारारोहक्रमेण ततो मूलाद् अनङ्गपर्यन्तं परमशिवबिन्दुपर्यन्तम्, एवमनवरतं प्रोल्लसन्त्यपि शरीरानङ्गपर्यन्तमेकैकमुभयात्मिका कुलबिन्दोरकुलपर्यन्तमकुलबिन्दोः कुलपर्यन्तमपि द्रावकद्राव्यात्मकाग्नीषोमकुलाकुलशक्तिजीवेश्वरविभागेनोभयात्मिकापि गमागमाभ्यासपरकाष्ठादृढीभूतनिरपायसमरसीभावैकरसा शक्तिरेकैवेत्यर्थः।।३४-३७।।

* सेतुबन्धः *

अत्र **प्राञ्चः** सार्धैः सप्तभिः श्लोकैरेकं प्रयोगमाहुः। **अन्ये** तु—तथेत्येकेन पदेनैव वाग्भवसाधनधर्मातिदेशं वदन्तस्तावतैव कामराजसाधनमुक्तप्रायं मन्यमाना इतरांशं सर्वमेककाम्यप्रयोगपरत्वेन योजयन्ति। वस्तुतस्तु—आदौ सार्धश्लोकेन पुरश्चरणं ततः षड्भिः श्लोकैः काम्यप्रयोगौ द्वौ वर्ण्येते इति युक्तम्। ज्ञानार्णवैकवाक्यत्वलाभात्। तद्यथा—

अथ कामकलासक्तः साधकः परमेश्वरि।
रक्तालङ्कारसुभगो रक्तगन्धानुलेपनः।।
रक्तवस्त्रावृतः सम्यङ्मध्यकामकलात्मना।
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुङ्कुमादिभिरर्चयेत्।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्फुरद्दीपस्वरूपिणीम्।

बन्धूककुसुमाकारकान्तिभूषणभूषिताम् ।।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषु वरदाभयसत्कराम्।

इति ज्ञानार्णवोक्तः पुरश्चर्याप्रकारः। स एवेहोच्यते। मदनाङ्कुरो गोचरो यत्र तन्मदनाङ्कुरगोचरं कामबीजम्। अथवा मदनाङ्कुरः कामबीजम्। बीजस्याङ्कुररूपत्वात्। तद्विषये कामकलाऽपि तथा वागीश्वरीवत्साधनीया। सा यथा स्ववर्णसमानवसनाभरणगन्धपुष्पनैवेद्यादिभिः साधिता तथेयमपि स्ववर्णानुगुणैरेव साध्येति यावत्। मदनमन्दिरान्तर्वर्तिमांसविशेषो मदनाङ्कुर इति प्राचां व्याख्यानममूलकत्वादनादृत्यम्। पुरश्चरणे वनितामूलाधारे रक्तधारावर्षणविभावनाया अप्रस्तुतत्वाच्च। तन्त्रान्तरे प्रकृतबीजविषयककाम्यप्रयोगेऽपि तदनुक्तेश्च। प्रकृतदेव्याश्च को वर्ण इत्याकाङ्क्षायामाह—उद्यदादित्येति। विम्बं पक्वतुण्डीफलम्। ताभ्यां सदृशी। सादृश्यं तु रक्तिम्नैव बिम्बपदसमभिव्याहारात्। तेनोद्यदादित्यविम्बमित्येकमेवोपमानं मन्यमानानां प्राचाम् आदित्यदीपशिखयोः परस्परविरुद्धत्वादुभयतुल्यता कथमित्याक्षिप्य तत्समाधानार्थं व्यवस्थादिकल्पनमपास्तम्। स्फुरन्त्या मूलादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं व्याप्ताया दीपकलिकाया इवाऽऽकारो यस्याः। अन्तर्यागे विभाव्यमानतेजस्तन्तुवदिति यावत्। बिन्दोरमृतस्य धारां प्रवर्षतीति तथा। अनया भङ्ग्या तन्त्रान्तरोक्तमिहैव सूचितमिति द्रष्टव्यम्।

एवं सिद्धमन्त्रस्य काम्ये विनियोगमाह—समस्तभुवनेषु त्रैलोक्य आभोगो विस्तारः स्वकीयारक्तकान्तिभरितता। तादृशध्यानमिति यावत्। तेन कवलीकृतानि स्ववशे कृतानि जीवितानि समस्तप्राणिनां यया सा। तत्रोपपत्तिमाह—**महेति**। महत्या स्वमहिमाक्रान्त्या स्वीयमहत्त्वव्याप्त्या स्वस्थाया यथास्थानस्थिताया अचञ्चलाया वाऽहंकृतेः पराहन्ताया भूमिकाऽऽधारः।

अयं भावः—-पुरश्चरणदशायां मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं यो ध्यातः सावयवो रक्ततेजस्तन्तुस्तन्महसा सर्वं जगदरुणीकृतं भावयेत्। तेन त्रैलोक्यं वशं भवति। कुतः। स्वविभुत्वस्य सर्वत्राऽऽक्रान्त्या सर्वस्यापि स्वशरीरत्वेन सर्वत्राहन्ताबुद्धेरुदयेन स्वशरीरस्येव सर्वशरीराणां स्ववशंवदत्वावश्यंभावात्। ध्वस्ताहंकृतीति पाठेऽहंकृतिशब्देन तत्तत्प्राणिनामहङ्कारा ग्राह्याः, न पराहन्ता। अहं स्वतन्त्रो नान्याधीन इत्यभिमानस्यागलितत्वादित्यर्थः। अयं त्रैलोक्यवशीकारफलक एकः प्रयोगः। तथा च ज्ञानार्णवे—

तदीयकान्तिसिन्दूरभरितं भुवनत्रयम्।
चिन्तयेत्परमेशानि त्रैलोक्यं मोहयेत्क्षणात्।।
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः।
कन्दर्प इव देवेशि योषितां मानहारकः।।
मनसा चिन्तयेद् योषिद् दासीव वशगा भवेत्। इति।

अत्र तदीयेत्यस्य पूर्वोपक्रान्ततेजस्तन्तुरूपदेवीसम्बन्धीत्यर्थः। राजान इति भूलोकस्य, पन्नगा राक्षसा इति पातालस्य, सुरा इति स्वर्गस्योपलक्षणं सत्त्रैलोक्यपदविवरणम्। कन्दर्प इत्यादि चिन्तयेदित्यन्तेन प्रयोगान्तरम्। तस्य फलं योषिदित्यादिनोक्तम्। तत्र चिन्तनीयार्थस्य

स्पष्टमकथनेऽपि प्रकृततन्त्रे तत्कथयति—**क्रमेणेति**। तुशब्द: पूर्वप्रयोगव्यावृत्त्यर्थ:। ततो मूलाधारमारभ्यानङ्गपर्यन्तमशरीरकामेश्वरशिवपर्यन्तं क्रमेण स्वाधिष्ठानादिचक्रक्रमेण प्रोल्लसन्त्यपि प्रकर्षेणोर्ध्वं गच्छन्ती पुनरपि ब्रह्मरन्ध्राच्छरीरानङ्गपर्यन्तमायान्ती चिन्तनीयेति। स्वाभिलषिताया: स्त्रिया: शरीरे मूलाद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं तस्मात्पुनर्मूलान्तमेवं पुन: पुनर्यातायातं कुर्वती कामकलादेवी चिन्तनीयेति यावत्। अत्र शरीरानङ्गपदेन मदनशरीरं शरीरवान्मदन इति वा प्रतिपाद्यते। तच्च योनिमण्डलमेवेत्येतद्बलादिदं चिन्तनं स्त्रीशरीर एवेति लभ्यते। एवंप्रकारेणैकैव देवी, उभयात्मिका प्रयोगभेदेन द्विविधा, चिन्तनीयेति शेष:। प्राञ्चस्तु—पुरश्चरणं प्रयोगद्वयं च विविच्याजानाना इमान् श्लोकान् प्रकारान्तरेण व्याचक्षते। तद्विस्तरभयादनुपयोगाच्च न प्रदर्शितम्। अस्मद् उक्तोऽर्थ: क्लिष्टोऽपि तन्त्रान्तरसंवादादादर्तव्य इति।।३५-३७।।

ततो भवति देवेशि सर्वशृङ्गारमानिनाम् ।।३८।।
रागिणां साधको देवि बाधको मदनाधिक: ।
तद्दृष्टिपथगा नारी सुरी वाऽप्यथवाऽऽसुरी ।।३९।।
विद्याधरी किन्नरी वा यक्षी नागाङ्गनाऽथवा ।
प्रचण्डतरभूपालकन्यका सिद्धकन्यका ।।४०।।
ज्वलन्मदनदु:प्रेक्ष्यदहनोत्तप्तमानसा ।
क्लिन्ना प्रचलितापाङ्गा विमूढा मदविह्वला ।।४१।।
निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा देवि जायते ।

हे देवेशि! तत्पश्चात् कमकला के मदन से भी श्रेष्ठ साधक समस्त शृङ्गारादि अभिमानी रागीगण के लिये बाधक हो जाते हैं। नारी, सुरी, असुरी, विद्याधरी, किन्नरी, यक्षी, नागाङ्गना, प्रबलतर भूपति की कन्या में से जो कोई भी साधक की दृष्टिपथवर्त्तिनी होकर मदनज्वाला की दु:सह दहन से सन्तप्तमना, क्लिन्ना, चञ्चलापाङ्गी, विमूढ़ा तथा मदनविह्वला होकर यथासर्वस्व एवं स्वयं को साधक के सम्मुख निवेदन कर देती है। हे देवि! वे वशीभूत हो जाती हैं।।३८-४१।।

रागिणां—शिवानन्द के अनुसार इदन्ता—एकात्मा। भास्करराय का अर्थ है—सौदर्यादि अभिमानवान। **मदनाधिक:**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—मदन से भी श्रेष्ठ। कामराजबीज के साधक के दर्शन से सभी कामपरवश हो जाते हैं। भास्करराय अर्थ करते हैं—मदन से भी विशिष्ट सौन्दर्यादि गुण। **क्लिन्ना**—शिवानन्द के अनुसार विकृतेन्द्रिया। भास्करराय के अनुसार अर्थ है—क्लिन्नवस्त्रा। **मदविह्वला**—शिवानन्द के अनुसार हर्षव्याकुला। भास्करराय अर्थ करते हैं—मदव्याकुला। **निवेदितात्मसर्वस्वा**—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—नि:शेष शरीर-सर्वस्व निवेदनकारिणी। भास्करराय के अनुसार स्वयं का तथा सर्वस्व का समर्पण करने वाली। **वशगा**—भास्करराय के अनुसार दासी होकर वश में होती है।।३८-४१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एतत्साधकस्य फलमाह—**तत इति**। सर्वशृङ्गारमानिनाम् आत्मनि शृङ्गारं मन्यमानानां सर्वेषामित्यर्थः। रागिणाम् इदन्तैकात्मनाम्। मदनाधिको मदनात् प्रकृष्टः। कामराजबीजसाधकदर्शने सर्वेषां पुंसां कामपारवश्यं भवतीति तात्पर्यम्। क्लिन्ना विकृतेन्द्रियाः। विमूढा अविविक्तचित्ताः। मदविह्वला हर्षव्याकुलाः। निवेदितात्मसर्वस्वा निश्शेषेण निवेदितशरीरसर्वस्वा।।३८-४१।।

* अर्थरत्नावली *

ततो भवति देवेशि इत्यारभ्य वशगा देवि जायत इत्यन्तः श्लोकसमुदायः कामराजबीजसाधनफलवचनः स्पष्टार्थः।।३८-४१।।

ततो भवतीत्यारभ्य देवि जायत इत्यन्तः फल(वचन)श्लोकसमुदायः स्पष्टार्थः।।३८-४१।।

* सेतुबन्धः *

अथ द्वितीयप्रयोगस्य फलमाह—कामबीजस्य साधको रागिणां सौन्दर्याद्यभिमानवतां बाधको भवति। यतोऽयं मदनादप्यधिकः सौन्दर्यादिगुणविशिष्टः, अत एव सुरासुरादिकन्यकाः सर्वा अपि साधकध्यानोपनीतमदनज्वालादुःसहदहनातितप्तमानसाः सत्यः स्खलनेन क्लिन्नवस्त्रा विमूढहृदया मदव्याकुलाः सत्यः सर्वस्वमात्मानं च साधकाय समर्प्य दासीभूय वशे तिष्ठन्तीत्यर्थः।।३८-४१।।

चलज्जलेन्दुसदृशी बालार्ककिरणारुणा ।।४२।।
चिन्तिता योषितां योनौ संक्षोभयति तत्क्षणात् ।
सैव सिन्दूरवर्णाभा हृदये चिन्तिता सती ।।४३।।
सम्मोहोन्मादनाविष्टचित्ताकर्षकरी स्मृता ।
नियोजिताऽथवा मूर्ध्नि वर्षन्ती रक्तबिन्दुभिः ।।४४।।
धारणासम्प्रयोगेण करोति वशगं जगत् ।

साधक यदि नारी की योनि में तरुण सूर्यकिरण के समान रक्तवर्णा तथा चञ्चल जल में प्रतिबिम्बिता चन्द्र के समान कामकला की चिन्ता करे तब वह तत्क्षण उस नारी को संक्षुब्ध कर देते हैं।।४२-४४।।

नारी के हृदय में सिन्दूर वर्णाभा उन देवी का चिन्तन करने से साधक सम्मोहन तथा उन्मादन द्वारा उक्त नारी के चित्त को आकृष्ट करके उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। नारी की मूर्द्धा में रक्तबिन्दु-वर्षणकारिणी के रूप में देवी अवस्थिता हैं, ऐसी चिन्ता करने से वह उस नारी का आकर्षण कर लेता है।।४२-४४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

चिन्तिता। कामकलेति शेषः। सम्मोहयतीत्यस्यायमर्थः—याः साध्या मताः सर्वाः सम्मोहोन्मादनाभ्यामाविष्टचित्ताः कृत्वा आकर्षयतीति। किमनेन क्षुद्रेण व्यष्टिवशीकरणेन,

विश्ववशीकरणप्रवीणेयं कामकलेत्याह—**नियोजितेति**। मूर्ध्नि स्वकीये। धारणासम्प्रयोगेण धारणाभ्यासबलेन।।४२-४४।।

※ अर्थरत्नावली ※

चलज्जलेन्दुसदृशा बालार्ककिरणारुणेत्यादि। जल प्रतिबि(म्बे?म्बिते)न्दुवदतिचञ्चला बालार्ककिरणारुणा महाकामराजबीजात्मना योषितां मदनमन्दिरमध्यं ध्यातेयं शक्तिर्दृष्टादृष्टसमस्त-साध्यसुन्दरीविक्षोभजननीत्यर्थः। सैव सिन्दूरवर्णाभेत्यारभ्य चित्ताकर्षकरी स्मृतेत्यन्तस्यायमर्थः—सैव महाकामराजबीजरूपा सिन्दूरवर्णा योषितां हृदये चिन्तिता सती सम्मोहनोन्मादना-(वेशैराकृष्ट?भ्यामाविष्ट)चित्तायाः साध्याया आकर्षणकरीत्यर्थः। नियोजिताऽथवेत्यारभ्य करोति हि वशं जगदित्यन्तस्य(ायमर्थः)—अथवेति योगान्तरद्योतकः शब्दः। मूर्ध्न्यधोमुखसहस्रार-कमलवलयान्तर्महाकामकलाबीजात्मनाऽति(रि?र)क्ताच्छशीतामृतबिन्दुभिरमृतधारावाहिनी-धारणासम्प्रयोगेण ध्यानेन। कोऽर्थः? एवंभूतां परां शक्तिं चिन्तयतः साधकस्य वशे समस्तं जगत् भवतीत्यर्थः।।४२-४४।।

चलज्जलेन्दुसदृशेत्यादि। जलप्रतिविम्बितचन्द्रवच्चञ्चला। बालार्कवदरुणा दृष्टादृष्टसुन्दरी(रेखाभ?-विक्षोभ)जननी। सम्मोहः पारवश्यम्। उन्मादो मदनविकारः। ताभ्यामाविष्टचित्ताया आकर्षणकरीत्यर्थः। **नियोजितेत्यादि**। मूर्ध्नि अधोमुखसहस्राराब्जमध्ये। वर्षन्ती रक्तामृतबिन्दुभिः रक्तामृतबिन्दुवस्तुसहिता वर्षं कुर्वती (इत्य?अति)रक्ता कामकलेत्यर्थः।।४२-४४।।

※ सेतुबन्धः ※

प्रयोगान्तरमाह। चञ्चलोदकान्तःप्रतिबिम्बितारक्तचन्द्रमण्डलवदेषैव देवी साध्याया योनौ चिन्त्येत्यर्थः। प्रयोगान्तरमाह। योषितामित्यनुवर्तते। (तच्च) हृदय इत्यनेनान्वीयते। सम्मोहोन्मादनाविष्टं चित्तं यस्यास्तादृशीं कृत्वा तदाकर्षिकेत्यर्थः। प्रयोगान्तरमाह। योषितां मूर्ध्नि शोणित-बिन्दून्वर्षन्ती स्थितेव चिन्तिताऽप्याकर्षणकरी भवति । उक्तरूपाया देव्या दृढध्यानाभ्यासमात्रेणापि विश्ववशीकार इत्यपि प्रयोगान्तरम्। प्राञ्चस्तु—अनेनार्धद्वयेनैकं प्रयोगं व्याचक्षाणाः स्वमूर्धन्येव स्थितां रक्तबिन्दुवर्षिणीं दृढं ध्यायेदित्याहुः। तत् 'तस्या मूर्ध्नि स्मरेद्बीजम्' इति ज्ञानार्णवविरोधा-दुपेक्ष्यम्।।४२-४४।।

कामकलाचक्रस्योपदेशः

अथान्यं शृणु वक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभम्।।४५।।
येन विज्ञातमात्रेण साधको मदनायते।
कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम्।।४६।।
कामेन कामयेत्कामं कामं कामेषु निक्षिपेत्।
कामेन कामितं कृत्वा कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवम्।।४७।।

देवी के धारणा सम्प्रयोग द्वारा अर्थात् देवी की पूर्वोक्त रूप से साधक के चित्त में

धारणा होने से देवी जगत् को साधक के वश में कर देती है। अब संसार-दुर्लभ अन्य प्रयोग कहता हूँ, सुनो। इस प्रयोग का ज्ञान होने मात्र से साधक मदनरूप हो जाता है। कामस्थ-काममध्यस्थ—इन दोनों को कामदेव द्वारा पुटीकृत करना होगा। काम्य के द्वारा काम का वेष्टन करना होगा। काम में काम लिखना होगा। काम के द्वारा वेष्टित करके साधक अवश्य कामस्थ को क्षोभित करेगा।।४५-४७।।

धारणासम्प्रयोगेन—भास्करराय अर्थ करते हैं—दृढ़ ध्यानाभ्यास से। शिवानन्द कहते हैं कि यदि साधक अपनी मूर्द्धा में रक्तबिन्दुवर्षणकारिणी देवी का धारणाभ्यास करे तो जगत् वशीभूत हो जाता है। भास्करराय कहते हैं कि प्राचीन टीकाकारों का मत ज्ञानार्णवतन्त्र-सम्मत न होने के कारण उपेक्षणीय है। **अन्यं**—शिवानन्द के मत से यहाँ अन्यं का अर्थ है—महाफलप्रद अन्य। **दुर्लभम्**—शिवानन्द का मत है कि दुर्लभ का अर्थ यह है कि यह शक्तिपात-रहित के लिये दुर्लभ है। **विज्ञातमात्रेण**—शिवानन्द के अनुसार गुरुमुख से प्राप्त होने से। **मदनायते**—शिवानन्द का अर्थ है—स्वयं काम हो जाता है। **कामस्थं**—शिवानन्द के मत से इसमें कामराजयन्त्र ही विवृत है। वे कहते हैं कि यहाँ काम शब्द से बीजपञ्चक, वेष्टन, सन्धि, षट्कोण तथा चक्र कथित है। **बीजपञ्चकं**—'ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं'। विद्यानन्द के अनुसार यह बीजपंचक ही पञ्चकाम है। काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज तथा मोहन। अन्यत्र 'स्त्रीं' बीज को महाकाम कहा जाता है। महाकाम को ही मोहन कहा जाता है। ज्ञानार्णवतन्त्र में पञ्चकाम की जो तालिका है, वहाँ मोहन के स्थान पर मीनकेतु कहा जाता है। शिवानन्द के मत से कामस्थ अर्थात् कामरूप से स्थित 'ह्रीं' बीज। **कामधातुस्थं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—क्लीं बीज के मध्य स्थित। यह पद कामस्थं पद का विशेषण है। **कामोदरपुटीकृतम्**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—काम के ऐकारात्मक षट्कोणरूपेण उदर द्वारा पुटीकृत। इसका अर्थ पूर्वोक्त प्रकार से स्थित ह्रीं तथा क्लीं ऐकार रूप षट्कोण मध्य में स्थापित होंगे। **कामेन कामयेत् कामं**—शिवानन्द के मत से 'कामेन' का अर्थ है—अन्त:स्थित ह्रींकार द्वारा तथा 'कामयेत्' का अर्थ है—वेष्टन करे। शिवानन्द तथा विद्यानन्द के मत से 'कामं' अर्थात् साधक है। विद्यानन्द आलोच्य श्लोक का अर्थ करते हैं—ह्रींकार के रकार तथा हकार के मध्य में साध्यविग्रह की चिन्ता करनी होगी। **काम कामेषु निक्षिपेत्**—शिवानन्द तथा विद्यानन्द दोनों के मत से कामं का अर्थ यहाँ है—'ब्लूं' मकरध्वजबीज। शिवानन्द ने 'कामेषु' का अर्थ किया है—षट्कोण। पहले ही कहा है कि षट्कोण है—ऐंकारात्मक। यह त्रिकोण है। इसे द्विधा विभक्त करने से षट्कोण हो जाता है। कामराज यन्त्र अंकन करते समय कन्दर्पबीज ऐकार को द्विधा विभक्त करने का विधान तन्त्रशास्त्र में है। शिवानन्द के मत से निक्षिपेत् का अर्थ है—लिखे। भास्करराय आलोच्य श्लोकार्द्ध

का अर्थ करते हैं—षट्कोण के छ: कोणों में ब्लूं बीज लिखना होगा। **कामेन कामितं**—शिवानन्द यहा 'कामेन' शब्द का अर्थ करते हैं—'स्त्रीं' बीज द्वारा। 'कामित' का अर्थ है— वेष्टित। **कामस्थं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—चक्रमध्यस्थ साध्य को। **ध्रुवम्**—भास्करराय के अनुसार निश्चल। **क्षोभयेत्**—भास्करराय कहते हैं कि क्षोभयेत् पद आकर्षणादि फल का उपलक्षण है। आलोच्य श्लोक में विवृत कामराजयन्त्र का विन्यास शिवानन्द इस प्रकार से करते हैं—प्रथम साध्यनाम क्रोड़ीकृत 'ह्रीं' बीज का विन्यास करना होगा अर्थात् प्रथमत: 'ह्रीं' बीज का विन्यास करके उसके आभ्यन्तर (बाद) साध्यनाम लिखे। उसके बाहर विन्यस्त करे 'क्लीं' बीज। उसे घेरकर षट्कोण का अंकन करना चाहिये। उसके प्रत्येक कोण पर 'ब्लूं' बीज लिखे। तदनन्तर उसे 'स्त्रीं' बीज द्वारा वेष्टित करे। इसका अर्थ है कि उसे स्त्रीबीज के अन्दर स्थापित करे।

ऊपर विवृत अर्थ के अतिरिक्त टीकाकारों ने आलोच्य श्लोकों का विभिन्न अर्थ किया है। जैसे 'कामं' अर्थात् साध्य की 'कामस्थ' (मूलाधारस्थ) भावना करे। तदनन्तर काममध्यस्थ अर्थात् स्वाधिष्ठानस्थ भावना करे। तदनन्तर 'कामोदर' अर्थात् मणिपूर उदर द्वारा पुटीकृत भावना करे। तदनन्तर 'कामेन' अर्थात् अनाहत द्वारा वेष्टित भावना करनी होगी। तदनन्तर 'कामेषु' अर्थात् कण्ठ-वदन-भ्रूमध्य-ललाट-ब्रह्मरन्ध्र, 'कामं' अर्थात् यथाभिलषित साध्य को क्रमश: निक्षिप्त चिन्तन करे। इस प्रकार से नव स्थानों में भावना करे (द्रष्टव्य—भास्करराय कृत सेतुबन्ध टीका)। अन्य अर्थ है—'कामस्थं' यहाँ इसका अर्थ है—परशिव की इच्छाशक्ति। उसमें स्थित जो है, वह कामस्थ। इसका तात्पर्य यह है कि मूलाधारवलयान्तर्वर्त्ती नि:शेषबीजात्मक नित्यानन्दलक्षण जो शिव है, उसके द्वितीय उन्मेष रूप से विद्युल्लताकार से अवस्थिता जो कुण्डलिनी शक्ति उसके आभ्यन्तर में अवस्थित चिन्त्यमान जगत् को क्षोभित करती है, वही वह शक्ति है।

काममध्यस्थं—इसका अर्थ है—स्वाधिष्ठान चक्र के अन्तर्वर्त्ती प्रस्फुरणशील योनिगर्भ में बिन्दुरूप परमशिव की इच्छात्मिका जो महामहाप्रभा शक्ति है, उसके मध्य-स्थित। **कामोदरपुटीकृतम्**—इसका अर्थ है—मणिपुर चक्र के अन्तर्वर्त्ती ऊर्ध्वोन्मुखी शक्तिवलय-कवलीकृत। **कामेन कामयेत् काम्यं**—कामं अर्थात् अनाहत पद्मान्तर्वर्त्ती प्रस्फुरणशील शक्तिकिरणवेष्टित साध्य। कामेन अर्थात् शक्ति द्वारा। कामयेत् अर्थात् वेष्टन करे। सामान्यत: शक्ति द्वारा साध्य को वेष्टित करे। **कामं कामेषु निक्षिपेत्**—कामेषु अर्थात् अनाहत चक्र के ऊर्ध्वस्थ कण्ठ-वदन-भ्रूमध्य-ललाट-ब्रह्मरन्ध्र नामक प्रस्फुरणशील शक्तिरूप काम में। कामं का अर्थ है साध्य को। निक्षिपेत् अर्थात् चिन्तन करे। **कामेन कामितं कृत्वा**—मूलाधार से आरम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त नौ स्थान पर जहाँ अभिरुचि हो, वहाँ शक्ति द्वारा काम्यमान साध्य को वेष्टित करना होगा अर्थात् शक्तिवलय के

अन्तर्वर्त्ती चिन्तन करना होगा। **कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवम्**—पूर्वोक्त नवाधारों में उदिता जो शक्ति हैं, वे अपने स्वमध्यस्थित साधकार्थ जगत् को क्षोभित करती हैं। इसका तात्पर्य है कि मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त तथा ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार-पर्यन्त ९ आधारों में काम की (शक्ति की) साध्य कवलीकृत भावना करके यथाभिलाष अभ्यास करे। अथवा अन्य प्रकार से भी तात्पर्य कहा जाता है। काम अर्थात् बिन्दुरूप शिव। वे उक्त नवाधार निलय में समस्त विश्व के क्षोभक हैं। उनके द्वारा उक्त साध्य की कवलीकृत भावना को (द्रष्टव्य—विद्यानन्दकृत संसृष्ट अर्थरत्नावली)।

अन्य और अर्थ—**काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम्**—इसका अर्थ है कि मूलाधार में कालानलप्रख्य प्रथम कामबीज ह्रींकार का ध्यान करके उसके मध्य दह्यमान साध्य की चिन्ता करनी होगी। ठीक उसी प्रकार से मूर्धा में अवस्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका में प्रथम कामबीज 'ह्रीं' सुरा द्वारा प्रवाहित करे (भावना द्वारा)। उसके द्वारा मूलाधारस्थ साध्य को प्रवाहित किया जा रहा है, यह चिन्तन करना चाहिये। इसी प्रकार मन्मथ (क्लीं) तथा कन्दर्प (ऐं) बीज द्वारा द्राव्य-द्रावकभाव से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त। दह्यमान तथा प्लाव्यमान साध्य का चिन्तन करना होगा। अर्थात् मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त प्रत्येक स्थान में साधक को इन बीजद्वय में से प्रत्येक द्वारा दह्यमान तथा प्लव्यमान भावना करना होगा। **कामेन कामयेत् कामं**—कामेन अर्थात् पञ्च कामबीज द्वारा, कामं अर्थात् काम्यमान अभिलषित अर्थ की, कामयेत् अर्थात् अभिलाषा करे। **कामं कामेषु निक्षिपेत्**—कामं अर्थात् चतुर्थ कामबीज 'ब्लूं' और कामेषु अर्थात् षड़ाधार में, निक्षिपेत् अर्थात् तद्गत करे। दहन तथा प्लावन करे। **कामेन कामितं कृत्वा**—पञ्चम कामबीज है—'स्त्रीं। उसे सिन्दूरवर्णाभ चिन्तन करे। उसके द्वारा अनाहत पद्मस्थ काम्यमान साध्य को वेष्टित करे। पूर्व की तरह आप्लावन करे। **कामस्थं क्षोभयेत् ध्रुवम्**—कामस्थं अर्थात् पूर्वोक्त पंच कामबीजस्थ साध्य को, क्षोभयेत् अर्थात् साधक क्षोभित करे।।४५-४७।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

अथेति। अन्यं महाफलम्। दुर्लभं शक्तिपातविहीनानाम्। येन प्रयोगेण विज्ञातमात्रेण गुरुमुखाल्लब्धमात्रेण, अनुष्ठानं विनेत्यर्थ:। साधक: अधिगन्ता। मदनायते स्वयं कामो भवतीत्यर्थ:।

श्रीकामराजयन्त्रमाह—**कामस्थमिति**। अत्र बीजपञ्चकं वेष्टनं साध्यं कोणषट्कं चक्रं च कामशब्देनोच्यते। बीजपञ्चकं तावत् ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं इति। कामस्थं कामरूपेण ह्रींकारात्मना स्थितं यद्बीजं तत्। काममध्यस्थं कामस्य क्लींकारस्य मध्ये स्थितम्। कामोदरपुटीकृतम् उक्तं तदेतद्बीजद्वयं कामस्यैंकारात्मन: षट्कोणरूपस्योदरेण पुटीकृतम्। **कामेन कामयेत् काममिति**। अत्र द्वितीयान्त: कामशब्द: कर्मव्युत्पत्त्या साध्यमभिदधाति। तत्साध्यं कामेन अन्त:-

स्थितेन ह्रींकारेण। कामयेत् वेष्टयेत्। **कामं कामेषु निक्षिपेदिति।** कामं ब्लूंकाराख्यं बीजम्। कामेषु षट्कोणेषु। निक्षिपेत् लिखेदित्यर्थः। **कामेन कामितं कृत्वेति।** कामेन स्त्रींकाराख्येन बीजेन। कामितं वेष्टितम्। **कृत्वा कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवमिति।** कामस्थम् एतच्चक्रमध्यस्थितं साध्यमित्यर्थः। क्षोभयेत्, यन्त्रमिति शेषः। एतच्चक्रं पदव्याख्यायां स्फुटं व्याख्यातम्। (अप्ययं? अत्रायं) विन्यासक्र(मं?मः)—प्रथमं क्रोडीकृतसाध्यं भुवनेश्वरीबीजं विन्यस्य तद्बहिः प्रसिद्धकामबीजं विधाय तदनु षट्कोणं लिखित्वा तत्कोणेषु ब्लूंबीजं विरच्य तदनु स्त्रींकारेण वेष्टयेदितीदमत्युपह्वरम्। अस्योपह्वरताप्रतिपादनपरः कामपरम्पराशब्दः।।४५-४७।।

❈ अर्थरत्नावली ❈

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभमिति। महाकामराजबीजसाधनप्रकारं बहुविधमुपदिश्येदानीं प्राकृतबुद्धिभिरप्राप्यमहाकामराजबीजेन प्रयोगान्तरमुपदिशति शिवः। अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामीत्यारभ्य कामस्थं क्षोभयेज्जगदित्यन्तस्य श्लोकसमुदायस्यायं भावः—कामस्थं काममध्यस्थमित्यादिना पञ्च कामा अभिमताः। ते त्रिपुरार्णवे समुद्धृताः। तैरेवायं प्रयोगः सम्पाद्यत इति यावत्। कोऽर्थः? काम-मन्मथ-कन्दर्प-मकरध्वज-मोहनाख्याः पञ्च कामाः। ते मायाबीज-वाणतृतीय-वाग्भव-ब्लूंकार-स्त्रीहृदयाख्यबीजपञ्चकसमुद्भवाः। एतद्बीजपञ्चकं पञ्चकामकारणत्वात् पञ्च कामा इत्युच्यते। तदुक्तम्—

कामं प्राणं प्रकर्तव्यं मन्मथं कारयेत्तनुम्।
कन्दर्पं मन्दिरं कृत्वा द्विधाभूतं च पार्वति।।
मकरध्वजं न्यसेद् देवि षट्स्थानेष्वस्य सुव्रते।
मोहनाभ्यन्तरे कृत्वा वेष्टयेत् तस्य मायया।। इति।

ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं। कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम्। कामेन कामयेत् कामं कामं कामेषु निक्षिपेत्। कामेन कामितं कृत्वा कामस्थं क्षोभयेज्जगत्। इत्यस्यायमर्थः—कामस्थं ह्रींकारं तत् काममध्यस्थं मन्मथकामोदरे कुर्यात्। कामोदरपुटीकृतं तदुभयं काममन्मथाख्यं कामद्वयं कन्दर्पकामेन द्विधाभूतेन पुटीकुर्यादित्यर्थः। काममन्मथ(द्व?)योरन्तरं कन्दर्पकामेन ऐंकारेण षट्कोणाकारेण वेष्टितं कुर्यादित्यर्थः। **कामेन कामयेत् काममिति।** काम्यत इति काम इति कर्मव्युत्पत्त्या काम्यमानसाध्यवृन्दं कामशब्दव्यपदेश्यं भवति। साध्यरूपं तं कामं कामेन प्रथमकामेन ह्रींकारेण वेष्टयेत्। कोऽर्थः। प्रथमकामरेफहकारयोर्मध्ये साध्यविग्रहं चिन्तयेदित्यर्थः। **कामं कामेषु निक्षिपेदिति।** षट्कोणेषु कामं मकरध्वजबीजं ब्लूंकारं निक्षिपेत्। षट्कोणानां कामत्वं त्रिकोणाकारत्वादिति भावः। अथवा तृतीयं कामं विद्यासं(ज्ञा?ज्ञत्वाद्) राजत्वाद्वा, मन्मथाख्यकामस्थाने तमुद्धास्य मूलविद्यामध्यगतमहाकामराजं निक्षिपेत्। किमेवमिति? कामराज-साधनप्रकरणत्वान्निश्चीयत इत्यर्थः। **कामेन कामितं कृत्वेति।** कामेन मोहनाख्येन स्त्रीहृदयेन कामितं कुर्यात्। कोऽर्थः? मोहनाख्यकामोदरे एतत्सर्वं लिखित्वा एतद्बहिर्मायायाऽध्युष्टवारं वेष्टयेदिति यावत्। **कामस्थं क्षोभयेज्जगदिति।** एवं पर्यस्तकामपञ्चस्य मध्यस्थं

साध्यरूपं जगत् चिन्तयेत्। तदुपरि स्थितः साधकः कामराजबीजं साधयेदित्यभिप्रायः। बाह्ये भूर्जपत्रे रोचनाकुङ्कुमकस्तूरीचन्दनादिभिर्द्रव्यैं रक्षां लिखित्वा साध्यप्राणप्रतिष्ठापनं विधाय हेममध्यगतां कृत्वा पञ्चसहस्रं पञ्चकामबीजानि जपित्वा मूलविद्यां च जपित्वा शिखादिस्थानेषु यत्नतो धारयेत्। तथा (अ?आ)न्तरेऽपि मूलाधारस्थाने तडित्कोटिप्रभाभास्वरमहाचक्रत्रिकोणमध्ये प्रस्फुरत्कल्पानलप्रभामेनां रक्षां चिन्तयित्वा मूर्ध्नि स्थितसह [illegible] रकमलान्तरस्थरक्तसुधापूरापूरित(या?यो)न्यर्णवमहाचक्रमध्यत्रिकोणमध्यरक्तामृतधारासारवार्षणीमेतां रक्षां चिन्तयित्वा तेनामृतापूरेण मूलाधारस्थमहाचक्रान्तरुल्लसितपञ्चकाममहावह्नितप्तगात्रयष्टि साध्यमप्यभिषिञ्चेदिति भावः।

अथवा कामस्थं काममध्यस्थमित्यादेरर्थान्तरं लिख्यते। परमशिवेच्छाशक्तिः कामस्तत्स्थं कामस्थमित्युच्यते। कोऽर्थः? मूलाधारवलया(न्त?न्तः) निश्शेषबीजात्मको नित्यानन्दलक्षणो यः शिवस्तस्य द्वितीयोन्मेषतया विद्युल्लताकारेण स्थिता या कुण्डलिनीशक्तिस्तस्याम(न्त?न्तः) स्थि(तिं?तं) सञ्चिन्त्यमानं जगत् क्षोभयेत् सा शक्तिरित्यर्थः। स्वाधिष्ठानचक्रमध्यान्तः प्रस्फुरद्योनिगर्भविन्दुरूपपरमशिवस्येच्छात्मिका या महामहाप्रभा शक्तिस्तस्या मध्यस्थितं काममध्यस्थमित्युच्यत इत्यर्थः। तथा मणिपूरचक्रान्तः समुद्यच्छक्तिवलयकवलीकृतं कामोदरपुटीकृतमित्युच्यते। तथा दहराकाशकुशेशयान्तः प्रस्फुरच्छक्तिकिरणवेष्टितं कामेन कामयेत् काममित्युच्यते। कामेन शक्त्या (काम्यकामं?) कामं साध्यं कामयेद् वेष्टयेदिति यावत्। तदूर्ध्वं कण्ठवदनभ्रूमध्यललाटब्रह्मरन्ध्रा(ख्यासुन्दरीषु?ख्येषु) प्रस्फुरच्छक्तिरूपकामेषु कामं साध्यं निक्षिपेत् चिन्तयेदित्यर्थः। उक्तमर्थमुपसंहरति—**कामेन कामितमित्यादिना**। अस्यायमर्थः—किं बहुनोक्तेन, मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तं नवाधारभूमिकासु यत्र यत्राभिरुचिस्तत्र तत्र शक्त्या काम्यमानं साध्यं कामितं कृत्वा शक्तिवलयान्तरस्थं चिन्तयेदित्यर्थः। **कामस्थं क्षोभयेदिति**। नवाधारे उदिता या शक्तिः, सा स्वस्मिन् स्थितं साधकार्थं जगत् क्षोभयतीत्यर्थः। एवमारोहावरोहक्रमेण नवलक्ष्येषु समभ्यसेत्। कोऽर्थः? मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रादिमूलान्तं नवाधारेषु कामं शक्तिं साध्यकवलीकृतं यथाकाममभ्य-सेदित्यर्थः। अथवा कामो बिन्दुरूपः शिवः, उक्तनवाधारनिलयसमस्तविश्वक्षोभकः। तेन कवलीकृतमुक्तसाध्यं चिन्तयेदित्यर्थः। अस्मिन् पक्षेऽपि ग्रन्थयोजना पूर्ववदेव। शक्तिशिवयोः काम(स्तत्त्व?त्व)मागमान्तरसंसिद्धम्। उक्तं च शक्तेः कामरूपत्वं श्रीमतोत्तरे—

प्रे(क्ष्य?क्ष)ते कामरूपाणि तत्रस्था परमेश्वरी।
तं तत्त्वं कामसंज्ञं तु अवाप्ता परमेश्वरी।। इति।

तथा शिवस्यापि कामरूपत्वमुक्तम्—

कामरूपो ह्यहं देवि! अनङ्गो रूपवर्जितः।
क्षोभयामि प्रजाः सर्वा नित्यं वै क्लेदयामि च।। इति।

अथवा कामस्थमित्यादेः पुनरप्यर्थान्तरं लिख्यते। कामः प्रथमकामो ह्रींकारः, तत्रस्थं कामस्थम्। प्रथमकामबीजं ज्वलत्कालानलप्रख्यं मूलाधारे ध्यात्वा तन्मध्ये साध्यं सञ्चिन्तयेद्

दह्यमानम्। तथा तेनैव प्रकारेण मूर्धस्थसहस्रारकमलकर्णिकायां तदेव प्रथमकामराजमतिरक्ताच्छसुधाधारां वह(न्?त्) चिन्तयित्वा तयाऽमृतधारया मूलाधारस्थं साध्यं प्लुष्यमाणं प्लावयेदित्यर्थः। तथा मन्मथकन्दर्पावपि द्राव्यद्रावकभावेन मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ध्यायेदिति यावत्। एतत् कामस्थं कामोदरपुटीकृतमित्यादिपद(द्वय?त्रय)स्यार्थः। कामेन कामयेत् काममित्यस्य एवंविधं पञ्चकामबीजेन काम्यमानमभिलषितमर्थं कामयेद् इच्छेदित्यर्थः। कामं कामेषु निक्षिपेदित्यस्य कामं चतुर्थं मकरध्वजं कामेषु षडाधारेषु निक्षिपेत् तद्गतं साधयेदित्यर्थः। पूर्ववदाप्लावनं च कुर्यात्। कामेन कामितं कृत्वेत्यस्य दहराकाशकुशेशयान्तः पञ्च(मं) कामं मोहनाख्यं सिन्दूरवर्णाभं सञ्चिन्त्य काम्यमानं तेन कामेन वेष्टितं कृत्वा पूर्ववदाप्लावनं कुर्यादिति यावत्। कामस्थं क्षोभयेज्जगदित्यस्य एवंविधपञ्चकामबीजस्थं जगदपि साध्यं स्मृत्वा क्षोभयेत् साध(कमि?क इ)ति यावत्। इति कामराजसाधनम्। अस्याप्युदयो मूलाधारे, भ्रूमध्यान्ते व्याप्तिः, विश्रान्तिर्ब्रह्मरन्ध्रे।।४५-४७।।

कामस्थमित्यादि। काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजमोहनाख्याः पञ्च कामा मायाबीजबाणतृतीयबाणवाग्भवबाणतुरीयस्त्रीहृदयाख्यपञ्चबीजसमुद्भवाः। तैरिदं यन्त्रम्। त्रिपुरार्णवेऽप्युक्तम्—

कामं प्राणं प्रकर्तव्यं मन्मथं कारयेत्तनुम्। कन्दर्पं मन्दिरं कृत्वा द्विधाभूतं च पार्वति।।
मकरध्वजं न्यसेद् देवि षट्स्थानेष्वस्य सुव्रते। मोहनाभ्यन्तरे कृत्वा वेष्टयेत् तस्य मायया।। इति।

अत्रापि तदेव यन्त्रमुच्यते। कामस्थं मायाबीजमध्यस्थम्। काममध्यस्थमिति कामोदरपुटीकृतं कामेन कामयेत् कामं वाग्भवद्वयेन षट्कोणमुत्पाद्य प्रागुक्तं तदन्तःस्थं कुर्यात्। कामं कामेषु निक्षिपेत्। समुद्रबाणं षट्कोणेषु निदध्यात्। कामेन कामितं कृत्वा। सुन्दरीहृदयमूर्ध्वस्थं कृत्वा तन्मायया वेष्टयेदित्यर्थः। कामस्थं क्षोभयेज्जगत्। एवं कामाख्यं यन्त्रं जगत् क्षोभयेदित्यर्थः। साध्यं च तन्मध्ये यथावत् स्थापयेदित्यत्र ज्ञातव्यम्। तत्र मन्मथाख्या कामराजं विना श्रीमूलविद्या कामराजबीजं वा निक्षिपेत्। एवमन्यस्मिन् यन्त्रे लिखिते वा समुपदिष्टं कामराजबीजं साधयेत्। बाह्ये तु भूर्जपत्रे कस्तूरिकयैनां रक्षां विलिख्य जप्त्वा धारयेत्। इति कामराजबीजसाधनम्।।४५-४७।।

❊ सेतुबन्धः ❊

अथ रहस्यतरं प्रयोगं वक्तुं प्रतिजानीते। ज्ञातमात्रेण किमुतानुष्ठितेनेत्यर्थः। सुन्दरीतापिन्यां तृतीयोपनिषद्युक्तं कामकलाचक्रमुपदिशति—पञ्चकामेश्वरीमन्त्रे यानि पञ्च बीजानि—हृल्लेखा, कामबीजम्, वाग्भवम्, चतुर्थबाणः, स्त्रीबीजं चेति। तेषां क्रमेण संज्ञा ज्ञानार्णवे बालान्यासप्रकरणे कथिताः—कामो मन्मथः कन्दर्पो मकरध्वजो मीनकेतुश्चेति। दक्षिणामूर्तिसंहितायां तु मीनकेतुरिति मकरध्वजस्यैव संज्ञान्तरम्। स्त्रीबीजस्य तु महाकाम इति संज्ञा। अस्यैव तन्त्रान्तरे मोहन इति संज्ञा। एवं स्थिते कामराजबीजसाधनप्रकरणे पठितस्य—

कामं मन्मथमध्यस्थं कुर्यात्कन्दर्पवेश्मगम्।
तत्पुटस्थं मीनकेतुं महाकामे समस्तकम्।।

इति संहिताश्लोकस्यायमर्थः—पूर्वपूर्वबीजमुत्तरोत्तरबीजेनाऽऽवेष्टयेदिति। इदमेव च स्पष्टमुक्तं तन्त्रान्तरे—

कामं प्राणं प्रकुर्वीत मन्मथं कारयेत्तनुम्।
कन्दर्पं मन्दिरं कृत्वा द्विधाभूतं च पार्वति।।
मकरध्वजं न्यसेद्देवि षट्स्थानेष्वस्य सुव्रते।
मोहनाभ्यन्तरे कृत्वाऽऽवेष्टयेत्तस्य मायया।। इति।

अस्यार्थः—आदौ कामं हल्लेखाबीजं विलिख्य तदभितो मन्मथं क्लींकारं लिखेत्। तथा सति कामोऽन्तःस्थितत्वात्प्राणस्थानीयो मन्मथस्तु बहिष्ठत्वाच्छरीरस्थानीयो भवति। तत्परितो द्विधाभूतं कन्दर्पमे(मैं)कारं लिखेत्। ऐंकारस्य त्रिकोणाकारत्वेन तद्द्वैगुण्यै षट्कोणता फलति। ततश्च मन्मथं गर्भे संस्थाप्य षट्कोणं लिखेदिति सिध्यति। तदिदं प्राणिनो मन्दिरस्थानीयं भवति। ततोऽस्य षट्कोणेषु मकरध्वजं ब्रूं (ब्लूं)बीजं षड्वारं लिखेत्। तच्च वचनान्तरात्कोणानां गर्भ एव लेख्यम्, न बहिर्भागे। तदिदं सर्वं मोहनस्य स्त्रींमितिबीजस्याभ्यन्तरे कुर्यात्। स्त्रींबीजाभ्यन्तरेऽपीकारीयरेखाद्वयमध्य एव लेख्यमिति, अत उक्तम्—तस्य मायथाऽऽवेष्टयेदिति। केचित् तु—एतद्बहिर्माययाऽध्युष्टवारं वेष्टयेदिति व्याख्यन्। तत्र प्रमाणं मृग्यम्। सौभाग्यरत्नाकरकारास्तु—अत्र पञ्चमकूटाक्षरलेखने तदक्षरवह्निस्थानगं सकलयन्त्रं यथा भवति तथा गुरुमुखाद्विज्ञाय समालेख्यमिति तु सम्प्रदायरहस्यमित्याहुः। तेनैतेषां पक्षे तकाररेफमध्यावकाश एव मकरध्वजान्तं समस्तयन्त्रं लेख्यं भवति। ज्ञानार्णवे तु विशेषः कामराजकूटसाधनं प्रस्तुत्य,

एतत्कामकलाध्यानात् पञ्च कामा वरानने।
मोहयन्ति जगत्सर्वं प्रयोगं शृणु पार्वति।।
पूर्वोक्ताः कामा देवेशि ज्ञातव्याः पञ्चसंज्ञकाः।
विदर्भ्याऽऽद्येन कामेन मन्मथान्तर्गतं कुरु।।
कन्दर्पसम्पुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः।
मकरध्वजसंज्ञार्णं सर्वमेतद्वरानने।
मीनकेतुगतं कुर्यान्मोहयेज्जगतीमिमाम्।
त्रैलोक्यमोहनो नाम प्रयोगोऽयं प्रकीर्तितः।। इति।

अत्र प्राथमिककामबीजेन यो विदर्भ उक्तः, स यद्यपि 'विदर्भो द्व्यन्तरः प्रोक्त इतिलक्षणलक्षितः' द्वितीयपटले कथितस्तथाऽपि प्रकृते ममामुकं वशं कुर्विंतिवाक्यस्यैव भुवनेश्वरीगर्भे लेखनमिति सम्प्रदाय इति ध्वनितं (सौभाग्य)रत्नाकरे। तल्लेखने तु यद्यपि चत्वारः पक्षाः पुरश्चरणकौस्तुभे परमगुरुचरणैः प्रपञ्चिताः, तथाऽपि पक्षद्वय एव ते पर्यवस्यन्तीति निरूपितं तृचभास्करेऽस्माभिः। एवं च बहुतन्त्रसम्मतैतद्यन्त्रपरत्वेनैव मूलस्थो ग्रन्थसन्दर्भो योजनीयः। यथा कामेन कामनयोपलक्षितः साधको यं कामं कामनीयं देवदत्तादिकं कामयेद्वशीकर्तुमिच्छेत्तं कामं साध्यं कामस्थं कुर्यात्। पञ्चसु कामेषु प्रथमोपस्थितहल्लेखागर्भ उक्तान्यतररीत्या लिखेत्। ततस्तं हल्लेखार्णं द्वितीयस्य कामस्य मन्मथबीजस्य मध्यस्थं कुर्यात्। अथ तं मन्मथार्णं तृतीयकामयोः कन्दर्पयोः

षट्कोणतामापन्नयोरुदरे गर्भे पुटीकृतं सम्पुटितं कुर्यात्। ततस्तस्य कन्दर्पस्य कामेषु मदनमन्दिरेषु षट्सु योनिषु चतुर्थं कामं मकरध्वजं निक्षिपेत्। ततस्तं षट्कोणं कामेन मीनकेतुना पञ्चमबीजेन कामितं वेष्टितं कुर्यात्। स्रक्चन्दनादीनां हि कामनागर्भेऽवस्थानमेवेच्छाविषयत्वमतः कामितपदस्य वेष्टितमित्यर्थो युज्यते। एवं कृत्वा साधकः कामस्थं प्रथमकामान्तर्लिखितं साध्यं ध्रुवं निश्चलमपि क्षोभयेद्वशयेदिति।

अत्र पञ्चानामपि कामानां विशेषसंज्ञान्तरसत्त्वेऽपि यः सामान्यसंज्ञयैव दुर्बोधो व्यवहारः, स पुनरस्य यन्त्रस्य 'क इदं कस्मा अदात्' इति श्रुतिगम्यताध्वननेन तस्या अर्थविवरणार्थः। इदं साध्यत्वेनाभिमतं वस्तु कः कस्मा अदादिति प्रश्नः। कामः कामाय, प्रथमकामो द्वितीयकामायादादित्युत्तरम्। ह्रींबीजे स्थितं साध्यं क्लींबीजे स्थितं भवतीति यावत्। कामो दाता, अयं कामः स्वयमप्यस्मै दत्तवान्। कामः प्रतिग्रहीता, तद्दत्तमिदं तृतीयकामस्त्रिकोणरूपः स्वयमेव स्वस्य प्रतिकूलो भूत्वा गृहीतवान्। प्रत्यगग्रस्य प्रागग्रत्वमेव प्रातिकूल्यम्। एकोऽप्यैंकारो द्विधा भूत्वा प्रातिकूल्यं चावलम्ब्य षट्कोणो भूत्वा स्वगर्भे सर्वमस्थापयदिति यावत्। कामं समुद्रमाविश। बहुकोणत्वात्तृतीयकाम एव समुद्रः। तदन्तः प्रविशेति चतुर्थं कामं प्रति वक्ष्यमाणसम्बोधनपूर्वकमुक्तिः। कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते। हे काम ब्लूंकार, एतत्ते कृत्यम्। यत्समुद्रमाविश्यत्वमपि बहुरूपः समुद्र एवाजायथाः। नैव कि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्येति श्रुत्यन्तरात्। अतः समुद्रे मर्यादाया आवश्यकत्वात् त्वामहं कामेन स्त्रींबीजेन प्रतिबध्नामि। एषा ते काम दक्षिणा, हे काम कामुक साधक, एषा, एतद्यन्त्रेण साधिता स्त्रीव्यक्तिर्वा तव दक्षिणाऽनुकूलाऽस्त्वितिश्रुत्यर्थात्। केचित् तु—कामं साध्यं कामस्थं मूलाधारस्थं विभाव्य, ततः काममध्यस्थं स्वाधिष्ठानस्थं विभाव्य, पश्चात् कामोदरेण मणिपूरोदरेण पुटितं विचिन्त्य तदनु कामेनानाहतेन वेष्टितं कामयेच्चिन्तयेत्। ततः कामेषु कण्ठवदनभ्रूमध्यललाटब्रह्मरन्ध्रेषु कामं यथेच्छं साध्यं क्रमेण निक्षिप्तं विभावयेत्। इति नवसु स्थलेषु साध्यविभावनमेकः प्रयोगः।

प्रयोगान्तरमाह—कामेन कामितमिति। कामेन स्वेच्छयोक्तनवकान्यतमस्थले कामितं चिन्तितं कृत्वा कामस्थं स्वेच्छाविषयं क्षोभयेदित्यर्थ इत्याहुः। परे तु—कामं ह्रींकारं मूलाधारे ब्रह्मरन्ध्रे च सञ्चिन्त्याधःस्थेन ज्वालादिभिर्दह्यमानं साध्यमुपरिस्थेनामृतधाराभिः प्लाव्यमानं चिन्तयेत्। एवमेव मन्मथकन्दर्पाभ्यां प्रत्येकं दह्यमानं प्लाव्यमानं च चिन्तयेत्। सोऽयं कामस्थमित्यादिपदत्रयस्यार्थः। कामेन कामयेत् कामम्। पूर्वोक्तबीजत्रयेण साध्यमुक्तरीत्या वशयेत्। कामं कामेषु निक्षिपेत्। मकरध्वजं षडाधारेष्वपि निक्षिप्य दहनाप्लावने कुर्यात्। मीनकेतुनाऽनाहत एव साध्यं वेष्टितं कृत्वा कामस्थविषयं क्षोभयेदित्यर्थ इति वदन्ति। तदुभयं शिष्यप्रतारणमात्रमिति मनीषिण एव जानन्तु। अन्ये तु—कामराजकूटसाधनप्रकरणे पाठाल्लिङ्गादन्यत्र कामपदैः प्रकृतविद्याद्वितीयकूटमेव ग्राह्यमित्याहुः। तत्पूर्वोपदर्शितस्पष्टतरज्ञानार्णववचनविरोधादनादेयम्। श्रुतिविरोधोऽपि यथा—'अथातः कामकला(भूत)चक्रं व्याख्यास्यामो

ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं एते पञ्च कामा: सर्वचक्रं व्याप्य वर्तन्ते। मध्यमं कामं सर्वावसाने सम्पुटीकृत्य ब्लूंकारेण व्याप्तं सम्पुटषट्चक्रं कृत्वाऽऽदिमद्वयेन मध्यवर्तिनं साध्यं बद्ध्वा भूर्जे यजति। तच्चक्रं यो वेत्ति स सकललोकं कर्षति। स सर्वविषं स्तम्भयति। नीलीयुतं च(क्रं) शत्रून्मारयति, गतिं स्तम्भयति, लाक्षायुतं कृत्वा सकललोकं वशीकरोति' इति। ततश्च मूले क्षोभयेदिति पदमाकर्षणादिफलोपलक्षणं व्याख्येयम्।।४५-४७।।

एतद्धि देवदेवेशि कामराजस्य साधनम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन शक्तिबीजस्य साधनम्।।४८।।

हे देवदेवेशि! इस प्रकार कामराज बीज के साधन का निरूपण किया गया; अब इसके पश्चात् विस्तृत रूप से शक्तिबीज के साधन को कहता हूँ।।४८।।

*** सेतुबन्धः ***

कामराजबीजसाधनोपसंहारपूर्वकं शक्तिबीजसाधनं प्रतिजानीते। स्पष्टम्।।४८।।

शक्तिबीजस्वरूपा तु सृष्ट्वा संहरते यदा।
सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे परिचिन्तयेत्।।४९।।

जब परा शक्ति सृष्टि करके संहार करती हैं, तब वे हैं—शक्तिबीजस्वरूपा। उनकी सृष्टि-पर्यन्त तथा संहार-पर्यन्त रूप की चिन्तना स्वशरीर में करनी होगी।।४९।।

शक्तिबीजस्वरूपा—शिवानन्द के अनुसार तृतीय बीजावलम्बिनी अमृता नाम्नी परा शक्ति। **सृष्ट्वा**—शिवानन्द के मत से अर्थ है कि ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार-पर्यन्त अवरोहण करती है। **संहरते**—शिवानन्द के अनुसार मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त आरोहण करती है। **सृष्टिसंहारपर्यन्तं**—भास्करराय की व्याख्या है कि कुलपद्म (सुषुम्ना नाड़ी में स्थित सर्वोच्च अधोमुखी सहस्रदल पद्म) से अकुल पद्म (सुषुम्ना नाड़ी में स्थित सर्व निम्न ऊर्ध्वमुख सहस्रदल कमल) पर्यन्त तक प्रयाण को सृष्टि कहते हैं और अकुल पद्म से कुलपद्म-पर्यन्त के प्रयाण को (प्रत्यावर्त्तन) संहार कहते हैं, तत्पर्यन्त। **शरीरे**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—सुषुम्ना के अन्दर।।४९।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

इदानीं तार्तीयबीजसाधनमाह—**शक्तीति**। शक्तिबीजस्वरूपा तृतीयबीजावलम्बिन्यमृताख्या परा शक्तिरित्यर्थ:। सृष्ट्वा ब्रह्मरन्ध्रान्मूलबिलावध्यवरुह्य। संहरते मूलाद् ब्रह्मरन्ध्रावध्यारोहति। सृष्टिसंहारपर्यन्तम् अकुलस्थानात् कुलस्थानपर्यन्तं कुलस्थानादकुलस्थानपर्यन्तं चेत्यर्थ:। शरीरे सुषुम्नान्तरे। परिचिन्तयेत्, योगीति शेष:।।४९।।

*** अर्थरत्नावली ***

शक्तिबीजस्वरूपा तु सृष्ट्वा संहरते यदा। सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे परिचिन्तयेत्। इत्ययं

श्लोकः शक्तिबीजसाधनप्रदर्शकः। अस्यार्थः—मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रान्तं शक्तिबीजस्वरूपा सृष्टिसंहाररूपिणी चिन्तनीया, तथा ब्रह्मरन्ध्रादारभ्य मूलाधारान्तं शक्तिबीजस्वरूपा परा शक्तिर्दिव्यामृतकलया समस्तं जगदुत्पादयन्ती ध्यातव्या। तार्तीयबीजमेकमेवोभयात्मना शुक्लरूपेणाभ्यस्य(तेऽ ?तोऽ)चिरान्निग्रहानुग्रहप्रवीणत्वं सम्भवतीति यावत्।।४९।।

शक्तिबीजस्वरूपेत्यादि। सृष्ट्या सृष्टिं संहरते ऊर्ध्वं गच्छति (सृष्टि?) सृष्ट्यादिसंहारपर्यन्तं (स्थू? मू)लादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रादिमूलान्तं गमागमाभ्यासः कार्यः। एवं शुक्लवर्णामुभयतः शक्तिबीजस्वरूपां शक्तिमूर्ध्वगमने(न?) संहाररूपिणीमागमे परमामृतरूपिणीमभ्यसतो निग्रहानुग्रहणसामर्थ्यं फलम् ।।४९।।

※ सेतुबन्धः ※

वाग्भवादिसाधन इव शक्तिसाधने रूपादिकृतविशेषाभावान्मन्त्रसाधनसामान्यप्रकार एवास्याः साधने प्रकार इत्यभिप्रेत्य पुरश्चरणे ध्येयदेव्या इच्छाशक्तेः स्वरूपनिष्कर्षमात्रमाह। त्रिपुरसुन्दरी सर्वं जगत्सृष्ट्वा परिपाल्य संहारोन्मुखी यदा भवति तदा तादृशसंजिहीर्षा प्रवृत्तिनिमित्तीकृत्य शक्तिबीजपदवाच्यतां सैव प्रतिपद्यत इत्यर्थः। पुरश्चरणकालेऽस्या ध्यानमुक्तं ज्ञानार्णवे—

सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरे चिन्तयेत्पराम्।
स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीं विषहारिणीम्।।
हेमप्रभाभासमानां विद्युन्निकरसुप्रभाम्।
स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णं कलशं वरदाभये।।
ज्ञानमुद्रां च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम्। इति।

अत्र तन्त्रे कूटत्रयेऽपि ध्यानानुक्तिरुक्तध्यानमात्रेण निर्वाहं ध्वनयति। एवं पुरश्चरणमुक्त्वा सिद्धमन्त्रस्य काम्यप्रयोगमाह—कुलपद्मादकुलपद्मपर्यन्तं कुण्डलिन्याः प्रयाणं सृष्टिः। अकुलपद्मात्कुलपद्मपर्यन्तं परावर्तनं संहारः। तयोरवधिं स्वशरीरे चिन्तयेत्।।४९।।

ततो भवति देवेशि वैनतेय इवापरः।
नागानां दर्शनादेव जडीकरणकारकः ।।५०।।
देहिनाममृतासारधीरधाराधरोपमः।
स्थिरकृत्रिमशङ्कादिविषोपविषनाशनः ।।५१।।
दुष्टव्याधिग्रहानीकडाकिनीरूपिकागणैः।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्त्रिनेत्र इव दृश्यते ।।५२।।

हे देवेशि! शक्तिबीज-साधक द्वितीय गरुड़ के समान सर्प पर दृष्टि पड़ते ही उनके लिये जड़ीकरणकारी हो जाता है। देहधारियों के लिये अमृतवर्षणकारी धीर मेघ के समान हो जाता है। वह स्थिर तथा कृत्रिम विषभक्षण की शंका का तथा विष एवं उपविष का नाशकारी हो जाता है। दुष्ट व्याधि तथा दुष्ट पिशाचादि के लिये त्रिनेत्र शिव के समान दृश्यमान होता है।।५०-५२।।

देहिनाम्—देहधारियों के लिये। शिवानन्द के अनुसार संसार घर्मसन्तप्त के लिये। **अमृतासारधीरधाराधरोपमः**—शिवानन्द के अनुसार अर्थ है—अमृत का आसार अर्थात् वेगवान वर्षण, उसमें धीर अर्थात् प्रगल्भ, धाराधर अर्थात् मेघ, तदुपम अर्थात् मेघ के समान। **स्थिरकृत्रिमशङ्कादिविषोपविषनाशनः**—शिवानन्द के मत से स्थिर अर्थात् स्थावरोद्भूत (विष त्रिविध कहा गया है—स्थावर, जंगम तथा कृत्रिम। वनस्पतिजनित विष स्थावर, सर्पादि का विष जंगम तथा रासायनिक विष कृत्रिम होता है)। कृत्रिम विष अर्थात् संयोगज। कृत्रिम विष जंगम विष का उपलक्षण है। भास्करराय 'शंका' पद का अर्थ करते हैं—'मैंने इसे खाया है' यह भ्रम। भास्करराय विष का अर्थ करते हैं—नाग आदि का विष। उपविष अर्थात् अन्य कीटों का विष। इन सबका 'नाशनः' अर्थात् नाशकारी। **त्रिनेत्रः**—शिवानन्द व्याख्या में कहते हैं कि इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपी त्रिनेत्र जिनका है, वे अर्थात् शिव।।५०-५२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

शक्तिबीजयोगिनः फलमाह—**तत इत्यादि**। दर्शनं साक्षात्कारः। देहिनां संसारघर्मतप्तानाम्। अमृतासारधीरधाराधरोपमः। आसारो वेगवद् वर्षम्, तत्कर्मणि धीरः प्रगल्भः। धाराधरो मेघः। **स्थिरेति**। स्थिरं स्थावरोद्भूतम्। कृत्रिमं संयोगजम्। जङ्गमस्याप्युपलक्षणमेतत्। **दुष्टेति**। अत्र दुष्टशब्दो व्याध्यादिभिः पिशाचान्तैः सप्तभिर्गणैः सम्बद्ध्यते। त्रिणेत्रः त्रीणीच्छाज्ञानक्रियाख्यानि नेत्राणि यस्य सः। दृश्यते। साधक इत्यध्याहार्यम्।।५०-५२।।

* अर्थरत्नावली *

ततो भवति देवेशीत्यारभ्य त्रिणेत्र इव दृश्यत इत्यन्तः श्लोकसमुदायः शक्तिबीजफलसूचनः स्पष्टार्थः।।५०-५२।।

ततो भवतीत्यादि त्रिणेत्र इव दृश्यत इत्यन्तस्य शक्तिबीजसाधनागमप्रभवे परां महातेजोवृष्टिमयीमवधानेनागमोक्तसंख्याकालानुरूपेण फलपर्यन्तं ध्यायतोऽन्तर्बहिरर्चयतः साधकवरस्याचिरादेवाष्टगुणमैश्वर्य सम्पद्यते॥५०-५२॥

* सेतुबन्धः *

एतस्य फलमाह त्रिभिः। जङ्गमविषवत्स्थावरादीन्यपि हरतीत्याह—**स्थिरेति**। स्थिरं काकोलादि। कृत्रिमं द्रव्ययोगोद्भवम्। शङ्का मयेदं भक्षितमिति भ्रमः। तस्याप्युपद्रवकारित्वाद्विषत्वम्। नागादिविषाणि महाविषाणि, कृम्यन्तरभवान्युपविषाणि। त्रिनेत्र इवेति तु परिकराङ्कुरालङ्कारेण प्रलयकालाग्निसाहित्याभिप्रायगर्भं सत्तन्नाशकत्वं ध्वनयति। सुगममन्यत्।।५०-५२।।

अथवा येन विद्येयं परिपूर्णा विचिन्त्यते।
जन्ममण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगा ॥५३॥
केवलैव महेशानि पद्मरागसमप्रभा।
तस्याष्टगुणमैश्वर्यमचिरात्संप्रवर्तते ॥५४॥

हे महेशानि! अथवा जो जन्ममण्डल-हृत्पद्म-मुखमण्डल में गामिनी केवला पद्मरागसमप्रभा परिपूर्णा विद्या का चिन्तन करते हैं, वे शीघ्र ही अष्टगुण ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

परिपूर्णा—शिवानन्द के अनुसार बीजत्रय-समुदायात्मिका। **जन्ममण्डलहृत्पद्म-मुखमण्डलमध्यमा**—भास्करराय के मत से जन्ममण्डल = मूलाधार चक्र, हृत्पद्म = अनाहत पद्म, मुखमण्डल = आज्ञाचक्र—इन स्थानत्रय में गमन करने वाली। इस सम्बन्ध में शिवानन्द कहते हैं कि श्रीविद्या की त्रिकूट-समुदायात्मिका उपासना में भी मूलाधार-अनाहत-आज्ञाचक्र में वाग्भव-कामराज तथा शक्ति—इन त्रिकूटरूपेण गामिनी, यह अर्थ है। इसका अर्थ है—स्थानत्रयगामिनी, इस प्रकार से चिन्तन करना होगा। **केवलैव**—टीकाकारों में से कोई-कोई केवला पद का अन्वय करते हैं पद्मरागसमप्रभा पद के साथ। केवला का अर्थ है—एकमात्र। इस पद का तात्पर्य है कि विद्या एकमात्र पद्मरागसमप्रभा रूपेण चिन्तनीया है। **पद्मरागसमप्रभा**—विद्यानन्द अर्थ करते हैं कि पद्मरागवर्णा अर्थात् पद्मरागमणि के वर्ण वाली है। यह मणि रक्तवर्ण होती है। इस सम्बन्ध में शिवानन्द कहते हैं कि मूलाधार, हृदय तथा भ्रूमध्य—इन स्थानत्रय में वर्णत्रय की भावना करने से सर्वत्र पद्मरागसमप्रभा विद्या स्मरणीया है। विद्यानन्द इस सम्बन्ध में निष्कील सम्प्रदायसम्मत अर्थ का निर्देश करते हैं। बीजरूपा कुलशक्ति केवल पद्मरागैकवर्णा है। इस प्रकार से आमूलाधार (मूलाधार से लेकर) मस्तक-पर्यन्त उनका ध्यान करना होगा। **अष्टगुणम् ऐश्वर्यम्**—भास्करराय अष्टगुणम् का अर्थ करते हैं—अणिमादि वशित्वान्त। ऐश्वर्यम् का अर्थ है—ईश्वर की अणिमादि शक्ति। शिवानन्द अष्टगुणमैश्वर्यम् का अर्थ करते हैं—अणिमादि गुणाष्टकयुक्त विभूति।।५३-५४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

बीजानां त्रयाणां व्यस्तोपासनमुक्त्वा सम्प्रति समस्तोपासनमाह—**अथवेति**। येन परामर्शकेन। परिपूर्णा बीजत्रयसमुदायात्मा विद्या। **जन्ममण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगेति**। समस्तोपासनेऽपि वाग्भवादिबीजत्रयेण मूलादिस्थानत्रयंगतेत्यर्थः। पद्मरागसमप्रभामूलहृदयभ्रूबिलेषु वर्णत्रयभावनायामपि सर्वतः पद्मरागसमप्रभा विद्या। तस्य चिन्तकस्य। अष्टगुणमैश्वर्यमिति अणिमादिगुणाष्टकोपेता विभूतिः।।५३-५४।।

* अर्थरत्नावली *

अथवा येन विद्येयमित्यारभ्य अष्टगुणमैश्वर्यमचिरात् सम्प्रवर्तत इत्यन्तः श्लोकः समस्तमूलविद्यासाधनप्रकारोपदेशपरः। अस्यायमर्थः—प्रथमबीजं ज्वलत्कालानलाभं मूलाधारे ध्यात्वा तस्य शिखारूपां शक्तिं केवलपद्मरागवर्णां भ्रूबिलव्याप्तां ध्यात्वा पुनस्तार्तीयं बीजं रक्तपारदसन्निभं (भ्रूवि? भ्रुव)मलङ्कुर्वा(णां?णं) ध्यात्वा तस्य शिखारूपां परां शक्तिं पूर्ववत् पद्मरागवर्णां पङ्कजकर्णिकापर्यन्तं ध्यायेदित्यर्थः। अथवा निष्कीलकसम्प्रदायानुरोधेन तु बीजरूपां कुलशक्तिं

केवलं पद्मरागैकवर्णामामूलमामस्तकं ध्यायेत्। तस्यैवं चिन्तयतः साधकस्याचिरादेवाष्टगुणमैश्वर्यं सम्पद्यत इति वाक्यार्थः।।५३-५४।।

* सेतुबन्धः *

अथ कूटत्रयसाध्यं प्रयोगमाह—कूटत्रयस्य प्रातिस्विकसाधनोत्तरं क्रियमाणाः पूर्वोक्ताः प्रयोगा एकैककूटेनैव भवन्ति। अयं तु प्रयोगस्त्रयाणां कूटानां मेलनेन भवति। अत एव चैकैककूटस्योक्तरीत्या प्रत्येकं कृतपुरश्चरणत्रयस्यैवात्राधिकारः। न पुनः सम्पूर्णविद्यापुरश्चरणोत्तरमेवात्राधिकार इति भ्रमितव्यम्। तथात्व उत्तरपटल एव तत्पुरश्चरणस्य कथनीयतापत्तेः। अत एवात्राथवेत्युक्तिः केवलैवेत्युक्तिश्च संगच्छते। परिपूर्णा विद्येत्युक्तिस्तु कूटत्रयसमुच्चये सत्यर्थात्परिपूर्णैव भवतीत्याशयेनेति ज्ञेयम्। अत एव अर्णवे—'अथ त्रिकूटा सम्पूर्णा' इत्यत्र त्रिकूटेति विशेषणमुक्तार्थद्योतकं सत्सार्थकम्। एतेन पञ्चमपटले वक्तुं योग्योऽपि प्रसङ्गात्स्वतन्त्रत्वाच्चेहैव परशिवेनोक्त इति समाधानमपास्तम्। अथवेति। प्रत्येकं कूटत्रयं साधितवता प्रत्येकं वोक्तरीत्या कूटानि कामनायां विनियोजनीयानि वक्ष्यमाणरीत्या समुच्चित्यैव वा विनियोज्यानीत्यर्थः। परिपूर्णा परस्परसमुच्चितकूटत्रया। जन्ममण्डलं मूलाधारपद्मम्। हृत्पद्ममनाहतपद्मम्। मुखमण्डलमध्यमाज्ञापद्मम्। एतानि त्रीणि स्थानानि गच्छतीति तथा। त्रिषु स्थलेषु क्रमेण त्रीणि कूटानि पद्मरागप्रभाण्येव चिन्तनीयानीत्यर्थः। परं तु पूर्वकूटसाधनानन्तरं स्म(स्व)स्थना(ला)वधि स्पष्टं चिन्तनीयम्। तृतीयं तु ब्रह्मरन्ध्रावधि। अत एव ज्ञानार्णवे प्रत्येककूटमुत्तरोत्तरकूटसाधनानन्तरं स्मर्यते—

अथ त्रिकूटा सम्पूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी।
चिन्तिता साधकस्याऽऽशु त्रैलोक्यवशकारिणी।।
क्रमेण नाभिहृद्वक्त्रमण्डलस्थाऽरुणप्रभा।
पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तनात्सुरवन्दिते।।
तस्याष्टगुणमैश्वर्यं सौभाग्यं च प्रजायते। इति।

अत्र नाभिमण्डले वाग्भवचिन्तनोक्तिरुक्तरीत्या मूलाधारचिन्तनोक्त्या न विरुध्यते। इदं च ऋजुविमर्शिन्यनुसारेणोक्तम्। अर्थरत्नावल्यां तु मूलेऽपि नाभिमण्डलेत्येव पाठ आदृतः। केवलैवेति पूर्णविद्यापुरश्चरणं वक्ष्यमाणं विनैवेत्यर्थः। अष्टगुणमणिमादिवशित्वान्तम्। ये तु कूटत्रयस्य चिन्तने रूपभेदमाहुः ते तन्त्रान्तराविरोधेऽपि प्रकृतप्रयोगे तथात्वे मानाभावादुपेक्ष्याः।।५३-५४।।

मनसा संस्मरत्यस्या यदि नामापि साधकः।
तदैव मातृकाचक्रे विदितो भवति प्रिये।।५५।।
यदैव जपते विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीम्।
तदैव मातृचक्राज्ञा संक्रामत्यस्य विग्रहे।।५६।।

सर्वासां सर्वसंस्थानां योगिनीनां भवेत्प्रियः।
पुत्रवत्परमेशानि ध्यानादेव हि साधकः ॥५७॥
यदा तु परमेशानि परिपूर्णां प्रपूजयेत्।
प्रयच्छन्ति तदैवास्य खेचरीं सिद्धिमुत्तमाम् ॥५८॥
चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम्।
चक्रमेतत्समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते ॥५९॥

हे प्रिये! साधक यदि मन ही मन इनका नाम ही स्मरण करे, तब उसी क्षण उसे मातृका चक्र का ज्ञान होगा। जब महात्रिपुरसुन्दरी विद्या का जप करेगा तभी उसकी देह में मातृचक्राज्ञा संक्रमित होगी। हे परमेशानि! साधक केवल मूल देवता के ध्यान के द्वारा सर्वशक्तिमती सब योगिनियों का पुत्रवत् प्रिय होगा। हे परमेशानि! साधक जब परिपूर्णा की पूजा करेगा, तब ब्राह्मी आदि शक्तियाँ उसे उत्तम खेचरी शक्ति प्रदान करेंगी। हे वीरवन्दिते! इस कारण महावीर्यवती चतुःषष्टि कोटि योगिनीगण इस चक्र में आश्रय करके अवस्थिता हैं।।५५-५९।।

मातृचक्रस्य—विद्यानन्द अर्थ करते हैं—६४ योगिनीवृन्द का। **विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीम्**—विद्यानन्द के मत से यहाँ 'विद्या' का अर्थ है—महात्रिपुरसुन्दरी की मूल विद्या। मूलविद्या ही महात्रिपुरसुन्दरी है। **मातृचक्राज्ञा**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—ब्राह्म्यादि शक्तिचक्राज्ञा। यहाँ आज्ञा का अर्थ है—पाँच प्रकार की मन्त्रसिद्धि। जैसे—स्पर्शन, अवलोकन, सम्भाषण, बिन्दुदर्शन तथा स्वयमावेशन। स्पर्शन अर्थात् मन्त्र के साथ साधक का सम्बन्ध। स्पर्शन का चिह्न है—साधक के हृदय में कम्पन। मन्त्र यदि साधक का अवलोकन करे तब अवलोकन। अवलोकन का चिह्न है—साधक के कण्ठ में धूनन (कम्पन)। मन्त्र यदि साधक के साथ वार्त्ता करे, तब है सम्भाषण। इसका चिह्न है—साधक का स्वयं समस्त विद्यामन्त्र-परिकल्पन। बिन्दुदर्शन अर्थात् साधक का भ्रूमध्य में आत्मदर्शन। इसका चिह्न है—साधक को अणिमादि गुणप्राप्ति। मन्त्र यदि साधक को आविष्ट करे, तब है स्वयमावेशन। इसका चिह्न है—साधक की देह का ऊर्ध्वगमन। विद्यानन्द इस पद का अर्थ करते हैं—त्रिपुरसुन्दरी की ६४ कला। मातृचक्र की आज्ञा अर्थात् आज्ञाप्रभाव। वे मातृचक्र का एक और अर्थ करते हैं—श्रीचक्राधिवासिनी = वर्णाभिमानिनी सब देवी, उनकी आज्ञा अर्थात् सामर्थ्य। **संक्रामति**—संक्रामित होता है। भास्करराय इस आज्ञा-संक्रमण के सन्दर्भ में लिखते हैं कि गुरु अपनी दृष्टि द्वारा शिष्यदृष्टि के आभ्यन्तर का अवलोकन करते-करते योगबल से स्वदेह से स्वचैतन्य स्वनेत्र द्वारा बाहर आकर्षण करके शिष्यनेत्र द्वारा तत् चैतन्यरूप स्वयं शिष्य के मन का वेधन करते हैं। इस आज्ञा-संक्रमण का रहस्य गुरुमुख से जानना होगा। **विग्रहे**—शिवानन्द अर्थ

करते हैं जपकारी भी देह में। **सर्वासां सर्वशक्तीनां योगिनीनां**—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—सर्वलोकवर्त्तिनी कामचारिणी गण। **ध्यानात्**—शिवानन्द ध्यान का अर्थ कहते हैं मूलदेवता का ध्यान। विद्यानन्द इस कथा को ही किञ्चित् विस्तारित करके कहते हैं— महाकामकलारूप महात्रिपुरसुन्दरी के विग्रह का ध्यान। **परिपूर्णा**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अणिमादि सिद्धिचक्र अर्थात् भूपुर चक्र से कामेश्वरी आदि आवरण के अन्तःपर्यन्त अर्थात् त्रिकोणचक्र के अन्तः अर्थात् मध्य (विन्दु चक्रपर्यन्त) नवचक्रात्मक श्रीचक्ररूपिणी मूल देवता अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी को। **प्रयच्छन्ति**—प्रदान करे। शिवानन्द के मत से इस क्रियापद के कर्त्ता ब्राह्मी आदि अष्ट शक्ति हैं। **चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां**—शिवानन्द इसकी व्याख्या में कहते हैं कि चतुःषष्टि कोटि योगिनी भी ब्राह्मी आदि अष्टशक्ति का ही उल्लास है।

इस श्लोक की व्याख्या में भास्करराय कहते हैं कि तन्त्रराजतन्त्र में कहा गया है कि त्रैलोक्यमोहन चक्र से लेकर सर्वानन्दमय चक्रपर्यन्त नव चक्र में से प्रत्येक चक्र में चतुःषष्टि कोटि योगिनी अवस्थिता हैं।।५५-५९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

योऽस्यास्त्रिपुरसुन्दरीविद्याया नामापि मनसा स्मरति, तदैव साधको ब्राह्मयादिशक्तिचक्रेण विदितो भवतीत्याह—**मनसेति**। यदीति यदावाचकः। यो वा त्रिपुरसुन्दरीं विद्यां यदा जपति, तदैवास्य जपितुर्देहे ब्राह्मयादिशक्तिचक्राज्ञा निवसन्तीत्याह—**यदैवेति**। आज्ञा पञ्चप्रकारा मन्त्रसिद्धिः। उक्तं च—

स्पर्शनं चावलोकश्च सम्भाषा बिन्दुदर्शनम्।
स्वयमावेशनं चैव मन्त्राणां पञ्चलक्षणम्।। इति। (उ० ष०)

ध्यानाद् मूलदेवताभिध्यानात्। यदा तु परमेशानीत्यस्यायमर्थः—अणिमादिसिद्धिचक्रादिकामेश्वर्याद्यावरणान्तं मूलदेवतां यः प्रसादयति, तस्य खेचरत्वादिसिद्धिं ब्राह्मयाद्याः प्रयच्छन्तीति। परिपूर्णचक्राराधने किमित्येवं सिद्धिरित्यत आह—**चतुष्षष्टिरिति**। योगिनीनां चतुष्षष्टिकोट्योऽपि ब्राह्मयाद्यष्टशक्त्युल्लास एवेति बोद्धव्यम्।।५५-५९।।

* अर्थरत्नावली *

मनसा संस्मरत्यस्या यदि नामामि साधक इति। एवमेनां ध्यातुं जप्तुमशक्तश्चेद् भक्तिपरवशो भूत्वा महात्रिपुरसुन्दर्या नाम संस्मरन्। अपिशब्द एवकारार्थो निश्चयवचनः। मनसा श्रीनाम संस्मरेदेतावतापि पूर्वोक्तफलमश्नुते साधक इत्यर्थः। **तदैव मातृचक्रस्य विदितो भवति प्रिये! इति।** श्रीनामस्मरणस्य नैतावदेव फलम्, अन्यच्च। यदा यस्मिन् काले श्रीनामानुस्मरति साधकस्तस्मिन्नेव काले मातृचक्रस्य चतुष्षष्ट्यादेः (योगिनीवृन्दस्य) विदितो भवतीत्यर्थः। **यदैव हि जपेद्विद्यां महात्रिपुरसुन्दरीमिति।** यस्मिन् काले महात्रिपुरसुन्दरीं मूल-

विद्यां जपति, तदैव मातृकाचक्राज्ञा संक्रामत्यस्य विग्रहे। तदीयाः कला एव मातृचक्रं चतुषष्ट्यादि, तदाज्ञाप्रभावः साधके संक्रामतीत्यर्थः। अथवा मातृचक्रमिति वर्णाभिमानिनीनां श्रीचक्राधिकासिनीनां सामर्थ्यं साधकस्य भवतीत्यर्थः। सर्वासां सर्वशक्तीनां सामर्थ्यं साधकस्य भवतीत्यर्थः। सर्वासां सर्वशक्तीनां योगिनीनां भवेत् प्रिय इति। सकललोकवर्तिनीनां कामचारिणीनां हृद्यो भवतीत्यर्थः। **पुत्रवत् परमेशानि ध्यानादेव हि साधक इति।** महाकामकलारूपमहात्रिपुरसुन्दरीविग्रहध्यायिनं साधकं पुत्रवत् पश्यन्ति योगिन्य इत्यर्थः। यदा त्वित्यारभ्य खेचरीं सिद्धिमतुलामित्यन्तः श्लोकः पूजाफलवचनः स्पष्टार्थः। चतुष्षष्टिरित्यारभ्य वीरवन्दिते इत्यन्तश्चक्रप्रभावप्रतिपादनपरः स्पष्टार्थ।।५५-५९।।

मनसा संस्मरतीत्यादि। एवमभ्यासतो ध्यानादिनियत्यासमर्थश्चेदपि पारवश्येन देव्या नाममन्त्रस्मरणनियत्यैवेत्थं साधकश्चतुष्षष्ट्यादियोगिनीवृन्दस्य विदितो भवतीत्यस्य महती योग्यता प्रवर्तते। ततोऽप्यनुष्ठानचातुर्यसामग्री सिद्ध्यति। यदैव हि जपेदित्यादि। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीमूलविद्यामातृकाभावः। चतुष्षष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनामित्यादिवदिह भूतेषु भुवनेषु च स्थितानां सर्वयोगिनीनामपि महाकामकलारूपदेवीविग्रहं ध्यायन् पुत्रवत् प्रियः सम्भावनीयो भवति। **यदा त्वित्यादि।** परिपूर्णचक्रनित्यपूजाफलत्वेन खेचरीसिद्धिं परमानन्दप्रकाशानुभवात्मिकीं देवी ददाति। चतुष्षष्टिरित्यादि चक्रप्रभावप्रतिपादनम्।।५५-५९।।

⁕ सेतुबन्धः ⁕

अथ त्रिकूटाबीजानि प्रत्येकं साधितवतामतिसुलभसाध्यानि कतिचित्फलानि पञ्चभिराह। एतन्नाम्नो मानसस्मरणमात्रेण मातृकाचक्रसारस्वतसमूहविषये विदितो ज्ञानवान्। अथवा मातृणां मण्डले प्रसिद्ध इत्यर्थः। अस्या जपमात्रेण मातृणामाज्ञा साधके संक्रामति। आज्ञा कलेति केचित्। मन्त्रसिद्धिरिति अन्ये। मातृणामाज्ञा यथा लोकेष्वप्रतिहता तथाऽस्यापीत्यपरे। वस्तुतस्तु ज्ञानार्णवे दीक्षाप्रकरणे—

दृष्ट्याऽवलोकयेत्तं तु दृष्ट्या दृष्टिं प्रमेलयेत्।
आज्ञासंक्रमणं कुर्याद्यावन्निश्चलता भवेत्।।

इत्यत्रोक्तमाज्ञासंक्रमणनामकं यद्गुरोः कृत्यं तन्मातर एव स्वयं कुर्वन्तीत्यर्थः। श्रीगुरुः शिष्यदृष्ट्यन्तः स्वदृष्ट्या पश्यन्योगमहिम्ना स्वतनोः सकाशात्स्वचैतन्यं स्वनेत्रद्वारा बहिर्निष्कास्य शिष्यनेत्रद्वारा तच्चैतन्यरूपः स्वयं शिष्यस्य मनो वेधयेत्। तदिदमाज्ञासंक्रमणं गुरुमुखैकवेद्यं रहस्यम्। अस्या ध्यानमात्रात्सर्वासां योगिनीनामस्मिन्पुत्रवात्सल्यं भवति। सर्वसंस्थानां भूजलाकाशपातालादिनिवासिनीनाम्। अस्याश्चक्रपूजनमात्रेण खेचरीसिद्धिः। परिपूर्णां प्रपूजयेदित्यनेन तत्प्रतिमायाः पूजा मा प्रसाङ्क्षीदत आह—**चतुःषष्टिरिति।** एकैकमिति शेषः। त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयान्तरचक्रनवके प्रतिचक्रं चतुःषष्टिः कोट्यो योगिन्यः सन्तीत्यर्थस्य तन्त्रराजे स्पष्टत्वात्।।५५-५९।।

आदौ सम्बन्धिनि पदे मध्ये बीजाष्टकं बहिः।
कलां ध्यात्वाऽङ्गनारङ्गे जायतेऽनङ्गवत्प्रियः।।६०।।

नवयोनि चक्र के मध्य त्रिकोण में कामकला एवं उसके वाहर अष्टकोण में बीजाष्टक-भावना करके साध्या के योनिस्थान में ध्यान करने से साधक अनङ्ग के समान प्रिय हो जाता है।।६०।।

आदौ सम्बन्धिनि पदे—शिवानन्द अर्थ करते हैं—आदौ अर्थात् सर्वादि में, सम्वन्धिनि अर्थात् निष्पन्न, पदे अर्थात् स्थाने। इसका अर्थ है—नवयोनि चक्र में। **मध्ये**—शिवानन्द के मत से इसका अर्थ है—मध्यत्रिकोण में। भास्करराय की व्याख्यानुसार विन्दुस्थान में। **बीजाष्टकं**—शिवानन्द के मत से बीजाष्टक का अर्थ है—वशिनी आदि के अष्टवीज। वशिनी बीज = ब्लूं। कामेश्वरीबीज = क्ल्ह्रीं। मोदिनीबीज = न्व्लीं। विमलाबीज = य्लूं। अरुणाबीज = ज्म्रीं। जयिनीबीज = ह्स्ल्व्यूं। सर्वेश्वरी-बीज—झ् म् र् यूं। कौलिनी बीज = क्ष्म्रीं। **बहिः**—वाहर का अष्टकोण। **कलां**—विद्यानन्द के अनुसार कामेश्वरी बीजरूपिणी महाकला। **अङ्गनारङ्गे**—शिवानन्द 'अङ्गना' का अर्थ करते हैं—साध्या। रङ्गे का अर्थ करते हैं—योनिस्थान। **प्रियः**—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—सुभग। सुभग अर्थात् सुन्दर, वल्लभ, भाग्यवान आदि।।६०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

मध्यचक्रानुबन्धिनं कञ्चन प्रयोगं प्रकाशयति—**आदाविति**। आदौ सर्वादौ। सम्बन्धिनि निष्पन्ने। पदे स्थाने। अयमर्थः—प्रथमनिष्पन्ननवयोनिचक्र इति। **मध्य इति**। तत्रापि मध्यत्र्यश्रे 'अथात' (१.५९) इत्यादिक्रमेणापीदमेवादिस्थानम्, महादेवतासमाराधनस्थानत्वात्। बीजाष्टकं वशिन्याद्यष्टबीजम्। वहिः कोणेष्वष्टस्वित्यर्थः। कलां कामराजसारभूतां 'बिन्दुं सङ्कल्प्य' (१.१८५) इति परामृष्टाम्। अङ्गनारङ्गे अङ्गनायाः साध्यया योनिस्थाने। क्रीडद्भिः पुंभिर्यत्र रज्यते स रङ्गः। प्रियः सुभगः। इदमस्य हृदयम्—नवयोनिचक्रमध्यत्र्यश्रे श्रीकामकलां तद्बहिरष्टकोणे बीजाष्टकं परिभाव्य ज्वलदग्निनिभमिदं चक्रं साध्यसुदृग्योनिसुषिरे चिन्तयेदिति।।६०।।

* अर्थरत्नावली *

आदौ सम्बन्धिनीत्यादि। प्रथमच(क्रे?क्र)सम्बन्धिनि मध्यपदे मध्यत्रिकोणे। मूलविद्यामध्यगतमहाकामकलां ध्यात्वा बहिरष्टकोणेषु वशिन्यादिबीजाष्टकं सान्द्रलाक्षाद्रवोपमं सञ्चिन्तयेत्। एतत्सर्वमङ्गनाया वराङ्गे योनौ ध्यात्वाऽनङ्गवद् भवति साधकः।।५८।।

आदौ सम्बन्धिनीत्यादि। सम्बन्धिनि गुदाकुञ्चनया (तद्वय?तद्वायु)सञ्चारनिरोधादिसम्यग्बन्धवति प्रथमे पदे मूलाधारे मध्यत्रिकोणे कला महाकला कामराजबीजस्वरूपिणी बहिरष्टकोणेषु वशिन्यादि-वाग्देवताबीजाष्टकं लाक्षाद्रवोपमं चिन्तयेद् यदि साधकोऽङ्गनारङ्गे सुन्दरीणामास्थानेऽनङ्गवत् कामवत् सुभगो जायते। यद्वा आदौ सम्बन्धिनीति प्रथमचक्रसम्बन्धिनि पदे मध्यपदे कला। शेषं प्राग्वत्। आहोस्विदादौ प्रथमबीजसम्बन्धिनि पदे एकादशस्वरमयत्रिकोणे स्फुरन्महाकामकलातुरीयकामबीजं मध्ये ध्यात्वा। शेषं प्राग्वत्। अङ्गनारङ्गे अङ्गनायोनौ सर्वं चिन्तनीयमिति केचित्। सर्वथाऽत्रान्तश्चक्रेणैव प्रयोगसिद्धिः स्थेया।।५८।।

* सेतुबन्धः *

ईदृशस्यैव प्रयोगान्तरमाह। अत्र यद्यप्यादिमध्यान्तेषु व्यवस्थया किञ्चिद्विधीयत इति वाक्यच्छायया भासते तथाऽपि वृद्धैरन्यथा व्याख्यातम्। आदौ सम्बन्धिनि पदे प्रथमनिष्पन्नेचक्रे नवयोनि चक्र इति यावत्। श्रीचक्रलेखनावसरे तावत एवाऽऽदौ निष्पन्नत्वात्। मध्ये बिन्दुस्थाने। कलां कामकलाम्। बहिरष्टयोनिषु बीजाष्टकं वशिन्यादिबीजाष्टकं चेत्येवमङ्गनायारङ्गे योनिमध्ये विचिन्त्य स्वयं तस्या अनङ्गवत्प्रियो भवतीत्यर्थः। ज्ञानार्णवे त्वत्रैव श्लोके 'कामराज इवापरः' इति चतुर्थश्चरणः पठ्यत इत्येव विशेषः। अत्र बिन्दुचिन्तनं नास्ति। कामकलया तस्यापोदितत्वात्।।६०।।

करशुद्ध्यादिविद्यानामेकैकं परमेश्वरि।
रुद्रयामलतन्त्रे तु कर्म प्रोक्तं मया पुरा।।६१।।

हे परमेश्वरि! करशुद्धि विद्या इत्यादि विद्यासमूह में से प्रत्येक के कर्म मैंने पहले रुद्रयामल तन्त्र में कहा है।।६१।।

एकैकं—भास्करराय अर्थ करते हैं—प्रत्येक। **कर्म**—शिवानन्द के मत से कर्म का अर्थ है—विनियोग, प्रयोग, सामर्थ्य, व्याप्ति इत्यादि। भास्करराय कर्म का अर्थ करते हैं—पुरश्चरण, काम्य कर्म।।६१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

करशुद्ध्यादिविद्यानां पूर्वोक्तानां विद्यानां मध्ये एकैकस्या इत्यर्थः। कर्म विनियोगप्रयोगसामर्थ्यव्याप्त्यादि। पुरा तत्रैव शास्त्र इत्यर्थः।।६१।।

* अर्थरत्नावली *

करशुद्ध्यादीत्यारभ्य कर्म प्रोक्तं मया पुरेत्यन्तः श्लोकः स्पष्टार्थः।।६१।।

करशुद्धीत्यारभ्य कर्म प्रोक्तं मया पुरेत्यन्तः स्पष्टार्थः।।६१।।

* सेतुबन्धः *

एवं कण्ठरवेणोक्तानेकादश प्रश्नान् समाधाय चकारेण क्रोडीकृतानन्यान् प्रश्नान् समाधत्ते—पूर्वमस्मिन्नेव तन्त्र उद्धृतानामपि करशुद्ध्यादिविद्यानां पुरश्चरणं काम्यकर्माणि च नात्र कथनीयानि। अस्य तन्त्रस्य प्रधानविद्यार्थमेव प्रवृत्तेः। अन्यासामुद्धारमात्रं त्वावश्यकं तासामिहाङ्गत्वेन विनियोगात्। रुद्रयामलतन्त्रस्य तु बहुदेवताविषयकत्वात् तत्रैवैतासां विद्यानां साधनादिकं कर्म मया प्रत्येकं पुरैव कथितम्, तावन्मात्रोपासकैस्तदेव तन्त्रं द्रष्टव्यमिति भावः। एकैकपदं प्रत्येकार्थकम्। रुद्रयामलोक्तस्तासां साधनप्रकारः सुन्दर्युपास्तावनुपयुक्तत्वाद् विस्तृतत्वाच्च अस्माभिरपि नेह प्रदर्शितः।।६१।।

आयुध-मुद्राबीजानि तत्प्रभावाश्च

मादनैर्मदनो भूत्वा पाशाङ्कुशधनुःशरैः।
क्षोभयेत्स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः ।।६२।।

तथैव शाक्तैर्देवेशि त्रिपुरीकृतविग्रहः ।
साधयेत् सिद्धगन्धर्वदेवविद्याधरानपि ।।६३।।

मदन-सम्बन्धित पाश-अङ्कुश-धनु तथा शर—इन आयुधों के साथ मदन होकर अर्थात् स्वयं का उक्त रूप से आयुधधारी मदन का ध्यान करे। साधक स्वर्ग, भूलोक तथा पाताल की अंगनाओं को वश में कर लेता है। हे देवेशि! इसी प्रकार शक्ति-सम्बन्धित पाश, अंकुश, धनु तथा शर के साथ त्रिपुरा मूर्त्तिरूप स्वयं का ध्यान करके सिद्ध, गन्धर्व एवं विद्याधरों को भी साधक वशीभूत कर लेता है।।६२-६३।।

मदनः—विद्यानन्द के मत से इसका अर्थ है—कामेश्वर। भास्करराय के अनुसार शिव। **मादनैः**—मदनसम्बन्धित अर्थात् शैव। **क्षोभयेत्**—शिवानन्द के अनुसार—वशीकरण करे। **शाक्तैः**—शक्ति अर्थात् त्रिपुरसुन्दरी-सम्बन्धित। **त्रिपुरीकृतविग्रहः**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—त्रिपुरारूपेण भावित शरीर। भास्कराचार्य आलोच्य श्लोक का अर्थ करते हैं—शैवायुधमन्त्र-साधना से नारियाँ वशीभूत होती हैं और शाक्तायुध साधनमन्त्र से पुरुष वशीभूत होते हैं।।६२-६३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

इदानीं संवननकर्मण्यायुधभेदेन विशेषमाह। संवननं तु द्विप्रकारम्—पुरुषपुरन्ध्रीभेदेन। तत्र प्रथमं पुरन्ध्रीसंवनने गुणविधिमाह—**मादनैरिति**। मादनैः मदनसम्बन्धिभिः। पाशाङ्कुशधनुश्शरैः। आयुधैरित्यध्याहार्यम्। क्षोभयेद् वशीकुर्यादित्यर्थः। सम्प्रति पुरुषवशीकरणे गुणविधिमाह—**तथैवेति**। शाक्तैः शक्तिसम्बन्धिभिः। पाशाङ्कुशधनुश्शरैरिति शेषः। त्रिपुरीकृतविग्रहः त्रिपुरारूपतया भावितशरीरः। साधयेद् वशीकुर्यादित्यर्थः।।६२-६३।।

* अर्थरत्नावली *

मादनैर्मदनो भूत्वेत्यारभ्य सिद्धविद्याधरानपीत्यन्तस्यायमर्थः—कुलपुरुषः पाशाङ्कुशधनुश्शरैरात्मानं कामेश्वरं ध्यात्वा स्त्रियः साधयेत्। यदा पुरुषाणां विक्षोभं वाञ्छति साधकस्तदा शाक्तैः पाशाङ्कुशधनुश्शरैर्महाकामकलारूपश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीविग्रहमात्मानं ध्यायेदित्यर्थः।।६२-६३।।

मादनैर्मदनो भूत्वेति। योषिद्व(य?श्य)प्रयोगे पौरुषैः पाशाङ्कुशधनुश्शरैः सहितमात्मानं कामेश्वरं ध्यात्वा प्रमदाः, तथा शाक्तैः पाशाङ्कुशैरन्विता कामेश्वरी परमेश्वरी भूत्वा पुङ्गवान् स्वाभिमतप्रयोगेण साधयेत्। पुरतः पूज्या इत्यर्थः।।६२-६३।।

* सेतुबन्धः *

अथ शिवशक्त्योरायुधबीजान्युद्दिधीर्षुस्तत्प्रभावं वर्णयति—मदनः शिवकामेश्वरः। तत्सम्बन्धिभिर्मादनैः। शक्तिस्त्रिपुरसुन्दरी तत्सम्बन्धिभिः शाक्तैः। शैवायुधमन्त्रसाधनात् स्त्रियो वश्या भवन्ति। शाक्तायुधमन्त्रसाधनात्पुरुषा इति भावः।।६२-६३।।

तत्र शाक्ता महावज्रप्रस्तारे जनिताः शराः ।
मादनास्त्वादिपरतः सर्वाधस्तान्नियोजिताः ।।६४।।

रुद्रयामल तन्त्र में शाक्त शर का महावज्रप्रस्तार नामक चक्र से उद्धार किया गया है तथा मादन अर्थात् शैवशर का भी वहीं से उद्धार किया गया है। आदि पश्चात् का इसी प्रकार उद्धार किया गया है अर्थात् पहले शक्तिशर का तदनन्तर शैव (मादन) शर का उद्धार हुआ है। सर्वमन्त्रोद्धार हो जाने पर यह सब शर नियोजित होते हैं।।६४।।

तत्र—वहाँ से। शिवानन्द अर्थ करते हैं—रुद्रयामल तन्त्र से। **महावज्रप्रस्तारजनिताः**—शिवानन्द के मत से अर्थ है—रुद्रयामल तन्त्र से मन्त्रोद्धार के उद्देश्य से महावज्रप्रस्तार नामक चक्र सम्पादित हुआ है, उससे। जनित अर्थात् समुद्धृत। भास्करराय महावज्रप्रस्तार का अर्थ करते हैं—इस नाम का तन्त्रविशेष। **शराः**—शिवानन्द ऋजुविमर्शिनी में शैव शर के बीज का उल्लेख करते हैं—द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः। शाक्तशर का बीज 'यां रां लां वां सां' है। **मादनाः**—शैव शर। **आदिपरतः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—आदि तथा पश्चात् अर्थात् प्रथमतः शाक्त शर अर्थात् शाक्त बाणबीज का उद्धार करे; तदनन्तर मादन अर्थात् शैव बाणबीज का उद्धार करे। भास्करराय अन्य अर्थ करते हैं। उनके मत से आदिपरतः पद का तात्पर्य है—आदि चतुःशती से परवर्त्ती जो चतुःशती है, उसमें सर्वान्त में शाक्तशर उद्धृत है। 'मादनाः' अर्थात् शैवशर के सम्बन्ध में कहा गया है, वह तन्त्रान्तर में उद्धृत है। वहाँ यह देख लेना होगा कि यह व्याख्या युक्तियुक्त है; क्योंकि देखा जाता है कि उत्तरतन्त्र के अर्थात् उत्तर चतुःशती के अन्त में शक्तिबाणबीज का उद्धार हुआ है। **सर्वाधस्तात्**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि सर्वमन्त्रोद्धार के अवसान-समय में। **नियोजिताः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—इस प्रकार के कार्य करने में नियोजित।।६४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

के शाक्ताः शराः के मादनाः शरा इति तदाह—**तत्रेति**। तत्र रुद्रयामलतन्त्रे, शाक्ताः शरा इति सम्बन्धः। महावज्रप्रस्तारजनिताः। मन्त्रोद्धारार्थं महावज्रप्रस्तारसंज्ञकं तत्र चक्रं मया सम्पादितमस्ति। तस्माज्जनिताः। तस्मादुद्धृता इत्यर्थः। मादना मदनदेवत्याः। शरा इत्यन्वयः। चशब्दः समुच्चये। शाक्तमादनशरोद्धारक्रममाह—**आदिपरत इति**। आदिपश्चाद्भावेन। आदौ शाक्ताः शराः समुद्धृताः, पश्चान्मादनाः शरा इत्यर्थः। ते शराः कस्मिन् समये समुद्धृता इति तत्राह—**सर्वाधस्तादिति**। सर्वमन्त्रोद्धारपर्यवसानसमय इत्यर्थः। नियोजिता इत्थं कार्यकरणे नियोजिताः। पदव्याख्यया वाक्यार्थोऽपि स्फुटीकृतः। उभयेषां शराणां बीजान्यतिरहस्यान्यप्युपासकानुग्रहात् कथयामः। द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति। यां रां लां वां सां इति।।६४।।

* अर्थरत्नावली *

तत्र शाक्ता महावज्रप्रस्तारजनिताः शरा इत्य(स्याः? स्यायमर्थः)—शाक्ताः शरा वज्र-

प्रस्तारोद्धृताः। यां रां लां वां सां इति। मादनास्त्वादिपरत इत्यादिना (स्त्वा?स्त्व)स्यादावन्ते च योज्याः। सर्वाधस्ताच्च चापादीनामादौ च योजयितव्या इत्यर्थः।।६२।।

* सेतुबन्धः *

महावज्रप्रस्तारनामा तन्त्रविशेषः। तस्मिंस्तन्त्रे, सर्वाधस्तात्सर्वमन्त्रोद्धारान्ते, आदिपरतः शाक्ता मदनाश्च शरा जनिताः। आदौ शक्तिबाणबीजान्युद्धृत्य पश्चाच्छिवबाणबीजान्युद्धृतानीत्यर्थ इति प्राञ्चो व्याचक्षते। वस्तुतस्तु प्रकृततन्त्र आदिचतुःशतीतः परा या चतुःशती तस्यां सर्वान्ते शाक्ताः शरा उद्धृता इत्यर्थः। उत्तरतन्त्रान्त उद्धरिष्यन्त इति यावत्। मादनास्तु तन्त्रान्तर उद्धृतास्तत्रैव द्रष्टव्या इति व्याख्यातुं युक्तम्। उत्तरतन्त्रान्ते शक्तिबाणबीजानामुद्धारदर्शनात्। तन्त्रान्तरे तदुद्धारो यथा—

थान्तद्वयं समालिख्य वह्निसंस्थं क्रमेण तु।
मुखवृत्तेन नेत्रेण बिन्दुनोपरिभूषितम्।।
बाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम्।
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यं नादरूपं वरानने।
फान्तं शक्रेण संयुक्तं वामकर्णविभूषितम्।।
बिन्दुनादसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमाः प्रिये।
पञ्च बाणानिमान्विद्धि नामानि शृणु पार्वति।।
क्षोभणो द्रावणो देवि तथाऽऽकर्षणसंज्ञकः।
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि।। इति।

अस्यार्थः—थान्तो दकारः, तद्द्वयं वह्निसंस्थं रेफारूढं कृत्वा, तयोराद्यं मुखवृत्तेनाऽऽकारेण द्वितीयं तु नेत्रेण वामनेत्रेण दीर्घेकारेण योजयित्वा, सबिन्दुकौ कुर्यात्। द्रां द्रीमिति सिद्धं बीजद्वयम्। मादनं ककारो भूमिसंस्थितं लकारारूढं तुर्यस्वरबिन्दुनादैर्युतं क्लीम्। फान्तं बकारः। शक्रेण लकारेण वामकर्णेन षष्ठस्वरेण बिन्दुनादाभ्यां च युक्तं ब्लूम्। चन्द्रमाः सकारः सर्गवान्विसर्गसहितः सः। एवं पञ्च बीजानि।।६४।।

आद्यन्तगो महापाशः पौरुषेयः प्रकीर्तितः।
रुद्रशक्तिः कुण्डलाख्या माया स्त्रीपाश उच्यते।।६५।।

आ अर्थात् आं पौरुषेय महापाश के नाम से कीर्त्तित है। कुण्डलाख्य रुद्रशक्ति मायाबीजरूपा है। वही स्त्रीपाश है।।६५।।

आद्यन्तगः—शिवानन्द के अनुसार आदि स्वर 'अ'। उसके अन्तग अर्थात् अनन्तर स्थित जो वर्ण है अर्थात् 'आ'। **महापाशः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—विश्ववशीकरण में प्रवीण। विद्यानन्द इसका अर्थ बतलाते हैं—कामेश्वरपाश। **पौरुषेयः**—पुरुष-सम्बन्धित। यहाँ कामेश्वर-सम्बन्धित। **रुद्रशक्तिः**—शिवशक्ति। **कुण्डलाख्या**—

शिवानन्द अर्थ करते हैं—कुल = कुण्डली। अतः अर्थ है—कुण्डली नामक। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं—कुल-कुण्डलिनीरूपा। **माया**—विद्यानन्द के अनुसार मायाबीजरूपा। मायाबीज है—ह्रीं। यही है—स्त्री-पाशमन्त्र। **स्त्रीपाशः**—विद्यानन्द के अनुसार कामेश्वरी पाश। श्लोक का अर्थ है—कामेश्वरी पाश मन्त्र तथा कामेश्वरी पाशमन्त्र है—ह्रीं।।६५।।

※ ऋजुविमर्शिनी ※

पुरुषपुरन्ध्रीपाशद्वयबीजमत्रोद्धरति—**आद्यन्तेति**। आद्यन्तग आदिस्वरानन्तरगतो योवर्णः, आकार इत्यर्थः। महापाशो विश्वशीकरणप्रवीणः। रुद्रशक्तिः। अनेन हकारो लक्ष्यते। कुण्डलाख्या। कुण्डलशब्देन कुण्डली लक्ष्यते। तत्पुनः सरीसृपाभिधवह्निबीजं लक्षयति। कुण्डलीत्याख्या यस्य स रेफः। मायाशब्देन पुनरीकारो लक्ष्यते। सामर्थ्याद्धकाररेफमायारूपं भुवनेश्वरीबीजम्। स्त्रीपाश इत्यर्थः। बिन्दुरपि सामर्थ्यादितयोर्बीजयोरायात इति बोद्धव्यम्। आं ह्रीं इति।।६५।।

※ अर्थरत्नावली ※

आद्यन्तगो महापाशः पौरुषेयः प्रकीर्तित इत्यस्यायमर्थः—आद्यन्तग आदिस्वरस्यान्तगः समनन्तरस्थितो द्वितीयः स्वरः कामेश्वरपाश इत्यर्थः। रुद्रशक्तिः कुण्डलाख्या माया स्त्रीपाश उच्यत इत्यस्यायमर्थः—कुलकुण्डलीरूपा रुद्रशक्तिर्मायाबीजरूपा कामेश्वरीपाशमन्त्रः।।६३।।

आद्यन्तगः प्रथमदीर्घः। कुलशक्तिः कुण्डलिनी मायेति हल्लेखापर्याया:।।६३।।

※ सेतुबन्धः ※

शिवशक्त्योः पाशबीजे उद्धरति—आदिर्मातृकाप्रथमोऽकारः, तस्यान्तग आकारः, पौरुषेयः पुरुषसम्बन्धी महापाशः। बिन्दुयोगप्राप्तिस्तु पूर्वमेवोक्ता न विस्मर्तव्या। रुद्रः शिव एव शक्तिः सामर्थ्यं यस्य स हकार इति केचित्। रुद्रे शक्तिर्यस्य वर्णस्य स रुद्रवाचको हकार इति युक्तम्। कुण्डलवान्कुण्डलः। मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः। तेन कुण्डली सर्प इत्यर्थः। तस्याख्या यस्य तादृशो भुजङ्गेशो रेफः। श्रीकण्ठादिन्यासे हि रेफस्थाने भुजङ्गेशो न्यस्यते। तेन कुण्डलाख्यशब्देन रेफो गृह्यते। माया ईकारः। तेन भुवनेश्वरीबीजमेव स्त्रीपाश इत्यर्थ इति प्राञ्चः। वस्तुतस्तु—मायापदेनैव सम्पूर्णबीजस्य लाभसम्भवान्नेयं कुसृष्टिर्युक्ता। कुण्डलाख्येतिस्त्रीलिङ्गानुपपत्तिश्च स्यात्। अतो रुद्रस्यैवापरा शक्तिः कुण्डलिनीत्युच्यते। तदभिन्नेति मायायाः स्तुतिः। अथवा कुण्डलं दूरीकरणम्। संहार इति यावत्। विषमा कुण्डलनामिवापिता। तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपीति प्रयोगात्। तेन शिवनिष्ठा संहाराख्या शक्तिरित्यर्थः। हञ् हरण इति धातोरेव ह्रींबीजनिष्पत्तेरिति।।६५।।

तुरीयमरुणावर्गे द्वितीयमपि पार्वति।
पुंस्त्रीकोदण्डयुगलं कामोऽग्निर्व्यापकोऽङ्कुशः ।।६६।।

हे पार्वति! तवर्ग का चतुर्थ वर्ण 'ध', अर्थात् 'धं' एवं द्वितीय वर्ण 'थ' अर्थात् 'थं' यथाक्रमेण कामेश्वर तथा कामेश्वरी का धनु है और 'क्रों' दोनों का अंकुश बीज है।।६६।।

पुंस्त्रीकोदण्डयुगलं—पुं अर्थात् कामेश्वर (शिव) तथा स्त्री अर्थात् कामेश्वरी अथवा शक्ति, इनके दो धनु। **कामोऽग्निर्व्यापक:**—काम: = क। अग्नि: = रेफ। व्यापक: = ओ। सब मिलाकर होता है—क्रो। उसके साथ सम्प्रदायानुसार बिन्दुयुक्त होने से होता है—क्रों। यह कामेश्वर तथा कामेश्वरी का अंकुशबीज है।।६६।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

पुंस्त्रीकोदण्डबीजद्वयमङ्कुशबीजं चोद्धरति—**तुरीयमिति**। अरुणावर्गस्तवर्ग:। तुरीयबीजं धकार:। द्वितीयं थकार:। अनयोरपि बीजयो: सामर्थ्यप्राप्तो बिन्दु:। धं थं इति। काम: ककार:। अग्नी रेफ:। व्यापक ओकार:। अत्राप्याय(ति)तोऽनुस्वार:। क्रोमिति। **अङ्कुश इति।** सामान्यवचनादमुकस्येति निर्देशाभावाद् द्वयोक्तिप्रकरणाच्चायमेव मिथुनस्याङ्कुश:।।६६।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

तुरीयमरुणावर्गादित्यारभ्य व्यापकोऽङ्कुश इत्यन्तश्लोकपदानां व्याख्या लिख्यते—अरुणावर्गस्तवर्गस्तच्चतुर्थमक्षरं कामेश्वरं धनुस्तस्य द्वितीयं कामेश्वरीधनु:। काम: ककार:। अग्निरिति रेफ:। व्यापक ओकार:। एभिरक्षरै: सम्पाद्यमानं बीजं कामेश्वराङ्कुशं भवति। एतस्यैव व्यापकाक्षर(स्य) स्थाने ओकारमुद्रास्य औंकारप्रक्षेपादेव बीजं कामेश्वर्यङ्कुशं भवति।।६६।।

द्वितीयमित्यादि। अरुणावर्ग: पञ्चमो वाग्देवतावर्ग:। कामोऽग्निर्व्यापक:। कामो विसर्गान्त:। अग्नि: रेफ:। व्यापकौ त्रयोदशचतुर्दशस्वरौ। कामाग्निना पृथग् योजितौ पौरुषशाक्ताङ्कुशबीजौ भवत:।।६६।।

❊ सेतुबन्ध: ❊

चापाङ्कुशावुद्धरति—वशिन्याद्यष्टकेऽरुणावर्गस्तवर्ग:। तत्र चतुर्थमक्षरं धं शिवधनु:। द्वितीयं थं शक्तिधनु:। काम: ककार:। अग्नी रेफ:। व्यापकस्त्रयोदशस्वर:, सम्प्रदायाद्बिन्दुश्चेत्यर्थ इति प्राञ्च:। अत्र व्यापकशब्दस्य त्रयोदशस्वरबोधकत्वे कोशो मृग्य:। वस्तुतस्तु—प्रणवाधिकारे सर्वबीजोत्पादकं चेति नन्दनीयमातृकाकोशदर्शनात् प्रणव एवेह सर्वोत्पादकत्वाद्व्यापकशब्देन परामृश्यते। तेन बिन्द्वर्थं सम्प्रदायोऽपि न प्रार्थनीय इति। एकमेव चेदमङ्कुशबीजं स्त्रीपुंसयोरुभयोरपि विशेषानुक्तेरिति प्रामाणिका:, तेन षष्ठस्वरत्रयोदशस्वरभेदेनात्रापि द्वैविध्यं वदन् विद्यानन्दनाथ: किंमूलक इति विचार्यम्।।६६।।

मुद्रा यास्त्रिपुरायास्तु देवि सिद्ध्यष्टकान्विता: ।
ता एव सर्वचक्रेषु पूजाकाले प्रदर्शयेत् ।।६७।।

हे देवि! त्रिपुरा की सिद्धाष्टकान्विता जो मुद्रायें हैं, उनका पूजा-काल में सर्वचक्रों में प्रदर्शन करना होगा।।६७।।

मुद्रा यास्त्रिपुराया:—त्रिपुरा की सर्वमुद्रा। यथा—संक्षोभणमुद्रा, द्रावणमुद्रा, आकर्षण मुद्रा, वश्य मुद्रा, उन्मादन मुद्रा, महाङ्कुश मुद्रा, खेचरी मुद्रा, बीज मुद्रा तथा योनि मुद्रा। **सिद्धाष्टकान्विता:**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अणिमादि महाविभूतियुक्ता। महाविभूति

= सिद्धि अथवा ऐश्वर्य। भास्करराय भी अष्टसिद्धि की बात कहते हैं। विद्यानन्द आलोच्य पद की व्याख्या में कहते हैं कि सिद्धि अर्थात् अणिमादि १० सिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति तथा सर्वकामा। तथा अष्ट अर्थात् अष्टमातृका। यथा—ब्रह्मार्णा, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी।।६७।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

पूर्वं मुद्राप्रदर्शनमात्रं प्रसक्तम्, इदानीं मुद्राप्रदर्शने गुणविधिमाह—**मुद्रा इति।** क्षोभिण्याद्याः पूर्वोक्ता याः त्रिपुरायाः सम्बन्धिन्यः। सिद्ध्यष्टकान्विता अणिमादिमहाविभूतियुक्ताः। एवकारो भिन्नक्रमः, पूजाकाल एवेति। सर्वचक्रेषु त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयान्तेषु। पूजाकाले प्रदर्शयेदिति। नान्यस्मिन् काल इत्यर्थः।।६७।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

मुद्रा यास्त्रिपुरायास्त्वित्यारभ्य पूजाकाले प्रपूजयेदित्यन्तस्यायमर्थः—(हे) देवि! त्रिपुराया मुद्रा या अत्रैव प्रदर्शितास्ताः सृष्टिस्थितिसंहारात्मकचक्रत्रितयेऽपि पूजाकाले यथानुक्रमेण सिद्ध्यष्टकानन्तरं प्रपूजनीया इत्यर्थः। सिद्धयोऽणिमादयः, अष्टका ब्रह्माण्यादयः।।६७।।

मुद्रा या इत्यादि। मुद्राः प्रागुक्ता अपि स्वस्वनाममन्त्रैरणिमादिदशकब्राह्म्याद्यष्टकारणद्वयानन्तरं पूज्याः सर्वचक्रेषु आह्वानविनियोजितां त्रिखण्डां विना नवमुद्रा दर्शयेदित्यर्थः। द्वयं प्रयोजयेदिति पदं सूचयति।।६७।।

❊ सेतुबन्धः ❊

अथाऽऽयुधबीजवन्मुद्राणामपि बीजानि कुतो नोद्धृतानीत्याशङ्क्याऽऽह—त्रिपुरासम्बन्धिन्यो या मुद्रास्ताः स्वरूपेणैव सिद्ध्यष्टकप्रदा न पुनर्मन्त्रसाधनादिसापेक्षतया। अतः पूजाकाले प्रतिचक्रं ता एव प्रदर्शयेत्। एवकारेण मन्त्रानावश्यकत्वध्वननादमन्त्रकमेव प्रदर्शयेदित्यर्थः। केचित् तु—मुद्राप्रदर्शनविधिमात्रमेतदिति व्याचक्षाणा मन्त्राहित्यसाहित्ययोरुदासीन एवायं श्लोक इति मन्यन्ते। परे तु सिद्धयोऽणिमादिदशकम्। अष्टकं ब्राह्म्याद्यष्टकम्। आभ्यामन्विता इत्यनेन तत्पूजनोत्तरकाल उच्यते। प्रपूजयेदित्येव तु पाठः। तेन कालविशिष्टमुद्रापूजाविधिरेवायमित्याहुः। परं तु प्रकृतपटले मन्त्रसाधनकथनप्रकरणे मुद्रादर्शनपूजन-विध्योरसंगतत्वस्य कः परिहार इति विचार्यम्। सिद्ध्यष्टकान्विता इत्यनेन कालबोधनं क्लिष्टं च। प्रथमपटलान्ते मुद्राप्रदर्शनस्याष्टमपटलान्ते तत्पूजनस्य च कथनात्पुनरुक्तं च।।६७।।

अतः प्रधानविद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरी।
नैतस्याः सदृशी काचिद् विद्या देवेशि विद्यते ।।६८।।

हे देवेशि! यह परमेश्वरी त्रिपुरा प्रधाना महाविद्या हैं। इनके तुल्य कोई विद्या नहीं है।।६८।।

प्रधानविद्या—शिवानन्द अर्थ करते हैं—समस्त विद्याओं में प्रधान। भास्करराय अर्थ करते हैं—सब विद्याओं में प्रधाना। **नैतस्याः सदृशी विद्या**—विद्यानन्द के मत से अर्थ है कि ये सभी विद्याओं तथा मन्त्रों की जननी हैं, उत्पत्तिस्थल हैं; तभी इनके बराबर कोई विद्या नहीं है।।६८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

प्रतिपादितक्रमेणैवंविशिष्टेयं त्रिपुरा विद्येति यतः—**अत इति।** प्रधानविद्या सर्वासां विद्यानां मध्ये। इयं या मया तव हृदयङ्गमतां नीता। त्रिपुरा पराभट्टारिका। परमेश्वरीत्यामन्त्रणम्। एतस्याः सर्वविद्याप्रसवभूमेरित्यर्थः।।६८।।

* अर्थरत्नावली *

अतः प्रधानविद्येयं त्रिपुरा परमेश्वरीति। इयं महात्रिपुरसुन्दरी विद्या आत्मविद्यानां प्रत्यङ्गद्वयज्ञप्तिकर्तृस्वभावलक्षणस्य परमशि(वे?वस्ये)च्छात्मकत्वात् प्राधान्येन स्वरूपभूतेत्यर्थः। सन्त्वन्या अपि विद्याः स्वरूपभूताः शिवस्य, किन्त्वियं तासामप्याधारभूता। अतोऽस्याः प्राधान्यमुच्यत इत्यर्थः। **नैतस्याः सदृशी काचिद् विद्या देवेशि विद्यत इति।** यत इयं समस्तमन्त्राणां विद्यानां च प्रसवभूः परमशिवात्मचिच्छक्तिरूपा, अत एव कारणादेतस्या महात्रिपुरसुन्दर्या विद्यायाः सदृशी अन्या काचिद्विद्या न विद्यत इति यावत्।।६८।।

अतः प्रधानविद्येयमित्यादि। इयं महात्रिपुरसुन्दरी साधकान्तर्महाविद्याऽध्यात्मविद्यानामपि प्रधानविद्या भविष्यति। किञ्च, अन्तरङ्गबहिरङ्गभावेन ज्ञाप्तिकर्तृस्वभाव(स्यादु?स्यो)न्मेषभूतेच्छाशक्तिमयी विद्याऽन्तरङ्गतया प्रधाना भूत्वाऽन्यासाम(पि) विद्यानामाधारभूता भवतीत्यत एव कारणाद् एतस्याः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीविद्यायाः सदृशी काचिदन्या विद्या न विद्यते॥६८॥

* सेतुबन्धः *

ननु करशुद्ध्यादिविद्यानां साधनादिप्रकारस्तन्त्रान्तर इवेहापि कुतो न वर्ण्यत इत्यत आह—अत इति निर्धारणषष्ठ्यास्तसिः। एतत्तन्त्र उद्धृतानामासां विद्यानां मध्य इयं त्रिपुरा प्रधानविद्या। अन्या अङ्गभूताः। तेन प्रधानविद्योपास्ति-प्रकरणेऽङ्गविद्योपास्तिकथनस्यासंगतत्वापत्तेस्ता इह न वर्णिता इति भावः। न केवलमियमास्वेव प्रधाना, अपि तु सर्वमन्त्रेष्वपीत्याह—**नैतस्या इति**।।६८।।

त्रिपुराविद्यामाहात्म्यम्

एतामेव पुराऽऽराध्य विद्यां त्रैलोक्यमोहिनीम्।
त्रैलोक्यमोहनं रूपमकार्षीद् भगवान् हरिः ॥६९॥
कामदेवोऽपि देवेशि महात्रिपुरसुन्दरीम्।
समाराध्याभवल्लोके सर्वसौभाग्यसुन्दरः ॥७०॥

पूर्वकाल में त्रैलोक्यमोहनकारिणी विद्या की आराधना द्वारा भगवान् हरि ने त्रैलोक्यमोहन

रूप धारण किया था। हे देवेशि! कामदेव भी त्रिपुरसुन्दरी की आराधना करके त्रिलोकी में सर्वसौभाग्यसुन्दर हो सके थे।।६९-७०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

नारायणकामदेवावप्येतद्विद्याबलेनैव सर्वलोकसुभगावित्याह—**एतामिति द्वयेन**।

* अर्थरत्नावली *

एतामेवेत्यारभ्य तदेतत्पदसिद्धय इत्यन्तश्लोकसमुदायेनास्या विद्याया दिव्यगुरुपरम्परागत(ता)मुपदिशति परमशिव इति भावः।।६९-७०।।

एनामेवेत्यादिग्रन्थेन पारम्पर्यापेक्षां सिद्धिं सूचयति।।६९-७०।।

* सेतुबन्धः *

अत एव हरिस्मरयोरेतदुपास्तिकृतमेव मोहिनीरूपधारणकर्तृत्वादिरूपं माहात्म्यं ब्रह्माण्डपुराणकालिकापुराणयोः क्रमेण स्मर्यत इत्याह—एतच्छ्लोकद्वयविवरणपर एव भगवत्पादैः सौन्दर्यलहर्याम्—'हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीम्' इति श्लोक उक्तः। उक्तं च ज्ञानार्णवे—

एतामाराध्य देवेशि कामः सौभाग्यसुन्दरः।
हरिश्च परमेशानि त्रिपुराराधनात् प्रिये।
त्रैलोक्यमोहनो भूत्वा स्थितिकर्ताऽभवत्सदा।
एतत्समाराधनात्तु ब्रह्मा सृष्टिकरोऽभवत्।
चन्द्रसूर्यौ वरारोहे सृष्टिसंहारकारकौ।। इति।

मयाऽप्येतद्व्रतस्थेन क्रियतेऽद्यापि सुव्रते।
जप्यं त्रिसन्ध्यमेतस्यास्तदेतत्पदसिद्धये ।।७१।।

हे सुव्रते! इसी व्रत में स्थित मैं इस पद की प्राप्ति के लिये इसी विद्या का जप करता हूँ।।७१।।

मयाऽपि—मैं भी। भास्करराय अर्थ करते हैं—कर्मपाशमुक्त मैं अर्थात् शिव भी। **एतद् व्रतस्थेन**—शिवानन्द अर्थ करते हैं कि इस विद्याभजनोपाय पदवी प्रविष्ट—उसके द्वारा। भास्करराय अर्थ करते हैं प्रत्यक्ष परिदृश्यमान स्नानादि नियमयुक्त, उसके द्वारा। **त्रिसन्ध्यां**—भास्करराय अर्थ करते हैं—सन्ध्यावन्दन नामक कर्मत्रयकाल में। **तदेतत् पदसिद्धये**—भास्करराय के मत से तद् अर्थात् ब्रह्मरूप। एतत् पदं = शिवाभिन्न स्थान। सिद्धये = प्राप्ति के लिये। अर्थ होता है—ब्रह्मरूप। एतत् पद अर्थात् शिवाभिन्न स्थानप्राप्ति के लिये। भास्करराय आलोच्य श्लोक के तात्पर्य की व्याख्या में कहते हैं कि जब स्वयं कर्म-पाश से विमुक्त शिव भी जपयुक्त सन्ध्यावन्दनादि कर्म करते हैं तब कर्मपाशबद्ध लोगों को ऐसा व्रत ग्रहण करना तथा सन्ध्यावन्दनादि कर्म यावत् जीवन करना चाहिये।।७१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

किमितरैर्देवैः, मयाप्येतद्भजनं सदा क्रियत इत्याह—**मयाऽपीति**। एतद्व्रतस्थेन एतद्विद्याभजनोपायपदवीप्रविष्टेन। एतस्या विद्यायाः। तदेतत् कर्म। किमिति क्रियत इत्याह—**पदसिद्धय इति**। अयमर्थः—ईश्वराणामप्यैश्वर्यमनुष्ठानात्मना पौरुषेणैव सिद्ध्यतीति। यच्छ्रुतिः—'विष्णुर्वा अकामयत पुण्यश्लोकं शृण्वीय' (तै० ब्रा० ३.१.५.७), 'रुद्रो वा अकामयत पशुमान् स्याम्' (तै० ब्रा० ३.१.४.४) इति, 'ब्रह्मा वा अकामयत ब्रह्मलोकमभिजयेयम्' (तै० ब्रा० ३.१.५.६) इति।।७१।।

* सेतुबन्धः *

एतस्या विद्याया अत्युत्तमत्वादेवात्युत्तमोऽप्यहमस्या उपासकोऽस्मीत्याह—त्रिसन्ध्यं सन्ध्यावन्दनाख्यकर्मत्रयकाले। एतद्व्रतस्थेन प्रत्यक्षपरिदृश्यमानस्नानादिनियमयुक्तेन मयाऽपि कर्मपाशविनिर्मुक्तेनापि लोकसंग्रहार्थं जप्यं क्रियतेऽतोऽन्येन कर्मपाशबद्धेन लोकेनेदृशव्रतग्रहणपूर्वकं सन्ध्यावन्दनादिकर्माणि जपविशिष्टानि यावज्जीवं कर्तव्यानि। तद् ब्रह्मरूपं यदेतत्पदं मदभिन्नं स्थानं तस्य सिद्धये प्राप्त्यर्थम्। अस्मिंस्तन्त्रेऽयमेव स्नानसन्ध्यादिकर्मविधिः। तदितिकर्तव्यता तु कल्पसूत्राद् ग्राह्येत्युक्तं प्राक्।।७१।।

फलसहितचक्रराजस्यार्चनभेदाः

मध्यप्रपूजनाद्देवि वाक्पतिर्जायते नरः।
तथैवापरकन्दर्पो बाह्यमध्यान्तपूजनात्।।७२।।
सर्वेण सर्वदा सर्वदेवीयुक्तेन पार्वति।
साधयेत्खेचरीं सिद्धिमणिमादिगुणान्विताम्।।७३।।

इति श्रीनित्याषोडशिकार्णवस्य चतुर्थः पटलः

हे देवि! मध्यपूजा के फल से पूजाकारी व्यक्ति वाक्पति होता है। जैसे वह बाह्य मध्यान्त पूजा से द्वितीय कन्दर्प हो जाता है। हे पार्वति! सर्वदेवीयुक्त पूर्ण चक्र द्वारा सर्वदा साधक अणिमादि गुणान्विता खेचरीसिद्धि की साधना करे।।७२-७३।।

मध्यप्रपूजनात्—शिवानन्द अर्थ करते हैं—महाचक्र के मध्यस्थान में अर्थात् मध्य त्रिकोण में। भास्करराय अर्थ करते हैं—नवयोनि चक्र में। **बाह्यमध्यान्तपूजनात्**—शिवानन्द बाह्य का अर्थ करते है। अष्टकोण (अष्टार) और मध्य शब्द का अर्थ करते हैं—अन्तस्थ अर्थात् मध्यत्रिकोण। वे 'मध्यान्तरार्चनात्' का अर्थ करते हैं—तत्तत् स्थानान्तर अर्चना के फल से। भास्करराय बाह्य-मध्य पद का अर्थ करते हैं—चतुर्दशार से विन्दुपर्यन्त। वे कहते हैं कि यहाँ अन्त शब्द अबाधसूचक है। बाह्य से मध्यपर्यन्त—यही है इसका सहज अर्थ। **सर्वेण**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—पूर्णचक्र, उसके द्वारा। लक्षणीय आलोच्य श्लोक में मध्यचक्रपूजा, बाह्य मध्यचक्र पूजा तथा सर्वचक्रपूजा

अथवा पूर्णचक्रपूजारूप त्रिविधपूजा एवं उसके त्रिविध फल की बातें कही गयी हैं। **सर्वदा**—शिवानन्द अर्थ करते हैं सब पूजाकाल में। **सर्वदेवीयुक्तेन**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—अणिमादि सिद्धि इत्यादि महादेवतान्त शक्तिचक्रयुक्त। **अणिमादिगुणान्विताम्**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—महाविभूतियुक्ता।।७२-७३।।

श्री नित्याषोडशिकार्णव का चतुर्थ पटल समाप्त

॥ ऋजुविमर्शिनी ॥

पूजायां चक्रविकल्पमाह—**मध्येति द्वयेन।** मध्यप्रपूजनाद् महाचक्रमध्यत्र्यश्रार्चनात्। **वाक्पतिर्जायतेऽपर इति।** अपरो वाचस्पतिर्जायते। पूजक इति शेषः। **बाह्यमध्यान्तरार्चनादिति।** बाह्यशब्देनाष्टारमुच्यते। मध्यशब्देनान्तस्थत्र्यश्रमुच्यते। तत्तत्स्थानान्तरार्चनादिति। अयमर्थः—अष्टारे वशिन्याद्यष्टकं मध्यत्र्यश्रे तत्तदेवतार्चनमिति। सर्वेण पूर्णचक्रेण। सर्वदा सर्वस्मिन्नपि पूजाकाल इत्यर्थः। सर्वदेवीयुक्तेन अणिमादिसिद्ध्यादिमहादेवतान्तशक्तिचक्रोपेतेन। अणिमादिगुणान्विताम् अणिमादिमहाविभूत्यष्टकोपेतामिति शिवम्।।७२-७३।।

एवमृजुविमर्शिन्यां नित्याषोडशिकार्णवे ।
शिवानन्दपरामृष्टश्चतुर्थः पटलो गतः ।।

॥ अर्थरत्नावली ॥

मध्यप्रपूजनादित्यारभ्य अणिमादिगुणान्वितामित्यन्तश्लोकसमुदायः चक्रत्रयस्य पृथक्-पृथक् फलवचनः स्पष्टार्थः।।७०-७१।।

इति श्रीविद्यानन्दविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थरत्नावल्यां
प्रत्येकबीजसाधनविधिश्चतुर्थः पटलः

मध्यप्रपूजनादित्यादिना श्रीपूजाचक्रस्य तत्त्वनिर्णयित्रैकस्य पूजाफलं पृथक्-पृथक् स्पष्टमेव निर्दिष्टमिति।।७०-७१।।

इति श्रीविद्यानन्दनाथविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थ-
रत्नावल्यां चतुर्थः पटलः

॥ सेतुबन्धः ॥

इदानीं चक्रराजस्यार्चनभेदान् फलसहितानाह। तन्त्रराजे हि पूजाभेदः पञ्चविध उक्तः—

पूजाविशेषान् देवेशि शृणु नित्यक्रमोदितान्।
अशक्तानां तु विस्तारे तथाऽऽपत्सु च शस्यते।।
अन्यथाऽनर्थकारि स्यात् संकोचार्चनमीश्वरि।
हेतिभिर्मध्यमाद्यं स्याद् द्वितीयं नवयोनिषु।।
चतुर्दशारान्मध्यान्ता चतुर्थं प्रोक्तरूपतः।।
पञ्चमं सर्वदुःखार्तिनाशनं वाञ्छितप्रदम्।
तत्प्रकारं तु देवेशि कुरुकुल्लार्चने शृणु।।
इति पञ्चप्रकाराऽर्चा प्रोक्ता सर्वार्थसिद्धिदा।। इति।

१. आयुधादिविन्द्वन्ता, २. वशिन्यादिबिन्द्वन्ता, ३. चतुर्दशारादिविन्द्वन्ता, ४. भूगृहादिविन्द्वन्ता चेति चतुर्विधा पूजा। पञ्चमी पूजा तु कुरुकुल्लापटले वक्ष्यते। सा च भूगृहाष्टदलनवयोनिपूजारूपा। आस्वेका सम्पूर्णैव। अन्याश्चतस्रः संक्षिप्ताः। विस्तृतपूजासमर्थस्य संक्षिप्तार्चनेन न फलं प्रत्युतानर्थायेति समुदायार्थः। एवं सति मूले विधीयमाने मध्यचक्रार्चनवाह्यमध्यार्चनसर्वार्चनभेदेन त्रैविध्ये मध्यार्चन-पदेनाऽऽयुधार्चनं नवयोन्यर्चनं वा प्रतिपाद्यत इति व्याख्यातुं युक्तम्। तेन यद् ऋजुविमर्शिन्याम् उक्तं त्रिकोणबिन्दुगतदेवताचतुष्टयमात्रपूजनमेव मध्यपदेनोच्यत इति तन्मानाभावादनादेयम्। वस्तुतस्तु षष्ठे पटले (श्लो. १३)—

नवयोन्यात्मकमिदं चिदानन्दघनं महत्।
चक्रं नवात्मकमिदं नवधाभिन्नमन्त्रकम्।।

इति वचनेन नवयोनिचक्रमात्रस्यैव त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयान्तचक्रात्मकताया वक्ष्यमाणत्वादिहत्यमध्यपदेन नवयोन्यात्मकं चक्रमेव ग्राह्यम्। एवं बाह्यमध्यार्चनपदेन मन्वस्रादिबिन्द्वन्तपूजा विवक्षिता। मध्यपदेन नवयोनिरूपसंहारचक्रस्य बाह्यपदेन तद्बहिःस्थितस्थितिचक्रस्य चोपादातुं युक्तत्वात्।

त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्।
दशारयोः षोडशारं भूगृहं भुवनास्रके।।

इति वचनानुगुण्येनास्यैव सर्वचक्रत्वेन पूर्वं व्यवहृतत्वाच्च। तेन यत् सुन्दरीमहोदयकारेण उक्तम्—वाह्यमध्यगतपदेन स्थितिचक्रमात्रमुच्यत इति, यदपि (अर्थ)रत्नावल्याम् उक्तं षोडशाराद्यन्तर्दशारान्तविहितं चक्रं मध्यपदेनोच्यते, षोडशदलाष्टदलपद्ममात्रविनिर्मुक्तं तु बाह्यमध्यगतपदेनोच्यत इति, तदुभयमपि परास्तम्। षष्ठे पटले वक्ष्यमाणस्य चक्रत्रैविध्यस्याज्ञानेनैवेदृशोक्तेः। तस्य पदस्य तावन्मात्रे रूढौ स्वेनापि प्रमाणान्तरस्यालेखनाच्च। प्रथमपक्षे प्रधानदेवतापूजानापत्तेश्च। मध्यान्तेत्यत्रान्तपदमवध्यर्थकम्। बाह्यान्मध्यपर्यन्तमित्यर्थः। सर्वदेवीयुक्तेन अणिमादिशक्तियुक्तेन। स्पष्टमन्यत्। ज्ञानार्णवेऽपि त्रैविध्यमेवोक्तम्—

चक्रं समर्चयेद् देवि सकलं नियतव्रतः।
बाह्यमध्यगतं वाऽपि मध्यं वा चक्रमर्चयेत्।। इति।

अत्राऽऽदौ नवाऽऽवरणानि मुख्यानि। तदभावे मन्वस्रादिषडावरणानि। तदयोगे त्रीण्यावरणानि पूजयेदित्यर्थः। इदं च संक्षिप्तार्चनद्वयं प्रथमपटलान्त एव संगतमपि नोक्तम्। तत्रोक्तौ हि चक्रसाधनादिष्वपि तदुत्तरं कथ्यमानत्वादर्चन आवरणविकल्पः प्राप्यते। अतो मुख्यपक्ष एव चक्रसाधनादिषु यथा स्यादित्येवमर्थ तावन्मात्रस्यैव तत्रोक्तौ मुख्यार्चनसापेक्षेषु कर्मसामान्येषु गौणार्चनकथनस्यावसर इत्याशयेनात्रैवार्चनविभागः कृत इति सर्वं शिवम्।।७२-७३।।

इति श्रीभास्करोन्नीते नित्याषोडशिकाम्बुधेः ।
व्याख्याने सेतुबन्धाख्ये विश्रामोऽभूच्चतुर्थकः ।।४।।

श्रीगुरुचरणारविन्दमिलिन्दोऽहम्।।श्रीः।।

अथ पञ्चमो विश्रामः

जपहोमविषयकं विधानम्

श्रीदेव्युवाच

सर्वमेतत्त्वया प्रोक्तं त्रिपुराज्ञानमुत्तमम् ।
कामतत्त्वविधिज्ञानं मोक्षतत्त्वपदावधि ।।१।।
इदानीं जपहोमानां विधानं वद शङ्कर ।
येनानुष्ठितमात्रेण मन्दभाग्योऽपि सिध्यति ।।२।।

श्रीदेवी कहती हैं—मोक्षतत्त्व-सम्बन्धित, कामतत्त्वविधि ज्ञान, यह सब त्रिपुराविषयक ज्ञान आपने बताया। हे शंकर! अब जप तथा होम का विधान कहिये, जिसके द्वारा मन्दभाग्य को भी सिद्धि मिल जाती है।।१-२।।

त्रिपुराज्ञानं—त्रिपुराविषयक ज्ञान। **कामतत्त्वविधिज्ञानं**—शिवानन्द अर्थ करते हैं—कामतत्त्व प्रकार-सम्बन्धित ज्ञान। विद्यानन्द इसका अर्थ करते हैं कि कामः अर्थात् परमशिव उनका तत्त्व अर्थात् विमर्शरूप परमेश्वरीस्वरूप। इसे कामकला कहते हैं। विधि का अर्थ है—सकल निष्कल भाव का विनियोग प्रकार। ज्ञानं अर्थात् उसकी अवगति। विद्यानन्द आलोच्य पद का अर्थ करते हैं—कामराज बीज-साधन अथवा उसके द्वारा वशीकरणादिकरण। भास्करराय उक्त पद का अर्थ करते हुये कहते हैं कि कामः अर्थात् परशिव। उनका तत्त्व अर्थात् वास्तविक स्वरूप। उसकी विधि अर्थात् प्रकार। उसका ज्ञानं अर्थात् उससे उपपत्तियुक्त यह ज्ञान। अथवा काम है त्रिवर्ग का उपलक्षण, इससे अर्थ है— त्रिवर्ग का प्रकार-ज्ञान।

मोक्षतत्त्वपदावधि—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—मोक्ष का तत्त्व अर्थात् मोक्ष का भाव, उसका पद। जब मोक्षभाव पद मोक्षस्वभाव में पर्यवसित हो जाता है, तब उसे कामतत्त्व-विज्ञान कहते हैं। भास्करराय अर्थ करते हैं कि मोक्षात्मक तत्त्व है मोक्षतत्त्व। उसका भाव अर्थात् ब्रह्मभाव। इनके मत से प्रथम श्लोक में शिवकर्तृक चतुर्विध पुरुषार्थसाधन का वर्णन है। **विधानं**—शिवानन्द के अनुसार इसका अर्थ है—प्रकार। **मन्दभाग्यः**—शिवानन्द इसका अर्थ करते हैं—अकिंचन। भास्करराय के मत से दैवहीन। **सिध्यति**—इस पद की व्याख्या में शिवानन्द का कथन है कि साधक परभैरव देवतावत् इसी देह में समस्त विभूतियों को प्राप्त करता। भास्करराय अर्थ करते हैं कि साधक को मन्त्रसिद्धि हो जाती है।।१-२।।

* ऋजुविमर्शिनी *

एवं चतुर्थं पटलं परामृश्य त्रयस्त्रिंशत्सूत्रग्रथिते पञ्चमे पटले विमर्शनीयानि पदानि विमृश्यन्ते। तच्च होमार्चनादिपरम्। तैः समाराधिता देवाः प्रसीदन्तीत्यस्मिन्नर्थे व्यासमुनिः—

जप-होमनमस्कारैः स्तोत्रैश्च पुरुषर्षभ।
दैवतानि प्रसादं हि भक्त्या कुर्वन्ति भारत।। इति।
(म० भा० ३.१५०.२४)

श्रीदेवीत्यादि। त्रिपुराज्ञानम्। त्रिपुरायाः पराशक्तेः सम्बन्धि यद् ज्ञानं तत् त्रिपुराज्ञानम्। कामतत्त्वविधिज्ञानं कामतत्त्वप्रकारानुबन्धिज्ञानम्। स च शक्त्युन्मेषविशेष एव। कामतत्त्वविषज्ञानमिति पाठे कामः कामबीजम्। तत्त्वमित्यत्र तदा प्रकृतिभूतेनाहमित्यन्तरुल्लेखाविमर्शस्वभावं ज्ञानम्, स्वरूपे भावप्रत्ययः, तेन वाग्भवबीजं लक्ष्यते। विषशब्देन व्याप्तिवाचिनाऽमृतम्। तेन कामराजवाग्भवशक्तिबीजानां ज्ञानमिति यावत्। **मोक्षतत्त्वपदावधि।** मोक्षस्य तत्त्वं मोक्षस्य भावः, तदेव पदं पद्यत इति, तदवधि। तद्धि यदा मोक्षस्वभावे पर्यवस्यति तदा कामतत्त्वविधिज्ञानं प्रोक्तमिति पूर्वेण सम्बन्धः। तदुक्तं श्रीपरमार्थसारे—

मोक्षस्य नैव किञ्चिद्धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः।। (६०) इति।

विधानं प्रकारम्। येन विधानेन। मन्दभाग्यः अकिञ्चनः। अपिशब्देनानेकजन्ममध्येऽप्यदृष्टलक्ष्मीवदनता सूच्यते। सिद्ध्यति परभैरवदेवतावदनेनैव देहेन समस्तविभूतिभाजनं भवति।

* अर्थरत्नावली *

अथ पञ्चमपटले विषमपदव्याख्या लिख्यते। **सर्वमेतत् त्वया प्रोक्तं त्रिपुराज्ञानमुत्तमम्। कामतत्त्वविधिज्ञानं मोक्षतत्त्वत्रयावधीति।** कामस्य तत्त्वं कामतत्त्वम्। कामः परमशिवस्तस्य तत्त्वं विमर्शरूपपरमेश्वरीस्वरूपं कामकलेत्युच्यते। विधिरिति सकलनिष्कलभावेन तस्य विनियोगप्रकारः। ज्ञानं तदवगतिः। तदेव 'मोक्षरूपिणी' (४.१७) इति पदेन दर्शितम्। अथवा कामतत्त्वविधिज्ञानं काम(राज)बीजसाधनम्, तेन वश्यादि(का?क)रणं वेति। मोक्षो मुक्तिः, शक्तिशिवसामरस्यप्रापितलक्षणम्। तदपि वाग्भवबीजसाधनेनेति 'वाग्भवे मोक्षरूपिणी' (४.१७) इति पदेन दर्शितं पुरस्तात्। **तत्त्वत्रयावधीति।** आत्मविद्याशिवतत्त्वानां त्रिबीजरूपेण व्यापकत्वमपि कथितमेवेति भावः। प्रत्येकबीजसाधने प्रयोगे।।१-२।।

श्रीदेवी—सर्वमेतत् त्वया प्रोक्तं त्रिपुराज्ञानमुत्तमं कामतत्त्वविधिज्ञानमित्यादि। कामः परमशिवः, तस्य तत्त्वं पराशक्तिस्वरूपा कामकला, विधिरिति सकलनिष्कलभावेन विधानं तत्साधनम्, ज्ञानं तदवगतिः। मोक्षतत्त्वत्रयावधि। मोक्षबीजतत्त्वाख्याद् वाग्भवबीजतत्त्वाख्यादारभ्य त्रयावधि त्रिशक्ति(त्रि)तत्त्वादित्रिवृत्कारणत्वावधि बीजावधि व्यासेन प्रतिबीजं समासेन मूलविद्यायाश्च यत्साधनं प्राग् दर्शितं तत्सर्वं त्रिपुराविषयमिति। अत्र '(ना?आ)द्या' (४.४) इत्यादिना ग्रन्थेन प्रागनुक्तं देव्या जपहोमार्चाभ्यां विधानं वदेति प्रार्थितम्।।१-२।।

* सेतुबन्धः *

एवं त्रिसप्तत्या श्लोकैश्चतुर्थपटलेन वीजसाधनादिरहस्यजातं प्रतिपाद्यावसरप्राप्तं मन्त्रसाधनादिकं विवक्षुर्वृत्तकथनपूर्वकं वर्तिष्यमाणप्रश्नमवतारयति—कामः परशिवस्तस्य तत्त्वं वास्तवस्वरूपम्, तस्य विधिः प्रकारः सोपपत्तिकमिति यावत्। मोक्षात्मकं तत्त्वं तस्य भावो ब्रह्मभावः। स एव पदं तदवधि। अथवा काम इति त्रिवर्गोपलक्षणम्। चतुर्विधपुरुषार्थसाधनज्ञानमुक्तम्। साम्प्रतं जपहोमादिप्रकारं वद। येन पुरश्चरणेन दैवहीनस्यापि मन्त्रसिद्धिर्भवति किमुतान्येषां वक्तव्यम्।।१-२।।

श्रीभैरव उवाच

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि त्रिपुरामन्त्रसाधनम्।
जपहोमविधानं च समीहितफलप्रदम्।।३।।

ईश्वर कहते हैं—हे देवि! त्रिपुरा मन्त्र-साधन तथा ईप्सित फलप्रद जप होम विधान कहता हूँ, सुनो।।३।।

भास्करराय इसका अर्थ कहते हैं कि मन्त्रसाधन में दो उपाय लक्षित होते हैं। प्रथम है—यावत् जीवन नियत जप एवं द्वितीय है—पुरश्चरण। ऐहिक काम्य प्रयोग पुरश्चरण से प्राप्त होता है, किन्तु आमुष्मिक विषय में बिना पुरश्चरण के ही नित्य जप से कर्म होता है।।३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

श्रृणु देवीति। त्वमित्याख्यातेन सम्बध्यते।।३।।

* सेतुबन्धः *

मन्त्रसाधने हि द्वावुपायौ—यावज्जीवं नियतो जपः, पुरश्चरणरूपश्च। ऐहिके काम्यप्रयोगे तु पुरश्चरणं विना नाधिकारः। आमुष्मिकमात्रार्थे पुरश्चरणं विनाऽपि नित्यजपमात्रेण निर्वाह इति स्थितिः।।३।।

चक्रमभ्यर्च्य सकलं विधिवत्परमेश्वरि।
मध्यं वा केवलं देवि बाह्यमध्यगतं च वा।।४।।
तदग्रसंस्थितो मन्त्री सहस्रं यदि वा जपेत्।
व्रतस्थः परमेशानि ततोऽनन्तफलं भवेत्।।५।।

हे परमेश्वरि! समस्त अर्थात् पूर्व चक्र की यथाविधि पूजा करे अथवा केवल मध्य, अथवा बाह्य मध्यगत चक्र की पूजा करे। व्रतस्थ मन्त्रप्राप्त व्यक्ति यदि उसके आगे संस्थित होकर १००० जप करता है, तब हे परेशानि! उसे अनन्त सुख प्राप्त होता है।।४-५।।

विधिवत्—यथाविधि। शिवानन्द के अनुसार प्रतिपादित क्रम से। **सकलं**—शिवानन्द के मत से 'पूर्ण'। विद्यानन्द अर्थ करते हैं—सृष्टि-स्थिति-लयात्मक। **मध्यं**—शिवानन्द के मत से मध्य त्रिकोण। विद्यानन्द कहते हैं—नवयोनि चतुरस्रान्त सृष्टिचक्र अथवा संहारात्मक मध्यचक्र। **बाह्यमध्यगतं**—शिवानन्द के अनुसार अष्टार के साथ मध्य त्रिकोण। विद्यानन्द के अनुसार नवयोनिदशारद्वय—चतुर्दशार, चतुरस्रान्त स्थितिचक्र। **तदग्रसंस्थितः**—तदभिमुख उसके सामने बैठकर। इस प्रसंग में विद्यानन्द का मत है कि सृष्टिचक्र-स्थितिचक्र-संहारचक्र में से किसी एक चक्र की पूजा उसके आगे बैठकर करनी होगी। **सहस्रं यदि वा जपेत्**—विद्यानन्द के मत से पुरश्चरण करने वाला साधक यदि एक लाख जप न कर सके, तब १००० जप करे। **व्रतस्थः परमेशानि ततोऽनन्तफलं लभेत्**—इस श्लोकार्ध का तात्पर्य विद्यानन्द के मत से यह है कि राष्ट्रविप्लव, देहपीड़ा इत्यादि कारणों से जपसंख्या को कभी भी कम न करे। केवल संकल्प करके जप करे। जीवनपर्यन्त यही व्रत तथा जपविधि हो। इससे अनन्त फल मिलेगा।।४-५।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

सकलं पूर्णम्। विधिवत् प्रचोदितक्रमेण। मध्यं वा मध्यत्र्यक्षं वा। केवलम् अन्यव्यावृत्तिपरमेतत्। **बाह्यमध्यगतं च वेति।** साष्टारं मध्यत्र्यश्रं वेत्यर्थः। तदग्रसंस्थितः चक्राग्र भागसंस्थितः। व्रतस्थः इन्द्रियजयोद्यतः। यदाह—'व्रतचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः' इति।

❋ अर्थरत्नावली ❋

चक्रमभ्यर्च्य सकलं विधिवत् परमेश्वरीत्यस्य सृष्टिस्थितिलयात्मकं सकलं चक्रं विधिवद् हेतुद्वितीयस्त्रीकुसुमाद्यैः पूजयेदित्यर्थः। मध्यं वा केवलं देवीत्यस्य सनवयोनिचतुरस्रान्तं सृष्टिचक्रं संहारात्मकं मध्यचक्रं वेत्यर्थः। बाह्यमध्यगतं च वेत्यस्य नवयोनिदशारद्वयचतुर्दशारचतुरस्रान्तं स्थितिरूपं चक्रं वेत्यर्थः। तदग्रसंस्थितो मन्त्री सहस्रं यदि वा जपेदित्यस्य सृष्टिस्थितिसंहारात्मना स्थितानां त्रिधा विभक्तानां चक्राणां मध्ये एकं चक्रं विधिवदभ्यर्च्य तदग्रसंस्थितो भूत्वा मन्त्री एतां विद्यां जपेत् पुरश्चरणकामो नरो लक्षप्रमाणं ब्रह्मचर्यादिसंयुत इति वाक्यार्थः। यदि तथा जप्तुमसमर्थस्तदा पूर्वोक्तचक्रत्रितयमध्ये एकं चक्रं विधिवत् स्त्रीप्रसूनकापिशायनाद्यैरभ्यर्च्य तस्य चक्र(स्य) पुरतः संस्थितो भूत्वा मुद्राबन्धपूर्वकं सहस्रं जपेदिति वाक्यार्थः। व्रतस्थः परमेशानि ततोऽनन्तफलं लभेदित्यस्य राष्ट्रभ्रंशदेहपीडादिना कदाचिदपि जपह्रासं न कुर्यामिति सङ्कल्पपूर्वकं जपेद्यावज्जीवाधिकारम्। ततोऽनन्तफलं लभेदिति भावः।।४-५।।

चक्रमभ्यर्च्येत्यादि। सृष्टिस्थितिसंहारकारि सकलवाचकवाच्ययथाविधायि नवयोनिदशारद्वयचतुर्दशारचतुरश्रात्मकं बाह्यमध्यगतं श्रीचक्रं कुलाचारक्रमेण सपरिवारपरमेश्वरीपूजया प्रसादाभिमुखीं कारयित्वा तदग्रसंस्थितस्तदभिमुखं समुपविष्टः सुभक्तो व्रतस्थो जितेन्द्रियो निरन्तराधिकजपाद्यनुष्ठानाशक्तः प्रतिदिनं सहस्रमात्रादप्यनूनं यावज्जीवं जपेत्। ततस्तावन्मात्रनियुतेनानन्तफलमुक्त्यविरोधि सद्भक्तिपुरस्सरं स्वरसपरमानन्दप्रबोधात्मकं शिवपदं लभते॥४-५॥

❋ सेतुबन्धः ❋

तत्राऽऽद्यमाह—त्रिविधचक्रार्चनेषु पूर्वोक्तेषु शक्त्यनुसारेणैकं कृत्वा प्रत्यहं सहस्रं नियमविशिष्टो जपेदित्यर्थः। अत्र श्लोके यदि वेत्युक्तिस्वारस्यादित्थं व्याख्यातम्। यदि तु व्रतस्थ इतिपदस्योत्तरश्लोक आरभेतेतिपदस्य च स्वारस्यमवलोक्यते, तदा ज्ञानार्णवैकवाक्यत्वाय पुरश्चरणजपारम्भमात्रपरमिति तु द्वितीयपटलोक्तमास्थेयम्। केचित् तु योनिमुद्रामाबध्य दो जपो मन्त्रदोषनिरासार्थत्वेन सकृत्सहस्रसंख्याकस्तन्त्रेषु विहितो दृश्यते स तावन्मात्र एवेह पुरश्चरणत्वेन विधीयत इत्याहुः। तद्बहूनामसम्मतं निर्मानत्वात्।।४-५।।

ध्यात्वा वा हृद्गतं चक्रं तत्रस्थां परमेश्वरीम्।
पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमारभेत्।।६।।

अथवा हृद्‌गत चक्र का ध्यान करे। उस चक्रस्थिता परमेश्वरी का पूर्वोक्त ध्यानयोग से चिन्तन करके जपारम्भ करना चाहिये।।६।।

ध्यात्वा हृद्गतं चक्रं—हृदय-कमल में ध्यान करे। शिवानन्द कहते हैं कि भावना तथा पूजा करनी चाहिये। बाह्य चक्र पूजा के स्थान पर हृदय कमल में भावना तथा पूजा करे। विद्यानन्द का मत है कि साधक यदि किसी कारण से बाह्य चक्र की रचना करके आराधना में समर्थ न हो, तब वह हृदयकमल में पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वरी के चक्र का चिन्तन करे। वे चक्र की पूजा न कहकर परमेश्वरी के पूजा की बात कहते हैं। तत्त्वदृष्टि से दोनों एक ही बात है, क्योंकि श्रीचक्र परमेश्वरी का ही रूप है। **पूर्वोक्तध्यानयोगेन**—पूर्वोक्त कथित ध्यानविधि से योग करे, जो प्रथम पटल के १३९ वें श्लोक से विवृत है। **सञ्चिन्त्य**—विद्यानन्द के अनुसार परमशिव-समरसीकृता परमेश्वरी के साथ आत्मैक्य चिन्तन द्वारा। ये कहते हैं कि हृदय-कमलस्थ परमेश्वरी का (भावना से) पूजन करे। सपरिवारा देवी को आकाशादि पञ्चभूत-सम्भव गन्धादि नैवेद्यान्त पञ्चोपचार द्वारा पूजा करे। परमामृत कला से उनका तृप्ति-विधान करे। सभी मानसिक रूप से करना होगा।।६।।

❋ ऋजुविमर्शिनी ❋

अथवा बाह्यचक्रपूजां परित्यज्य हृदयकमलोदरे चक्रं परिभाव्य सम्पूज्य जपेदित्याह—**ध्यात्वेति।** पूर्वोक्तध्यानयोगेन 'ततः पद्मनिभाम्' (१.१३०) इत्यादिध्यानयोगेन।।६।।

❋ अर्थरत्नावली ❋

ध्यात्वा तु हृद्‌गतं चक्रं तत्रस्थां परमेश्वरीम्। पूर्वोक्तध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य जपमारभेदित्यस्यायमर्थः—यदि कथञ्चिद् बाह्यचक्रमुद्धृत्य परमेश्वरीमाराधयितुमसमथः साधक एतच्चक्रं पूर्वोक्तन्यायेन हृदयकमलकुहरान्तः सञ्चिन्त्य परमेश्वरीं सपरिवारामाकाशादिक्षित्यन्तसम्भवैर्गन्धादिनैवेद्यान्तैः पञ्चोपचारैः शब्दाद्यैः स्वाभाविकैरभ्यर्च्य परमामृतकलया सन्तर्प्य परमशिवसमरसीकृततया स्वात्मैक्यं सञ्चिन्त्य स्वयं च कामेश्वरीरूपावर्तमुद्रानवकं निबध्य सहस्रमावर्तयेत्।

मूलविद्यापुरश्चरणं कर्तुमशक्तः साधकश्चेदन्तर्यजनविधिप्रवीणः सन् युक्तो विधिना जपेदिति जपविधिः। अन्तर्यजनशीलस्य हवनमथान्तरम्। तथाहि—मूलाधारकमलान्तरुद्यत्त्रिकोणकुण्डान्तरुल्लसितचिदग्नौ मनसा स्रुचा सुषुम्नावर्त्मना पराकाशकुशेशयान्तःस्पन्दिपरमशिवसुधाज्येन मूलविद्यामुच्चरन्नाज्याहुतिं विधायानन्तरं सकलधर्माधर्मसुखदुःखाक्षवृत्तीर्जुहुयाद् यथाशक्तीत्यर्थः।।६।।

ध्यात्वेत्यादि। वाह्यार्चनान्तरार्चनेति ध्याने योगेऽनाहतप्रस्फुरत्पूजाचक्रराजसन्निहितां परदेवतां यथावदाराध्य प्रागुक्तफलाप्तये जपेत्।।६।।

* सेतुबन्धः *

मध्यचक्रमात्रपूजनेऽप्यसमर्थस्याऽऽह। पूर्वं प्रथमपटले (श्लो. १३८) उक्त 'ततः पद्मनिभाम्' इत्यादिनाऽभिहितम्।।६।।

निगदेनोपांशुना वा मानसेनापि सुव्रते।
पूर्वोक्तन्याससंयुक्तो मुद्रासन्नद्धविग्रहः।।७।।

हे सुव्रते! पूर्वोक्त न्याससंयुक्ता तथा मुद्रा के साथ देह से वाचिक, उपांशु तथा मानस जप करना चाहिये।।७।।

निगदेन—शिवानन्द कहते हैं—व्यक्त उच्चारण द्वारा, ऐसा जप। **मानसेन**—शिवानन्द कहते हैं—स्मृतिमात्र जप। भास्करराय के मत से मन ही मन उच्चारित अक्षरों द्वारा जप करना। **पूर्वोक्तन्याससंयुक्तः**—पूर्वोक्त न्यास प्रथम पटल, श्लोक १३५ से १३९ तक कहा गया है। तदननुसार करशुद्धि न्यास से लेकर वशिन्यादि न्यास तक का सभी नास युक्त करे। **मुद्रासन्नद्धविग्रहः**—शिवानन्द के अनुसार योनिमुद्रा बन्ध द्वारा अपनी देह को कवचित करे। भास्करराय के मत से योनिमुद्रा एकमात्र गुरु बताते हैं।।७।।

* ऋजुविमर्शिनी *

जपे गुणविधिमाह—**निगदेति**। निगदेन व्यक्तोच्चारणेन। उपांशुना। विभक्तिरागमायाता। आत्मश्रवणयोग्यप्रयत्नेन। मानसेन स्मृतिमात्रेण। पूर्वोक्तन्याससंयुक्तः करशुद्ध्यादिवशिन्याद्यन्तन्याससंयुक्तः। मुद्रासन्नद्धविग्रहो योनिमुद्राबन्धेन कवचितस्वदेहः।।७।।

* अर्थरत्नावली *

निगदेनेत्यादि। कृतनिग्रहोऽन्तस्थावश्यंभाविसर्वविधिविहितसिद्धारवायोपदेशिनोऽयमर्थः। पूर्वोक्तन्यासयोगेनात्मकलेवरं त्रिपुरीकृत्यान्तर्वाह्ययागानुरूपेण कृतोपचारार्चननवमुद्रादर्शनाक्षमालाग्रहणादि कृत्वा यथाकामं जपेदिति। ततो निगदेन निजानुभूतिव्यक्तेन, उपांशुना निजश्रुतिव्यक्तेन, मानसेन मनोगतेन सर्वोपचारेण जपेत्।।७।।

* सेतुबन्धः *

स्वरभेदेन जपभेदानाह—नितरां गद्यत इति निगदः। उच्चैर्निगदेनेति श्रुतिविहितोच्चारणेनेत्यर्थः। उपांशुना स्वकर्णमात्रगोचरेण, मानसेन मनसैवोच्चारितैरक्षरैः। तदुक्तं ज्ञानार्णवे—

निगदः परमेशानि स्पष्टवाचा निगद्यते।
अव्यक्तस्तु स्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्तितः।।
मानसस्तु वरारोहे चित्तान्तर्गतरूपवान्। इति।

एतेषु त्रिषूत्तरोत्तरमधिकफलम्। उक्तं च—

विधियज्ञाज्जपो यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः।। इति।

जप मानस इतिधात्वर्थानुगुण्यादन्त्यो मुख्योऽन्यौ तु गौणाविति द्रष्टव्यम्। पूर्वोक्ता न्यासा वशिन्यादयः। मुद्रा योनिमुद्रा गुरुमुखैकवेद्या।।७।।

जपोपयोगिनी माला

मुक्ताफलामलमणिस्फीतवैदूर्यसम्भवाम् ।
पुत्रजीवकपद्माक्षरुद्राक्षस्फटिकोद्भवाम् ।।८।।
प्रवालपद्मरागादिरक्तचन्दननिर्मिताम् ।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमृगनाभिविभाविताम् ।।९।।
अक्षमालां समाहृत्य त्रिपुरीकृतविग्रहः ।
लक्षमेकं जपेद्देवि महापापैः प्रमुच्यते ।।१०।।

हे देवि! मुक्ताफल-अमलमणि-स्फीतवैदूर्यग्रथित माला, पुत्रजीवक-पद्माक्ष-रुद्राक्ष-स्फटिक माला, प्रवाल-पद्मरागादि-रक्तचन्दन-ग्रथित माला से, कुङ्कुम-अगुरु-कर्पूर-मृगनाभिविलेपित माला अथवा अक्षमाला ग्रहण करके त्रिपुरीकृत देह होकर एक लाख जप करने से साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।८-१०।।

मुक्ताफल—मोती। **स्फीतवैदूर्य**—निर्मल बिडालाक्ष (लहसुनिया मणि)। **पुत्रजीवकः**—जियुतिया वृक्ष। **पद्माक्षं**—पद्मबीज, कमलगट्टा। **पद्मरागादि**—भास्करराय के अनुसार माणिक्य-हीरकादि रत्नरचित। भास्करराय कहते हैं कि मुक्ताफल की माला के जप से साम्राज्य मिलता है एवं रुद्राक्ष की माला से जप करने पर सर्वसमृद्धि तथा मोक्ष मिलता है। **अक्षमाला**—अकारादि 'क्ष'कार-पर्यन्त वर्णमाला। **त्रिपुरीकृतविग्रहः**—पूर्वोक्त न्यास से अपनी देह को त्रिपुरामय करे।।८-१०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पद्मरागादीत्यत्रादिशब्देन रत्नान्तरं गृह्यते। मृगनाभिः कस्तूरिका। अक्षमालाम्। अक्षमाला-शब्दस्य मुख्यार्थस्त्वादिक्षान्ता वर्णमाला। अत्राभियुक्तवचनम्—

इतीरिता सकलजगत्प्रभाविनी क्रमोत्क्रमक्रमगुणितार्णमालिका।
अभीष्टसाधनविधये च मन्त्रिणां भवेन्मनुप्रतिपुटिताक्षमालिका।। इति।
(प्र० सा० ८.२६)

तां विहायात्र मुक्ताफलादिर्गौणार्थो गृह्यते। महामुख्यार्थस्तु कारणेश्वरीपङ्क्तिसंविन्मार्गजपविधौ द्रष्टव्यः। तदुक्तं श्रीमहागुरुभिः—

मत्परं नास्ति तत्रापि जापकोऽस्मि तदैक्यतः।
तत्त्वेन जप इत्यक्षमालया दिशसि क्वचित्।। इति।
(शि० स्तो० ३.१७)

समाहृत्य गृहीत्वा।।८-१०।।

*** अर्थरत्नावली ***

मुक्ताफलामलमणीत्यारभ्य अक्षमालां समाहृत्येत्यन्तः श्लोकसमुदायोऽक्षमालासाधनप्रकारोपदेशकः स्पष्टार्थः।।८-१०।।

मुक्ताफलामलमणिरिति। निर्मलमुक्तामणिरिव स्थितं स्फुरितम्।।८-१०।।

*** सेतुबन्धः ***

जपोपयोगिनीं मालामाह। पद्मरागादीत्यादिपदेन माणिक्यहीरकादिपरिग्रहः। कुङ्कुमादिना विभावनं तु मालासंस्कारोपलक्षणम्। 'अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन विलेपयेत्' इति ज्ञानार्णवात्। एतेषां मणिभेदानां फलभेदस्य आगमान्तरेषु कथनेऽपि संयोगपृथक्त्वार्थत्वं ज्ञेयम्। तथा च ज्ञानार्णवे—

अथ मुक्ताफलमयी साम्राज्यफलदायिनी।
(सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वराजवशङ्करी।।)
त(य)था मुक्ताफलमयी तथा स्फटिकनिर्मिता।
रुद्राक्षमालिका मोक्षे भवेत्सर्वसमृद्धिदा।।
प्रवालमालिका वश्ये सर्वकार्यार्थसाधिका।
माणिक्यमाला विमला साम्राज्यफलदायिनी।।
पुत्रजीवकमाला तु लक्ष्मीविद्याप्रदायिनी।
पद्माक्षमालया लक्ष्मीर्जायते च महद्यशः।।
रक्तचन्द्रनमाला तु भोगदा वश्यदा भवेत्।

इत्यादि। अक्षमालापदेनाकारादिक्षकारान्तमातृकामालोच्यते। 'अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम्' इति ज्ञानार्णवात्। एतेन मालामणिसंख्यायां विकल्पस्तत्संस्कारादिजातं च तन्त्रान्तराद् ग्राह्यमित्युक्तं भवति।।८-१०।।

नवलक्षजपात्मकं पुरश्चरणम्

लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि।
नाशयेत्त्रिपुरा देवी साधकस्य न संशयः ।।११।।
जप्त्वा लक्षत्रयं मन्त्री यन्त्रितो मन्त्रविग्रहः।

पातकं नाशयेदाशु यदि जन्मसहस्रगम् ।।१२।।
जप्त्वा विद्यां चतुर्लक्षं महावागीश्वरो भवेत् ।
पञ्चलक्षाद्दरिद्रोऽपि साक्षाद् वैश्रवणो भवेत् ।।१३।।
जप्त्वा षड्लक्षमेतस्या महाविद्याधरेश्वरः ।
जप्त्वैव सप्त लक्षाणि खेचरीमेलको भवेत् ।।१४।।
अष्टलक्षप्रमाणं च जप्त्वा विद्यां महेश्वरि ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते देवपूजितः ।।१५।।
नवलक्षप्रमाणं तु जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीम् ।
विधिवज्जायते मन्त्री रुद्रमूर्तिरिवापरः ।।१६।।
कर्ता हर्ता स्वयं गौरि लोकेऽप्रतिहतप्रभः ।
प्रसन्नो मुदितो धीरः स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ।।१७।।

इस विद्या के दो लाख जप से देवी त्रिपुरा साधक के सात जन्मों का पाप नष्ट करती हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तीन लाख जप से साधक मन्त्रविग्रह होकर १००० जन्मों के पापों को तत्काल नष्ट करता है। चार लाख जप से महावागीश्वरत्व मिलता है। पाँच लाख जप द्वारा महादरिद्र भी कुबेर के समान हो जाता है। छः लाख जप करने से साधक महाविद्याधर हो जाता है। सात लाख जप करके साधक को खेचरी-सिद्धि मिल जाती है। हे महेश्वरि! आठ लाख जप करने से साधक को अणिमादि सिद्धियों की अधीश्वरता मिलती है और वह देवपूजित हो जाता है। यथाविधि नौ लाख जप से साधक द्वितीय रुद्रमूर्त्ति-जैसा शोभित होने लगता है। हे गौरि! इस प्रकार से साधक स्वयं कर्त्ता तथा हर्त्ता हो जाता है। संसार में उसका अप्रतिहत प्रभाव होता है। वह प्रसन्न, मुदित, धीर तथा स्वच्छन्दगति ईश्वर हो जाता है।।११-१७।।

यन्त्रितः—भास्करराय के मत से यन्त्रात्मक शरीर वाला। **खेचरीमेलकः**—भास्करराय के मत से योगिनियों का मेलक अर्थात् एकीकरण-समर्थ। **प्रसन्नः**—शिवानन्द के मत से प्रशान्त मायाकालुष्य होना। माया कालुष्य समाप्त है जिनका, वे प्रसन्न। **मुदितः**—शिवानन्द के मत से प्रत्यभिज्ञात शङ्करात्मभाव, अनुत्तरानन्द चमत्कार। जिनको शिवभाव की प्रत्यभिज्ञा हो गयी है।।११-१७।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

यन्त्रित: चर्यापादोक्तक्रमेण संयत:। मन्त्रविग्रहो मन्त्रन्यस्तदेह:। जप्त्वा जपित्वा। जपशब्दनिर्वचनेऽभियुक्तोक्ति:—

मन्त्रतत्त्वाप्रमादो य: स जपो जन्मपालनात्।
जन्म मन्त्रसतत्त्वं तत्पालनं तद्विमर्शनम्।। इति।

असौ पारमार्थिको जपः। अत्र तु वर्णावृत्तिरूप इति विशेषः। जपविधावभियुक्तोक्तिः—

पद्मासनः प्राग्वदनोऽप्रलापी तन्मानसस्तर्जनिवर्जिताभिः।
अक्षस्रजा वाऽङ्गुलिभिर्जपेत्तं नातिद्रुतं नातिविलम्बितं च।। इति।
(प्र० सा० २०.३९)

एतस्या विद्यायाः। खेचरीमेलनं योगिनीभिः सहासिका। विधिवद् यथाशास्त्रम्। रुद्रमूर्तिरिवापर इति शापानुग्रहक्षमो महायोगी भवतीति। कर्ता अनुग्रहविधौ श्र्यादिसंयोजनसमर्थः। हर्ता निग्रहविधौ श्र्यादिसंहरणप्रवीणः। स्वयम्। सिद्धमन्त्रः साधक इत्यर्थः। सिद्धिर्नाम देवतात्मत्वेन प्रकाशमानता। तदुक्तमभियुक्तैः—

सिद्धिर्नाम मनूनां हि देवतानामहङ्कृतेः।
दृढत्वं तच्च ताद्रूप्यतादात्म्यामर्शनादिभिः।। इति।

इयं महासिद्धिः। इह हि लौकिकी सिद्धिरुच्यते। प्रसन्नः अतिप्रसन्नः प्रशान्तमायाकालुष्यः। मुदितः प्रत्यभिज्ञातशङ्करात्मस्वभावानुत्तरानन्दचमत्कारः। धीरः पुनः पुनर्विभावितमहेश्वरस्वरूपामर्शनतदुपनिषत्सारसंग्रहः। स्वच्छन्दगतिः—

योगी स्वच्छन्दयोगेन स्वच्छन्दगतिचारिणा।
स्वच्छन्दपदवीलीनः स्वच्छन्दसमतां व्रजेत्।।
(स्व० त० ७.२६०)

इत्याम्नातनीत्या विधिनिषेधागोचरनिर्यन्त्रणमहारहस्यशिवमार्गानुप्रविष्टः। ईश्वरः समस्तविभूतिप्रसवावनिः।।११-१७।।

* अर्थरत्नावली *

त्रिपुरीकृतविग्रह इत्यारभ्य जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीमित्यन्ताः श्लोका जपसंख्यावाचकाः स्पष्टार्थाः। विधिवज्जायत इत्यारभ्य स्वच्छन्दगतिरीश्वर इत्यन्तग्रन्थो मूलविद्याफलवचनः स्पष्टार्थः।

लक्षमात्रमित्यादि गतिरीश्वर इत्यन्तः स्पष्टार्थः।।११-१७।।

* सेतुबन्धः *

इदानीं नवलक्षजपात्मकं पुरश्चरणमाह सार्धैः सप्तभिः—यन्त्रितो यन्त्रात्मकशरीरवान्। अत एव ज्ञानार्णवे—'ततो लक्षत्रयं जप्त्वा मन्त्रयन्त्रकलेवरः' इत्युक्तम्। खेचरीणां योगिनीनां मेलक एकीकरणसमर्थः। 'नवलक्षजपं कृत्वा रुद्रत्वं प्राप्नोति' इति श्रुतिं व्याचष्टे—**रुद्रमूर्तिरिति**। स्वच्छन्दगतिर्निखिलब्रह्माण्डेष्वप्रतिहतगतिः।।११-१७।।

निगदेन तु यज्जप्तं लक्षं चोपांशुना समम्।
मानसेन महेशानि कोटिजाप्यफलं भवेत्।।१८।।

हे महेशानि! उच्च स्वर से किये गये एक लाख जप के समान है एक उपांशु जप और एक मानस जप से करोड़ों उपांशु जप का फल होता है।।१८।।

* ऋजुविमर्शिनी *

निगदेनेत्यस्यायमर्थः—उच्चैर्भाषणेन लक्षजपस्य फलम् उपांश्वेकेन लभ्यते। उपांशुरूपस्य कोटिजपस्य फलं मानसेनैकेन लभ्यत इति। अत्राभियुक्तवचनम्—

उच्चारो मनसा स्थानध्यानवर्णप्रकल्पनात्।
मानसो जप इत्युक्तो योगमार्गप्रवर्तकः।।
उपांशुर्निजकर्णैकगोचरः सिद्धिदायकः।
सुस्पष्टवचनोच्चारो वाचिकः सिद्धिदायकः।। इति (सि० पा०)

अत्र मानवं वचनम्—

विधियज्ञाज्जपो यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।। इति। (२.८५)

* अर्थरत्नावली *

निगदेनेत्यादि। वाचिकलक्षजपफलमुपांशुना जप्तं कोटिजाप्यफलमेकेन मानसेन लभ्यते। वाचिकोपांशुमानसानां लक्षणं श्रीसिद्धनाथपादैरुक्तम्—

उच्चारो मनसा स्थानध्यानवर्णप्रकल्पनात्।
मानसो जप इत्युक्तो योगमार्गप्रदर्शकः।।
उपांशुर्निजकर्णैकगोचरः सिद्धिदायकः।
सुस्पष्टवचनोच्चारो वाचिकः सुविशुद्धिदः।। इति।

निगदेनेत्यादि। प्रागेव 'सहस्रं यदि वा जपेत्' (५.५) इति भूतभीतानां सहस्रसंख्यानिगदादयो गृह्यन्ते। अत एव निगदेन जप्तं सहस्रं यथा जप्तमेव न नार्थत एवेत्यर्थः। उपांशुजप्तं सहस्रं निगदं लक्षजपसमं भवति। मनसावर्तितं जपं सहस्रं निगदजपकोटिर्जायते।।१८।।

* सेतुबन्धः *

अथ निगदादिषु फलतारतम्यमाह—एक उपांशुजपो निगदलक्षजपेन समः। एको मानसजप उपांशुकोटिजपेन तुल्य इत्यर्थः। मानसजपेतिकर्तव्यता त्वष्टमपटले मूल एवोपदेक्ष्यते।।१८।।

यत्र वा कुत्रचिद्देशे लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्।
स्वयम्भु बाणलिङ्गं वा इतरद्वाऽपि सुव्रते।।१९।।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं त्रिपुरीकृतविग्रहः।
ततो भवति देवेशि त्रैलोक्यक्षोभकारकः।।२०।।

हे सुव्रते! किसी भी स्थान पर जहाँ पश्चिमाभिमुखीन स्वयंभुलिंग, बाणलिंग अथवा अन्य लिंग विराजित हों, वहाँ बैठकर त्रिपुराकृत देह होकर एक लाख जप करे। हे देवेशि! साधक इससे त्रैलोक्य को क्षुब्ध कर देता है।।१९-२०।।

पश्चिमामुखम्—विद्यानन्द कहते हैं कि पश्चिम की ओर अभिमुखीन। यह बाह्य स्थान में स्थित लिंग के लिये हैं। आभ्यन्तर लिंग के लिये इसका अर्थ है—ऊर्ध्व में स्फुरणशीला शक्ति से युक्त। **स्वयम्भु**—स्वयंभुलिंग। यह भी बाह्याभ्यन्तर भेद से द्विविध है। आभ्यन्तर स्वयम्भु लिंग के सम्बन्ध में विद्यानन्द कहते हैं कि शरीरस्थ मूलाधार में पश्चिमाभिमुखीन स्वयम्भु लिंग स्फुरित होता है। उनके मत से बाह्य स्वयम्भु लिंग अधिकांशतः क्षुद्र पर्वत, पर्वत शृंग अथवा गुप्त एवं स्तूपाकृति प्रस्तरखण्ड होता है। **बाणलिङ्गं**—बाह्य तथा आन्तर भेद से द्विविध है। विद्यानन्द कहते हैं कि हृदय कमल (अनाहतचक्र) में बाण नामक ज्योतिर्लिंग उद्भासित होता है। बाह्य लिंग है—नर्मदातीर से प्राप्त नर्मदेश्वर शिवलिंग। **इतरं**—अन्य शिवलिंग। यह भी बाह्य-आभ्यन्तर भेद से द्विविध है। आज्ञाचक्र में यह स्थित है। बाह्य इतर लिंग है—पर्वत लिंग।।१९-२०।।

* ऋजुविमर्शिनी *

स्वयम्भुबाणेतरलिङ्गानां मध्येऽन्यतमलिङ्गसन्निधौ जपेदित्याह—**यत्रेति द्वयेन।** यत्र कुत्रचिदिति मेध्यामेध्यविकल्पो न कर्तव्य इत्याह।।१९-२०।।

* अर्थरत्नावली *

'यत्र वा कुत्रचिद्देशे लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्। स्वयम्भूर्बाणलिङ्गं वा इतरं वापि सुव्रते' इत्यस्य (व्याख्या लिख्यते)—अस्मिन् शरीरे यत्र कुत्रचिद् मूलाधारप्रदेशे पश्चिमाभिमुखं स्वयम्भुवाचकं ज्योतिर्लिङ्गं स्फुरति तत्र स्थित्वा लक्षं जपेत्। तथाऽस्मिन् शरीरे यत्र कुत्रचिदाधारप्रदेशे हृदयकमलोपलक्षिते बाणवाचकं ज्योतिर्लिङ्गं समुल्लसति तत्र स्थित्वेत्यादिपूर्ववत्। तथा यस्मिन् कस्मिंश्चित्प्रदेशे आधारे भ्रूमध्ये इतराख्यं ज्योतिर्लिङ्गं तिष्ठति तत्र स्थित्वेत्यादि पूर्ववत्। अथवा बाह्ये यत्र कुत्रचित् प्रदेशे स्वयम्भूलिङ्गं पश्चिमाभिमुखं तिष्ठति, तथा बाणलिङ्गं स्थापितं तिष्ठति, इतरं पर्वतलिङ्गं वा पश्चिमाभिमुखं तिष्ठति, नन्दिगणेशादिरहितस्थानमन्विष्य प्राप्य तत्र स्थित्वा लक्षं जपेदिति भावः। तदुक्तमुत्तरषट्के—

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं योनिस्थं परिकीर्तितम्।
स्वयम्भूर्बाणलिङ्गं वा इतरं वापि सुव्रते।। इति।

यत्र कुत्रचिदित्यादिग्रन्थार्थो वहिरन्तर्भावेन द्विविधः। अन्तस्थं मूलाधारहृदयभ्रूमध्येषु पश्चिमामु-(खम?खान्यू)र्ध्वस्फुरच्छक्ति(ज्यों?ज्यो)तिर्विन्दुलिङ्गानि स्वय(म्भु)बाणेतराख्यानि स्युः। तत्र तत्र क्रमेण स्थित्वा तत्तल्लिङ्गमपि लक्षीकृत्य मानसं लक्षं जपेत्। बाह्येऽपि स्वयमाविर्भूतं लिङ्गम्, बाणलिङ्गाख्यं भक्त्या पूजितं नर्मदालिङ्गं बाणलिङ्गम्, इतरस्थापितं पर्वतभवं पश्चिमाभिमुखम्। नन्दिकेशादिरहितं तिष्ठति चेत् तत्र स्थित्वा लक्षं जपेदिति॥१९-२०॥

* सेतुबन्धः *

क्षेत्रविशेषे जपमाह—ब्रह्माण्ड इव पिण्डाण्डेऽपि स्वयम्भ्वादिलिङ्गान्युत्तरपटले वक्ष्यन्ते। तत्परत्वेनैतद्ग्रन्थव्याख्यानं (अर्थ)रत्नावलीकारस्य व्यामोह एव तत्र स्थित्वेत्यंशस्वारस्यहानेः।

इतोऽप्यधिकानां स्थलानाम् आगमान्तरेऽस्मिन्नेव प्रकरणे कथनस्यानुपपत्तेश्च। तदुक्तम् अर्णवे—

यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्।
स्वयम्भु बाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जले स्थितम्।।
पश्चिमायतनं वाऽत्र इतरद्वाऽपि सुव्रते।
शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके।।
पवित्रे सुस्थले देवि जपेद्विद्यां प्रसन्नधीः।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपकः।।
ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी। इति।

होमविधानम्

एवं जपं यथाशक्ति कृत्वाऽऽदौ साधकोत्तमः।
होमं कुर्याद्दशांशेन कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।।२१।।

साधकोत्तम प्रथमतः यथाशक्ति जप करके पलाशपुष्पों से दशांश हवन करे।।२१।।

कृत्वा—करे। भास्करराय 'कृत्वा' पद से होम जप का अंग है—यह कहते हैं। **कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः**—ब्रह्मवृक्ष पलाश को कहते हैं। पलाशफूल से होम।।२१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

जप्यं जपम्। **होमं कुर्यादिति।**

चिद्विकासेन वेद्यस्य तद्विलासस्य तत्तया।
परामर्शो महाहोमः परिपूर्णमहाफलः।।

इत्यकल्पितार्चापरामर्शहोमोपनिषत्। इह तु तदाप्तये गौणो होमविधिः। दशांशेन जपाद् दशांशेन। ब्रह्मवृक्षः पलाशः। तदुद्भवैः समित्पुष्पादिभिः।।२१।।

* अर्थरत्नावली *

होमं कुर्याद्दशांशेनेत्यारभ्य कालमृत्युयमादिभिरित्यन्तः श्लोकसमुदायः कुण्डलक्षण-होमद्रव्यतत्फलवाची प्रायः स्पष्टार्थः।।२१।।

* सेतुबन्धः *

जपविधिमुपसंहृत्य होमं विधत्ते—अत्र कृत्वेति त्वाप्रत्ययेन होमस्य जपाङ्गत्वं बोध्यते। 'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत इत्यत्र वाजपेयाङ्गताया बृहस्पतिसवे बोधनात्। न च होमस्यापि विघ्ननाशादिफलार्थत्वान्नाङ्गत्वमिति वाच्यम्। फलश्रवणस्य बृहस्पतिसवेऽपि तुल्यत्वात्। न च पौरोहित्यफलकबृहस्पतिसवोऽङ्गभूतात् तस्माद्भिन्न एवेति वाच्यम्। प्रकृतेऽपि तथाकल्पनोपपत्तेः। प्रकरणान्तरन्यायलभ्यभेदस्य मासाग्निहोत्रादौ उत्तरमीमांसकैर्निरस्तत्वाच्च। अत एव 'अङ्गमन्त्रेषु फलश्रवणमपि नार्थवादः' इति पक्षः कामेश्वरीबीजोद्धारे प्राक्प्रतिपादितः। होमस्यापि प्राधान्यमेव। 'साहित्यमात्रं त्वङ्गम्' इत्यपि पक्ष उक्त एव। 'पञ्चाङ्गं पुरश्चरणम्'

इत्यादिवचनान्यप्यत्रैव साधकानि। जपहोमतर्पणमार्जनब्राह्मणभोजनरूपपञ्चावयवकमिति तदर्थात्। हृदयमुपांशुयाज इत्यवयवप्रायपाठादुपांशुयाजस्य प्राधान्यमिति सिद्धान्तात्। यथाशक्ति सामर्थ्यमनतिक्रम्य। आदौ जपः, पश्चाद्धोमः। स च ब्रह्मवृक्षजैः कुसुमैः पलाशपुष्पैर्जपदशांशः कार्य इत्यर्थः।

अत्रेदं विचार्यम्—पुरश्चरणजपस्य कियती संख्या यद्दशांशो होम उच्यते। किं प्रथमं विहितः सहस्रजपो मध्ये विहित एकादिनवलक्षान्तजपोऽन्ते विहितो लक्षजपश्चेति त्रयमपि मिलित्वैकं पुरश्चरणमुत त्रीण्यपि प्रत्येकं पुरश्चरणानि, अथवैतेषां मध्येऽन्यतममेकमेव द्वयमेव वा पुरश्चरणमुतैतेभ्योऽन्यदेव पुरश्चरणमिति। तत्र चरमः पक्षः सौभाग्यरत्नाकरेण अवलम्बितः। तन्मते लक्षत्रयस्य पुरश्चर्यात्वात्। मध्ये विहितस्तु एकादिनवलक्षान्तः। सम्भूय पञ्चचत्वारिंशल्लक्षपरिमितः काम्यजप इत्याहुः। नव्यास्तु—एकादिलक्षाणां प्रत्येकं फलवत्त्वकीर्तनं त्ववयवद्वाराऽवयविनो नवलक्षजपस्य स्तुत्यर्थम्, द्वादशकपालपुरोडाशविधेरर्थवादत्वेन यदष्टाकपालो भवतीत्यादेर्वैश्वानराधिकरण उपपादनात्। 'नवलक्षप्रजप्ताऽपि तस्य विद्या न सिध्यति' इत्यादितत्तत्स्तोत्रविधिवाक्यशेषे नवलक्षजपस्य मन्त्रसिद्धिफलकत्वानुवाददर्शनात्। अतो नवलक्षजप एव पुरश्चरणमित्याहुः। तच्चिन्त्यम्। वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जात इत्युपक्रम्य यदष्टाकपालो भवतीत्यादिभिरष्टादिद्वादशकपालानां पृथक्पृथक् पञ्च फलान्युक्त्वा 'यस्मिञ्जात एतामिष्टिं निर्वपति' इत्युपसंहारवाक्ये 'पञ्चापि फलानि वैश्वानरेष्टेर्भवन्ति' इत्युक्त्योपक्रमोपसंहाराभ्यामेकवाक्यताप्रतीतेस्तन्निर्वाहा(योपक्रमोपसंहा)रयोरदर्शनेन सर्वेषां भिन्नवाक्यत्वोपपत्तेः। ततश्चैकलक्षद्विलक्षादिजपाः सर्वेऽपि भिन्नानि कर्माणि भवन्तु। एतेषु चरमस्य नवलक्षजपस्य सर्वव्यापकत्वेन ततोऽपि प्रकृतस्तोत्राभावे सिद्ध्यभावः किमु तत्र न्यूनजपैः कर्मभिरित्येवंपरतयाऽप्युक्तवाक्यशेषोपपत्तेः। किं च भिन्नकर्मनवकपक्ष उत्तरत्र 'एवं जपं यथाशक्ति कृत्वाऽऽदौ साधकोत्तमः' इति यथाशक्तिवचनमुपपद्यते। सर्वस्यैककर्मत्वे तु न तत्समञ्जसं परं तु पञ्चचत्वारिंशल्लक्षात्मकमेकं कर्मेति वदतामेकवाक्यत्वस्यावश्यमङ्गीकार्यत्वाद् वैश्वानरन्यायविरोधो नव्यैरुद्भावयितुं युज्यत एव। कर्मभेदपक्षे तु न तद्विरोधः। वस्तुतस्तु—कर्मनवकपक्षेऽन्ते पुनर्लक्षजपविधानं प्रथमकर्मणा पुनरुक्तं स्यात्। अन्ते लक्षत्रयस्य विधानमिति (सौभाग्य)रत्नाकरादिव्याख्यानेऽपि तृतीयकर्मणा पुनरुक्तिः। अतो मध्ये नवलक्षजपात्मकमेकमेव पुरश्चरणरूपम्। अन्ते स्थलनियमविशिष्टमेकलक्षजपात्मकमेव पुरश्चरणत्वेन विधीयत इति युक्तम्। अस्मिन्नपि पक्षे यथाशक्तिवचनस्योपपत्तेए(रे)तदनुपपत्त्यैवामध्यान्तविधिभिरेकं कर्मेत्युत्प्रेक्षणं परास्तम्। त्रीण्यपि भिन्नानि पुरश्चरणानीति (अर्थ)रत्नावलीपक्षस्तु सहस्रस्य पुरश्चरणताया निरस्तत्वादेव निरस्तः। अन्त्यो विधिर्लक्षत्रयस्येति स्वीकारस्तु शंकरानन्दनाथादेर्महत्साहसमित्युक्तम्। 'एकलक्षजपः काम्यः' इति पक्षेऽपि यथाशक्तिवचनानुपपत्तिः। एतेन श्रीक्रमसंहितैकवाक्यत्वमपि लभ्यत इत्यादिकं तु द्वितीयपटलारम्भ एवोक्तम्, दक्षिणामूर्तिसंहितायां लक्षत्रयजप उक्त इति चेत्। तन्त्रराज एकविंशतिलक्षजपोऽप्युक्त एवेति किं तेन। प्रकृततन्त्ररीत्या तु द्विविधं पुरश्चरणमनाबाधमेवेति। ज्ञानार्णवेऽपि अस्मद् उक्तार्थ एव स्वरस इति तूक्तमेव।।२१।।

कुसुम्भकुसुमैर्वाऽपि त्रिमध्वक्तैर्यथाविधि ।
ततो भवति विद्येयं महाविघ्नौघघातिका ॥२२॥
सर्वकामप्रदा देवि भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।

अथवा त्रिमधु में डूबे कुसुम्भ-पुष्प से यथाविधि (दशांश) हवन करे। इससे विद्या महाविघ्नों का नाश कर देती है। सर्वकामप्रदा तथा भुक्ति-मुक्ति देने वाली हो जाती है।।२२।।

त्रिमध्वक्तै:—शिवानन्द के अनुसार घृत, शर्करा तथा मधु। इससे सिक्त पुष्प द्वारा। **महाविघ्नौघघातिका**—भास्करराय के मत से बहुत दिनों में साध्य जपों में नाना विघ्न होते हैं। अत: निर्दिष्ट संख्या में जप करके उसका दशांश होम करना कर्त्तव्य है। तदनन्तर मूल जप के अवशिष्ट अंश का जप सम्पन्न करे।।२२।।

*** ऋजुविमर्शिनी ***

कुसुम्भो वह्निशिख:। त्रिमधु शर्करा घृतं मधु। अघं पापम्।।२२।।

*** सेतुबन्ध: ***

पलाशकुसुमालाभे त्वाह। त्रिमधुपदेन क्षीरमध्वाज्यमुच्यते, शर्करामध्वाज्यं वा। इदं च पलाशपुष्पपक्षेऽप्यन्वेति। तथाविधीत्यनेन होमेतिकर्तव्यताऽन्यतो ग्राह्येति ध्वनितम्। बहुदिनसाध्यजपेषु विघ्नानामावश्यकत्वात् तत्परिहाराय कयाचित्संख्यया जपं संस्थाप्य तावद्दशांशहोमादिकं समाप्य पुनरवशिष्टजपं समापयेदिति शिष्टसम्मतोऽर्थ:। सोऽयं महाविघ्नौघघातिकेत्यनेन सूचित:।।२२।।

योनिकुण्डे भगाकारे वर्तुले वाऽर्धचन्द्रके ॥२३॥
नवत्रिकोणकुण्डे वा चतुरश्रेऽष्टपत्रके ।
योनिकुण्डे भवेद्वाग्मी भगे चाऽऽकृष्टिरुत्तमा ॥२४॥
वर्तुले तु भवेल्लक्ष्मीरर्धचन्द्रे त्रयं भवेत् ।
नवत्रिकोणकुण्डे तु खेचरत्वं प्रजायते ॥२५॥
चतुरश्रे भवेच्छान्तिर्लक्ष्मी: पुष्टिररोगता ।
पद्माभे सर्वसम्पत्तिरचिरादेव जायते ॥२६॥
अष्टकोणे तु सुभगे समीहितफलं भवेत् ।

योनिकुण्ड में अथवा पीपल के पत्ते के आकार के कुण्ड में अथवा वर्त्तुलाकार कुण्ड में अथवा अर्धचन्द्राकार, नवत्रिकोण, चतुरस्र अथवा अष्टपत्राकार अथवा अष्टकोण कुण्ड में हवन करे। योनिकुण्ड में होम करने पर साधक वाग्मी पीपलपत्राकार कुण्ड में होम करने पर उत्तम आकर्षण शक्ति प्राप्त करता है। वर्त्तुलाकार कुण्ड में होम करने पर लक्ष्मी-

प्राप्ति, अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड में होम से वाग्मित्व, आकर्षणशक्ति तथा लक्ष्मी प्राप्ति—यह तीनों मिलती है। नवत्रिकोण कुण्ड में होने से खेचरत्व-प्राप्ति, चतुरस्र कुण्ड में होम करने से लक्ष्मी तथा आरोग्य मिलता है। अष्टदलाकार कुण्ड में होम से शीघ्र सर्वसम्पत्ति का लाभ होता है। अष्टकोण कुण्ड में होम करने से अभीष्ट फल मिलता है।।२३-२६।।

योनिकुण्डे—भास्करराय इसे त्रिकोण कुण्ड मानते हैं। **भगाकारे**—भास्करराय के अनुसार पीपल के पत्ते के समान। **अष्टपत्रके**—भास्करराय कहते हैं कि इसके द्वारा अष्टपत्र तथा अष्टकोणरूप द्विविध कुण्डों का वर्णन है। **समीहितफलं**—अभीष्ट फल।।२३-२६।।

* ऋजुविमर्शिनी *

योनिकुण्डे अश्वत्थदलाकारे। भगाङ्के मन्मथावासभूमौ। वर्तुले वृत्ताकारे। अर्धचन्द्रके अर्धचन्द्राकारे। नवत्रिकोणकुण्डे नवत्रिकोणाकारे कुण्डे। अष्टपत्रके अष्टदलाकारे। आकृष्टिराकर्षणम्। पद्माङ्के अष्टदलाकारकुण्डे। चक्रेऽष्टकोणसुभग इत्यस्यायमर्थः—अष्टभिः कोणैः सुभगे चक्रे, चक्राकारे कुण्ड इति यावत्।।२३-२६।।

* अर्थरत्नावली *

भगाङ्क इत्यश्वत्थपत्राकृतिरिति भावः।।२३-२६।।

तत्रापि भगाङ्के अश्वत्थपत्राकृतौ।।२३-२६।।

* सेतुबन्धः *

अथ होमोपयुक्तानि कुण्डानि तेषां संयोगपृथक्त्वन्यायेन क्रत्वर्थपुरुषार्थोभयरूपतां च दर्शयति—खातनाभिभुजकोटिमेखलायोन्यादिभिः सलक्षणैर्युतं कुण्डमित्युच्यते। तच्चाष्टविधम्। योनिकुण्डादिभेदात्। भगाकारमश्वत्थपत्राकारं योनिकुण्डं त्रिकोणमिति तयोर्भेदः। अष्टपत्रकपदे ककारः कोणनामैकदेशः। तेनाष्टपत्रमष्टकोणं चेति कुण्डद्वयपरम्। उत्तरत्र द्वयोः पार्थक्येन फलविधिदर्शनात्। ग्रन्थान्तरे तु पञ्चषट् सप्तास्राणि कुण्डान्यप्युपलभ्यन्ते। 'त्रिकोणे मेधावी भवति' इति श्रुतिमनुसृत्याऽऽह—**वाग्मीति**। आकृष्टिराकर्षणम्। श्रुतौ तु 'भगाङ्कं कुण्डं कृत्वाऽग्निमाधाय हुत्वा वशीकरोति' इत्युक्तम्। तेन भगे चाऽऽकृष्टिरिति स्मृतिः श्रुत्यन्तरमूलिकाऽवसेया। 'वर्तुले हुत्वा श्रियमतुलां प्राप्नोति' इति श्रुतिं व्याचष्टे—**वर्तुले त्विति**। अर्धचन्द्रे त्रयं वाग्मित्वमाकर्षणं लक्ष्मीश्च। पद्माभं चतुष्पत्रमष्टपत्रं चेति द्विविधं ग्रन्थान्तरे। एतन्निर्माणप्रकारस्तेषामाहुतिसंख्याभेदेन परिमाणभेदः खातनाभ्यादिलक्षणानि च ज्ञानार्णवे शारदातिलकादौ च द्रष्टव्यानि।।२३-२६।।

मल्लिकामालतीजातिपुष्पैराज्यमधुप्लुतैः ॥२७॥
हुतैर्भवति वागीशो मूकोऽपि परमेश्वरि।

हे परमेश्वरि! मल्लिका-मालती-चमेलीपुष्प को घृत-मधु से लिप्त करके जो होम करता है, वह मूक होने पर भी वाचस्पति हो जाता है।।२७।।

जाति—चमेली।।२७।।

❊ ऋजुविमर्शिनी ❊

वाग्भवबीजमात्रसाधनेऽपि मल्लिकाजात्यादिभिः श्वेतपुष्पैः सारस्वतसिद्धये होम इत्यर्थः। **मल्लिकामालतीत्यादि।** अत्र विकसितैरनाघ्रातैः सुगन्धिभिरनु(ष्ठि ?षि)तैः पुष्पैरिति तात्पर्यम्। उक्तं च—

मुकुलैः पतितैर्म्लानैः शीर्णैर्वा जन्तुदूषितैः।
आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैरुषितैश्चैव नार्चयेत्।। इति।
(प्र० सा० ६.५३)

हुतैरित्यादि। हुतैः होमैः। वागीशः वाचस्पतिः।।२७।।

❊ अर्थरत्नावली ❊

वाग्भवबीजसाधने होमद्रव्यम्—**मल्लिकामालतीत्यादि।** श्वेतपुष्पैः सारस्वतसिद्धये होमः कार्यः।।२७।।

वाग्भववीजसाधनेऽपि मल्लिकाजातिभिः श्वेतपुष्पैः सारस्वतसिद्धये होमः।।२७।।

❊ सेतुबन्धः ❊

इदानीं पुरश्चरणाङ्गहोममाश्रित्यैव गुणकामानाह—अत्र 'पुष्पाणि हुत्वा विजयीभवति' इति श्रुतौ पुष्पपदं मल्लिकादित्रयपरम्। विजयपदं परवादिजयपरमित्यर्थः। मल्लिकादिकुसुमत्रयस्य द्वन्द्वावगतं साहित्यमुपादेयविशेषत्वाद्विवक्षितम्। ततश्चैकैको होमस्त्रित्रिपुष्पकरणकः। होमसंख्या तु पुरश्चरणजपदशांशरूपैव। निखिलकाम्यद्रव्यविधानान्ते 'यथाशक्ति जपं कृत्वा तद्दशांशेन होमयेत्' इति ज्ञानार्णववचनात्। तेन नित्यद्रव्यस्य किंशुककौसुम्भान्यतरस्य बाधः। गोदोहनेनेव चमसस्य काम्यं नित्यस्य बाधकमितिन्यायात्। यत्तु 'नित्यहोमं पुरा कृत्वा काम्यहोमं समाचरेत्' इति अर्णववचनं तत्तु नैवेद्यान्तर्गतहोमोत्तरकालविधानपरं न पुनर्नित्यद्रव्यकरणकहोमसमुच्चायकम्। आज्यमधुप्लुतैरिति तु क्षीरशर्करयोर्बाधनाय। एवं सति यावदपेक्षितस्य काम्यद्रव्यस्य यद्यलाभस्तदा काम्ये प्रतिनिधेर्यथाशक्त्युपबन्धस्य च षाष्ठन्यायविरुद्धत्वादप्राप्तौ वाचनिकोऽपवादः। तथा च काम्यहोमप्रकरणान्ते ज्ञानार्णववचनम्—

नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैर्मिश्रितैर्वा वरानने।
यथाशक्त्या तु मिलितैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः।। इति।

एवं च 'मल्लिकामालतीभिश्च त्रिमध्वक्तैर्वचः पतिः' इति संहितायां द्रव्यद्वयस्यैव ग्रहणमलाभाभिप्रायेणेति ज्ञेयम्। एवमुत्तरत्राप्युन्नेयम्।।२७।।

करवीरजपापुष्पाण्याज्ययुक्तानि पार्वति ।।२८।।
हुत्वाऽऽकर्षयते मन्त्री स्वर्भूपातालयोषितः।
चन्द्रं कस्तूरिकामिश्रं हुत्वा कुङ्कुममीश्वरि ।।२९।।
ततः कन्दर्पसौभाग्योल्लाससामर्थ्यवान् भवेत्।

हे पार्वति! घृतयुक्त कनेर अथवा जवा पुष्प से होम करने पर साधक स्वर्ग-मर्त्य-पाताल की रमणियों का आकर्षण कर लेता है। हे ईश्वरि! कस्तूरी मिले कपूर तथा कुङ्कुम से होम करने पर कामदेव के समान सौभाग्योल्लास का सामर्थ्य प्राप्त करता है।

चन्द्रं—कर्पूर।।२८-२९।।

* ऋजुविमर्शिनी *

चन्द्रकस्तूरिकामिश्रम्। इदं कुङ्कुमस्य विशेषणम्। चन्द्रः कर्पूरः। तत्र होमे।

* अर्थरत्नावली *

करवीरजपापुष्पाणि वश्यार्थमिति।।२८-२९।।

करवीरजपापुष्पाणि वश्याय॥२८-२९॥

* सेतुबन्धः *

अत्रापि जपाकरवीरयोरुक्तन्यायेन समुच्चित्य करणत्वम्। द्वन्द्वसमासबलात्। ज्ञानार्णवे—'जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः' इत्यत्र द्वन्द्वाभावेऽपि प्रकृततन्त्रवचनेनोपसंहारात् साहित्य-विवक्षा। अत्र ज्ञापकं 'क्षीरं मधु च दध्याज्यं पृथग्घुत्वा वरानने' इति वचने पृथक्पदे। तत्रापि द्वन्द्वाभावेनैव पार्थक्ये सिद्धे पुनः पृथगित्युक्तेः कण्ठरवेण पार्थक्यानुक्तौ मिश्रणानुमितिज्ञापनार्थत्वात्। तेन संहितायाम्—'करवीरजपापुष्पैराज्याक्तैर्भुवनत्रये' इत्युपपन्नम्। एतेन ज्ञानार्णवीयवचने द्वन्द्वाभावे सर्वत्राविशेषेण पृथक्साधनत्वमिति तु शंकरानन्दनाथस्य भ्रम एव। तन्त्रान्तरादिविरोधात्। चन्द्रं कर्पूरम्, कुङ्कुमं केसरम्। एतदुभयमेव काम्यद्रव्यम्। कस्तूरिका तु संस्कारिका। कन्दर्पस्य यानि सौभाग्योल्लाससामर्थ्यानि तद्वानिति विग्रहः। उक्तं च ज्ञानार्णवे—

कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि।
हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत्।।
सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनाऽपि सुव्रते। इति।

चम्पकं पाटलादीनि हुत्वा वै श्रियमाप्नुयात् ॥३०॥
श्रीखण्डमगुरुं चापि कर्पूरं पुरसंयुतम्।
हुत्वाऽमरपुरन्ध्रीणां देवि क्षोभकरो भवेत् ॥३१॥

चम्पा, पाटल आदि से होम करने पर साधक श्रीलाभ करता है। हे देवि! गुग्गुलुयुक्त चन्दन, अगुरु तथा कपूर से होम करने पर वह साधक सुराङ्गनागण को भी क्षोभित करने वाला हो जाता है।।३०-३१।।

पाटलादीनि—भास्करराय व्याख्या में कहते हैं कि इससे चाम्पेय पुष्प तथा पाटल आदि फल का तात्पर्य है। चाम्येय पुष्प अर्थात् नागकेशर फूल। **श्रीखण्डम्**—चन्दन। **पुरसंयुतम्**—पुर अर्थात् गुग्गुलु। संयुतम्—मिलाकर।।३०-३१।।

* ऋजुविमर्शिनी *

असौ होता। श्रीखण्डं चन्दनम्। पुरं गुग्गुलुः। अमर-पुरन्ध्रीणाम् अप्सरसाम्।

* अर्थरत्नावली *

कर्पूरादि सौभाग्यार्थम्। पुरं गुग्गुलुः। एतदपि वश्यार्थे।।३०-३१।।

कर्पूरादि तत्सौभाग्यसिद्धये। पुरं गुग्गुलुः। एतदपि वश्याय।।३०-३१।।

* सेतुबन्धः *

पाटलादीत्यादिपदेन संहितोक्तानां चाम्पेयकुसुमानां पाटलादिफलानां च परिग्रहः। चाम्पेयस्य चम्पकाद्भिन्नत्वात्। ज्ञानार्णवे तु जगतीस्तम्भनमपि फलमुक्तम्। सुन्दरीमहोदये तु 'चम्पकैः श्रीः पाटलैः स्तम्भः' इति व्याख्यातं तदेतत्तन्त्रविरोधादनादेयम्।

पुरो गुग्गुलुः। स च संस्कारः श्रीखण्डादित्रयस्य। ज्ञानार्णवे तु तस्य पार्थक्येन द्रव्यत्वमुक्तम्। एतेषामपि पार्थक्येन वा मिलितानां वा साधनत्वम्। 'नानाद्रव्यैः' इत्युक्तवचनात्। एकफलार्थत्वेनानेकद्रव्याणामेकेन विधिना विधानस्थले सर्वत्र तस्य प्रवृत्तेः। द्वन्द्वावगतसाहित्यापवादकमात्रं तदिति सुन्दरीमहोदयकाराशयस्तु तन्त्रान्तरानवलोकनात् स्वकीयतन्त्रस्थपृथक्पदस्वारस्यादर्शनाच्चेत्युक्तम्।।३०-३१।।

दासोऽपि लभते सद्यो लक्षाम्भोरुहहोमतः।
दुर्भगः सुभगो भूयाल्लक्षकह्लारहोमतः ।।३२।।

लक्ष अम्भोरुह से होम करने पर दास भी तत्काल अभीष्ट फल पाता है। कल्हारपुष्प से एक लाख होम करके अभागा भी सौभाग्यवान हो जाता है।।३२।।

दासोऽपि—निम्नाधिकारी व्यक्ति। **लभते**—प्राप्त करता है। **अम्भोरुह**—भास्करराय अर्थ करते हैं सकंटक नालयुक्त कमल। **कह्लारं**—भास्करराय के अनुसार बिना कण्टक नालयुक्त कमल।।३२।।

* सेतुबन्धः *

अम्भोरुहं कमलं सकण्टकनालम्। कह्लारं निष्कण्टकनालमिति भेदः। अनया लक्षसंख्यया दशांशसंख्या न्यूनाऽधिका वा बाध्यते।।३२।।

हुत्वा पलं त्रिमध्वक्तं कृत्वा स्मृत्वा महेश्वरीम्।
खेचरो जायते देवि गत्वा रात्रौ चतुष्पथे ।।३३।।

रात्रि में चौराहे पर महेश्वरी का स्मरण करके मांस को त्रिमधुर से भिंगो कर होम करके साधक खेचरत्व प्राप्त करता है।।३३।।

* ऋजुविमर्शिनी *

पलं मांसम्।।३३।।

* अर्थरत्नावली *

पलं महामांसादि।।३३।।

पलं महासवमांसादि।।३३।।

* सेतुबन्धः *

रात्रौ चतुष्पथे गत्वा पलं मांसं तन्त्रान्तरवशाच्छागसम्बन्धि त्रिमध्वक्तं कृत्वा मन्त्रेण महेश्वरीं स्मृत्वा हुत्वा खेचरो जायत इत्यन्वयः।।३३।।

तथा दधिमधुक्षीरमिश्राँल्लाजान् महेश्वरि।
हुत्वा न बाध्यते रोगैः कालमृत्युयमादिभिः ॥३४॥

हे महेश्वरि! उसी प्रकार दधि-मधु-दुग्धमिश्रित लावा की आहुति देने से साधक को रोग-काल-मृत्यु-यमादि पीड़ा नहीं पहुँचा सकते।।३४।।

कालः—शिवानन्द अर्थ करते हैं—अवच्छेदक। **यमादि**—शिवानन्द अर्थ करते है निवृत्ति कारक या समाप्ति कारक। व्याधि का अर्थ किया है—चिन्ताप्रद। रोग तथा व्याधि पर्यायवाची हैं। रसमंजरी में व्याधि का अर्थ है—कामव्यथा सन्तापजनित कृशता। भास्करराय कहते हैं कि काल-मृत्यु-यम प्रत्येक देवताओं का भिन्न रूप होने से भिन्न है।।३४।।

* ऋजुविमर्शिनी *

कालमृत्युयमादिभिरिति। आदिशब्देन व्याधिर्लक्ष्यते। कालोऽवच्छेदकः। मृत्युः मारयिता। यम उपरमयिता। व्याधिः चिन्ताकरः। शरीरोपतापलक्षणो रोगः। इदमस्य हृदयम्—

कालो मृत्युर्यमो व्याधिस्तत्त्वतस्त्वेक एव तु।
वृत्त्यन्तरविशेषेण पर्यायेणाभिधीयते।।
सर्वावच्छेदकः कालो मृत्युर्मारयिता च सः।
यमनाद्यम एवायं व्याधिश्चिन्ताप्रदो हि सः।।

इत्युक्तदिशा बहुविकारप्रदा एताः शरीरायासकारिण्यो विकल्पोदयभूमयोऽवस्थाः कलयामि कतिपयकालशरीरस्थितिकृत्त्रिदशाहारन्यक्कारितमहाहन्तामहामृतमहोदधिनिमज्जद्देहादिप्रमातृकस्य समावेशकरसास्वादनिपुणस्य महायोगिजनस्य—

जीवन्नेव विमुक्तोऽसौ यस्येयं भासना सदा।
यः शिवं भावयेन्नित्यं न कालः कलयेच्च तम्।।
(स्व० त० ७.२५९)

इत्याम्नातनीत्या न कदाचित् सम्भावनाप्रत्ययविषयतां भजन्तीति शिवम्।।३४।।

एवं प्रजल्पितं मातस्त्वद्भक्त्युद्रेकतो मया।
समञ्जसं वेतरद्वा तत्ते सोढव्यमम्ब हे।।

प्रसृता भारतीज्योत्स्ना शिवानन्देन्दुमण्डलात्।
कुदेशिकमहाघर्मसन्तप्तैः सेव्यतां चिरम्।।
इति परमरहस्यं प्राप्तसत्सम्प्रदायं स्फुटविवृतिविलासं प्रोन्मिषच्चक्रराजम्।
निपुणमतिनिषेव्यं निर्गताशेषदोषं विवरणमकृतेदं श्रीशिवानन्दयोगी।।
एकत्रिंशत्रिकद्वन्द्वतत्त्वात्मपरमेशितुः।
परानुग्रहसृष्ट्यंशत्रितयं हृदयं नुमः।।

एवमृजुविमर्शिन्यां नित्याषोडशिकार्णवे।
शिवानन्दपरामृष्टः पञ्चमः पटलो गतः॥

*** अर्थरत्नावली ***

दधिमधुक्षीरलाजादि कालजिद्धोमार्थम्। होमं कुर्याद्दशांशेनेत्यारभ्य हुत्वा न बाध्यते रोगैः कालमृत्युयमादिभिरित्यन्तः श्लोकसमुदायः कुण्डलक्षणहोमद्रव्यतत्फलवचनः।।३४।।

इति श्रीविद्यानन्दविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थरत्नावल्यां
त्रिपुराजपहोमोपदेशः पञ्चमः पटलः

दधिमधुक्षीरमिश्रैर्लाजैः कलहादिविजयाय। इति शुभम्॥३४॥

एतद्दर्पणसुस्पष्टं चतुश्शत्यागमार्थवत्।
योगीन्द्रो वामनः कुर्यात् परमं पदमश्नुते ॥५॥

इति श्रीविद्यानन्दनाथविरचिते चतुश्शतीटिप्पणेऽर्थरत्नावल्यां पञ्चमः पटलः

*** सेतुबन्धः ***

अत्र लाजा होमकरणद्रव्यम्। दध्यादित्रयं द्रव्यसंस्कारः। तेनाऽऽज्यस्य वैकल्पिकशर्करायाश्च बाधः। ज्ञानार्णवे तु—

होमो दधिमधुक्षीरलाजाभिर्वीरवन्दिते।
रोगहन्ता कालहन्ता मृत्युहन्ता न संशयः।।

इत्युक्तत्वाच्चतुर्णामपि द्रव्यत्वमेवेत्युक्तं सुन्दरीमहोदये। वस्तुतस्तत्रापि दधिमधुक्षीरैर्लाजा इति तृतीयातत्पुरुष एव न चतुष्पदो द्वन्द्वः। भक्ष्येण मिश्रीकरणमिति सूत्रेण समासः। प्रकृततन्त्राविरोधाय तथैव व्याख्यातुं युक्तत्वात्। एतेन मधुसर्पिर्दधिक्षीरलाजैर्होमादरोगतेति दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि समासो व्याख्यातः। एतत्पक्षे तु न घृतबाध इत्येव विशेषः। यमादिभिरित्यादिपदेन परकृत्यादिग्रहणम्। व्याधिग्रहणमिति प्राचां व्याख्याने रोगव्याध्योर्भेदश्चिन्त्यः। कालमृत्युयमास्तु देवताविशेषरूपत्वाद्भिन्ना एव।।३४।।

समस्तमन्त्रकल्पोक्तैर्ध्यानहोमजपादिभिः।
प्रयोगाः कथिता देवि सिध्यन्त्येव न संशयः ॥३५॥

हे देवि! समस्त मन्त्रों के कल्पोक्त ध्यान-होम-जपादि से साध्य जो प्रयोग कहे गये हैं, वे सफल होंगे; यह निःसंदिग्ध है।।३५।।

प्रयोगः—भास्करराय के मत से काम्य प्रयोग।।३५।।

*** सेतुबन्धः ***

एवं मुमुक्षुजनाधिकारके ग्रन्थे काम्यकर्मविस्तरस्यानुचितत्वं मन्यमानः तन्त्रान्तरेषूक्तानितोऽप्यनवधिकान् प्रयोगान् संक्षिप्याऽऽह—समस्तानां सप्तकोट्यादिसंख्यानां मन्त्राणां ये ये कल्पास्तन्त्राणि तेषूक्ता ये ध्यानैकसाध्या होमैकसाध्या जपैकसाध्या आदिपदादर्चनादिसाध्याश्च काम्यप्रयोगास्ते सर्वेऽप्यनेन सिध्यन्तीत्यत्र कियत्प्रातिस्विकं वक्तव्यमत्र च न संशयः कार्य इत्यर्थः।।३५।।

तत्तन्मन्त्राक्षरस्थाने विद्यामेतां तु विन्यसेत्।
एतस्यां साधितायां तु सिद्धा स्यान्मातृका यतः ।।३६।।

उन-उन मन्त्राक्षर के स्थान पर इस विद्या का विन्यास करना चाहिये, क्योंकि यह विद्या साधित होने पर मातृका सिद्ध हो जाती है।।३६।।

तत्तन्मन्त्राक्षरस्थाने विद्यामेतां तु विन्यसेत्—इसकी टीका में भास्करराय कहते हैं कि अन्य तन्त्रों में कहे अन्य मन्त्रों के प्रयोग में जहाँ मन्त्रों के विनियोग की व्यवस्था है, वहाँ इस पञ्चदशी विद्या का विनियोग करने से फल मिलता है। **एतस्यां साधितायां तु सिद्धा स्यान्मातृका यतः**—इसकी टीका में भास्करराय का कथन है कि सभी मन्त्रों की प्रकृति है—मातृकाक्षर। श्रीविद्या तथा मातृका में कोई भेद नहीं है। अतः श्रीविद्या-सिद्धि से मातृका-सिद्धि हो जाती है। मातृका-सिद्धि का अर्थ है—प्रकृतिभूत निखिलाक्षर-सिद्धि। तब तो किसी भी मन्त्र की सिद्धि हो जाती है; क्योंकि सभी मन्त्र मातृकाक्षर के अन्तर्गत हैं।।३६।।

*** सेतुबन्धः ***

अन्यमन्त्रकरणकाः प्रयोगा अनया विद्यया कथं सिध्यन्तीत्याशङ्क्याऽऽह। तन्त्रान्तरोक्तेष्वन्यमन्त्रकरणकप्रयोगेषु यत्र मन्त्रान्तरस्य विनियोगस्तत्र सर्वत्रेमामेव पञ्चदशीं विद्यां विन्यसेत्। तं मन्त्रं निष्कास्येमं मन्त्रं तत्स्थाने प्रयुञ्जीत। अथवा मन्त्रान्तरैरेव ते प्रयोगा अनुष्ठीयन्ताम्। न तन्निष्कासनेनायं मन्त्रस्तत्स्थाने निधीयताम्। न च मन्त्रान्तराणां पुरश्चर्याभावेन कथं तदीयकाम्यप्रयोगेष्वेतदुपासकस्याधिकार इति वाच्यम्। सर्वेषां मन्त्राणां मातृकासरस्वतीप्रकृतिकत्वेन प्रकृतिभूतनिखिलाक्षरसिद्धौ विकृतिसिद्धेरावश्यकत्वात्। श्रीविद्यायाश्च मातृकया सहाभेदेनैतत्सिद्धौ तस्या अपि सिद्धत्वादित्याह—**एतस्यामिति**। ततश्चैतत्सिद्ध्यैव सर्वमन्त्राणां सिद्धत्वात्सर्वेऽपि प्रयोगा विद्योपासकानां फलदा एवेति विशिष्य तत्तत्कथनं व्यर्थमेवेति भावः।।३६।।

गुरूपदिष्टमार्गेण मातृकान्तरितां न्यसेत्।
कर्तव्यं परमेशानि सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।३७।।

हे परमेशानि! गुरु द्वारा उपदिष्ट श्रीविद्या को मातृका-पुटित करके उसका प्रयोग करना चाहिये। गुरु की आज्ञा से सब करने पर सर्वसिद्धि मिल जाती है।।३७।।

मातृकान्तरितां—मातृका से पुटीकृत। भास्करराय का मन्तव्य है कि मातृका द्वारा सम्पुटीकरण अनुलोम क्रम से होगा अथवा अनुलोम एवं प्रतिलोम क्रम से होगा, इसे गुरु से जानकर उनकी अनुमति से सम्पुटीकरण करना उचित होता है।।३७।।

* सेतुबन्धः *

यद्यनया विद्ययैव ते प्रयोगा: साधनीया इत्याग्रहस्तदा मन्त्रान्तराणां स्थानेष्वेषा विद्या न केवला निधेयाऽपि तु मातृकापुटितैव प्रयोज्येत्याह—मातृकाभि: सम्पुटीकरणमानुलोम्येनैव वाऽनुलोमप्रतिलोमतया वेत्येतत्स्वगुरुमुखाद्विज्ञाय तदाज्ञया सर्वं कर्तव्यं सिद्धिरवश्यं भवत्येवेत्यर्थ:।।३७।।

न ध्यानं मुखमुद्रादिकलानां परिकल्पनम्।
ध्यानं शक्तिसमावेशात् सुमहत्सामरस्यकम्।।३८।।

मुखादि अवयव अथवा वराभय मुद्रा की मन में कल्पना ध्यान नहीं है। शक्तिसमावेशार्थ जो ब्रह्मसमरस्य है, वही ध्यान है।।३८।।

मुखमुद्रादिकलानां—भास्करराय अर्थ करते हैं कि मुखादि का, वराभय मुद्रादि का, रक्त आदि वर्ण का तथा कलादि का अर्थ है—अवयवों का ध्यान। **न ध्यानं**—भास्करराय कहते हैं कि ये तात्त्विक ध्यान नहीं हैं। स्थूल ध्यान तथा मानस परिकल्पन कृत्रिम होता है। तथापि 'न ध्यानं' द्वारा स्थूल ध्यान की निन्दा नहीं की गई है। 'नहि निन्दान्याय' के अनुसार प्रशंसा ही है। **शक्तिसमावेशात्**—भास्करराय के मत से स्वशक्ति का उल्लास। वे कहते हैं कि शुद्ध चैतन्य ब्रह्मस्वरूप जब आणव, कार्म तथा मायीय नामक मलत्रययुक्त अविद्याबन्ध युक्त होते हैं, तब वे हैं जीव। ब्रह्म में विद्यमान समस्त शक्ति जीव में भी है, तथापि तिरोहित स्थिति में है। शिवसूत्र में इस तिरोधान का अपसारण करने के लिये आणव, शाक्त तथा शांभवरूपी उपाय कथित है। इनमें से किसी का भी अवलम्बन करके जीव अपने शक्तिसमूह के उल्लास द्वारा ब्रह्म हो जाता है। यही उल्लास है—शक्तिसमावेश।।३८।।

* सेतुबन्धः *

ननु देवताभेदेन ध्यानजपहोमानां परस्परविलक्षणानां व्यवस्थितत्वेनैकेनान्यस्य साधने सर्वसांकर्यापत्त्या व्यवस्थापकशास्त्राणामानर्थक्यापत्त्या बहु व्याकुली स्यादित्याशङ्क्य स्थूल-

ध्यानजपहोमादिप्रवीणैः स्थूलदृग्व्यवस्थामन्तरेणैव प्रयोक्तुं युज्यते, सूक्ष्मदृशा सर्वस्यैकरूपत्वादिति समाधातुकामो गूढाभिसन्धिः सूक्ष्माणि ध्यानादीन्याह—मुखादीनां वराभयमुद्रादीनां रक्तादिवर्णानां च कलानामवयवानां परिकल्पनं न ध्यानम्, न तात्त्विकमित्यविवक्षितं वाच्यम्। मनसा परिकल्पितत्त्वेन कृत्रिमत्वादेवेति भावः। इदं च नहि निन्दान्यायेन वास्तवस्तुत्यर्थम्। ब्रह्मस्वरूपं यच्छुद्धचैतन्यं तदेवाऽऽणवकार्ममायीयाख्यमलत्रयरूपाविद्यकबन्धेन युक्तं जीव इत्युच्यते। तेन जीवेऽपि ब्रह्मणि विद्यमाना निखिलाः शक्तयः सन्त्येव, परं तु तास्तिरोहिताः। तिरोधानापाकरणे चोपाया आणवशाम्भवशाक्तभेदेन त्रिविधाः **शिवसूत्रे** वर्णिताः। तदन्यतमोपायेन स्वनिष्ठानां शक्तीनां सर्वासामुल्लासे सति ब्रह्मैव भवति। तदिदम् 'स्वशक्तिप्रचयो(ऽस्य) विश्वम्। शक्तिचक्रानुसन्धानाद्विश्वसंहारः। महाह्रदानुसन्धानान्मन्त्रवीर्यानुभवः। शिवतुल्यो जायते। भूयः स्यात्प्रोक्तमीलनम्' इत्यादिसूत्रेषु क्षेमराजादिभिः सविस्तरं निरूपितम्। तदिदमाह—ध्यानमिति। शक्तिसमावेशात् स्वशक्तिचक्रोल्लासात्। सुमहतो महतो महीयसो ब्रह्मणः सामरस्यमेकीभावः। अज्ञाते कप्रत्ययः। तदेव ध्यानमकृत्रिममित्यर्थः।।३८।।

संयतेन्द्रियसञ्चारं प्रोच्चरेन्नादमान्तरम्।
एष एव जपः प्रोक्तो न च बाह्यजपो जपः ।।३९।।

इन्द्रियसंचार जिससे संयत होता है, ऐसे आन्तर नाद का प्रोच्चारण करना होगा। इसे कहते हैं—जप। बाह्य जप जप नहीं है।।३९।।

संयतेन्द्रियसञ्चारं—भास्करराय अर्थ करते हैं संयत अर्थात् निरुद्ध हुआ है इन्द्रियसमूह, अर्थात् स्वविषयाभिमुखीन प्रवृत्ति जिस कर्म से संयत हो। यह है नाद का विशेषण। **एष एव जपः**—भास्करराय कहते हैं कि सर्व वर्णों के प्रकृतिभूत नादाभ्यास से युगपत्, एक साथ सर्व मन्त्रों का सिद्धि-जनकत्व मिल जाता है। **बाह्यजपः**—भास्करराय के मत से वैखरीरूप वर्णानुपूर्वी विशेषोच्चारणरूप जप।।३९।।

*** सेतुबन्धः ***

अथ सूक्ष्मजपमाह—संयतो निरुद्ध इन्द्रियाणां ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां सञ्चारः स्वस्वविषयाभिमुखी प्रवृत्तिर्यस्मिन्कर्मणि तद्यथा भवति तथाऽऽन्तरमन्तरकृत्रिमतया प्रसरन्तं नादमनाहतं प्रोच्चरेत्। एष एव जपः सर्ववर्णप्रकृतिभूतनादाभ्यासेन सर्वमन्त्राणां युगपदेव सिद्धिजनकत्वात्। बाह्यो वैखरीरूपवर्णानुपूर्वीविशेषोच्चारणरूपो जपो न जपो, नाखिलमन्त्रसिद्धिदायकः। तत्तदानुपूर्वीमात्रसिद्धिजनकत्वादिति भावः।।३९।।

तावदग्नौ न होतव्यं तत्तत्तन्त्रोदितं यथा।
यावदात्ममहावह्नौ मनःपूर्णाहुतिं हुनेत् ।।४०।।

आत्मारूप महा वह्नि में जब तक मन की पूर्णाहुति नहीं होती, तब तक इस तन्त्रोक्त होमद्रव्य से अग्नि में होम करने पर भी होम नहीं होता।।४०।।

आत्ममहावह्नौ—आत्मरूप महावह्नि में। भास्करराय कहते हैं कि सर्वभक्षक आत्मा ही अग्नि है। **मनःपूर्णाहुतिं**—भास्करराय कहते हैं कि मन ही विश्वरूप हवि है; क्योंकि सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन की ही सर्व जगत्कल्पकता स्वीकृत है। भास्करराय की व्याख्या है कि इस श्लोक का तात्पर्य है—आत्मा में मन की आहुति देने के अनन्तर ही बाह्य होम भी होम हो जाता है।।४०।।

*** सेतुबन्धः ***

अथ सूक्ष्महोममाह—संकल्पविकल्पात्मकस्य मनस एव सर्वजगत्कल्पकताया ज्ञानवासिष्ठादौ सविस्तरं प्रतिपादनात् 'मन एव विश्वरूपं हविः। आत्मैव सर्वभक्षकत्वादग्निः'। अत एव शक्तिसूत्रम्—'चिद्वह्निरवरोहपदे छन्नोऽपि चिन्मात्रया मेयेन्धनं प्रू(प्लू)ष्यति' इति। ततश्च यावदात्माग्नौ विश्वस्य पूर्णाहुतिर्न हुता तावत्तत्तन्त्रोक्तमग्नौ होतव्यम्, यत्तद्धोतव्यं न भवति। हविषोऽप्रक्षीणत्वात्। मनस्यात्मनि हुते तु बाह्यहोमोऽपि होम एवेत्यर्थः। तदुक्तम्—

अन्तर्निरन्तरमनिन्धनमेधमाने होमा(मोहा)न्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्।।

इति पूर्णाहुतिपदेन विश्वविषयका मनोविकल्पा वृत्तिरूपा यावन्तस्तावतां सर्वेषां विलापनमुच्यते। 'होमो विश्वविकल्पानामात्मन्यस्तमयो मतः' इति तन्त्रराजोक्तेः। आन्तरहोमस्यान्योऽपि प्रकारो ज्ञानार्णवे द्रष्टव्यः।।४०।।

स्वसंवित्त्रिपुरा देवी लौहित्यं तद्विमर्शनम्।
पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।।४१।।
शब्दस्पर्शादयो बाणा मनस्तस्याभवद्धनुः।
विश्वप्रतीतिजनिकाः शक्तयश्च क्रमेण याः।।४२।।

स्वसंवित् ही हैं त्रिपुरादेवी। उनका विमर्श है—लोहित वर्ण। राग-द्वेष ही उनका पाश तथा अंकुश है। शब्द-स्पर्शादि उनके बाण हैं। मन उनका धनु है। विश्वप्रतीति-जनिका शक्ति ही यथाक्रमेण चतुरस्रादि बिन्दु चक्र में विद्यमाना हैं।।४१-४२।।

स्वसंवित्—भास्करराय कहते हैं—आत्मा। **देवी**—भास्करराय कहते हैं—प्रकाशमानता की हेतु देवी। **लौहित्यं तद् विमर्शनम्**—भास्करराय कहते हैं कि स्वात्मा में अन्यविषयत्व न रहने पर वह एकविषयक अनुसन्धान विमर्शन कहलाता है। यह है—स्वात्मा का अनुराग। यही है—लौहित्य। **पाशः रागात्मकः**—भास्करराय कहते हैं कि अविशेष बन्धकत्व के कारण ३६ तत्त्वों में रागतत्त्व है—पाश का सूक्ष्म रूप। **द्वेषः अङ्कुशः**—भास्करराय कहते हैं कि द्वेष्य से वारकत्व के कारण अंकुश का वासनात्मक रूप है—द्वेष। **शब्दास्पर्शादयो बाणाः**—शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध— यह पाँच पुष्पबाण हैं; क्योंकि आरम्भ में ये अच्छे लगते हैं, किन्तु इनका परिणाम कठोर होता है।

मनस्तस्याभवद् धनुः—व्याख्या में भास्करराय कहते हैं कि मनः अर्थात् मनस्तत्व, तस्य अर्थात् आत्मा का, धनुः अर्थात् इक्षुकोदण्ड। मन को धनु कहने का कारण यह है कि वह इन-इन इन्द्रियों का उन-उन विषय में प्रेरणा करता है। **विश्वप्रतीतिजनिकाः**—भास्करराय अर्थ करते हैं विश्वविषयक स्फूर्त्ति-जनक मनोवृत्तिसमूह। **क्रमेण**—भास्करराय के मत से चतुरस्रादि बिन्दुचक्रान्त क्रम से। **शक्तयः**—पूर्वोक्त सभी मन्त्रवृत्तियाँ ही शक्तिरूपेण विद्यमाना हैं।।४१-४२।।

※ सेतुबन्धः ※

नन्वीदृशात्मोपासकानां सर्वप्रयोगसाङ्कर्यस्य युक्तत्वे त्रिपुरोपासकानां किमायातमित्याह—स्वसंवित्स्वात्मैव त्रिपुरा देवी। त्रिपुटीतः पूर्वकालीनत्वाद् द्योतमानत्वाच्च। तस्य स्वात्मनो विमर्शनमितराविषयकत्वे सति तदेकविषयकमनुसन्धानम्। तच्च स्वात्मन्यनुरागरूपमेवेति लौहित्यमुच्यते। उक्तं च तन्त्रराजे—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना।। इति।

षट्त्रिंशत्तत्त्वेषु रागात्मकं तत्त्वं पाशस्य सूक्ष्मं रूपम्। बन्धकत्वाविशेषात्। अङ्कुशस्य वासनात्मकं रूपं द्वेषः क्रोधः। द्वेष्याद्वारकत्वात्। यत्तु उत्तरपटलेऽङ्कुशस्य ज्ञानरूपत्वं वक्ष्यते, तद्विरोधस्तत्रैव परिहरिष्यते। शब्दस्पर्शादय इत्यादिपदेन रूपरसगन्धाः। एते पञ्च तत्त्वात्मका विषया बाणाः पुष्पसायकात्मकाः। मुखे सुरूपत्वे सति परिणामे परुषत्वात्। तस्य स्वात्मनो धनुरिक्षुकोदण्डं तु मनस्तत्त्वम्, विषयपरमार्थस्वरूपाणामिन्द्रियाणां तत्तद्विषयेषु प्रेरकत्वात्। यथा चोक्तं रहस्यनामसाहस्रे—

रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका।। इति।

विश्वविषयस्फूर्तिजनिका या मनोवृत्तयस्ता एव क्रमेण चतुरस्रादिबिन्दुचक्रान्तक्रमेण विद्यमानाः शक्तयो ज्ञेयाः। तदुक्तं वासनापटले—

अन्यास्तु शक्तयश्चक्रगामिन्यो याः समन्ततः।
तास्तु विश्वविकल्पानां हेतवः समुदीरिताः।। इति।

पञ्चाब्जानि सप्तार्बुदानि षट्कोटयश्च गुप्तनामिकाः शक्तयश्चक्रनवके विद्यमानत्वेन मन्त्रवैभवपटले प्रतिपादिताः। ता एव मनोवृत्तिरूपा इत्यर्थः।

ललिताचक्रनवके प्रत्येकं शक्तयः प्रिये।
चतुःषष्टिर्मताः कोट्यस्ताः सम्भूय पुरोदिताः।। इति।

न त्वेता वृत्तयोऽणिमाद्यावरणशक्तय इति भ्रमितव्यम्।।४१-४२।।

पूर्वपश्चिमकौ द्वारौ प्राणापानात्मकौ स्मृतौ ।
कालो धामानि भूतानि नव चक्राण्यनुक्रमात् ।।४३।।

पूर्व तथा पश्चिम द्वारों को क्रमशः प्राण तथा अपान कहते है। काल-धाम तथा भूत— यह है यथा क्रमेण नौ चक्र।।४३।।

पूर्वपश्चिमकौ द्वारौ प्राणापानात्मकौ—इसकी व्याख्या में भास्करराय कहते हैं कि प्राण वायु पूर्वद्वार है तथा अपान वायु है—पश्चिम द्वार। यहाँ श्रीचक्र के भूपुर के पूर्वद्वार तथा पश्चिमद्वार की बातें कहीं गयी हैं। भूपुर है—चतुर्द्वार। किन्तु यहाँ द्विद्वार के रूप में भूपुर की वासना व्यक्त है।

कालः—भास्करराय काल शब्द से अणिमादि षण्णवति शक्तिवासना व्यक्त करते हैं। **धामानि**—भास्करराय के अनुसार जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपी अवस्थात्रय अथवा यह तीन तथा तुरीय—सभी मिलाकर चार अवस्था। **भूतानि**—पञ्चमहाभूत। **नवचक्राणि**—भास्करराय के मत से काल+धामत्रय + पञ्चभूत = ९, ये नव चक्र अथवा धामचतुष्टय + पञ्चभूत = ९ चक्र। श्रीचक्र के अंग हैं ९ चक्र—सृष्टिक्रम से + बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, भूपुर। अथवा लयक्रम से भूपुर, षोडशदल पद्म, अष्टदल पद्म, चतुर्दशार, बहिर्दशार, अन्तर्दशार, अष्टकोण, त्रिकोण, बिन्दु।।४३।।

*** सेतुबन्धः ***

चक्रोद्धारावसरे भूगृहे द्वारचतुष्टयकथनेऽपि पूजाप्रकरणेऽणिमां पश्चिमद्वार इत्यादिना पूर्वपश्चिमदिशोरेव द्वारानुवादाद्द्विद्वारकपक्षाभिप्रायेण वासनेयम्। प्राणवायुः पूर्वद्वारमपानवायुः पश्चिमद्वारमिति। काल एको जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यं धामत्रयं पञ्च भूतानि चेति क्रमेण नव चक्राणि। अथवा धामानि तुर्यावस्थया सह चत्वारि। कालशब्देनाणिमादिषण्णवतिशक्तिवासनोक्ता। एकविंशतिः सहस्राणि षट्शतानीत्येतावत्संख्याकश्वाससमष्टिरूपस्याहोरात्रात्मककालस्य सपादशतद्वयश्वासरूपाः कालखण्डाः षण्णवतिर्भवन्ति। ते क्रमेणाणिमादिशक्तिरूपा इति रहस्यं सप्तविंशे पटले मनोरमायां स्पष्टम्। तन्त्रराजे कालादिनवात्मकत्वस्य चक्राणामनुक्तावपि तद्व्याख्यातृभिः पञ्चत्रिंशे पटले 'यन्त्राणि मन्त्राः सर्वत्र' इतिश्लोकव्याख्यावसरे चक्रनवकवासनामेतामेव कथयित्वा तत्संमत्यर्थं नित्याषोडशिकार्णवे प्रोक्तमिति ग्रन्थेन कालो धामानि भूतानीत्यर्धमेव लिखितम्। एवं सति यत्प्राचीनैः (ऋजु)विमर्शिन्यादिटीकाकारैः सर्वैरेककण्ठ्येन मूलस्थपञ्चमपटलस्य चतुःस्त्रिंशता श्लोकैरेव समाप्तिं मन्यमानैरुत्तरत्र पठ्यमानान् दश श्लोकान् पुस्तकेषूपलभ्यमानान् संगतानपेक्षितानपि परित्यजद्भिः किमभिप्रेतमिति त एव द्रष्टव्याः। यदि पुनः सार्धत्रिंशदधिकचतुःशतश्लोकघटिताया अस्याः पञ्चपटल्याः पूर्वचतुःशतीतिसमाख्यासमर्थनार्थमिदं साहसम्। प्रथमचक्रोद्धारान्ते सार्धत्रयाणाम्, द्वितीयचक्रोद्धाररूपाणां सप्त-

दशानामत्रत्यानां दशानां च श्लोकानां त्याग इत्याशय: स्यात्। तदाऽप्ययुक्तमेव। अतिप्राचीनै: मनोरमाकारै: एतत्तन्त्रीयत्वेन लिखितश्लोकाल्लिङ्गात् पुस्तकेषूपलम्भाच्च कतिपयानामप्रक्षिप्तत्वे निश्चिते सति समाख्याया एवाल्पन्यूनाधिकभावाविवक्षया गौणत्वेन निर्वोढुं युक्तत्वात्। शारदातिलकप्रथमश्लोके 'पञ्चाशदर्णै:' इतिपदस्य संख्याया नैकट्यादेकपञ्चाशत्परतेति श्रीहर्षदीक्षितैर्व्याख्यातत्वदर्शनात्। सूतसंहितास्थद्वात्रिंशच्छव्दस्य—

एकधा च द्विधा चैव तथा षोडशधा स्थिता।
द्वात्रिंशद्भेदभिन्ना वा या तां वन्दे परात्पराम्।।

इत्यत्रत्यस्य पञ्चत्रिंशद्व्यञ्जनपरत्वेन व्याख्यानाच्च। षडष्टचरणाद्यात्मकगाथाश्लोकत्वस्यापि कतिपयेषु सम्भवाच्च। प्रतिपटलं शतमेव श्लोका इतिनियमरक्षणायेदृशन्यायस्यैव मनोरमायामाश्रितत्वाच्च। अस्माभिस्तु तन्निष्कर्षो निरर्थकत्वादुपेक्षित:।।४३।।

करणेन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्।
विश्वाहंकृतिपुष्पैस्तु पूजयेत्सर्वसिद्धये ।।४४।।

सर्वसिद्धि पाने के लिये करणेन्द्रिय-चक्रस्था संवित् स्वरूपिणी देवी की विश्वाहंकृतिरूप पुष्प से पूजा करे।।४४।।

करणेन्द्रियचक्रस्थां—भास्करराय इसका अर्थ करते हैं—आन्तर इन्द्रियाँ। ज्ञान तथा कर्मभेद से इन्द्रियाँ द्विविध हैं (कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय)। इन्द्रियचक्र अर्थात् समूह। यह है—शक्तिचक्र, इसके मध्यस्थ जो है उसे। **देवी**—त्रिपुरसुन्दरी देवी। **संवित्स्वरूपिणीम्**—भास्करराय अर्थ करते हैं—निर्विशेष ज्ञानैकरूप। **विश्वाहङ्कृतिपुष्पै:**—भास्करराय के मत से यहाँ 'पुष्पै:' पद उपचार का उपलक्षण है। उपचार अनेक हैं। ये सब विश्वाहंकृतिरूप उपचार हैं। विश्वाहङ्कृति अर्थात् ३६ तत्त्वात्मक विश्व में सर्वत्र 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसी परा भावना। **सर्वसिद्धये**—भास्करराय अर्थ करते हैं—सर्वात्मत्व-लाभ के लिये। इसके द्वारा तन्त्रोक्त समस्त ऐहिक प्रयोगसिद्धि-हेतु इसका अर्थ व्यक्त है।।४४।।

नित्याषोडशिकार्णव का पञ्चम पटल समाप्त

*** सेतुबन्ध: ***

अथ देवीपूजनवासनामाह—करणानामान्तराणामिन्द्रियाणां ज्ञानकर्मभेदभिन्नानां चक्रं समूह एव श्लेषाच्छक्तिचक्रं तन्मध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीं संवित्स्वरूपिणीं निर्विषयज्ञानैकरूपां सर्वसिद्धये सर्वात्मत्वलाभाय तद्द्वारा समस्ततन्त्रोक्तैहिकप्रयोगसिद्ध्यर्थं पूजयेत्। पुष्पैरित्युपचारमात्रोपलक्षणम्। ते चोपचारा विश्वाहंकृतिरूपा:। विश्वस्मिन् षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मके सर्वत्राहंभावो ब्रह्मैवाहमित्याकारिका सार्वदिकी पराहन्ताभावनेति यावत्। तदुक्तं तन्त्रराजे—'उपचाराश्चलत्वेऽपि तन्मयत्वाप्रमत्तता' इति।

अननुसन्धानावश्यंभावसमये स्वप्नादावपि ब्रह्ममयत्वभावनाविषये प्रमादाभाव एक एव सर्वेऽप्युपचारा: किमुत जाग्रद्दशायामिति तदर्थ:। अन्यदप्युक्तं तत्रैव—

ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं बहि:स्थितम्।
श्रीचक्रं पूजनं तेषामेकीकरणमीरितम्।। इति।

अत्र कामाकर्षिण्यादिर्कातिपर्यनित्याकलावासनारूपकरणेन्द्रियमात्रस्यावयुत्यानुवादबलात् तन्त्रराजे—'गुरुराज्ञा भवेच्छक्ति:' इत्यारभ्य 'इति प्रोक्तास्तु वासना:' इत्यन्तैरेकविंशत्या श्लोकैरुक्तानां वासनानां ग्रहणमिति ध्वनितम्। तत्प्रकारश्च तत्रैव द्रष्टव्यो विस्तरभयान्नेह प्रपञ्च्यतेऽस्माभि:। एवं चतुश्चत्वारिंशता श्लोकैर्मन्त्रसाधनस्यैव प्रकारो बाह्य आन्तरश्च संक्षिप्योक्त:। इत उत्तरो ग्रन्थसन्दर्भस्तु प्रायेणाऽऽन्तरैकविषयको भविष्यतीति सर्वं शिवम्।।४४।।

इति श्रीभास्करोन्नीते नित्याषोडशिकाम्बुधे: ।
व्याख्याने सेतुबन्धाख्ये विश्रामः पञ्चमोऽभवत् ॥५॥

●

समाप्तोऽयं ग्रन्थः